असामान्य व्यवहार

डॉ. प्रयागदीन मिश्र
डॉ. बीना मिश्र

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

ग्रन्थमाला संख्या-257

असामान्य व्यवहार

डॉ० प्रयागदीन मिश्र
पूर्व प्रोफेसर
समाज कार्य विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ
एवं
डॉ० बीना मिश्र
समाज कार्य विभाग
लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग
मानव संसाधन विकास मंत्रालय
(माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार
उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ
दूरभाष : 0522-2614470, 2614471

प्रकाशक :

डॉ. सुधाकर अदीब

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

वैज्ञानिक तथा तकनीकी शब्दावली आयोग, मानव संसाधन विकास मंत्रालय (माध्यमिक शिक्षा और उच्चतर शिक्षा विभाग) भारत सरकार की विश्वविद्यालयस्तरीय ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत हिन्दी ग्रन्थ अकादमी प्रभाग, उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान द्वारा प्रकाशित।

प्रथम संस्करण : 1982

द्वितीय संस्करण : 2007

तृतीय संस्करण : 2013

चतुर्थ संस्करण : 2015

प्रतियाँ : 500

मूल्य : ₹ 235 = 00

ISBN–978–93–82175–52–0

मुद्रक :

प्रकाश पैकेजर्स

257, गोलागंज, लखनऊ

प्रकाशकीय

शोध और अध्ययन से अब यह पूरी तरह स्पष्ट हो चुका है कि हम जो भी व्यवहार करते हैं, वह अनायास नहीं होता। उस पर हमारे पर्यावरण और स्थितियों का भी प्रभाव पड़ता है। अगर हमारा परिवेश सुखद है, अज्ञानता से परे है, विकसित है तो स्वाभाविक रूप से हम जो भी व्यवहार करेंगे, वह अधिक परिपक्व और सहज होगा। दुर्भाग्य से यह स्थितियाँ सम्पूर्णता में अभी हमारे समाज में विकसित नहीं हो सकी हैं। भौतिक विकास की अनेक विसंगतियाँ भी कई नकारात्मक प्रभाव डालती हैं, जिस कारण समाज में अनेक मनोवैज्ञानिक विकृतियों विद्यमान हैं। जिन्हें 'असामान्य व्यवहार' की संज्ञा भी दी जाती है। इसे नियंत्रित करने के संदर्भ में निरन्तर शोध जारी हैं और समय के साथ–साथ अनेक सकारात्मक परिणाम सामने आ रहे हैं।

सुप्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक और विद्वान डॉ0 प्रयागदीन मिश्र और डॉ0 बीना मिश्र की यह सारगर्भित पुस्तक 'असामान्य व्यवहार' में इन मनोवैज्ञानिक समस्याओं और विकृतियों की सविस्तार पड़ताल की गयी है और इनके उन्मूलन के लिए मार्ग प्रशस्त करने का प्रयास भी विद्वान लेखक द्वय ने किया है। पुस्तक 26 अध्यायों में विभक्त है पुस्तक में एक अत्यन्त जटिल विषय को सरल ढंग से व्यक्त किया गया है जो विद्वान लेखक–द्वय की विद्वत्तता का प्रमाण है। पुस्तक में शुरू के दो अध्याय असामान्य व्यवहार की व्यापकता और स्थितियों से सम्बन्धित विभिन्न वैज्ञानिक अवधारणाओं पर केन्द्रित हैं। अगले चार अध्यायों में व्यक्तित्व–विकास को परिभाषित किया गया है। असामान्यता का वर्गीकरण भी इस अध्यायों में है जो सारी मनोवैज्ञानिक विकृतियों को व्यवस्थित रूप देता है। कहना न होगा कि ऐसा वर्गीकरण न केवल वास्तविक स्थितियों को समझने में व्यावहारिक मदद करता है बल्कि उनके उन्मूलन का मार्ग भी प्रशस्त करता है। इस वर्गीकरण के द्वारा ही मनोस्नायु दौर्बल्य, चिन्ता, रोग, विषाद और दैहिक विकृतियों आदि

कारणों की असामान्य व्यवहार में भूमिका स्पष्ट होती है। पुस्तक के अन्त में मानसिक स्वास्थ्य और मनोचिकित्सा पर भी दो अध्याय दिये गये हैं, जो सम्पूर्ण विषय को पूर्ण बनाते हैं।

भौतिक उपलब्धियों की तमाम समृद्धि के बीच यह विरोधाभास ही है कि मनोवैज्ञानिक समस्याएँ भी निरन्तर बढ़ रही हैं। बढ़ती जनसंख्या, प्रदूषण और अन्य सामाजिक–आर्थिक कारण भी इस स्थिति के लिए जिम्मेदार हैं। ऐसे में इस पुस्तक की उपादेयता और बढ़ जाती है। जागरूक पाठकों विशेषकर शोध छात्रों के बीच इस पुस्तक ने जो उल्लेखनीय पहचान बनायी, उसके कारण ही उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान के ग्रंथ अकादमी प्रभाग द्वारा प्रकाशित इस पुस्तक का पुनः प्रकाशन भारत सरकार की विश्वविद्यालय स्तरीय पाठ्य–पुस्तक ग्रंथ निर्माण योजना के अन्तर्गत किया जा रहा है। आशा है कि पर्वू की भाँति जागरूक पाठकों द्वारा पुस्तक के इस चतुर्थ संस्करण का भी स्वागत होगा।

डॉ0 सुधाकर अदीब
निदेशक

निवेदन

असामान्य व्यवहार वर्तमान परिवेश के नकारात्मक रुझानों की अभिव्यक्ति है। असामान्य व्यवहार को समझने के लिए अपने परिवेश, विकास और परम्परा को समझना भी आवश्यक है। हम जो भी व्यवहार करते हैं, उसमें हमारे पर्यावरण का बहुत महत्वपूर्ण योगदान होता है। विज्ञान और प्रौद्योगिकी ने मानव–जीवन विशेषकर पारस्परिक सम्बन्धों पर भी अपनी छाप छोड़ी है, जिसका मूल्यांकन आज की आपाधापी में प्रायः कम होता है। अत्यधिक प्रतियोगिता, घटता शारीरिक श्रम, बदलती परम्पराएँ और रीति–रिवाज, गरीबी और बढ़ते निहित स्वार्थ आदि ने विभिन्न स्तरों पर समाज, परिवार और विशेषकर मानव मन को गहरे कुप्रभावित किया है और सदैव इन सब का प्रभाव नकारात्मक होता है। विभिन्न कारणों से विकास का लाभ सभी तक समाज रूप से न पहुंच पाने के कारण अनेक वर्ग और विसंगतियाँ पैदा हो रही हैं। कई बार उपलब्धियों का यह विषमता भी हमारे अन्तर्मन को प्रभावित करती है। सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक स्थितियों में तेज बदलाव के साथ हमारा सरल–निश्छल मन तालमेल नहीं बैठा पाता और जिस कारण प्रायः अनेक असन्तुलित असामान्य व्यवहार सामने आते हैं।

आज की अत्यन्त महत्वपूर्ण समस्याओं में एक है मनुष्य के बीच में तेजी से फैलने वाला असामान्य व्यवहार असामान्य व्यवहार कोई सामान्य अवगुण नहीं है और न ही स्वतःप्रेरित है। एक ओर, यह हमारे सम्पूर्ण व्यक्तित्व को प्रभावित करता है, उसका विकास रोकता है, दूसरी ओर, जिस असंतुलित भौतिक विकास और उससे उत्पन्न विभिन्न समस्याओं के कारण यह समस्या लगातार बढ़ रही है, उन पर सम्पूर्णता में नियंत्रण पाना तत्काल सम्भव नहीं है। ऐसे में यह कल्पना ही कितनी भयावह है कि असामान्य व्यवहार मानवीय चेतना और मेधा को कितना कुंठित करता है और हमारी जो वैचारिक क्षमताएँ चतुर्दिक प्रगति को द्विगुणित कर सकती

है, वे कितनी बुरी तरह प्रभावित हो रही हैं। असामान्य व्यवहार मानव विकास की राह का एक प्रमुख रोड़ा है और इस पर नियंत्रण तभी सम्भव है, जब हम इसे सम्पूर्णता में समझ सकें और सम्बन्धित पहलुओं के उन्मूलन के लिए आगे आयें।

मनोविज्ञान के निष्णात विद्वान डॉ0 प्रयागदीन मिश्र और डॉ0 बीना मिश्र ने इस समस्या को केन्द्र में रखकर उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान की विश्वविद्यालयस्तरीय पाठ्य पुस्तक ग्रन्थ निर्माण योजना के अन्तर्गत 'असामान्य व्यवहार' शीर्षक पुस्तक तैयार की थी जिसका प्रथम संस्करण 1982 में प्रकाशित हुआ था। पुस्तक मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं को अधिकांशतः पूर्ण करती है। वह न केवल असामान्य व्यवहार के कारणों को सविस्तार देखती है, उनका वैज्ञानिक आधार पर वर्गीकरण करती है बल्कि मानसिक स्वास्थ्य और मनोचिकित्सा की जरूरत को भी अत्यंत सरल ढंग से समझाती है। पुस्तक असामान्य व्यवहार का चौथा संस्करण प्रकाशित होने जा रहा है जो उसकी उपादेयता का सारगर्भित प्रमाण है। विश्वास है, मनोविज्ञान के शोध छात्रा और जागरूक पाठक इस संस्करण को भी उसी तरह अपनायेंगे, जिस तरह इसको उनका स्नेह अभी तक मिलता रहा है। भौतिक विकास और उसके कारण बढ़ती मानव मन की जटिलताएँ इस पुस्तक की उपादेयता और बढ़ाती हैं। ऐसे में इस चतुर्थ संस्करण को भी सभी सम्बंधित पक्षों के बीच अधिकाधिक लोकप्रियता मिलेगी, ऐसी आशा है।

उदय प्रताप सिंह

कार्यकारी उपाध्यक्ष

प्राक्कथन

मानव व्यवहार व्यक्ति को समाज में रहने के योग्य बनाता है तथा सामाजिक सम्बन्धों को निभाने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यदि व्यवहार सामान्य होता है तो व्यक्ति का जीवन सुखमय तथा समाजोपयोगी होता है। यदि इसके विपरीत होता है तो समाज में उसका समायोजन प्रतिकूल हो जाता है तथा अनेक प्रकार से वह व्याधिग्रस्त हो जाता है। अतः यह आवश्यक हो जाता है कि व्यक्ति के सामान्य तथा आसामान्य दोनों प्रकार के व्यवहार का वर्णन किया जाए।

जहाँ पर एक ओर विज्ञान तथा प्रोद्योगिकी ने मानव जीवन प्रद्धति में अनेक सूक्ष्मताएँ प्रस्तुत कर दी है जिससे अनेक समस्याओं का समाधान तो सम्भव हो गया है परन्तु अत्यधिक स्पर्धा, अव्यावहारिकता, औपचारिकता, विभेदीकरण, लाल फीताशाही आदि दुर्गुणों की वहुलता हो गयी है। पारिवारिक तथा सामुदायिक बंधन ढीले पड़ते जा रहे हैं तथा परम्परागत मूल्यों एवं विश्वासों में अन्तर बढ़ गया है। इन परिवर्तनों के परिणाम स्वरूप असामान्य व्यवहार के लक्षण अधिकॉशतः दृष्टिगोचर होने लगे हैं।

प्रस्तुत पुस्तक में असामान्य व्यवहार के सभी पक्षों का अध्ययन किया गया है। साथ ही साथ लक्षणों, कारणों तथा उपचार--पद्धतियों का समुचित विवेचन किया गया है। विशेषरूप से इस बात पर बल दिया गया है कि सामाजिक कारक आसामान्य व्यवहार उत्पन्न करने में कितने महत्त्वपूर्ण हैं।

इस पुस्तक की रचना हिन्दी भाषी छात्रों के लिए की गयी है जिससे वे इस विषय का गहन अध्ययन कर सकें तथा अपने व्यवहार में यदि कोई असामान्यता आ रही है तो उसका निवारण कर सकें और समाज में सुखमय जीवन व्यतीत कर सकें। आशा एवं विश्वास है कि इस पुस्तक से विद्यार्थियों को हर प्रकार से लाभ होगा।

इस पुस्तक का यह द्वितीय संस्करण है। इससे सिद्ध होता है कि यह पुस्तक विद्यार्थियों के लिए अवश्य ही उपयोगी है। इस पुस्तक की रचना में हमारे दोनों पुत्रों स्वेडन लीडर प्रति प्रगति प्रकाश मिश्र तथा डा. पियूष मिश्र ने ऐसा वातावरण तैयार किया तथा सहयोग दिया जिससे यह कार्य सम्भव हुआ। साथ ही साथ हमारी पत्नी डा. बीना मिश्रा जो कि विभाग में ही कार्यरत हैं, ने महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई हैं। मैं इन सभी का आभारी हूँ।

– प्रोफेसर पी.डी. मिश्र

समाज कार्य विभाग

लखनऊ विश्वविद्यालय, लखनऊ

अनुक्रम

अध्याय 1	असामान्य व्यवहार का प्रत्यय	01–25
अध्यय 2	असामान्य व्यवहार के प्रारूप	26–64
अध्याय 3	व्यक्तित्व विकास एवं समायोजन	65–104
अध्याय 4	मानसिक सुरक्षात्मक रचनाएँ	105–129
अध्याय 5	असामान्य व्यवहार के कारण	130–150
अध्याय 6	असामान्य व्यवहार के लक्षण	151–167
अध्याय 7	असामान्यता का वर्गीकरण	168–205
अध्याय 8	चिन्ता प्रतिक्रिया	206–219
अध्याय 9	वातोन्माद सम्बन्धी मनोस्नायु विकृति	220–232
अध्याय 10	मनोस्नायु दौर्बल्य	233–239
अध्याय 11	रोगचिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति	240–245
अध्याय 12	विषादात्मक प्रतिक्रियाएँ	246–251
अध्याय 13	बाध्य विचार–बाध्य क्रिया मनोस्नायु विकृति	252–257
अध्याय 14	असंगत भय	258–264
अध्याय 15	मनोविदलता	265–298
अध्याय 16	स्थिर–व्यामोह	299–314
अध्याय 17	उन्माद–अवसाद मनोविकृति	315–340
अध्याय 18	अन्तर्मुखी विषाद	341–355
अध्याय 19	आंगिक या विषज मनोविकृतियाँ	356–364
अध्याय 20	मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व तथा चरित्र विकृतियाँ	365–383

अध्याय 21	मनोदैहिक विकृतियाँ	384—390
अध्याय 22	बालकों में व्यवहारिक विकृतियाँ	391—400
अध्याय 23	लैंगिक विकास एवं लैंगिक विकृतियाँ	401—423
अध्याय 24	मानसिक मंदता	424—437
अध्याय 25	मानसिक स्वास्थ्य	438—464
अध्याय 26	मनोचिकित्सा	465—502
	सहायक ग्रन्थ सूची	503—524

1

1

असामान्य व्यवहार का प्रत्यय

विज्ञान तथा प्रौद्योगिकी की अतुलनीय सफलता ने यहाँ एक ओर अनेक समस्याओं को सुलझाकर जीवन को सरल तथा सुखमय बना दिया है, वहीं दूसरी ओर गम्भीर समस्यायें विकराल रूप धारण कर सामने आ खड़ी हुई हैं। आर्थिक उतार चढ़ाव, बेरोजगारी, गरीबी तथा स्वार्थपरता में वृद्धि प्रौद्योगिक उन्नति के कारण हुई है। चिकित्सा विज्ञान की उन्नति के कारण जनसंख्या में विस्फोट हो रहा है। इसके परिणाम स्वरूप सामाजिक समस्यायें निरन्तर जटिल होती जा रही हैं। प्रजातीय पूर्वाग्रह, श्रेष्ठता की भावना, विभेदीकरण, अव्यवहारिकता, स्वार्थपरता आदि दुर्गुणों ने जीवन को अत्यधिक कष्टमय बना दिया है। अत्यधिक स्पर्धा, लालफीताशाही, जातीयता जैसे सामाजिक विकारों के कारण मनुष्य में चिन्ताओं का संचयीकरण हो रहा है। गाँवों में भूमिहीन कृषि मजदूरों के रूप में कार्य करने वाले लाखों लोग शहरों के कारखानों में काम करने लगे हैं। जिसके कारण परिवार की भूमिका में अन्तर आया है तथा पारिवारिक बन्धन शिथिल होते जा रहे हैं। परम्परागत मूल्यों तथा विश्वासों में अन्तर आता जा रहा है। आज का व्यक्ति परम्परागत मूल्यों एवं विश्वासों को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। वह प्राचीनतम स्वीकृत मान्यताओं के विषय में प्रश्नवाचक हो गया है। दुर्भाग्य इस बात का है कि वह व्यक्ति से सम्बन्धित ज्ञान के क्षेत्र में पीछे रह गया है। हम अणु तथा जीन्स के विषय में तो जान गये हैं। परन्तु प्रेम तथा नैतिक मूल्यों की कितनी आवश्यकता है, नहीं जान सके हैं। वास्तव में मनुष्य की प्रकृति के सम्बन्ध में हमारा ज्ञान बहुत सीमित है। यही कारण है कि हम चारों ओर व्यक्तियों को चिन्तित, अप्रसन्न, आकुल तथा भयातुर पाते हैं।

वर्तमान समाज में यद्यपि प्रति व्यक्ति आय में वृद्धि हुई है परन्तु क्रय करने की शक्ति में ह्रास आया है। आर्थिक कठिनाईयाँ दिनोंदिन व्यक्ति को

अपने शिकंजे में लेती जा रही हैं। इस कारण पति तथा पत्नी दोनों ही आर्थिक क्षेत्र में उतर आये हैं। परन्तु कार्य–व्यस्तता के कारण बच्चों की देखभाल एवं परवरिश एक समस्या बन गयी है। बच्चों को माँ की ममता तथा पिता का स्नेह यथोचित नहीं मिल पाता है। मूल्यों मे वृद्धि उनकी अस्थिरता, आवश्यक वस्तुओं की कमी तथा अभाव, जीवन की सामान्य क्रियाओं में भी आवश्यक गतिरोध, कार्य करने के सीमित अवसरों के कारण भविष्य की चिन्ता, आदि ऐसी परिस्थितियों से जीवन को गुजारना पड़ रहा है जिससे कठोर मानसिक तनावों का सृजन होता है और व्यक्ति के मानसिक उत्पीड़न में वृद्धि होती है।

(I) समस्या की जटिलता

आज विश्व की सभी देश मानसिक स्वास्थ्य के लिए चिन्तित हैं। विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी की उन्नति के साथ–साथ मानसिक रोगियों की संख्या में वृद्धि होती जा रही है, यही कारण है कि अमरीका जैसे आर्थिक एवं भौतिक रूप से समृद्ध देश में मानसिक रोगियों की संख्या अन्य देशों की अपेक्षा अधिक है। वहाँ प्रति 20 व्यक्तियों में 1 व्यक्ति सामान्य चिकित्सालय में भर्ती न होकर अपने मानसिक रोग की चिकित्सा प्राइवेट चिकित्सालयों मे कराते देखा जाता है। वहाँ के चिकित्सालयों में भर्ती हुये सभी रोगियों में से आधे रोगी 'साइकोसिस' से पीड़ित रहते हैं। प्रति वर्ष लगभग 1 लाख व्यक्ति चिकित्सालय की शरण लेते है।[1] हमारे देश में भी यह समस्या उग्र होती जा रही है। यद्यपि यह ठीक पता लगाना कि कितने व्यक्ति इस समस्या से ग्रसित है, कठिन है क्योकि मानसिक चिकित्सालयों की कमी, अशिक्ष, अज्ञानता, अंधविश्वास और परम्परागत मूल्यों के कारण रोगी चिकित्सालय में भर्ती नहीं हो पाते हैं, परन्तु ऐसा अनुमान लगाया गया है कि भारत में 70 लाख मानसिक रोगी हैं। जिन्हें मनोचिकित्सीय सेवा की आवश्यकता है, जबकि केवल 500 प्रशिक्षित मनोविकार चिकित्सक उपलब्ध हैं। इस प्रकार चिकित्सक तथा मनोरोगियों में 1 और 14000 का अनुपात

---

1. द्विवेदी एम0एम0 : मानसिक स्वास्थ्य, 'स्वास्थ्य दर्शन' सरदार पटेल यूनिवर्सिटी, विद्यानगर, 1976, पृ0 214

है। इस समय मानसिक रोगियों की चिकित्सा के लिए 60 क्लीनिक हैं तथा 24,500 रोग शय्यायें है।[2] नगरों में 1,000 व्यक्तियों में 18 व्यक्ति मानसिक रोगी हैं। लखनऊ नगर में एक अध्ययन द्वारा पाया गया है कि यहाँ 1000 व्यक्तियों में 70 व्यक्ति मानसिक रोगी है।, जबकि ग्रामीण अंचल में 1000 में 40 व्यक्ति रोगी हैं।[3] इससे ज्ञात होता है कि भारत में भी मानसिक विकृति की समस्या अत्यन्त गम्भीर है। यदि इनमें से 1/3 रोगियों को भी मानसिक चिकित्सालयों में भर्ती करने योग्य समझा जाय तो भी 80 लाख रोग शैय्याओं की आवश्यकता है।

(II) सामान्य का तात्पर्य

'सामान्य' शब्द अँग्रेजी भाषा के नारमल (Normal) शब्द का हिन्दी रूपान्तर है। नारमल शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के नारमा (*Norma*) शब्द से हुई है जिसका तात्पर्य होता है–बढ़ई का वर्ग (Carpenter's Square)[4]। अतः इस शब्द का अर्थ नियम, कार्य का स्तर, प्रतिमान आदि लगाया जाने लगा है।

(III) व्यवहार का अर्थ

शरीर में विभिन्न अंग एवं भाग होते है। जो स्नायु संस्थान द्वारा एकत्रित होकर कार्य करते हैं। अर्थात उनका पृथक पृथक केवल अस्तित्व होता है। परन्तु कार्यात्मक विशेषता संगठित होती है। इस प्रकार की शरीर की पूर्णता को अवयव (Organism) कहते हैं। इस अवयव की प्रतिक्रियाओं तथा अभिव्यक्तियों को मानसिक कहा जाता है। आन्तरिक तथा वाह्य उत्तेजना के प्रति अवयव के

---

2. सेठी, बी0बी0 — वर्निंग ऐण्ड निगलेक्टेड साइक्याट्रिक प्राब–लम्बस इन इण्डिया, स्पेशल इशू, इनागरेशन आफ न्यू साइक्याट्रिक हास्पिटल, लखनऊ, 1977, पृ0 2
3. उल्लिखित — पृ0 2
4. किस्कर, जी0 डब्लू0 : दि डिसआर्गनाइज्ड पर्सनालिटी, मैग्राहिल क0, न्यूयार्क, 1964, पृ0 2

सभी प्रत्युत्तरों को व्यवहार कहा जाता है। दूसरे शब्दों में व्यवहार अवयव के शारीरिक एवं मानसिक पक्षों की अभिव्यक्ति का परिणाम है।[5] अतः सामान्य व्यक्ति वह है जो सामाजिक नियमों को पालन करते हुये अपने कार्यों को सुचारू रूप से कर लेता है तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुसार अपने व्यवहार को परिवर्तित करने की योग्यता एवं क्षमता रखता है। विलियम सी. मेनिनगर[6] (Willilam C. Menninger) ने सामान्य तथा असामान्य व्यक्ति को समझने के लिए कुछ प्रश्नों की रचना की है।

1. क्या आप सदैव चिंतित रहते हैं?
2. किन्हीं अज्ञात कारणों से क्या अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाते हैं?
3. क्या बिना किसी कारण आप निरन्तर अप्रसन्न रहते हैं?
4. क्या आप साधारण सी बात पर भी क्रोधित हो जाते हैं?
5. क्या आपको रात में प्रायः पूर्ण नींद नहीं आती है?
6. क्या आपके संवेगों में प्रायः उतार चढाव होता रहता है जैसे अवषाद से उत्साह तथा फिर अवषाद?
7. क्या आप लोगों के साथ मिलना पसन्द नहीं करते हैं?
8. यदि आप के सामान्य जीवन में भी कोई व्यवधान उत्पन्न होता है तो क्या व्याकुल हो जाते हैं?
9. क्या आप अपने बच्चों से संतुष्ट नहीं हैं?
10. क्या आप प्रायः गुस्से में लालपीले हो जाते हैं तथा अधिक समय तक कष्ट अनुभव करते रहते हैं?

---

5. नोयेश, आर्थर पी0 : ए टेक्स्टबुक आफ साइक्याट्री,, दि मैकमिलन क0, न्यूयार्क, 1936, पृ0 505
6. स्टेटमेन्ट आफ विलियम सी0 मेनिनगर कोटेड बाई पार्क, जे0ई0, टेक्स्ट बुक आफ प्रिवेन्टिव ऐण्ड सोशल मेडिसिन, बनारसीदास बैनोट, जबलपुर, 1972, पृ0 584.

11. क्या आप बिना किसी कारण के भयभीत रहते हैं?

12. क्या आप सदैव सत्य कहते हैं तथा दूसरे असत्य?

13. क्या आपको प्रायः शारीरिक कष्ट होता रहता है जिसका कोई शरीरिक कारण नहीं है?

उपर्लिखित प्रश्नों के उत्तर यदि हाँ में आते हैं तो व्यक्ति मानसिक रूप से अस्वस्थ है और उसे मनोचिकित्सा की अत्यन्त आवश्यकता है।

मासलो तथा मिटेलमैन[7] ने सामान्य व्यक्तित्व की निम्न विशेषताओं का वर्णन किया है।

1. यथेष्ठ सुरक्षा की भावना

(Adequate Feeling of Security)

जो व्यक्ति समाज से अपना पूर्ण समायोजन समझता है तथा आवश्यकता पड़ने पर परिस्थिति के अनुसार परिवर्तन कर लेता है वह सामान्य व्यक्ति होता है। उसमें असुरक्षा की भावना नहीं होती है। उसके मन में किसी भी प्रकार की शंका अथवा सुरक्षा की चिंता नहीं होती है। वह परिरिस्थति का सामना करता है तथा समस्या का उचित प्रत्यक्षीकरण करता है। परन्तु आज के युग में जहाँ सामाजिक, सांस्कृतिक, भौतिक, नैतिक, आदि परिवर्तन इतनी तीव्र गति से हो रहे हैं कि व्यक्ति को समझना कठिन हो जाता है कि वह किस प्रकार अपने व्यवहार मे परिवर्तन लावे जिससे उसके अस्तित्व की सुरक्षा बनी रहे। यह प्रश्न उसके लिए अत्यन्त गम्भीर हो गया है। वह जैसे–जैसे गांवों से शहरों की ओर, धार्मिकता से भौतिकता की ओर तथा परम्परागत मूल्यों से पाश्चात्य मूल्यों की ओर बढ़ रहा है वैसे–वैसे उसमें असुरक्षा की भावना ठोस स्थान बनाती जा रही है। परन्तु ऐसा व्यक्ति असामान्य नहीं होता है क्योंकि उसके चिंतित होने का उपयुक्त कारण होता है। लेकिन जब व्यक्ति चिंतित रहता है, असुरक्षा अनुभव करता है और उसका कोई कारण नहीं खोज पाता है या आवश्यकता से अधिक चिंता करता है तो उसे असामान्य की श्रेणी में रखा जा सकता है।

---

7. मास्लो, ए0 एल0 तथा मिटेलमैन, बी : प्रिंसिपिल्स आफ अबनार्मल साइकालोजी, हारपर ऐण्ड रो, न्यूयार्क, 1951, पृ0 13–15

2. वास्तविक जीवन लक्ष्य

(Realistic Life Goal)

प्रत्येक व्यक्ति अपना एक जीवन लक्ष्य बनाता है। इस जीवन लक्ष्य का निर्धारण परिवार के सदस्यों तथा समाज के साथ सम्बन्ध स्थापित करने पर ही सम्भव होता है। यही कारण है कि एक व्यक्ति का जीवन लक्ष्य दूसरे से भिन्न होता है। जीवन लक्ष्य के निर्धारण होने पर व्यक्ति अपने व्यवहार का प्रदर्शन तद्नुसार करता है और उन लक्ष्यों को प्राप्त करने का प्रयास करता है। इस प्रकार व्यक्ति के जीवन लक्ष्य उसकी प्रेरणा के स्रोत बन जाते हैं और क्रियाओं के लिए चालक का कार्य करते हैं। परन्तु जीवन लक्ष्यों का निर्धारण स्वयं एक समस्या है, क्योंकि व्यक्तिगत विशेषतायें– निर्णय करने की क्षमता, प्रत्यक्षीकरण की योग्यता, साधनों की खोज की शक्ति, शारीरिक एवं मानसिक शक्ति, आदि जीवन लक्ष्यों को प्राप्त करने में अतुलनीय भूमिका निभाती है। सामान्य व्यक्ति अपने जीवन लक्ष्य का निर्धारण अपनी शक्ति एवं सामर्थ्य के अनुसार करता है। उसके उद्देश्य सामाजिक मूल्यों एवं आदर्शों के अनुरूप होते हैं। वह दिवा–स्वप्न नहीं देखता तथा हवाई किले नहीं बनाता। असामान्य व्यक्ति वह होता है जो अपनी योग्यताओं, क्षमताओं, शक्तियों, सामर्थ्य एवं साधनों को बिना मूल्यांकित किये लक्ष्य स्थापित कर लेता है जो उसकी पहुंच से परे होते हैं।

3. वास्तविकता से प्रभावपूर्ण सम्पर्क

(Efficient contact with Reality)

व्यक्ति की सबसे बड़ी विशेषता वास्तविकता को समझने की क्षमता होती है। वह वस्तुस्थिति का उचित प्रत्यक्षीकरण करता है और तद्नुसार व्यवहारिक परिवर्तन लाता है। जिस समय बालक का जन्म होता है उस समय उसमें अन्तर करने की क्षमता नहीं होती है। परन्तु जैसे–जैसे बड़ा होता जाता है, मानवीय तथा अमानवीय वस्तुओं में भेद करने लगता है। उसमें अन्तर करने की क्षमता का विकास संवेदना तथा प्रत्यक्षीकरण द्वारा सम्भव होता है। प्रत्यक्षीकरण में कभी–कभी त्रुटियाँ होती है। इन त्रुटियों का कारण व्यक्ति की उस समय की मानसिक स्थिति, वस्तु के विषय में अपर्याप्त ज्ञान तथा वस्तु के विशेष गुण होते हैं। सामान्य व्यक्ति का सामान्य एवं उचित प्रत्यक्षीकरण होता

है। वह समय की वास्तविकता को समझता है। प्रत्यक्षीकरण की अज्ञानता के कारण ही व्यक्ति भ्रम में पड़ जाता है तथा उसको असामान्य कहा जाता है।

4. यथेष्ठ स्वतः स्फूर्ति

(Adequate Spontaneity)

सामान्य व्यक्ति अपनी समस्याओं को सुलझाने की पर्याप्त क्षमता रखता है। वह कठिनाइयों को जीवन का अंग समझकर उनको दूर करने के उपाय खोजता है तथा अनावश्यक तनाव एवं दबाव नहीं अनुभव करता है। साधारण एवं समान्य परिस्थितियों में वह दूसरों की सहायता नहीं लेता है। इसके विपरीत असामान्य व्यक्ति समस्याओं को समझने की पूरी कोशिश ही नहीं करता है। उसमें निर्णय शक्ति की कमी होती है। उसमें इतना आत्मिक बल नहीं होता है कि वह समस्या का दृढ़ता से सामना कर सके।

5. समुचित संवेगात्मकता

(Appropriate Emotionality)

संवेगात्मकता के द्वारा व्यक्ति अपने मानसिक संघर्ष एवं तनाव को कम करता है। संवेग शब्द किसी भी प्रकार से आवेश में आने, उत्तेजित होने अथवा भड़क उठने की दशा को सूचित करता है। संवेग के अन्तर्गत भाव, आवेग तथा शारीरिक एवं दैहिक सभी प्रतिक्रियायें आती हैं। किसी भी व्यक्ति के संवेग वाहय उत्तेजना द्वारा किसी वाहय विषयवस्तु अथवा घटना द्वारा जाग्रत किये जाते हैं। सामान्य व्यक्ति अपने संवगों (क्रोध, प्रेम, प्रसन्नता, भय, प्रतिशोधात्मकता, दुःख, सुख आदि) की अभिव्यक्ति सामान्य रूप से करता है। संवेग अभिव्यक्ति की सीमा उतनी ही होती है जितनी आवश्यकता होती है। असामान्य व्यक्ति में संवेगों की अभिव्यक्ति समयानुसार नहीं होती है।

6. आत्म मूल्यांकन की उचित मात्रा

(Reasonable degree of self evaluation)

मूल्याँकन एक निर्णय करने वाली शक्ति है जो निश्चित करती है कि व्यक्ति का क्या उत्तरदायित्व हैं उनको पूरा करने की कितनी क्षमता है, क्या–क्या शक्तियाँ हैं, क्या क्या कमजोरियाँ हैं। कौन से कार्य रचनात्मक

सहयोग प्रदान करते हैं तथा कौन से समस्या को जटिल बनाते हैं। इस प्रकार मूल्याँकन दार्शनिक एवं नैतिक ज्ञान है। सामान्य व्यक्ति में इतनी क्षमता होती है कि वह अपनी शक्तियों एवं कमियों का उचित मूल्यांकन कर लेता है। असामान्य व्यक्ति में इस योग्यता का अभाव होता है।

7. पूर्व अनुभवों से सीखने की योग्यता

(Ability to learn from past experiences)

व्यक्ति अपने जीवन के प्रारम्भ से ही सीखना आरम्भ कर देता है और जीवन पर्यन्त सीखता ही रहता है। प्रारम्भ में वह असहाय होने के कारण दूसरों पर निर्भर रहता है परन्तु धीरे–धीरे अपने व्यवहार को पर्यावरण के अनुकूल ढालने का प्रयास करता है। उसके सीखने की प्रक्रियाओं में दो मुख्य तत्व निहित होते हैं। (1) परिपक्वता (2) अनुभव से लाभ उठाने की योग्यता। व्यक्ति निरीक्षण, सूझ, अनुकरण आदि द्वारा अपने पूर्व अनुभव को ध्यान में रखकर समान परिस्थिति से निपटने का प्रयत्न करता है। असामान्य व्यक्ति में यह गुण नहीं पाया जाता है। वह बार–बार अपने ही ढंग से परिस्थिति से निपटने का प्रयत्न करता हैं जिससे उसे निराशा ही हाथ लगती है।

8. अपनी वैयक्तिकता को बनाये रखने के साथ ही साथ समूह की आवश्यकता को पूरा करने की योग्यता

(Maintaining one's individuality and ability ot satisfy the needs of the group)

सामाजिक व्यक्ति की तीन मुख्य विशेषतायें होती है–जागरूकता, अपने प्रति ज्ञान तथा समूह के प्रति ज्ञान। सामान्य व्यक्ति वह है जो अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति करें, अधिकारों एवं कर्तव्यों का ज्ञान रखकर व्यवहार करे तथा समूह के साथ अपना अर्थपूर्ण सम्बन्ध बनाये रखे। असामान्य व्यक्ति का दृष्टिकोण एकांगी होता है। वह समूह को अपनी इच्छा पूर्ति में बाधक समझता होता है।

9. व्यक्तित्व का एकीकरण एवं स्थायित्व

(Integration and consistency of Personality)

जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व संगठित होता है उसमें सहकारिता की भावना होती है, समाज सेवा की प्रवृत्ति होती है, अपने साथियों के साथ अच्छा

व्यवहार करता है, विपरीत लिंग वाले व्यक्तियों के साथ अच्छा एवं स्वस्थ सम्बन्ध रखता है। उसमें बौद्धिक एवं शारीरिक प्रकार से कार्य करने की क्षमता होती है। वह न तो विशेष रूढिवादी होता है और न ही अग्रगामी। जिस व्यक्ति का व्यक्तित्व संगठित होता है वह अपने प्रति काफी ज्ञान रखता है। वह जानता है कि वह क्या है, उसका समाज के प्रति क्या उत्तरदायित्व है तथा वह अन्य व्यक्तियों से किस प्रकार भिन्न है। उसका एक निश्चित उद्‌देश्य होता है और उसी के आधार पर वह कार्य करता है। वह प्रत्येक हर नयी परिस्थिति के साथ अपने को समायोजित कर लेता है। उसमें दृढ़ संकल्प की शक्ति पाई जाती है जिसके द्वारा वह वाह्य समस्याओं से संघर्ष करता है। असामान्य व्यक्ति का व्यक्तित्व अस्थिर होता है, उसमें उपर्लिखित गुणों का अभाव होता है।

व्यक्ति की मूल प्रेरणाओं के अनेक उद्‌देश्य एवं कार्य होते हैं जिनमें प्रायः एक दूसरे से संघर्ष होता रहता है। उदाहरण के लिए काम की भावना का संघर्ष क्रोध से, इच्छा का संघर्ष भय से होता है। यदि व्यक्ति की ये भावनायें स्वतंत्र रूप से कार्य करती हैं तो व्यक्ति असामान्य हो जाता है। उन पर नियंत्रण होना सामान्य व्यक्ति के लिए आवश्यक होता है।

(IV) असामान्य का अर्थ

असामान्य शब्द अंग्रजी भाषा के अबनार्मल (Abnormal) का हिन्दी रूपान्तर है। अबनार्मल दो शब्दों से मिलकर बना है एब+नार्मल। एब का अर्थ होता है नहीं (Not) तथा नार्मल का अर्थ है नियमित (Regular)। इस दृष्टि से असामान्य वह है जिसमें नियमितता नहीं पाई जाती है। अतः असामान्य व्यक्ति वह है जो प्रतिमानों का पालन नहीं कर पाता है। शारीरिक रोगों के सम्बन्ध में प्रतिमान शरीर संरचनात्मकता एवं कार्यात्मकता से सम्बन्धित होते हैं। इसलिए सामान्य तथा विकृति में अन्तर को अधिक सुस्पष्टता से वर्णित किया जा सकता है। मनोंवैज्ञानिक स्तर पर ऐसा कोई प्रारूप नहीं है जो आदर्श एवं पूर्ण सामान्यता का प्रत्यय प्रस्तुत करता हो जिससे कि तुलना सम्भव हो सके। अतः अब भी भ्रम एवं विरोधाभास बना हुआ है कि क्या सामान्य है और क्या असामान्य है, क्या सामान्य नहीं है। इस सम्बन्ध में अनेकों दृष्टिकोण एवं प्रारूपों का विकास हुआ है। जो भिन्न–भिन्न रूप से असामान्यता को विश्लेषित करते हैं।

साधारणतया जिस व्यक्ति का व्यवहार अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा भिन्न होता है, ऐसे व्यक्ति को सामाजिक पर्यावरण में अपने को समायोजित करने में कठिनाई होती है। वह प्रायः दुःखी एवं अप्रसन्न रहता है। उसका दृष्टिकोण एकांगी होता है। जिसके कारण समस्या समाधान करने में विशेष कठिनाई अनुभव करता है। ऐसे व्यक्ति का व्यक्तित्व अस्थिर, संवेग अस्पष्ट तथा बुद्धि सीमित होती है। उसका प्रत्यक्षीकरण उचित नहीं होता है।

(V) असामान्यता की परिभाषायें

यहाँ पर असामान्यता की कुछ परिभाषायें प्रस्तुत हैं :

रूथ बेनेडिक्ट[8]

असामान्यता केवल सांस्कृतिक मूल्यों की अभिव्यक्ति है, जो व्यक्ति एक संस्कृति में असामान्य घोषित कर दिये जाते हैं, वे दूसरी संस्कृति में जाकर सामान्य व्यवहार करते हैं।

थामस साज[9]

नैतिक तथा सामाजिक आदर्शों से प्रथक्करण मानसिक रोग समझा जाता है।

डोलार्ड तथा मिलर[10]

सामान्य व्यक्ति वह होता है जो ज्ञानात्मक रूप से द्वन्द्वात्मक आवश्यकताओं की प्रकृति को जान सकता है। इसके विपरीत असामान्य व्यक्ति होता है।

---

8. बेनेडिक्ट, रूथ : एन्थ्रोपोलोजी एण्ड दि अबनार्मल, जर्नल अबनार्मल साइकोलोजी, 1934, 10, पृ0 59–80

9. साज, टी0 एस0 : दि मिथ आफ मेण्टल इलनेस, हाईवर–हारपर, न्यूयार्क, 1961, पृ0 205

10. डोलार्ड, जे0 एण्ड मिलर, एन0 ई0 : पर्सनाल्टी ऐण्ड साइकोथिरैपी, मैकग्राहिल कं0, न्यूयार्क, 1950, कोटेड वाई सी0 मार्शल लोई, वैलू ओरियेन्टेशन इन कौंशिंलिंग एण्ड साइकोथिरैपी, चन्डलर पब्लिशिंग कं0 सेनफ्रासिंसको, 1969, पृ0 151

किस्कर, जी0 डब्लू0[11]

योगी या सामान्य के अनुरूप न हो, उसे असामान्य कहा जा सकता है।

डलमान ऐण्ड क्रेसनर[12]

असामान्य व्यवहार उन व्यवहारिक तरीकों की सुविधा के लिए नामाँकन है जो सामाजिक अभिलाषाओं को पूरा करने में असफल रहते हैं।

ब्राऊन जे0 एफ0[13]

असमान्य मनोवैज्ञानिक तथ्य सामान्य मनोवैज्ञानिक तथ्यों का अतिरंजित (*Exaggerated*) (अतिविकसित या कम विकसित) तथा विकृत स्वरूप है।

(VI) प्रचलित भ्रान्तियाँ (Popular Misconceptions)

मानसिक विकृतियों के सम्बन्ध में सदैव से विभिन्न मत रहे है। इस प्रत्यय के साथ अंधविश्वास, अज्ञानता तथा भय का पुट सदैव रहा है। आज यद्यपि विज्ञान ने इतनी अधिक उन्नति कर ली है, परन्तु मानसिक विकृतियों के सम्बन्ध में आज भी भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण एवं विचार हैं। जिसके कारण अनेक भ्रान्तियाँ हैं। कुछ प्रमुख भ्रान्तियाँ निम्न हैं–

1. असामान्य व्यवहार विचित्र व्यवहार

जब व्यक्ति का व्यवहार विघटित, अनोखा, विचित्र, तथा सामान्यता से अधिक दूर हो जाता है, तो उस व्यवहार को असामान्य कहते हैं। यह दृढ़ एवं प्रचलित विश्वास है। क्योंकि अज्ञानता एवं अशिक्षा के कारण लोग असामान्य

---

11. किस्कर, जी0 डब्लू0 : उल्लिखित पृ0 2
12. डलमान, एल0 पी0 एण्ड क्रोसनर : साइकोलोजिकल एप्रोच टु अबनार्मल बिहैवियर, इग्लैण्ड क्लिफ्स, प्रेन्टिल हाल, न्यूयार्क, 1960 पृ0 6
13. ब्राउन, जे0 एफ0 : दि साइकोडायनमिक्स आफ अबनार्मल बिहैवियर मैक ग्रा हिल बुक कं0, न्यूयार्क, 1940, पृ0 9

व्यवहार के साधारण लक्षणों को समझ नहीं पाते हैं। आज ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है जो असामान्य तो हैं परन्तु विषम मानसिक व सामाजिक विघटन के तत्व प्रदर्शित नहीं करते। ये रोगी केवल समायोजन सम्बन्धी समस्या का प्रदर्शन करते हैं जिसके कारण अत्यन्त चिन्ता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

अतः वे ही व्यक्ति मानसिक रोगी नहीं हैं जो संगीन एवं अद्भुत व्यवहार करते हैं, आत्महत्या करते हैं, लैंगिक अपराध करते है, या अपने शरीर की परवाह नहीं करते हैं, बल्कि वे भी व्यक्ति मानसिक रोगी हैं जो वाह्य परिस्थिति का सामना करने में कठिनाई अनुभव करते हैं तथा उससे दूर भागने का प्रयत्न करते हैं।

2. सामान्य एवं असामान्य व्यवहार में विशेष अन्तर

ऐसा विश्वास किया जाता है। कि असामान्य व्यवहार तथा सामान्य व्यवहार में काफी विभेद है। दोनों में काफी अन्तर है। परन्तु ऐसा नहीं है। भेदीकरण की रेखा के एक ओर सामान्य व्यवहार तथा दूसरी ओर असामान्य व्यवहार है। परन्तु यह असामान्य व्यवहार गंभीर प्रकार का होता है जिसको पागलपन कहते हैं। इन दोनों के बीच अनेक स्थितियाँ हैं जहाँ पर व्यक्ति का व्यवहार असामान्य पाया जाता है। दोनों में मात्रा का अन्तर है। एक व्यक्ति का व्यवहार सामान्य तथा असामान्य दोनों प्रकार का हो सकता है। आज के युग में ऐसा कोई व्यक्ति नहीं है जो पूर्ण सामान्य हो। क्योंकि औद्योगीकरण, नगरीकरण, एवं परम्परागत मूल्यों के परिवर्तन से समस्याओं की बाहुल्यता होती जा रही है जिनसे मानसिक अर्न्तद्वन्द बढ़ता जा रहा है।

3. वंशानुगत मानसिक विकृतियाँ

अनेक ऐसे परिवार हैं जिनमें एक से अधिक मानसिक रोगी हैं तथा कुछ परिवारों में वंशानुगत के रूप में भी यह रोग विद्यमान है। अतः अधिकांश व्यक्ति इन परिवारों से दूर रहते हैं तथा सम्बन्धों को स्थापित करने में हिचकते हैं। इस परिवार के अन्य सदस्य भी चिन्तित एवं परेशान रहते हैं क्योंकि वे सोचते हैं न जाने कब मानसिक रोगी होने का नम्बर आ जाय। यद्यपि कुछ

मानसिक विकृतियों जैसे मनोविदलता एवं मानसिक मंदता को छोडकर अन्य मानसिक विकृतियों का सम्बन्ध वंशपरम्परा से बिल्कुल नहीं होता है। जिन परिवारों में मानसिक विकृतियाँ परम्परा के रूप में पाई जाती है इसका तात्पर्य यह होता है कि उन परिवारों के बालक सीखने की प्रक्रिया द्वारा असामान्य व्यवहार के लक्षण सीख लेते हैं। इन बालकों को अपने बड़ों से आवश्यक निर्देशन एवं तरीके नहीं प्राप्त होते हैं जिनसे कि समस्या का समाधान किया जा सके। अतः समस्या उपस्थित होने के समय वे सांवेगिक एवं व्यवहारिक रूप से विघटित हो जाते हैं।

4. प्रतिभा असामान्यता का प्रतीक

ऐसा समझा जाता है कि जो व्यक्ति कला विज्ञान में प्रतिभावान होते हैं वे मानसिक रोगों के लिए अधिक अनुकूल होते हैं। लोम ब्रोसो[14] (*Lombroso*) तथा उसके सहयोगियों ने इस भ्रान्ति का सूत्रपात किया। उन्होने ऐसे मानसिक रोगियों की एक ऐतिहासिक सूची तैयार की जिसमें अधिकांश प्रतिभावान व्यक्ति ही थे। परन्तु प्रयोगात्मक अध्ययनों से ऐसा सम्बन्ध निश्चित नहीं हो पाया है। जूडा[15] (Juda) ने 294 विज्ञान तथा कला के प्रतिभावान व्यक्तियों का 17 वर्ष तक शारीरिक एवं मानसिक दशाओं का अध्ययन किया तथा इस निष्कर्ष पर पहुचे कि प्रतिभा तथा मानसिक विकृतियों में कोई सम्बन्ध है, ऐसा प्रमाण नहीं मिलता है। टरमन[16] (Terman) ने कैलीफोर्निया के 1300 विद्यालयगत बच्चों का अध्ययन किया जिनकी बुद्धिलब्धि 140 थी। जब वे 40 वर्ष के हो गये तो फिर अध्ययन किया। इस अध्ययन में पाया कि वे व्यक्ति सामान्य जनसंख्या से कम मानसिक रोगी थे।

---

14. लोमब्रोसो, सी0 : मैन आफ जीनियस, स्क्रिविनर्स, न्यूयार्क, 1891

15. जूंडा, ए0 : दि रिलेशनशिप बिटवीन हाईएस्ट मेन्टल कैपेसिटी ऐण्ड साइकिक अबनार्मल्टीज, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1949, 106, पृ. 296–307

16. टरमन, एल0एम0 दि गिफटेड ग्रुप आफ मिडलाइफ, स्टेनफोर्ड यूनिवर्सिटी तथा वोडेन, एम0 एच0 प्रेस, कैलीफोर्निया, 1959,

5. मानसिक रोग असाध्य एवं खतरनाक

मानसिक रोगियों के सम्बन्ध में यह मिथ्या धारणा है कि वे असाध्य एवं खतरनाक होते हैं। इनका उपचार सम्भंव नहीं है। इस विश्वास के कारण जो मानसिक रोगी चिकित्सालय से ठीक होकर वापस अपने समुदाय में जाते हैं तो शंका की दृष्टि से देखा जाता है। उनके साथ लोग सम्बन्ध स्थापित करने से हिचकिचाते हैं। उनके साथ दुर्व्यवहार किया जाता है तथा सामान्य सामाजिक स्वीकृति नही प्राप्त कर पाते हैं। यह धारणा उन मानसिक रोगों के सन्दर्भ में तो ठीक होती है, जिनका कारण मस्तिष्क आघात होता है परन्तु अन्य प्रकारों के लिए यह अत्यन्त अन्यायोचित है। अधिकांश व्यक्ति जो विषम मानसिक रोगों से एक बार ठीक हो जाते हैं असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन नहीं करते हैं।[17]

6. मानसिक व्यवहार कलंक है

बहुत से व्यक्ति मानसिक रोगों को छिपाते हैं क्योंकि वे इसको कलंक समझते है। प्रारम्भिक दशा में रोगी चिकित्सक के पास नहीं जाता है और वह अन्दर ही अन्दर गम्भीर होता जाता है। परन्तु मानसिक रोग शारीरिक रोग के समान ही होते हैं। जिस प्रकार शारीरिक रोगों का उपचार शीघ्र से शीघ्र होना आवश्यक होता है, उसी प्रकार मानसिक रोगों का भी यथाशीघ्र उपचार होना चाहिए। जब तक लोगों में इन रोगों के सम्बन्ध में ज्ञान नहीं होगा तब तक मानसिक रोगों का पूर्ण उपचार करना सम्भव न होगा, क्योंकि उपचार में सामाजिक समायोजन का प्रत्यय आवश्यक होता है और यह कार्य तभी पूर्ण हो सकता है जब समाज को इनका पूर्ण ज्ञान हो तथा वह सहयोग प्रदान करने के लिए उत्सुक भी हो। परन्तु स्थिति आज भी अनुकूल नहीं है। शिक्षित वर्ग भी मानसिक रोगों को कलंक समझता है तथा मानसिक रोगों को हेय की दृष्टि से देखता है। इतना ही नहीं होता, बल्कि जब शिक्षित परिवारों में भी कोई व्यक्ति मानसिक रोग का शिकार हो जाता है तो उसको भी पुजारी, ओझा, संत,

---

17. गिवोवानोनी, जे0 एम0 ऐण्ड गुरेल, एल0 : सोशली डिसरप्टिव बिहैवियर आफ एक्सपेरीमेंटल, पेसेन्ट्स, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1967, 17, पृ0 146–153

महात्माओं आदि के पास ले जाया जाता है तथा जादू टोने के अनेक कार्य सम्पन्न किये जाते हैं।

(VII) प्राचीन संस्कृतियों में असामान्यता का प्रत्यय (Concept of Abnormality in Primitive Cultures)

प्राचीन संस्कृतियों में असामान्यता के 5 मानदण्ड बताये गये हैं :[18]

1. निषेध उलंघन
2. आवश्यक संस्कारों को न मानना
3. बुरी आत्मा का निवास
4. ईश्वर का नाराज होना, तथा
5. आत्मिक पुकार पर ध्यान न देना।

1. निषेध उलंघन

निषेध सामाजिक अनुरोधक होते है। जिनको उलंघन करना असामान्यता का लक्षण समझा जाता है। भोजन के सम्बन्ध में निषेध, शिकार के सम्बन्ध में निषेध, विवाह के सम्बन्ध में निषेध, सामाजिक सम्बन्ध एवं सम्पर्क बनाने के सम्बन्ध में निषेध इत्यादि प्रमुख निषेध हैं। इन निषेधों के साथ दण्ड व्यवस्था का भी प्रबन्ध होता है। जो व्यक्ति इन निषेघों को नहीं मानता है उसको मानसिक रोगी घोषित कर दिया जाता है क्योंकि व्यक्ति को प्रारम्भ में उचित अनुचित, सही–गलत का ज्ञान कराया जाता है तथा अनुचित कार्यों के लिए दण्ड भी बताया जाता है। व्यक्ति समाज से पृथक कर दिया जाता है तथा उसको नाना प्रकार का दण्ड दिया जात है।

---

18. रोजर्स, एस0एल0 : ऐटीट्यूड्स टुवार्ड इनसैनिटी इन प्रिमिटिव कल्चर्स, सीवासम्पोजिम 1947 पृ0 602–608, कोटेड बाई डीवीक्लीन, मेन्टल हाईजीन; हेनरी हाल्ट एण्ड कं0 न्यूयार्क, 1956

2. आवश्यक संस्कारों को न मानना

निषेधों की प्रकृति नकारात्मक होती है जबकि कुछ संस्कारात्मक कार्यों के लिए संस्कार होते हैं जिनको करना आवश्यक समझा जाता है। जो व्यक्ति इनका उल्लंघन करता है वह मानसिक रोगी समझा जाता है।

3. बुरी आत्मा का धारण

यह विश्वास किया जाता है कि व्यक्ति के व्यवहार में अभूतपूर्व परिवर्तन बुरी आत्मा के प्रवेश के कारण होता है। इस आत्मा के कारण ही व्यक्ति की भावनाओं, विचारों तथा कार्यों में असामान्यता उत्पन्न हो जाती है। ये बुरी आत्माएं जहाँ निवास करती हैं वहाँ कठिनाइयाँ ही कठिनाईयाँ उत्पन्न कर देती हैं। उनमें पूरे समूह को हाँनि पहुँचाने की शक्ति होती है। मानसिक व्यक्तिक्रम करना इनका मुख्य कार्य होता है। अतः बुरी आत्मा धारण करने वाले व्यक्ति के शरीर से इसको निकालना आवश्यक होता है। इस कारण मंत्रोच्चारण किया जाता है, पूजा पाठ किया जाता है, संस्कारात्मक बलिदान किये जाते हैं तथा कठोर दण्ड भी दिया जाता है।

4. ईश्वर का अभिशाप

पापपूर्ण व्यवहार तथा मानसिक रोगों के विषय में सम्बन्ध होना एक महत्वपूर्ण विश्वास है। यह समझा जाता है कि जो व्यक्ति पापी होता है वही असामांन्य होता है। ईश्वर जब यह देखता है कि अमुक व्यक्ति उसकी इच्छा के विरूद्ध कार्य कर रहा है तो वह दण्ड के रूप में मानसिक विकृतियों को उत्पन्न कर देता है।

5. आत्मिक पुकार पर ध्यान न देना

प्राचीन समाजों में विश्वास किया जाता था कि चिकित्सक या पुजारी भगवान के प्रतिनिधि होते है। उनमें भगवान् द्वारा प्रदत्त बहुत बड़ी शक्ति होती हैं जो व्यक्ति इन प्रतिनिधियों का कहना नहीं मानता है वह मानसिक रोगी होता है।

पेज[19] ने सामान्यता–असामान्यता को जानने के लिए 5 मुख्य आधारों का वर्णन किया है :

---

19. पेज, जे. डी0 : उल्लिखित पृ0 54

		सामान्य	असामान्य
1.	मनोवैज्ञानिक क्रियाओं की प्रवीणता (Proficiency of Psychological Functioning)	उच्च प्रभावात्मक एकीकृत	अपर्याप्त विघटित (Impaired) अनियमित
2.	सामाजिक कार्यों के गुण (Quality of Social functioning)	उच्च सामाजिकता से संबंधित संतोषप्रद	अपर्याप्त स्वार्थी असंतोषप्रद
3.	ऐच्छिक नियंत्रण की श्रेणी (Degree of voluntary Control)	नियंत्रण चेतन लचीला स्वतः स्फूर्ति	अनियंत्रण अचेतन कठोर अवरोध
4.	समाज का मूल्यांकन (Society's evaluation)	प्रशंसनीय आवश्यक संतोषप्रद लाभप्रद	अस्वीकारात्मक बोझ (Liability) व्यवधानिक धमकीयुक्त
5.	व्यक्ति का मूल्यांकन (Individuals evaluation)	संतोषात्मक आवश्यक लाभप्रद आरामप्रद	अस्वीकारात्मक भार कष्टकारी धमकीयुक्त

6. असामान्यता को दर्शाने वाले विभिन्न शब्द

असामान्यता को स्पष्ट करने के लिए साधारणतया विभिन्न शब्दों का उपयोग किया जाता है। अतः उनकों स्पष्ट करना आवश्यक प्रतीत होता है।

1. असामान्य व्यवहार (Abnormal Behaviour) असामान्य व्यवहार व्यक्ति की आंतरिक व्यक्तित्व व्यवस्था अथवा वाह्य पर्यावरण अथवा दोनों के संदर्भ में विशेष प्रकार के व्यवहार जैसे अकारणभय (Phobia) या अधिक व्यापक तरीकों जैसे मनोविदलता आदि के संदर्भ में प्रयोग होता है। इसके

अन्तर्गत स्थाई या अधिक समय वाली समस्यायें आती हैं। विस्तृत रूप में इसका प्रयोग असमायोजित व्यवहार के समान ही किया जाता है।

2. प्रतिकूलित व्यवहार (Maladaptive behaviour) इसके अन्तर्गत वे सभी व्यक्ति की प्रतिक्रियायें आती हैं जो स्वयं उसको एवं समाज को हानि पहुंचाती हैं। इस प्रकार की क्रियायें करने वाले व्यक्तियों की आलोचना की जाती हैं तथा धीरे–धीरे इनका व्यवहार सामान्य से भिन्न हो जाता है। ये व्यक्ति न तो अपने लक्ष्यों को प्राप्त कर पाते हैं और न ही समाज को लाभ होता है। इस प्रतिकूलित व्यवहार के अन्तर्गत मनोस्नायु विकृतियों तथा मनोविकृतियों को ही नही सम्मिलित करते हैं बल्कि उन व्यक्तिगत एवं सामूहिक तरीकों जैसे अनैतिक व्यवसाय तरीके, प्रजाति, पूर्वाग्रह (Prejudices) उदासीनता, को भी सम्मिलित करते हैं।

3. मानसिक विकृति (Mental disorder) मानसिक विकृति शब्द का उपयोग असामान्य व्यवहार तरीकों को संदर्भित करने के लिए किया जाता है। इसके अन्तर्गत साधारण असामान्यताओं से लेकर विषम असामान्यतओं को सम्मिलित किया जाता है। मनोस्नायु विकृति एवं मनोविकृति इसके दो विशेष प्रकार हैं।

4. मनोव्याधिकी (Psychopathology) मनोव्याधिकी एक विषय है जिसमें असामान्य व्यवहार का अध्ययन किया जाता है।

5. सांवेगिक व्यवधान (Emotional Disturbance) सांवेगिम व्यवधान अपर्याप्त व्यक्तित्व एकीकरण (Inadequate Personality integration) तथा व्यक्तिगत दबावों (Stresses) को दर्शाता है। यह प्रायः बालकों के प्रतिकूलित व्यवहार के संदर्भ में प्रयोग होता है।

6. मानसिक रोग (Mental Illness) कुछ समय पहले इसको मानसिक विकृति के समान ही समझा जाता था परन्तु अब उन्हीं रोगों के लिए उपयोग किया जाता है जिनमें मस्तिष्क विकार कारण होता है अथवा गम्भीर व्यक्तित्व विघटन हो जाता है।

7. व्यवहार विकृति (Behaviour-Disorder) व्यवहार विकृति का प्रयोग उन विकृतियों को दर्शानें के लिए किया जाता है जो दोषपूर्ण सीखने की प्रक्रिया द्वारा विकसित होते हैं। दोषपूर्ण सीखने के द्वारा या तो आवश्यक क्षमताओं का विकास नहीं कर पाता है अथवा प्रतिकूलित तरीकों को सीखता है।

8. मानसिक व्याधि (Mental Disease) मानसिक व्याधि मनोवैज्ञानिक स्थिति होती है, जिसमें इसके कार्य साधारण अथवा विषम रूप से विकृत हो जाते हैं।

9. पागलपन (Insanity) यह वैधानिक शब्द है जो प्रदर्शित करता है कि व्यक्ति मानसिक रूप से अपने कार्यों को करने के अयोग्य है तथा अपने कार्यों के परिणाम को सोच नहीं सकता है। पागलपन विषम प्रकार के मानसिक विकृतियों के लिए प्रयोग किया जाता है।

7. सामान्य–असामान्य सम्बन्धी दृष्टिकोण

असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में प्राचीन काल से ही विद्वानों में काफी मतभेद रहा है, वर्तमान समय में भी यह मतभेद पूर्णतया स्थिर है [20]। साधारण व्यक्ति उस व्यक्ति को मानसिक रोगी समझता है जब उसका व्यवहार अत्यन्त अव्यवस्थित तथा विचलित हो जाता है[21]। परन्तु प्रशिक्षित मनोविकार चिकित्सक उन सभी व्यक्तियों को असामान्य मानते हैं जो जीवन में कठिनाई महसूस करते हैं तथा परिवेश से समायोजन स्थापित करने में असफल रहते हैं।

1. सामान्यता : आदर्श दृष्टिकोण

ग्रीक दार्शनिक प्लेटो (427 से 347 बी0सी0) ने आदर्श प्रारूप का विकास किया था। उन्होनें मनोआत्मा को दो भागों में बाँटा : तार्किक एवं

---

20. नाथन पीटर ई0 तथा हारिस सन्ड्रा एल0 : साइकोपैथोलोजी एण्ड सोसाइटी, मैकग्राहिल बुक कं0, न्यूयार्क 1975, पृ0 5
21. सारविन, टी0 ई0 तथा तथा मैनकुसो, जे0सी0 : फेल्योर आफ मोरल इण्टरप्राजे–एटीट्यूड्स आफ पब्लिक टुवार्ड्स मेन्टल इल हेल्थ, जर्नल आफ कंसल्टिंग एण्ड क्लिनिकल साइकोलोजी 1970, 35 पृ0 159–173

अतार्किक। तार्किक आत्मा स्वस्थ्य नेतृत्व करती है तथा मस्तिष्क में इसका निवास होता है। जबकि अतार्किक आत्मा का सम्बन्ध संवेगों से होता है तथा यह मनुष्य को पथभ्रष्ट कर देती है। प्लेटो के अनुसार जब अतार्किक आत्मा तार्किक आत्मा से नेतृत्व के कार्य को अपने हाथ में ले लेती है तो मानसिक रोग उत्पन्न हो जाता है। प्लेटो ने 3 प्रकार के मानसिक रोगों की चर्चा की हैः अवसाद (Melancholia) मनोह्रास (Dementia) तथा उत्साह (Mania)। प्लेटो के विचार से जिस प्रकार चिन्ता तथा मानसिक द्वन्द्वता से अवसाद उत्पन्न हो जाता है उसी प्रकार अत्यन्त प्रसन्नता से उत्साह (Mania) का रोग हो जाता है अर्थात् सीमा का अतिक्रमण व्यवहार को असामान्य बना देता है। मानसिक रोगों के सम्बन्ध में यह मूल मान्यता आज भी उसी प्रकार से अपना महत्व रखती है [22]। फ्रायड ने भी प्लेटो के समान ही इगो तथा इड को माना है। इगो तार्किक होता है इड अतार्किक । जब इड इगो को कार्य करने से रोकता अथवा बाधा उत्पन्न करता है तथा नियन्त्रण का कार्य स्वयं करने लगता है तो व्यक्ति में असामान्यता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

वर्तमान समय में मानसिक स्वास्थ्य प्रत्यय के सम्बन्ध में कई सिद्धान्त विकसित किये गये हैं। उनमें क्यूबाई[23] तथा शोवेन[24] के सिद्धान्त महत्वपूर्ण हैं। परन्तु सबसे महत्वपूर्ण कार्य मेरीय जाहोडा (Marie Jahoda)[25] का है। जाहोडा ने आदर्श मानसिक स्वास्थ्य व सामान्यता के 5 मानदण्ड बतायें है :

1. मानसिक रोगों की अनुपस्थिति
2. व्यवहार की समानता

22	जिलबोर्ग, जी0 तथा हेनरी, जी0	:	ए हिस्ट्री आफ मेडिकल साइकोलोजी, नार्टन, न्यूयार्क, 1941
23.	कूयवाई एस0	:	दि फन्डामेन्टल नेयर आफ दि डिश्टंग्सन नेचर, नारमल्टी एण्ड न्यूरोसिस, साइकोएनालिटिकल, क्वार्टली, 1954, 23 पृ0 167--208
24.	शोवेन, ई0	:	टुवार्ड्स ए कनसेप्ट आफ नारमल पर्सनाल्टी, अमेरिकन साइकोलोजिस्ट, 1957, 12 पृ0 183–189
25.	जोहोडा, मेरीय	:	करेन्ट कन्सेप्ट आफ पाजिटिव मेंटल हेल्थ, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, 1958

3. परिवेश से समायोजन

4. व्यक्तित्व की एकता

5. वास्तविकता का ठीक–ठीक प्रत्यक्षीकरण

यद्यपि यह मानदण्ड असामान्य व्यवहार समझने में काफी सहायता प्रदान करता है परन्तु मनोस्नायु विकृतियों में यह उतना प्रभावकारी सिद्ध नहीं होता है। साधारण मानसिक विकृतियां इन आधारों से समझी नहीं जा सकती है।

2. सामान्यता : सांख्यकीय दृष्टिकोण

सांख्यकीय प्रारूप के मानने वालों में हन्स जे0 आइसेन्क (Eysenck) मुख्य हैं। संख्यात्मक मध्यमान को सामान्यता का आधार इस प्रारूप के आधार पर माना जाता है। असामान्य व्यक्ति वह होता है जिसमें अधिकांश व्यक्तियों के व्यवहार से भिन्नता होती है। औसत से कम या अधिक दोनों ही अवस्थाओं में असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन होता है। यह बात बुद्धिभेद, सौन्दर्य, लम्बाई आदि के गुणों की परख में तो उचित हो सकती है परन्तु मानसिक रोगों के मूल्यांकन में ऐसा सम्भव नहीं हो सकता है।

3. सामान्यत : सापेक्ष प्रारूप

मानव शास्त्री, समाजशास्त्री तथा मनोवैज्ञानिक सामान्यता को सापेक्ष शब्द समझते हैं। संस्कृति की भिन्नता सामान्यता के प्रत्यय को परिवर्तित कर देती है। इस प्रारूप के मानने वालों में अमरीका के रूथवेनेडिक्ट का नाम विशेष रूप से उल्लेखनीय है। उन्होने अनेक संस्कृतियों का अध्ययन करके सापेक्ष सामान्यता के प्रत्यय का विकास किया। उनके विचार से एक संस्कृति में जो व्यवहार सामान्य वह दूसरी संस्कृति में असामान्य तथा इसके विपरीत भी होता है[26]।

यद्यपि सापेक्ष (Relative) प्रारूप आदर्श तथा साख्यकीय की भाँति कोई विशेष मूल्यांकन अथवा निदान का मानदण्ड नहीं प्रस्तुत करता है परन्तु

---

26. बेनेडिक्ट, रूथ : पैटर्न्स आफ कल्चर, हघटन मिकलिन, वास्टन, 1934

इससे हमें ज्ञात होता है कि व्यवहार का प्रत्यय परिस्थिति विशेष से सम्बन्धित होता है और उसी के सन्दर्भ में इसको समझा जा सकता है।

4. मनोविकार : नैतिक प्रारूप

यद्यपि पाप–पुण्य तथा नैतिकता का मानसिक रोगों से सम्बन्ध को आज के युग ने अस्वीकार कर दिया है परन्तु इस विश्वास का पन्द्रहवीं शताब्दी में विशेष प्रभाव था। इस युग को इसीलिए अंधकार युग कहा जाता है। मानसिक रोगी की चिकित्सा जादूगरी, जादू टोने तथा टुटकों से की जाती थी। मनोविकृतियों से ग्रस्त व्यक्तियों की हत्या इसलिए कर दी जाती थी कि वे शैतान व भूतप्रेत के प्रभाव में हैं। जान स्प्रेन्जर तथा हेनरिच क्रेमर[27] ने इस आध ाार को लेकर मानसिक रोगों तथा पाप में सम्बन्ध स्थापित किया।

यद्यपि आज के समाज में इस प्रकार का उपचार मानसिक रोगियों के साथ नहीं किया जाता है परन्तु जिस प्रकार से उनको चिकित्सालयों में रखकर चिकित्सा की जाती है वह जीवित मृत्यु के समान है। इसीलिए दो महान मनोवैज्ञानिकों ने समाज की मनोवृत्ति को मानसिक रोगों के प्रति दोषपूर्ण बताया है। समाज मानसिक रोगों को अपराधपूर्ण (पापी) कार्य समझता है। इन महान विचारकों में थामस साज (Thomas Szas) का विचार विशेष महत्वपूर्ण है। उनके विचार से मानसिक रोगों को व्यक्ति की तकलीफ से परे कुछ मानना उतना ही सत्य है जितना कि भूतप्रेत था जादू–टोना। उनके विचार से मानसिक रोग एक काल्पनिक प्रत्यय है। मानसिक विकृतियां केवल समाज में रहने से सम्बन्धित समस्यायें हैं[28] (Problems of living in society) ओ0 एच0 मोरर ने मानसिक रोगों को नैतिक दृष्टिकोण से समझने को सुझाव दिया है।

5. मनोविकार : चिकित्सकीय प्रारूप

कुछ ऐसे मनोविकार अवश्य हैं जिनकी उत्पत्ति शारीरिक व्याधियों अथवा जैविकीय कारणों से होती है परन्तु अधिकांश ऐसे भी मनोविकार हैं जो

---

27. स्प्रेन्जर, जे0 तथा क्रेमर, एच0 : मालेयस मालेधिककारम् (ट्रान्स0 साई एम0 सुमर्स) विन्जमिन, न्यूयार्क, 1970
28. साज, थामसन : दि मिथ आफ मेंटल इलनेस, कारपर ऐन्ड रो, न्यूयार्क, 1961

इससे प्रभावित नहीं होते। इस प्रारूप के मानने वालों का विचार है कि मानसिक रोग –

1. आंगिक कारणों से उत्पन्न होते हैं।
2. निदानात्मक तरीकों का उपयोग शारीरिक व्याधियों के समान होता है।
3. इनके उपचार की प्रक्रिया शारीरिक रोगों के समान ही होती है।

इस प्रारूप में यद्यपि काफी सत्यता है परन्तु आज के विचारकों तथा मनोवैज्ञानिकों ने नहीं माना है।

6. मनोविकार : सामाजिक परिणाम प्रारूप

थामस साज चिकित्सकीय प्रारूप के कट्टर विरोधी हैं। उनका कहना है कि असामान्यता उस समय प्रकट होती है जब व्यक्ति समाज से समायोजन स्थापित करने में कठिनाई अनुभव करता है। इस प्रारूप के आलोचकों का कहना है कि मस्तिष्क विकारों की उत्पत्ति रहने की समस्या से नहीं होती है। साज का कहना है कि जो लोग मानसिक लक्षणों को मस्तिष्क रोग समझते हैं वे मानसिक रोगों का वास्तविक अर्थ में स्पष्टीकरण नहीं करते हैं।

7. मनोविकार : व्यवहारवादी प्रारूप

इस प्रारूप के अनुसार मानसिक रोग के लक्षण सीखे जाते हैं। इनकी उत्पत्ति न होकर दोषपूर्ण व्यवहार के सीखने से विकास होता है। व्यवहारवादी प्रारूप के अनुसार असामान्य व्यवहार 3 कारणो से होता है : 1. आवश्यक क्षमताओं को सीखने में असफलता 2. अप्रभावकारी तथा दोषपूर्ण व्यवहारिक गुणों का सीखना 3. मानसिक संघर्षमयी स्थितियां जिनमें व्यक्ति निर्णय नहीं कर पाता है। इस प्रारूप का विकास पावलों तथा वाटसन के द्वारा किया गया है।

8. मनोविकार : गत्यात्मक प्रारूप

गत्यात्मक प्रारूप जिसको मनोविश्लेषण कहते हैं, का विकास सिंगमन्ड फ्रायड द्वारा किया गया। मनोविश्लेषण प्रारूप के अनुसार मनुष्य जैविकीय

चालकों तथा अचेतन इच्छाओं व सम्प्रेरणाओं से नियन्त्रित होता है। यद्यपि रचनात्मक पक्ष अधिक शक्तिशाली होता है परन्तु अन्धमयी शक्तियां भी अबाध रूप से कार्य करती रहती हैं जिसके कारण अहं पर अत्यधिक दबाव पड़ता है फलस्वरूप असमायोजित व्यवहार की उत्पत्ति होती है।

9. मनोविकार : मानवतावादी प्रारूप

मानवतावादी विचारकों में जेम्स[29], मास्लो[30] पर्ल्स तथा रोजर्स[31] मुख्य हैं इन विचारकों का मत है कि मानसिक विकारों का कारण सीखने की त्रुटिपूर्ण प्रक्रिया तथा अत्यधिक आत्म सुरक्षात्मक साधनों का प्रयोग है। इन दोनों कारकों के कारण व्यक्ति का समुचित विकास नहीं हो पाता है।

10. मनोविकारः अस्तित्ववादी प्रारूप

इस प्रारूप के मानने वालों में सोरेन, किर्केगार्ड, पाल सारट्रे, रोलो में तथा आर0 डी0 लाइंग[32] मुख्य हैं। इस प्रारूप के अनुसार वर्तमान समाज में व्यक्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। व्यक्ति अकेलापन महसूस करता है। वह एक निरीह प्राणी बनकर रह गया है। वह ईश्वर, सामाजिक प्राणियों यहाँ तक कि स्वयं से भी अनभिज्ञ होता जा रहा है। इन परिस्थितियों के कारण मानसिक विकारों का उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है।

11. मनोविकार : अन्तर्वेयक्तिक प्रारूप

इस प्रारूप के मानने वालों मे हेरी स्टेव सुलीवान तथा इरिक हर्ने मुख्य हैं यह प्रारूप इस बात में विश्वास करता है कि दोषपूर्ण संचार प्रक्रिया तथा

29.	जेम्स, डब्लू	:	दि प्रिन्सिपिल्स आफ साइकोलोजी, होल्ट, न्यूयार्क, 1890
30.	मास्लो, ए0 डब्लू0	:	टुवार्ड ए साइकोलोजी आफ बीइंग, वान नास्ट्रेण्ड, न्यूयार्क, 1962
31.	रोजर्स, सी0 आर0	:	आन बीइंग ए परसन, हघटन मिफलिन, वास्टन, 1969
32.	लाइंग, आर0डी0	:	सैनिटी, मैडनेस ऐन्ड फेमिली, टाविस्टाक, लंदन, 1964

असंतोष एवं त्रुटिपूर्ण अन्तर्वेयक्तिक सम्बन्ध मानसिक विकारों तथा दोषपूर्ण व्यवहारों के लिए उत्तरदायी हैं।

इस प्रकार यह स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक विकारों के विकास में न तो शारीरिक व्यवधान मुख्य कारण है और न ही देवी देवताओं का प्रकोप है बल्कि सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारक उसके लिए विशेष रूप से उत्तरदायी हैं। सामाजिक परिस्थितियों का वैयक्तिक व्यवधानों से घनिष्ठ सम्बन्ध है। जितनी ही अधिक संस्कृति विघटित होगी उतनी ही अधिक व्यक्ति में मानसिक अस्तव्यस्तता होगी। यह स्थिति उस समय तक बढ़ती जायेगी जब तक कि वे सांस्कृतिक प्रतिमान नहीं बन जायेगें। अतः आवश्यकता इस बात की है कि व्यक्ति को मनोचिकित्सा सम्बन्धी सेवायें अवश्य ही प्राप्त हों जिससे वह समय की माँग के अनुसार अपनी प्रवृत्तियों एवं व्यवहारों को परिवर्तित कर सके।

2

असामान्य व्यवहार के प्रारूप
(Models of Abnormal Behaviour)

अनुसंधान की नवीन प्रणालियों, मनोऔषधियों, मनोचिकित्सा की प्रविधियों तथा सामुदायिक मानसिक स्वास्थ्य प्रत्ययों एवं सुविधाओं के विकास के फलस्वरूप आज यह अनुभव करने लगे हैं कि हम अंधविश्वास तथा मानसिक विकृतियों के प्राचीन क्रूर उपचार तरीकों से छुटकारा पा गये हैं। इस यात्रा की कहानी बहुत सुखद तथा मोहक है और इसी कहानी से ही हम यह जान सकते हैं कि असामान्य व्यवहार का वर्तमान दृष्टिकोण किस प्रकार विकसित हुआ। मानसिक विकृतियों के ऐतिहासिक विगत में अनेकों भ्रान्तियाँ हैं जिनको समझना आवश्यक है क्योंकि आधुनिक वैज्ञानिक प्रत्यय का उदय इन्ही विकासात्मक प्रत्ययों के परिणामस्वरूप हुआ है। उदाहरण के लिए अति विषादात्मक रोगियों के लिए विद्युत आघात चिकित्सा (Electro Shock Therapy) का विकास प्राचीन तरीकों, कोड़े मारना, ठंडे पानी से स्नान कराना तथा अन्य प्रकार की आघात चिकित्सा के आधार पर ही हुआ है। राबकिन[1] (Robkin, L.Y.) का कहना है कि मनोविश्लेषण चिकित्सा की स्वतन्त्र सहचर्य (Free Association) प्रणाली जिससे दमित अन्तर्द्वन्द्व एवं संवेगों को चेतन परिधि में लाया जाता है उसका भी वर्णन अरिस्टोफेन्स (Aristophanes) ने अपने क्लाउड्स (Clouds) ड्रामा में वर्णित किया है। चीनी, मिश्रीय, ग्रीक आदि के प्रारम्भिक प्राचीनतम् लेखों में भी मानसिक विकृत व्यक्तियों के विषय में वर्णन किया गया है। 11 वीं शताब्दी बी0सी0 (B.C.) में इजराइल का राजा सौल (Saul) उन्मत्त विषाद (Manic Depression) से पीड़ित हुआ था। वह उन्मत्ता की अवस्था में अपने शरीर से सभी वस्त्रों को अलग कर देता था तथा सार्वजनिक स्थानों में नंगे घूमता था। इस अवस्था मे उसने एक बार अपने पुत्र

---

1. राबकिन, एल0 वाई0 : साइकोपैथालोजी एण्ड लिटरेचर, चान्डलर सान फ्रान्सिसको, 1977

जोनाथन (Jonathan) को मार डालने का प्रयास भी किया। छठी शताब्दी बी0सी0 (B.C.) में परसिया (Perisa) का राजा कैमबइसेस (Cambyses) बहुत शराबी था। शराब की आदत के साथ ही उसमें क्रोध भी इतना अधिक आता था कि वह अपने पर नियंत्रण नहीं रख पाता था। वह पागलपन का व्यवहार करता था। उसने अपनी बहन से विवाह करके पारसिया के कानून को तोड़ा तथा दूसरी बहन को गर्भावस्था में मार डाला।

ग्रीक पौराणिक कथाओं द्वारा अनेक मानसिक विकृतियों का पता चलता है। सुकरात, डेमोक्रिटस, सिकन्दर आदि अनेक ग्रीक तथा रोम के महान व्यक्ति मानसिक रूप से विकृत थे। मध्यकाल में भी असामान्य व्यवहार के अनेक उदाहरण मिलते हैं। महान विजेता तैमूरलंग (1336–1405) मानवीय खोपड़ियों का पिरामिड बनाने का शौक रखता था। इंग्लैण्ड का जार्ज III पागल शासक कह कर पुकारा जाता था। वह अति उत्तेजना तथा अति कार्यशीलता से पीड़ित था। अति उन्मत्त उत्तेजना की अवस्था में वह जल्दी–जल्दी एक विषय से दूसरे विषय पर बात करता था, प्रश्नों की बौछार बिना उत्तर सुने करता था, भोजन इतनी तेजी से करता था कि उसके साथी अपना भोजन अलग बन्द कर देते थे, घोड़े को इतना तेज दौड़ाता था कि वह मृतप्राय हो जाता था। रूसो अपने अंन्तिम जीवन के वर्षों में स्थिर व्यामोह (Paranoia) से पीड़ित हो गया था। उसको भय लगने लगा था कि उसके खिलाफ साजिश की जा रही है। जान स्टुआर्ट मिल अवसादी थे। बटलर, बाइरन, बार्न्स आदि अति शराबी थे।

उपर्लिखित ऐतिहासिक उदाहरणों से यह ज्ञातव्य है कि असामान्य व्यवहार का प्रत्यय व्यक्ति के विकास के साथ–साथ विकसित हुआ तथा वह नाना प्रकार के मानसिक रोगों से पीड़ित रहा। इस अध्याय में हम यह जानने का प्रयत्न करेगें कि मनोव्याधि के सम्बन्ध में प्राचीन समय से लेकर आधुनिक समय तक व्यक्ति का क्या–क्या दृष्टिकोण रहा है।

1. असामान्य व्यवहार का प्राचीन प्रारूप

पाषाण युग के प्राप्त अवशेषों से यह प्रमाण मिलता है कि उस युग में भी मानसिक रोग पाये जाते थे तथा उनका उपचार विशेष प्रणाली द्वारा किया जाता था। कुछ निश्चित प्रकार के मानसिक विकारों जैसे अति सर दर्द तथा

विकसित रूपान्तरित उन्माद में खोपड़ी का आपरेशन किया जाता था। इस चिकित्सा प्रणाली को आज ट्रेफाइनिंग (Trephining) कहते हैं। इस प्रकार का आपरेशन पत्थर से बने उपकरणों के माध्यम से किया जाता था। रोगी की खोपड़ी के कुछ हिस्से को गोलाकार रूप में काटकर उपचार कार्य करते थे। इस प्रकार के आपरेशन का उद्‌देश्य उस दुष्ट आत्मा को शरीर से बाहर निकालना था जिसके कारण रोगी कष्ट अनुभव करता था। इस चिकित्सा प्रणाली से अधिकांश रोगियों को लाभ भी हो जाता था। लेखों से पता चलता है कि बहुत से रोगी इस चिकित्सा के उपरान्त लम्बी अवधि तक जीवित रहे थे।

चीन, ग्रीक, मिश्र के प्रारम्भिक लेखों से पता चलता है कि उस समय मानसिक व्याधियों का कारण प्रेत शक्ति मानी जाती थी। इस युग में लोग व्यवहार पर दो शक्तियों का शासन मानते थे : (1) प्रेत शक्ति (Evil Spirit) (2) दैवी शक्ति (Good Spirit)। जब व्यक्ति सामान्य एवं धार्मिक व्यवहार करता था तो उसका कारण दैवी शक्ति माना जाता था। लेकिन जब व्यक्ति धार्मिक व्यवहार के विरूद्ध कोई व्यवहार करता था तथा अतिसक्रियता एवं अति उत्तेजना के लक्षण उत्पन्न हो जाते थे तो वह दुष्ट शक्ति के चंगुल में फंस गया माना जाता था। इस प्रकार के व्यवहार के सम्बन्ध में यह समझा जाता था कि उस व्यक्ति के अंदर किसी कारणवश प्रेत शक्ति का निवास हो गया है। अतः इस बात का प्रयत्न किया जाता था कि किसी प्रकार दुष्ट आत्मा को रोगी के शरीर से निकाला जाय। जादू, टोना, झाड़फूंक (Excorcism) आदि को उपचार का माध्यम बनाया जाता था। इस चिकित्सा प्रणाली के अन्तर्गत प्रार्थना, मंत्रोच्चारण, शोर तथा बहुत ही तीखे प्रकार के मिश्रण जैसे शराब तथा भेड़ के गोबर का मिला मिश्रण का उपयोग किया जाता था। विषम प्रकार के रोगियों को अनेक शारीरिक यातनायें दी जाती थीं। रोगी को भूखा रखा जाता था। इस प्रकार की चिकित्सा का प्रमुख उद्‌देश्य रोगी के शरीर से दुष्ट आत्मा को निकालना था। परन्तु ग्रीस के स्वर्णकालीन युग में मानसिक रोगों के उपचार के सम्बन्ध में आश्चर्यजनक उन्नति हुई।

हिपोक्रेट्स

ग्रीक चिकित्सक हिपोक्रेट्स को आधुनिक चिकित्सा विज्ञान का जनक माना जाता है। उन्होनें मानसिक विकारों की उत्पत्ति का कारण दुष्ट आत्मा को

नहीं माना तथा अपना मत प्रकट किया कि जिस प्रकार अन्य शारीरिक रोग उत्पन्न होते हैं उसी प्रकार मानसिक विकृतियां भी मस्तिष्क विकार के कारण उत्पन्न होती है। अतः इनका उपचार भी अन्य रोगों के समान ही होना चाहिए। इस प्रकार हिपोक्रेट्स ने यह सिद्धान्त प्रतिपादित किया कि मस्तिष्क सभी बौद्धिक क्रियाओं का केन्द्र है और मानसिक रोग मस्तिष्क व्याधि के कारण होते हैं।

हिपोक्रेट्स ने सभी मानसिक विकृतियों को 3 वर्गों में विभक्त कियाः (1) उन्माद (*mania*) (2) विषाद (melancholia) (3) फ्रेनाइटिस (phrenitis)। हिपोक्रेट्स ने स्वप्नों के महत्व को समझा तथा उनका उपयोग रोगी के व्यक्तित्व को समझने में किया। उन्होने मानसिक विकृतियों के उपचार के लिए जो प्रणाली बतायी वह पूर्व प्रचलित प्रणाली से बिल्कुल भिन्न थी। विषाद के रोगी को नियमित जीवन पद्धति, धैर्यता एवं गम्भीरता तथा साग–भाजी वाला भोजन, व्यायाम आदि संस्तुत किया। उन्माद के रोगी को विवाह कर लेने की सब से अच्छी एवं अचूक औषधि बताई।

हिपोक्रेट्स ने 4 प्रकार के कफों (Humors) का वर्णन किया है : काला पित्त (Black Bile), पीला पित्त (Yellow Bile) तथा कफ (Phlegm)। शरीर में इनका संतुलन होना सामान्य व्यवहार के लिए आवश्यक होता है। जब इन ह्यूमर्स मे असंतुलन हो जाता है तो व्यक्ति असामान्य (शारीरिक एवं मानसिक) हो जाता है।

प्लेटो तथा अरस्तू

प्लेटो (429–347 बी0सी0) ने मानसिक विकृत व्यक्तियों का अध्ययन किया जिन्होने अपराधी कार्य किये थे। उन्होने इस बात को स्पष्ट किया कि वे व्यक्ति अपने कार्यों के लिए उत्तरदायी नहीं थे अतः उन्हें दंड नहीं मिलना चाहिए। प्लेटो ने कहा कि मानसिक विकृत रोगियों के परिवार वालो से रोगी को अलग रखने के लिए कहा जाये तथा उसको बाहर न घूमने दिया जाय। प्लेटो ने अपनी पुस्तक रिपब्लिक (Republic) में इस बात का उल्लेख किया है कि व्यक्ति एक दूसरे से बौद्धिक एवं अन्य योग्यताओं में भिन्न–भिन्न होते हैं। उनका विचार था कि व्यवहार पर सामाजिक–सांस्कृतिक कारकों का विशेष प्रभाव पड़ता है। प्लेटो का विश्वास था कि कुछ मानसिक विकृतियाँ आंगिक होती हैं, कुछ नैतिकता से सम्बन्धित होती हैं तथा कुछ दैवीय होती हैं।

अरस्तु (384–322 बी0सी0) ने मनोवैज्ञानिक कारकों को मानसिक विकृतियों का कारण नहीं माना। उन्होने हिपोक्रेट्स द्वारा प्रतिपादित सिद्धान्त (पित्त में व्यवधान) का अनुमोदन किया।

बाद के ग्रीक तथा रोमन विचारक

एलेक्जेन्डर ने औषधि शास्त्र को काफी विकसित किया। इनके निर्देशन पर मानसिक रोगियों को सुखदाई वातावरण प्रदान किया जाने लगा था क्योंकि ऐसा विचार था कि ऐसे वातावरण में मानसिक रोगी को काफी आराम पहुंचता है। इन रोगियों को किसी न किसी कार्य में लगाये रखा जाता था तथा उनके आमोद प्रमोद का प्रबन्ध था। इन क्रियाओं में नृत्य, संगीत तथा टहलना प्रमुख क्रियायें थीं।

आस्क्लेपियाडेस (Asclepiades 124 बी0सी0) बहुत ही प्रसिद्ध औषधिशास्त्र का ज्ञाता था। उसने मनोविकार विज्ञान के क्षेत्र मे अतुलनीय योगदान दिया। वे पहले व्यक्ति थे जिन्होने तीव्र (Acute) तथा स्थायी (Chronic) मानसिक विकृतियों में अन्तर स्पष्ट किया। उन्होने ही भ्रान्ति (Illusion), व्यामोह (delusion) तथा विभ्रम (Hallucination) में भेद स्पष्ट किया। आस्क्लेपियोडेस ने झूले ऐसा पलंग (Hammock like Bed) को मानसिक रोगियों के उपयोग के लिए बहुत लाभदायक बताया।

गैलेन (Galen A.D. 130–200) ने स्नायु संस्थान के सम्बन्ध में विशेष योगदान दिया। मानसिक विकृतियों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक दृष्टिकोण का विकास किया। उन्होनें मानसिक विकृतियों के कारणों को शारीरिक तथा मानसिक दो भागों में विभक्त किया। सर मे चोट, अत्यधिक मदिरापान, आघात, भय, मासिक स्राव में परिवर्तन, आर्थिक उतार चढाव तथा प्रेम में विध्नता आदि कारकों को गैलेन में मानसिक रोगों का कारण बताया था। गैलेन की मृत्यु के पश्चात् मानसिक विकृतियों के सम्बन्ध में वैज्ञानिक विचारों का अंत हो गया तथा प्रेत विज्ञान पर फिर जारे दिया जाने लगा।

अरब में ग्रीक विचारों का जीवित रहना

मध्ययुगीय काल मे केवल अरब में ही ग्रीक के औषधि सम्बन्धी वैज्ञानिक विचारों का अस्तित्व रह गया था। बगदाद में सन् 792 ई0 में प्रथम मानसिक चिकित्सालय की स्थापना की गई थी। इसके पश्चात् ईमसकस तथा अलेपो में

भी मानसिक चिकित्सालय खुले। इन चिकित्सालयों में मानसिक रोगियों के साथ मानवता का व्यवहार किया जाता था तथा चिकित्सा पद्धति मानवतावादी विचारों पर आधारित थी।

मध्ययुग में प्रेतशास्त्र

ग्रीक तथा रोमन सम्यता में ह्रास के साथ–साथ यूरोप में भी औषधि संबंधी वैज्ञानिक विचारों का अन्त हो गया। अंधविश्वासों तथा भूतप्रेत व दुष्ट आत्मा के अस्तित्व सम्बन्धी विचारों का पुनः उदय हुआ। प्रेत शक्ति तथा दैवी शक्ति का सम्बन्ध आत्मा से समझा जाने लगा। मध्य युग के अन्तिम अर्ध मे मानसिक विकृतियों के लक्षण सामूहिक रूप में स्पष्ट हुये। इनमें से अधिकांश व्यक्ति उन्माद (Hysteria) से पीड़ित थे। नृत्य उत्साह (Dance Mania) भी एक संक्रामक रोग की भाँति फैल गया था।

मध्ययुग में मानसिक चिकित्सा का कार्य मुख्यतः पादरियों के हाथ में था। मानसिक रोगियों को मठ में रखा जाता था। इस युग के प्रारम्भ में इन रोगियों के साथ दयालुता एवं मनावता का व्यवहार किया जाता था। प्रार्थना, पवत्रिजल, विशुद्ध मलहम आदि को उपचार के लिए प्रयोग किया जाता था। रोगियों को प्रतिमाओं की पूजा करने तथा पवित्र स्थानों के दर्शन करने को उत्साहित किया जाता था। साधारण प्रकार की झाड़फूंक का भी सहारा लिया जाता था। परन्तु धीर–धीरे वैज्ञानिक युग का अंत होता गया और जादू टोना, झाड़फूंक को ही उपचार का माध्यम रखा गया। रोगियों के साथ अमानुषिक व्यवहार होने लगा तथा मानसिक रोगों के उपचार के लिए क्रूर तरीके अपनाये जाने लगे। 15 वीं शताब्दी के अंत में यह समझा जाने लगा कि मानसिक रोगियों में प्रेत शक्ति दो प्रकार की होती है : (1) रोगी अनैच्छिक रूप से दानव शक्ति द्वारा पापों के परिणाम स्वरूप जकड़ लिया जाता है। (2) रोगी दुष्ट आत्मा के साथ सम्बन्ध स्थापित कर लेता है तथा रोगी दुष्ट आत्मा के साथ 'समझौता दस्तावेज' पर हस्ताक्षर करके सम्पर्क बना लेते हैं। ऐसे व्यक्ति भूचाल, बाढ़, रोग, लैंगिक व्यतिक्रम, आदि उत्पन्न कर सकते हैं। वे फसल को नष्ट कर सकते हैं, दुश्मन को हानि पहुँचा सकते हैं, तथा हवा में उड़ सकते हैं। पहले प्रकार के रोगियों के साथ पूर्व प्रचलित जादू–टोने, झाड़फूंक की विधि अपनायी जाती थी। परन्तु समय के

साथ–साथ दोनों में मतभेद कम होता गया तथा क्रूर तरीके सभी रोगियों के साथ अपनाये जाने लगे। धीरे–धीरे यह विश्वास दृढ़ होता गया कि जादूगरनियों की संख्या बहुत बढ़ रही है और वे देश को अनेक प्रकार की हांनियाँ पहुंचा रही हैं। इस विचार के परिणाम स्वरूप पोप इनोसेन्ट III ने 7 दिसम्बर 1484 ई0 को यूरोप के सभी पादरियों को आदेश दिया कि इन जादूगरनियों को ढूंढने में कोई उपाय छोड़ा न जाय।

इस प्रकार के रोगियों को 3 प्रकार की सजायें दी जाती थीः (1) जलाने से पहले उनको लटकाया जाता था अथवा सर काट लिया जाता था। (2) जिंदा जला दिया जाता था (3) जलाने से पहले शारीरिक अंग भंग कर दिया जाता था।

मानवतावादी दृष्टिकोण का विकास

मध्ययुग में किसी भी व्यक्ति के लिए असामान्यता की व्याख्या को प्रेत शास्त्र से भिन्न प्रस्तुत करना अपने को घोर संकट में डालना था। फिर भी अनेक विद्वानों ने इसके खिलाफ अपनी आवाज उठाई तथा मानसिक व्याधियों में दुष्टात्मा के अस्तित्व को स्वीकार नहीं किया। धीरे–धीरे प्रेतशास्त्र प्रारूप का महत्व धटता गया और पुनः वैज्ञानिक विचारों की उत्पत्ति हुई। 16वीं शताब्दी के प्रारम्भ में पारासेलस (Paracelus) ने नृत्य उत्साह (Dancing Mania) को किसी दैवीय शक्ति के द्वारा उत्पन्न किये जाने को अस्वीकार कर दिया। उनका विचार था कि यह भी एक रोग है जिसका सुचारु रूप से उपचार होना आवश्यक है। उन्होंने व्यक्ति की मूलप्रवृत्ति तथा धार्मिक प्रवृत्ति के बीच संघर्ष के सिद्धान्त का भी प्रतिपादन किया। उनके विचार से मानसिक रोगों का मुख्य कारण मनोवैज्ञानिक कारक हैं जिनको शारीरिक चुम्बक शक्ति (Bodily Magnetism) द्वारा ठीक किया जा सकता है। बाद में इस चिकित्सा प्रणाली का नाम सम्मोहन (Hyponosis) रखा गया। इस प्रकार यद्यपि पारासेलेस ने असामान्य व्यवहार के संदर्भ में भूत–प्रेत के प्रत्यय को अस्वीकार कर दिया था परन्तु उनका असमान्य व्यवहार के संबंध में नक्षत्र संबन्धी प्रभावों के प्रति विश्वास बना रहा। वे पूर्ण रूप से आस्वस्त थे कि चन्द्रमा मस्तिष्क पर दैविक प्रभाव डालता है।

जोहान वेयर (Johann Weyer 1515-1588) का कार्य मनोविकार साहित्य में बहुत ही महत्वपूर्ण रहा है। उन्होंने प्राचलित चिकित्सा पद्धति का खुलकर

विरोध किया। वे मानसिक रोगियों के साथ किये जाने वाले क्रूर व्यवहार से इतना क्षुब्ध हुये कि उन्होंने टोना (witch-craft) की सम्पूर्ण समस्या का अध्ययन किया और सन् 1563 में इस विषय पर एक पुस्तक की रचना की। इस पुस्तक में उन्होंने तर्क किया कि इन रोगियों में अधिकांश रोगी ऐसे हैं जो वास्तव में शारीरिक व मानसिक रूप से रोगी नहीं हैं। अतः इन व्यक्तियों के साथ बहुत ही अन्याय किया जा रहा है। वेयर की इस पुस्तक को उस समय के अधिकांश प्रसिद्ध चिकित्सकों एवं धर्मशास्त्रियों ने प्रशंसा की।

वेयर पहले चिकित्सक थे जिन्होंने मानसिक विकृतियों के संबंध में विशेष ज्ञान प्राप्त किया था। मानसिक रोगों के सम्बन्ध में विस्तृत अनुभव, ज्ञान तथा विकासात्मक दृष्टिकोण के कारण ही उन्हें आधुनिक मनोव्याधि का संस्थापक कहा जाता है। लेकिन अभाग्यवश वे अपने समय से बहुत आगे थे अतः उनके कार्य को चर्च द्वारा प्रतिबंधित कर दिया गया और 19वीं शताब्दी के अंत तक प्रतिबंधित रहा।

रेगिनाल्ड स्काट (Reginald Scot - 1538-1599) ने अपना सम्पूर्ण जीवन मनो रोगों के अध्ययन में वैज्ञानिक पद्धति को खोजने में लगा दिया। उन्होंने सन् 1584 ई0 में अपनी पुस्तक डिस्कवरी आफ विचक्रेफ्ट (Discovery of witchcraft) की रचना की। जिसके द्वारा मानसिक रोगों के भूतप्रेत के कारणों को अस्वीकार किया तथा साहस के साथ इस बात की घोषणा की कि भूतप्रेत, दैवीशक्ति अथवा अन्य किसी भी प्रकार की शक्ति द्वारा मानसिक रोग उत्पन्न नहीं होते हैं।

सेंट विनसेंट डी पाल (St. Vincent de Paul) ने अपने जीवन को जोखिम में डालकर घोषणा की कि मानसिक रोग, शारीरिक रोग के समान ही है तथा धर्म की पुकार है कि इन व्यक्तियों के साथ मानवतावादी दृष्टिकोण अपनाया जाय।

फिलिप पाइनेल (Philippe Pinel 1748-1826) ने असमान्यता के नवीन आधार का सूत्र–पात किया। उन्होंने इस बात को अस्वीकार कर दिया कि मानसिक व्याधि का कारण भूतप्रेत या धार्मिक प्रभाव है। उन्होंने इन रोगियों के प्रति किये जाने वाले अत्याचारों के विरुद्ध आवाज उठाई तथा रोगियों को कोठरी में बंद कर देने तथा जंजीरों से जकड़ देने की पद्धति का खुलकर विरोध किया।

सन् 1792 ई0 में पाइनेल को फ्रांस के ला विसेट्रे (La Bicetre) चिकित्सालय का कार्य भार सौंपा गया। उन्होंने रोगियों की जंजीरों को खोला तथा इस दृष्टिकोण को प्रतिपादित किया कि मानसिक रोगियों को शारीरिक रोगियों के समान ही माना जाय तथा उनके साथ दयालुता का व्यवहार किया जाय। वे पापी नहीं बल्कि साधारण रोगियों से समान ही हैं। पाइनेल के प्रयोग का परिणाम यह हुआ कि मानसिक रोगियों की चिकित्सा के क्षेत्र में नवीन मनोदृष्टि का विकास हुआ। रोगियों को राहत मिली तथा उनमें प्रशंसनीय व्यवहारिक परिवर्तन हुये। कोल मैन ने एक रोगी की प्रतिक्रिया का वर्णन करते हुए लिखा है कि उसने 40 वर्षों में पहली बाद सूर्य तथा आकाश को देखा था। वह रोगी दो वर्षों के अन्तर्गत ही ठीक हो गया तथा घर जाने की स्वीकृति मिल गई थी। इस संदर्भ में यद्यपि विचित्र परन्तु ऐतिहासिक सत्य है कि पाइनेल की जीवन रक्षा विरोधियों के समूह से एक बार उस सैनिक ने की थी जिसको उन्होंने इस प्रकार के कष्ट प्रद जीवन से छुटकारा दिलाया था।

इस्क्वीराल (Esquiral) ने भी असामान्यता के क्षेत्र में महत्वपूर्ण कार्य किया तथा पाइनेल के कार्यों को आगे बढ़ाया। उनके प्रयास से फ्रांस में 10 नवीन मानसिक चिकित्सालयों की स्थापना की गई जिनमें रोगियों के साथ मानवतावादी व्यवहार किया जाता था।

जिस समय पाइनेल फ्रांस के मानसिक रागियों के साथ नवीन प्रयोग कर रहे थे उसी समय विलियम टुके (William Tuke) ने इंग्लैण्ड में योर्क स्ट्रीट (York Street) की स्थापना की जहाँ पर मानसिक रोगी धार्मिक आचरण एवं कार्य करते हुये अपना समय व्यतीत करते थे। पाइनेल की सफलता ने टुके के कार्य को प्रोत्साहित किया तथा जान कोनोली, सेमुअल हिच तथा अन्य प्रसिद्ध चिकित्सकों ने टुके के कार्य का समर्थन किया।

अमरीका में बेन्जामिन रश (Benjamin Rush 1745-1813) का कार्य असामान्यता के क्षेत्र में सबसे प्रथम एवं सराहनीय रहा हैं इसीलिए उन्हें अमरीकन मनोविकार विज्ञान का जनक कहा जाता है। उन्होंने सबसे पहला ग्रन्थ "मेडिकल इनक्वारीज एण्ड आब्जर्वेशन्स अपान दि डिज़ीज आफ दि माइन्ड" सन् 1812 ई0 में प्रस्तुत किया। वे पहले अमरीकन थे जिन्होंने मनोविकार विज्ञान पर प्रशिक्षण कार्यक्रम चलाया। डोरोथिया डिक्स ने मानसिक रोगियों के साथ किये जाने वाले

दुर्व्यव्हार की भर्त्सना की तथा सन् 1841 व 1881 के मध्य अमानुषिक व्यवहार के विरोध में जन जागृति के लिए प्रचार कार्य किया। मिस डिक्स के प्रयत्नों के फलस्वरूप अमरीका के 20 राज्यों ने इस ओर अपना ध्यान आकृष्ट किया तथा नवीन प्रकार के चिकित्सालयों के लिए एक बहुत बड़ा कोष एकत्र किया गया।

क्लीफोर्ड वियर्स (Clifford Beers) ने डोराथिया डिक्स (Dix) के विचारों को आगे बढ़ाया। उन्होंने प्रसिद्ध पुस्तक ''ए माइन्ड दट फाउन्ड इटसेल्फ'' (A Mind That Found Itself) की रचना सन् 1980 में की जिसमें मानसिक चिकित्सालयों की दुर्दश का वर्णन किया। वे तीन भिन्न मानसिक संस्थाओं में स्वयं रोगी होकर रहे थे अतः अपने अनुभव के द्वारा लोगों को इस प्रकार के व्यवहार के विरोध में जागृत करना प्रारम्भ किया जिसके परिणाम स्वरूप उन्हें समाज के प्रत्येक वर्ग से सहयोग प्राप्त होने लगा। विलियम जिम्स तथा एडोल्फ मेयर ने इस मानवतावादी विचार धारा को आगे बढ़ाया।

चिकित्सकीय प्रारूप

आधुनिक प्रयोगात्मक विज्ञान की उन्नति के साथ–साथ असामान्य व्यवहार के ज्ञान एवं उपचार के संदर्भ में भी प्रगति हुई। परन्तु इस प्रगति का केन्द्र बिन्दु आंगिक दृष्टिकोण ही रहा जिसके परिणामस्वरूप चिकित्सकीय प्रारूप का विकास हुआ। 19वीं शताब्दी के प्रारम्भ से शरीर रचना विज्ञान, जीव–विज्ञान, स्नायुविज्ञान, रसायन शास्त्र, तथा सामान्य औषधि विज्ञान के ज्ञान के क्षेत्र में आशा जनक उन्नति हुई। इस ज्ञान के विकास के कारण शारीरिक रोगों के संदर्भ में आंगिक व्याधियों का विकास हुआ। प्रारम्भिक कार्यकर्ताओं ने अपना ध्यान इसी दृष्टिकोण से मानसिक रोगों की ओर भी आकृष्ट किया। अतः यह स्पष्ट किया गया कि मानसिक विकृतियां मस्तिष्क की व्याधि के कारण उत्पन्न होती हैं। यद्यपि यह विचार उतना सार्थक नहीं है परन्तु मानसिक रोगों के इतिहास में यह विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है क्योंकि इसी विचार के परिणामस्वरूप मनोविकार विज्ञान के क्षेत्र में बहुत बड़ा आन्दोलन प्रारम्भ हुआ।

सन् 1757 ई0 में आलब्रेच बोन हालर (Albrecht Von Hallar) ने अपनी पुस्तक इलीमेंट्स आफ फिजियाँलाजी की रचना की जिसमें उन्होंने मानसिक कार्यों के लिए मस्तिष्क के महत्व का विवेचन किया। उन्होंने मनोविकृत व्यक्ति

के मस्तिष्क के अध्ययन को प्रोत्साहित किया। लेकिन व्यवस्थित रूप से आंगिक प्रारूप को विलियम ग्रेजिनगर (William Griesinger) ने प्रस्तुत किया। उन्होंने सन् 1845 ई. में अपनी पुस्तक पैथौलोजी एण्ड थिरैपी आफ साइकिक डिआर्डर्स की रचना की। जिनमें उन्होंने दैहिक कारणों का विस्तार में वर्णन किया। उन्होंने बताया कि मस्तिष्क में जब किसी प्रकार का विकार उत्पन्न हो जाता ह तो वह व्यक्ति मानसिक विकृति का शिकार हो जाता है। इस प्रकार उन्होंने मानसिक रोगों के उपचार के लिए चिकित्सा प्रणाली के उपयोग पर बल दिया।

एमिल क्रेपलिन के द्वारा किया गया वर्गीकरण

य़द्यपि ग्रेजिनगर ने चिकित्सकीय प्रारूप की आधारशिला रखी, परन्तु मुख्य श्रेय एमिल क्रेपलिन (Amile Kraeplin) को ही है। क्रेपलिन की पुस्तक लेहरवच डेर साइक्याट्राई (Lehrbuch der psychiatrie) सन् 1883 ई. में प्रकाशित हुई। इस पुस्तक में उन्होंने मानसिक रोगों को मस्तिष्क व्याधि का परिणाम ही नहीं बताया बल्कि अनेकों संबंधित दृष्टि–कोणों को प्रस्तुत किया जिससे चिकित्सकीय प्रारूप को दृढ़ आधार प्राप्त हुआ। क्रेपलिन ने मानसिक रोगों का वर्गीकरण प्रस्तुत किया। इसके साथ ही साथ उन्होंने इन रोगों के लक्षणों का भी विश्लेषण किया। क्रेपलिन ने प्रत्येक मनोविकृति को पृथक करते हुये उनके कारणों को पृथक किया। उनका विचार था कि मानसिक रोगों की उत्पत्ति को उसी प्रकार जाना जा सकता है जिस प्रकार से चेचक के प्रकोप को। इस प्रकार क्रेपलिन के विचारों तथा कार्यों से मानसिक रोगों के वर्गीकरण तथा उनके विवरण का कार्य प्रारम्भ हुआ। अतः इस काल को वर्णनात्मक काल (Descriptive Era) कहा जाता है। इसी काल में स्नायु संस्थान से संबंधित अध्ययन किये गये तथा मस्तिष्क व्याधि के विषय में और अधिक ज्ञान प्राप्त किया गया। उपदंश का कारण मस्तिष्क उपदंश माना गया। यह भी स्पष्ट किया गया है कि वृद्धावस्था की मनोविकृति (Senile Psychoses) विषज मनोविकृति (Toxic Psychoses) तथा विशिष्ट प्रकार की मानसिक मंदता की उत्पत्ति मस्तिष्क व्याधि से ही होती है। चिकित्सा प्रारूप के क्षेत्र में की गई खोजें किसी एक दिन अथवा एक घटना की उपज नहीं है। बल्कि उनका एक लम्बा इतिहास है। सामान्य पारेसिस (Paresis) को पृथक मानसिक रोग माना गया। ए0एल0जे0 बायले (A.L.J. Bayle) ने सन् 1825 ई0 में सामान्य पारेसिस के लक्षणों का वर्णन प्रस्तुत किया। इसमार्च (Esmarch) तथा

जेसेन (Jessen) ने सन् 1857 ई0 में परासिस के रोगियों का उल्लेख किया जिनको कि उपदंश था। अतः यह निष्कर्ष निकाला गया कि उपदंश से पारेसिस मानसिक रोग उत्पन्न हो जाता है।

चिकित्सकीय प्रारूप के विकास के परिणाम स्वरूप मानसिक रोगों के संबंध में प्रेतशास्त्र का अस्तित्व समाप्त हो गया तथा यह तथ्य स्पष्ट हो गया कि मानसिक विकृतियाँ मस्तिष्क के कारण होती है। कुछ विशेष मानसिक रोगों के लक्षणों तथा उनके उपचार की प्रक्रिया का भी विकास हुआ। कार्यात्मक वर्गीकरण भी प्रस्तुत किया गया और इस प्रकार मानसिक रोगों को शारीरिक रोगों के समान ही समझा जाने लगा।

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप

चिकित्सात्मक प्रारूप यद्यपि मानसिक रोगों के उपचार में महत्वपूर्ण स्थान बना लिया था परन्तु इस प्रकार की चिकित्सा से केवल 10 प्रतिशत ही रोगी लाभ उठा सके थे। अतः चिकित्सकों ने अपना ध्यान दूसरे तरीकों की ओर आकृष्ट किया। अनेक अनुसंधानों तथा अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ कि कुछ ऐसी भी मनोविकृतियां होती हैं जिनका आधार शारीरिक व्याधियाँ नहीं हैं। ऐसे रोगियों में स्नायु व्यधान नहीं होता है। इस दृष्टिकोण के विकास के फलस्वरूप मनोवैज्ञानिक कारकों की ओर ध्यान आकृष्ट हुआ। सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud, 1856-1939) पहले महान व्यक्ति थे जिन्होंने मनोविकृतियों का मनोवैज्ञानिक आधार देकर विश्लेषण किया। उन्होंने मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप का विकास किया। इस सिद्धान्त का मुख्य आधार उनका अपना चिकित्सकीय अनुभव था। प्रारम्भ में मनोगत्यात्मक समस्याओं को सुलझाने के लिए फ्रायड ने सम्मोहन (Hypnosis) का सहारा लिया। परन्तु बाद में उन्होंने स्वतंत्र सहचर्य(Free Association) को अपनी चिकित्सा का प्रमुख यंत्र बनाया।

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप को तीन प्रकार से वर्णन कर सकते हैं –

1. मनोविश्लेषण के आधार,
2. मनोविश्लेषण के मूल सिद्धान्त तथा मनोव्याधिकी का प्रत्यय,
3. व्यक्ति के व्यवहार एवं दृष्टिकोण पर मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप का प्रभाव

1. मनोविश्लेषणात्मक विचारों का आधार

इस दृष्टि के विकास में सम्मोहन (Hypnosis) तथा उन्माद (Hysteria) से संबंधित अन्वेषणों ने सहयोग प्रदान किया। सम्मोहन एक प्रकार का निर्देशन होता है जिससे रोगी निद्रा की अवस्था में चिकित्सक के प्रश्नों एवं अपनी आन्तरिक कष्टों का स्पष्टीकरण करता है। चेतनावस्था में आने पर रोगी को उस अवस्था की घटनाओं का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता है। सम्मोहन के संबंध में ऐन्टन मेस्मर (Anton Mesmer) ने प्रथम वैज्ञानिक अध्ययन किया था। उन्होंने यह परिणाम निकाला कि यदि रोगी चुम्बक की सहायता से छुआ जाय तो उसको काफी आराम अनुभव होता है। उन्होंने यह बताया कि प्रत्येक व्यक्ति में एक चुम्बकीय पदार्थ (Magnetic Fluid) होता है जिसका यदि उचित प्रकार से वह उपयोग करे तो इससे दूसरा व्यक्ति प्रभावित हो सकता है। इस प्रभाव को दर्शाने के लिए उन्होंने कई प्रदर्शन किये। सन् 1778 ई0 में उन्होंने पेरिस में फ्रांस अकादमी के सम्मुख इस विधि को प्रदर्शित करके विशेष ख्याति प्राप्त की। इस ख्याति के साथ ही साथ अनेकों चिकित्सकों ने मेस्मर के कार्य का विरोध भी किया जिसके कारण उन्हें काफी कष्ट उठाने पड़े।

जेम्स ब्रेड (James Braid - 1795-1860) जो कि इगलैंड के चिकित्सक थे उन्होंने मेस्मर की उपचार पद्धति का नाम सम्मोहन रखा। धीरे–धीरे इसका महत्व बढ़ता गया। लंदन विश्वविद्यालय के जान इलियटसन (Jahn Elliotson) ने इस विधि द्वारा अंगशून्यता पर अनेक कार्य किये। लीवाल्ट (Liebault) तथा बर्नहीम (Bernheim) ने सम्मोहन के उपयोग द्वारा तथा इनके अनुसंधानों के आधार पर यह सिद्धान्त विकसित किया कि सम्मोहन तथा उन्माद (Hypnosis and Hysteria) में गहन संबंध है। उनका यह दृष्टिकोण दो प्रमाणों पर आधारित था।

(1) उन्माद की दशा में शारीरिक रूपान्तर होता है परन्तु उसका कोई आंगिक कारण नहीं होता। उदाहरार्थ बाँह की शून्यता, सुनने की अयोग्यता, देखने की अयोग्यता, आदि जिसमें शरीर का कोई अंग व्याधिग्रस्त नहीं होता है। इस अवस्था को सम्मोहन विधि द्वारा सामान्य किया जा सकता है।

(2) उन्माद के रोगी में इन लक्षणों को सम्मोहन के द्वारा दूर किया जा सकता है और वह अपना हाथ कान आँख का उचित उपयोग कर सकता है। अतः

यह सिद्ध किया गया कि उन्माद एक प्रकार आत्म सम्मोहन (Self Hypnosis) है। इस दृष्टिकोण को मानने वालों को नैन्सी स्कूल (Nancy School) कहा गया।

प्रारम्भ में शर्कोट (Sharcot) ने जो कि पेरिस के स्नायु विकारों के प्रसिद्ध चिकित्सक थे इस बात को स्वीकार नहीं किया। परन्तु बाद में इस मत से इतना प्रभावित हुए कि इस दिशा में महान कार्य कर दिखाया। उन्होंने सिद्ध कर दिया कि मानसिक रोगों का कारण मनोव्याधियाँ हैं। इन प्रयत्नों के द्वारा 19 वीं शताब्दी के अंत में यह स्वीकार कर लिया गया कि मानसिक रोगों के विकास के शारीरिक तथा मनोवैज्ञानिक दोनों ही कारक महत्वपूर्ण हैं।

सिगमण्ड फ्रायड (Sigmund Freud- 1856-1939) ने अपने प्रयोगों के आधार पर यह सिद्ध किया कि किस प्रकार मनोवैज्ञानिक कारकों से मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। फ्रायड बियाना यूनिवर्सिटी में स्नायुरोग विज्ञान के प्रवक्ता थे। वे जोसेफ ब्रूयर (Joseph Breuer) तथा शोर्कोट (Sharcot) के साथ काम करते हुए सम्मोहन के प्रयोग से काफी प्रभावित हुये परन्तु बाद में उन्होंने स्वतन्त्र सहचर्य विधि (Free Association Method) का प्रयोग उन्माद के रोगियों के साथ किया। कुछ समय बाद उन्होंने मनोविश्लेषण प्रारूप का विकास किया।

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप के मूल सिद्धान्त

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप के निम्नलिखित मुख्य सिद्धान्त है :–

इदम् (Id) अहं (Ego) पराहं (Super ego)

मूलरूप में व्यक्ति का व्यवहार इदम्, अहं तथा पराहं में अन्तःक्रिया का परिणाम है। इदम् को वास्तविकता से कोई प्रयोजन नहीं होता है। अतः इनको इच्छाओं का जनक कहा जाता है। फ्रायड ने इसे सम्पूर्ण मनोजैविकीय शक्तियों का स्रोत माना हैं। यह सुखात्मक सिद्धान्त (Pleasure Principle) पर आधारित है अर्थात् अपनी इच्छा को अवश्य पूरा करो। उदाहरण के लिए यदि प्यार करने की इच्छा हो तो उसके कपोलों को चूम लो तथा अपनी इच्छा की पूर्ति करो। इदम् उचित–अनुचित, समय तथा स्थान का ज्ञान नहीं रखता है।

इदम् के अन्तर्गत जैविकीय चालक होते हैं। ये चालक दो प्रकार के होते हैं (1) रचनात्मक चालक– ये लैंगिक प्रकृति के होते हैं जिसे फ्रायड ने लिबिडो

(Libido) कहा है। यह शक्ति का श्रोत है। (2) विनाशात्मक चालक– जिसके कारण व्यक्ति ध्वन्सात्मक कार्य करता है।

व्यक्ति समाज में रहता है जिसके कारण वह इदम् के निर्देशन को व्यवहारिक रूप नहीं दे सकता है। अहं उसकी रक्षा करता है। अहं चेतन होता है। इसका संबंध वास्तविकता से होता है। इसका मुख्य कार्य व्यक्ति के व्यवहार को नियंत्रित करना होता है। चूंकि वास्तविकता के सिद्धान्त पर अहं चलता है अतः इदम् को अहं के द्वारा कार्य करना पड़ता है। प्रारम्भिक अवस्था में अहं अविकसित तथा कमजोर होता है। जिसके कारण इदम् उस पर अपना नियंत्रण रखता है। यही कारण है कि बालक का व्यवहार इदम् से नियन्त्रित होता है। परन्तु धीरे–धीरे बालक में अहं विकसित हो जाता है और वह वास्तविकता को ध्यान में रखकर व्यवहार करता है।

पराहं का सम्बन्ध नैतिकता तथा धर्म से होता है। पराहं व्यक्ति को समाजिक, नैतिक तथा धार्मिक प्रकार के व्यवहार को प्रदर्शित करने के लिए प्रोत्साहित करता है। पराहं के मूलतः 3 कार्य होते हैं : (1) इदं की लैंगिक प्रवृत्तियों को दमित करना (2) अहं को नैतिकता की ओर अग्रसित करना तथा (3) उच्च नैतिक तथा धार्मिक प्रवृत्तियों को विकास करना।

उपर्लिखित तीनों प्रकार की अवस्थाओं की अन्तः क्रिया में संतुलन बना रहना सामान्य व्यवहार के लिए आवश्यक होता है। जब इदं शक्तिशाली हो जाता है तो व्यक्ति वास्तविकता का उचित प्रक्षेपण नहीं कर पाता जिसके कारण आसामन्य व्यवहार का प्रदर्शन करने लगता है। इदम् तथा पराहं के संघर्ष का समाधान होना व्यक्तित्व समायोजन के लिए आवश्यक होता है। मनोस्नायु विकृतियाँ तथा अन्य मानसिक विकार तभी उत्पन्न होते हैं जब व्यक्ति इन संघर्षों का समाधान नहीं ढूंढ पाता है।

चिंता सुरक्षात्मक रचनायें तथा अचेतन
(Anxiety Defense Mechanism and unconscious)

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप में चिन्ता का प्रत्यय अत्यन्त महत्वपूर्ण स्थान रखता है। फ्रायड ने चिन्ता को 3 वर्गों में विभक्त किया (1) वास्तविक चिन्ता

(2) मनोस्नायुविक चिंता (3) नैतिक चिन्ता। वास्तविक चिन्ता तब उत्पन्न होती है जब व्यक्ति को वाह्य जगत से खतरा उत्पन्न होता है। मनोस्नायुविक चिन्ता का कारण इदम् (Id) का अहं के नियन्त्रण से बाहर हो जाना होता है। जब व्यक्ति पराहं या नैतिक मूल्यों के विपरीत कोई कार्य करता है तब वह नैतिक चिंता या अपराध की भावना (Feeling Guilt) का शिकार होता है। चिंता व्यक्ति का दुखदायी एवं कष्टकर अनुभव होता है अतः व्यक्ति इससे बचने के लिए उपाय ढूंढता है। अहं तार्किक तरीकों द्वारा चिन्ता को दूर करने में समर्थ होता है परन्तु यदि ये तरीके प्रभावपूर्ण एवं पर्याप्त नहीं होते हैं तो अहं अतार्किक सुरक्षात्मक तरीकों का आश्रय लेता है। इन अतार्किक सुरक्षात्मक तरीकों को अहं सुरक्षात्मक रचनायें (Ego-Defense Mechanism) कहते हैं। इन सुरक्षात्मक रचनाओं से दुखदायी चिन्ता का अन्त होता है। परन्तु इस प्रकार की व्यवस्था से वास्तविकता खण्डित हो जाती है। मनोविश्लेषण का अन्य महत्वपूर्ण प्रत्यय अचेतन (unconscious) मन का प्रत्यय है। मानव के मन का एक वृहद भाग उसका अचेतन स्तर है। इस स्तर की क्रियायें प्रत्यक्ष से छिपी रहकर चेतन स्तर की क्रियाओं को संचालित करती हैं। फ्रायड के विचार से व्यक्ति के मन में ऐसी अनेक इच्छायें, भावनायें तथा मूल प्रवृत्तियाँ होती हैं जो दमित होकर अचेतन में चली जाती हैं। परन्तु वे अवसर की खोज करती रहती है तथा व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। व्यक्ति इनके विषय में अनभिज्ञ रहता है। इन दमित भावनाओं एवं मूल प्रवृत्तियों का जानना व्यवहार के अर्थ को जानने के लिए आवश्यक होता है।

मनोलैंगिक विकास

फ्रायड ने बालक में मनोलैंगिक विकास की निम्नलिखित अवस्थायें बतायी हैं :–

(1) मौखिक अवस्था (Oral stage) :– जीवन के प्रथम वर्ष में मौखिक आनन्द प्राप्त होता है। मुंह के द्वारा वह आनन्द प्राप्त करता है।

(2) गुदा अवस्था (Anal stage) :– बालक 2 से 3 वर्ष के बीच में मलमूत्र त्याग कर आनन्द प्राप्त करता है।

(3) लैंगिक अवस्था (Phallic stage) :– यह अवस्था 3 वर्ष से 5 वर्ष तक रहती है। इस अवस्था में बालक लैंगिक अंगों से आनन्द प्राप्त करता है।

(4) सुप्तावस्था (Latency stage) :– यह अवस्था 6 वर्ष से 12 वर्ष की होती है इसमें बालक लैंगिकता के अनुभव को दमित कर देता है।

(5) यौनिक अवस्था (Genital stage) :– इस अवस्था में पुनः लैंगिक क्रियायें प्रकट होती हैं।

फ्रायड का विचार था कि प्रत्येक अवस्था में संतोषजनक समायोजन आवश्यक होता है। यदि किसी भी अवस्था में पर्याप्त सन्तुष्टि नहीं हो पाती है तो बालक में सामान्य व्यवहार का विकास नहीं हो पाता है। मनोवैज्ञानिक प्रारूप के समर्थकों में फ्रायड के अतिरिक्त युंग (C.G. Jung) तथा एडलर (Alfred Adler) का कार्य भी महत्वपूर्ण है। युंग का विचार था कि व्यक्ति का व्यवहार व्यक्तिगत एवं प्रजातीय इतिहास से ही प्रभावित नहीं होता है बल्कि उसकी इच्छाओं एवं उद्देश्यों का भी प्रभाव पड़ता है। व्यवहार के संदर्भ में विगत तथा भविष्य दोनों महत्वपूर्ण होता है। अतः व्यक्ति का व्यवहार उसके विगत अनुभवों एवं घटनाओं के साथ–साथ भविष्य की आशाओं एवं उद्देश्यों से प्रभावित होता है। एडलर ने काम शक्ति के सिद्धान्त को स्वीकार नहीं किया। एडलर का मत था कि मानसिक विकृतियाँ आत्म सम्मान की भावना की कुण्ठा के परिणाम स्वरूप उत्पन्न होती हैं।

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप के अनुसार सामान्य तथा असामान्य व्यवहार का प्रत्यय

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप के अनुसार व्यक्ति जैविकीय मूल प्रवृत्यात्मक चालकों तथा अचेतन मन की इच्छाओं एवं सम्प्रेरणाओं द्वारा शासित एवं निर्देशित होता है। यद्यपि व्यक्ति में रचनात्मक लैंगिक शक्ति होती है परन्तु अन्धमयी शक्तियों भी समानरूप से विनाशात्मक कार्य करती हैं। अहं व्यवहारिक तार्किकता लाने का प्रयास करता है परन्तु विपरीत शक्तियां अन्तर्मयी संघर्ष, मनोसुरक्षात्मक रचनायें, तथा अचेतन इच्छायें एवं सम्प्रेरणायें अतार्किक एवं असमायोजित व्यवहार करने को प्रेरित करती हैं। व्यक्ति इन शक्तियों में समझौता कराता है जिसके द्वारा मूल प्रवृत्तियों के संदर्भ में संतुष्टि प्राप्त करता है तथा दण्डात्मक एवं अपराध की भावना (Feeling of guilt) को कम करता है। व्यक्ति यद्यपि आन्तरिक इच्छाओं द्वारा नियंत्रित, निर्देशित एवं शासित होता है परन्तु उसका व्यवहार मुख्यतः उसके प्रारम्भिक अनुभव एवं सीखने की प्रक्रिया द्वारा प्रभावित होता है। इस प्रकार

मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप व्यक्ति के संबंध में नकारात्मक (Negative) एवं सुनिश्चित (Deterministic) दृष्टिकोण का विकास करता है जिसमें स्वतंत्र इच्छा (Free Will) तथा आत्म निदेशन (Self Direction) की स्वतंत्रता का लोप होता है। समूह स्तर पर हिंसा, युद्ध तथा अन्य समान व्याधिकीय कारक व्यक्ति में आक्रामक एवं विनाशात्मक मूलप्रवृतियों को विकसित कराते हैं।

यद्यपि फ्रायड के सिद्धान्त की काफी आलोचना की गई तथा अनुसंधान के द्वारा कुछ प्रत्ययों को अस्वीकार कर दिया गया परन्तु फ्रायड के इस सिद्धान्त के महत्व को कोई नहीं भुला सकता। क्योंकि सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में अभी भी कोई एक मान्य सिद्धान्त प्रतिपादित नहीं हो पाया है। असामान्य व्यवहार के क्षेत्र में फ्रायड के तीन योगदान विशेष महत्वपूर्ण हैं :

(1) **प्रविधियों का विकास (Development of Techniques)** फ्रायड ने स्वतंत्र सहचर्य (Free Association) तथा स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis) प्रविधियों का विकास सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के कारणों को ज्ञात करने के लिए किया। इन प्रविधियों से जो आंकड़े प्राप्त हुये उनके आधार पर फ्रायड ने यह निष्कर्ष निकाला कि (1) अचेतन इच्छाओं, सम्प्रेरणाओं एवं मनोसुरक्षात्मक रचनाओं की गत्यात्मक भूमिका होती है। (2) प्रारम्भिक बाल्यकाल के अनुभव व्यक्तित्व के समायोजन एवं असमायोजन से संबंधित महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। (3) लैंगिक कारकों का मानव व्यवहार एवं मानसिक विकृतियों में महत्व होता है। यद्यपि फ्रायड ने लिंग (Libido) को विस्तृत अर्थ में प्रयोग किया था परन्तु यह विचार अत्यन्त महत्वपूर्ण समझा जाने लगा तथा वैज्ञानिक अन्वेषण की परिधि के अन्तर्गत आ गया।

(2) जब व्यक्ति अपनी समस्याओं को समाधान करने का प्रयत्न करता है तो असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन होता है जिसमें केवल अतिरचनात्मक अहं रक्षणात्मक रचनाओं का प्रयोग होता है जैसे आघात्मक अनुभवों तथा अतार्किक भय का दमन। यह मनोवैज्ञानिक सिद्धान्त दोनों सामान्य तथा असामन्य व्यवहार के संबंध में उपयोग में लाया जा सकता है इस अनुभव द्वारा बहुत से भय मानसिक रोगों के संबंध में स्पष्ट किये गये।

(3) फ्रायड का तीसरा महत्वपूर्ण कार्य चिकित्सात्मक प्रविधि के रूप में मनोविश्लेषण का विकास करना था। उन्होंने मानसिक विकृतियों के लिए मनोवैज्ञानिक

उपचार पर बल देकर यह सिद्ध कर दिया कि मानसिक रोगों का कारण मनोवैज्ञानिक ही होता है। यह प्रविधि अचेतन तथा अतार्किक प्रक्रियाओं को चेतन में लाकर उनका समाधान ढूंढती है जिससे व्यक्ति अपने को समायोजित करने का अवसर प्राप्त करता है।

फ्रायड के सिद्धान्त मनोविश्लेषण की काफी आलोचना भी की गई है। विद्वानों का मत है कि यह सिद्धान्त घृणित, अनैतिक तथा एकांगी है। इस आलोचना का मुख्य कारण फ्रायड का लैंगिक प्रवृत्ति पर विशेष जोर देना है। आलोचकों का कहना है कि इस सिद्धान्त ने भौतिक (Physical) अनुवांशिक तथा संरचनात्मक (Structural) कारकों को महत्व नहीं दिया है, अतः यह सिद्धान्त अपूर्ण है।

व्यवहारवादी प्रारूप

व्यवहारवादी प्रारूप के विकास का श्रेय इवान पावलव (Ivan Pavlov) को है लेकिन इसके विस्तार का श्रेय जे0 बी0 वाटसन (J.B. Watson), ई0 एल0 थार्नडाइक (E.L. Thorndike) तथा बी0 एफ0 स्किनर (B.F. Skinner) को है।

पावलव का संबंद्ध प्रतिक्रिया सिद्धान्त
(Pavlov and Conditioned Reflex)

इवान पावलव ने सन् 1904 में विशेष प्रायोगिक अनुसंधान किये। आपका विश्वास था कि सम्बद्ध प्रतिक्रिया द्वारा सीखने की क्रिया के बहुत से रूपों की व्याख्या सफलता पूर्वक की जा सकती है। इस सिद्धान्त से उत्तेजना और प्रतिक्रिया (Stimulus and Response) का सम्बन्ध होना ही सीखना होता है। पावलव के प्रयोग के विषय कुत्ते के मुंह से लार गिरने की क्रिया का निरीक्षण है। यह लार भोजन न मिलने पर उसके प्रत्यक्ष तथा गंध से भी गिरने लगती है। यह प्रतिक्रिया स्वाभाविक उत्तेजक से भिन्न किसी अन्य उत्तेजक (गंध, छवि आदि) से उत्पन्न होती है उसे सम्बद्ध उत्क्षेप (Conditioned Reflex) कहते हैं।

इस संबंध में आपने कुत्ते पर प्रयोग किया। भोजन को देखने से लार बहने की प्राकृतिक प्रतिक्रिया को पावलव ने घन्टी बजने की कृत्रिम उत्तेजना से संबधित कर दिया। आपने कुत्ते को खाना देने से पहले कई दिन तक घन्टी बजाई

और उसके बाद खाना प्रस्तुत किया गया। इसके बाद केवल घन्टी बजाई पर खाना नहीं दिया गया फिर भी लार बहने की प्रतिक्रिया को देखा गया। इसमें घण्टी की कृत्रिम उत्तेजक ने लार बहने की प्राकृतिक क्रिया को नियंत्रित कर दिया। पावलव ने सम्पूर्ण सीखने को इसी प्रकार की सम्बद्धता कहा है। जो कृतिम प्रतिक्रिया का प्रकृतिक उत्तेजकों के साथ सम्बद्ध करती है।

पुर्ष्टीकरण से पूर्व कभी–कभी प्राप्त होने वाली दो उत्तेजनायें इतनी समान होती हैं कि पशु उसमें भेद नहीं कर पाता है एवं विभ्रम में पड़ जाता है अतः प्रयोगात्मक उन्माद (Experimental Neurosis) उत्पन्न हो जाता है। इस सम्बन्ध में पावलव के शिष्य क्रोस्टोवनी कोवा (Khrestovni Kova) ने विशेष अध्ययन किये। उन्होंने दो उत्तेजनायें कुत्ते को दी। प्रथम गोलाकार प्रकाश उत्तेजना (Circle) दूसरी अण्डाकार प्रकाश उत्तेजना (Ellipse)।

इसमें गोलाकार उत्तेजना के पश्चात् लगातार भोजन दिया जाता था तथा अण्डाकार उत्तेजना के बाद नहीं दिया जाता था। इसमें धीरे–धीरे गोलाकार प्रकाश उत्तेजना के प्रति लार गिराने की प्रतिक्रिया करना सीख लिया तथा अण्डाकार प्रकाश उत्तेजना के प्रति उदासीन रहने लगा। इस प्रकार नियंत्रण स्थापित हो जाने के बाद अण्डाकार प्रकाश उत्तेजना को धीरे–धीरे गोलाकार में परिवर्तित किया गया। जब इतनी गोल हो गई कि कुत्ता विभेद न कर सका तो उलझन में फंस गया। उसमें एक विशेष अवस्था उत्पन्न हो गई जिसे प्रयोगात्मक उन्माद की संज्ञा दी गई। पावलव ने कुत्ते द्वारा किये गये व्यवहारिक परिवर्तन को व्यक्ति में उत्पन्न अति मनोस्नायु विकृति (Acute Neurosis) के समान माना है।

इस प्रारम्भिक प्रयोग के उपरान्त अनेकों प्रयोग चूहों, कुत्तों, बिल्लियों, बंदरों तथा वनमानुषों पर किये और इन प्रयोगों से यह निष्कर्ष निकाला गया कि प्रयोगात्मक सम्बद्ध प्रत्यावर्तन द्वारा जब किसी पशु को उसकी क्षमता से परे विभेद करने के लिए विवश किया गया तो उनमें स्नायुविक अवरोध (Nervous Breakdown) के समान स्थिति उत्पन्न हुई जिसको आज प्रयोगात्मक मनोस्नायु विकृति (Experimental Neurosis) की संज्ञा देते हैं।

इस प्रकार पावलव ने अपने विभिन्न प्रयोगों के आधार पर मानव की मानसिक व्याधियों के संबंध में एक नया दृष्टिकोण विकसित किया। उनका

विचार इस तथ्य पर आधारित था कि संबद्ध प्रत्यावर्तन की प्रविधि द्वारा जिस प्रकार पशु व्यवहार प्रदर्शित करते हैं उसी प्रकार व्यक्ति भी दबाव, तनाव व कष्टप्रद मनोवैज्ञानिक प्रतिक्रियाओं के समय व्यवहार प्रदर्शित करता है। पावलव ने कुत्तों में तीन प्रकार की सामान्य प्रतिक्रियायें अवलोकित की : (1) उत्तेजनात्मक (2) निषेधात्मक एवं (3) केन्द्रीय। प्रत्येक प्रकार की प्रतिक्रिया से भिन्न–भिन्न प्रकार की प्रयोगात्मक मनोस्नायु विकृतियाँ (Experimental Neuroses) उत्पन्न हुई थी। उदाहरण के लिए उत्तेजनात्मक प्रकार (Excitatory Type) के पशु को जब विभेदीकरण योग्यता से परे कार्य करने के लिए विवश किया गया तो उसमें अवसाद (Depression) या उत्तेजना (Excitement) के लक्षण उत्पन्न हुये। ये लक्षण एवं प्रतिक्रिया व्यक्ति में उत्पन्न उन्मत्त अवसाद की प्रतिक्रियाओं (Manic-Depressive Reacting) के समान ही थी। निषेधात्मक प्रकार के पशुओं में समान परिस्थितियों में मनोविदलता (Schizophrenia) की समान प्रतिक्रियायें उत्पन्न हुई तथा केन्द्रीय (Central) प्रकार के पशुओं में मिश्रित प्रकार की प्रतिक्रियायें देखी गईं।

व्यक्ति के व्यवहार के संबंध में पावलव ने अपने उपर्लिखित सिद्धान्त को कुछ परिवर्तित करके प्रस्तुत किया। उन्होंने व्यक्तित्व को दो भागों में वर्गीकृत किया (1) कला प्रधान (Artistic Type) व्यक्ति : ऐसे व्यक्ति वाह्य उत्तेजना के प्रति अति प्रत्युत्तर करते हैं। (2) विचार प्रधान (Thinking Type) ऐसे व्यक्ति शान्तिप्रिय होते है, तथा विचारों के प्रति प्रत्युत्तर करते हैं। कला प्रधान व्यक्ति मानसिक व्यवधान की दशा में उन्माद (Hysteria) तथा उन्माद–अवसाद (Manic-Depression) से पीड़ित होते हैं जबकि विचार प्रधान व्यक्ति बाध्य क्रिया–बाध्य विचार (Compulsion obsession) तथा मनोविदलता से पीड़ित होते हैं।

पावलव का अधिकांश कार्य स्नायुविक कार्यात्मकता के संबंध में व्यक्तिगत विभेदीकरण पर निर्भर है। इसी विभिन्नता एवं विभेदीकरण के कारण व्यक्ति की प्रतिक्रियायें भिन्न–भिन्न होती है तथा भिन्न–भिन्न मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न होती है। इस प्रकार पावलव की सम्बद्ध प्रत्यावर्तन प्राविधि तथा उत्तेजना एवं निषेध प्रत्यय ने मनोव्याधि ही के क्षेत्र में और अधिक प्रयोगों को करने के लिए उत्साहित किया।

वाटसन तथा व्यवहारवाद

(Watson and Behaviorism)

पावलव की भाँति ही दूसरा प्रयोग वाटसन तथा रेनर (Rayner) ने किया। वाटसन ने यह परीक्षण 11 वर्ष के बालक अलवर्ट पर किया। यह बालक अपनी शैशवावस्था से नहीं डरता था तथा खरगोश के साथ खेलने में आनन्द का अनुभव करता था। एक बार जब यह खरगोश के साथ खेल रहा था, एक भयानक ध्वनि उत्पन्न की गई जिससे बालक डर गया। इस प्रकार की क्रिया की पुनरावृत्ति की गई। यह आवाज उस समय की जाती थी जब वह जानवरों के साथ खेलता था। इस प्रयोग का परिणाम यह हुआ कि अलवर्ट बिना आवाज के भी जानवरों से डरने लगा और भय की प्रतिक्रिया का प्रदर्शन किया। इससे यह निष्कर्ष निकाला गया कि अतार्किक भय को जल्दी ही प्रत्यावर्तन (Conditioning) द्वारा सीखा जा सकता है। इसको हम निम्न प्रकार चित्रांकित कर सकते हैं।

उत्तेजक (Stimulus)	प्रतिक्रिया (Reaction)
अचानक भयानक ध्वनि	भय
(प्राकृतिक उत्तेजक)	
(S)	(R)
(जानवर)	प्रसन्नता
(कृत्रिम)	(R)
(SA)	
जानवर + भयानक ध्वनि	भय
(कृत्रिम) + (प्राकृतिक)	(R)
(SA) + (S)	
जानवर	भय
(केवल कृत्रिम)	
(SA)	(R)

इससे स्पष्ट है कि सम्बद्धता एक साधारण क्रिया है जो एक उत्तेजक का दूसरे के साथ यांत्रिक स्थानापन्न है। उपर्लिखित विवरण से पता चलता है

कि एक (S) के स्थान पर एस0 ए0 (SA) सरलता से स्थानापन्न हो जाता है। अतः स्पष्ट है कि जिस प्रकार सीखने से भय उत्पन्न होता है उसी प्रकार अन्य मानसिक विकार भी उत्पन्न होते हैं।

थार्नडाइक़ का योगदान
(Contribution of Thorndike)

थार्नडाइक ने सीखने के नियमों की रचना की । ये नियम हैं:–

(1) तत्परता का नियम (Law of Readiness) , अभ्यास का नियम (Law of Exercise) तथा (3) प्रभाव का नियम (Law of Effect)। जब व्यक्ति किसी कार्य को करने के लिए स्वयं प्रेरित होता है तो वह कार्य उसको आनन्ददायी होता है। इसके विपरीत जब उसकी इच्छा के विरूद्ध बाध्य किया जाता है तो वह क्रोधित हो जाता है। इसी प्रकार जब किसी स्थिति तथा प्रतिक्रिया में परिवर्तनात्मक (Modifiable) सम्बन्ध बना दिया जाय तो इस सम्बन्ध की शक्ति बढ़ जाती है। विपरीत स्थिति में सम्बन्ध की शक्ति क्षीण हो जाती है। प्रभाव के नियम में थार्नडाइक ने बताया है कि जब किसी प्रतिक्रिया से सन्तोषप्रद परिणाम प्राप्त होते हैं तो वह प्रतिक्रिया दोहराई जाती है। कष्टकारी परिणाम उत्पन्न होने की अवस्था में हम उस प्रतिक्रिया को नही दोहराते हैं। थार्नडाइक ने यह अवलोकन किया कि जिन प्रत्युत्तरों से पुरस्कारात्मक परिणाम प्राप्त होते हैं उनको सीखा जाता है। इसके विपरीत जिनसे कष्टदायी एवं पीड़ाजनक परिणाम प्राप्त होते हैं उनको त्याग दिया जाता है। अतः व्यक्ति का व्यवहार दण्ड एवं पुरस्कार के द्वारा नियन्त्रित होता है। थार्नडाइक ने इस प्रकार व्यवहारवादी प्रारूप के दूसरे प्रत्यय आपरेन्ट कन्डीशनिंग (operant conditioning) का विकास किया।

सीखने के मूलभूत सिद्धांत

व्यवहारवादी प्रारूप का मुख्य विषय सीखना है। व्यवहार सीखने का परिणाम है, अतः व्यवहारवादी विचारकों ने इस बात को स्पष्ट करने का प्रयत्न किया कि किस प्रकार बाह्य उत्तेजक प्रत्युत्तर तरीकों को विकास, परिवर्तन एवं उनको दूर करने में सहायक होते हैं।

उत्तरवादी एवं क्रियावादी सम्बद्धता
(Respondent and operant Conditioning)

चार्ल्स स्किनर ने एक विशेष प्रकार का प्रयोग चूहों पर किया। उन्होंने एक विशेष प्रकार का पिंजड़ा चूहे के लिए बनवाया जिसमें एक विशेष स्थान को दवाने से चूहे को भोजन प्राप्त हो सकता था। प्रारम्भ में स्किनर का चूहा भी थार्नडाइक की बिल्लियों के समान ही व्यर्थ में प्रयास करता रहा परन्तु बाद में अनायास ही उससे वह स्थान दब गया एवं भोजन प्राप्त हो गया। काफी समय तक यह प्रयास और भूल का क्रम चलता रहा और अन्त में उस विशेष जगह को दबा कर भोजन प्राप्त करना चूहे ने सीख लिया। इस प्रकार के सीखने को क्रियावादी सीखना कहते हैं।

क्रियावादी सम्बद्धता में वास्तविक उत्तेजक जिससे कि प्रत्युत्तर संबंधित होता है को न रखकर विषय (Subject) को उस स्थिति में रखा जाता है जिसमें वह प्रत्युत्तर करना सीख लेता है। जिससे उसकी आवश्यकताओं की संतुष्टि एवं उद्देश्यों की प्राप्ति होती है। इस प्रकार विषयी (Subject) कार्य करना सीखता है तथा पर्यावरण में परिवर्तन लाता है। इस क्रियावादी सीखने को मनोव्याधिकी में भी प्रयोग कर सकते हैं। पुरस्कार एवं पुष्टीकरण के द्वारा रोगियों में आत्म–प्रबंध निपुणताओं को विकसित किया जा सकता है।

उत्तरवादी सम्बद्धता में प्रत्युत्तर का उत्तेजक विषयी के सम्मुख होता है। इसी सिद्धांत के आधार पर थार्नडाइक ने बिल्लियों के साथ एक प्रयोग किया। बिल्ली को पिंजड़े में बन्द कर दिया तथा भोजन बाहर रखा। पिंजड़े में अन्दर एक स्थान को दबाने से पिंजड़े का द्वार खुल सकता था। बिल्ली ने भोजन पाने के लिए प्रयास करना प्रारम्भ किया। अनायास ही उससे वह स्थान दब गया और पिंजड़े का द्वार खुल गया। बिल्ली ने भोजन कर लिया। इसके उपरांत उसको फिर उसी में बन्द कर दिया गया। धीरे–धीरे प्रयत्न एवं भूल के द्वारा पिंजड़ा खोलना सीख लिया। इस प्रकार के सीखने को उत्तरवादी सीखना कहते हैं क्योंकि सीखने में प्रेरणा पुष्टीकरण के प्रत्यक्ष साधन का कार्य करता है।

पुष्टीकरण (Reinforcement) उत्तरवादी एंव क्रियावादी सम्बद्धता के लिए पुष्टीकरण का होना अत्यन्त आवश्यक होता है। जब प्रत्युत्तर पुरस्कृत हो

जाता है और इसके फलस्वरूप उसकी पुनरावृत्ति होती है तो इसे पुष्टीकरण कहते हैं। पुष्टीकरण के साथ जब नियन्त्रित उत्तेजना के साथ पुनरावृत्ति की जाती है तो वह सुगमता से स्थापित हो जाती है। पुष्टीकरण के अभाव में जब नियन्त्रित उत्तेजना की पुनरावृत्ति नियन्त्रण स्थापित होने के पश्चातृ की जाती है तो नियन्त्रण की शकित धीरे–धीरे घटती जाती है।

पृष्टीकरण दो प्रकार का होता है (1) सकारात्मक पुष्टीकरण (2) नकारात्मक पुष्टीकरण (Aversive)। सकारात्मक पुष्टीकरण के द्वारा व्यक्ति आशातीत व्यवहार सीखता है और नकारात्मक पुष्टीकरण द्वारा अवांछित व्यवहार को दूर करता है।

सामान्यीकरण एवं विभेदीकरण (Generalisation and Discrimination) रैनर तथा वाटसन द्वारा किये गये अलवर्ट पर प्रयोग से यह ज्ञात होता है कि बालक अपनी प्रतिक्रियाओं को सामान्यीकृत करता है। उदाहरण के लिय यदि बालक को रुई से डराया जाय तो बालक रुई के समान सफेद सभी जानवरों (खरगोश, सफेद चूहों एवं बिल्ली आदि) से डरने लगता है। जब दो समान उत्तेजकों में से एक की पुष्टि होती है और दूसरे की नहीं, उदाहरण के लिये पीले आम को खाने से बालक को मीठा स्वाद प्राप्त होता है तथा हरे आम से नही प्राप्त होता तो वह दोनों में अन्तर करना सीख लेता है। इसी को विभेदीकरण कहते है। व्यवहारवादी प्रारूप के अनुसार जटिल प्रक्रियायें जैसे प्रत्यक्षीकरण, प्रत्यय निर्माण, समस्या समाधान तथा निर्णय विभेदीकरण प्रक्रिया पर निर्भर है।

प्रारूपण, नामांकन, आकृतिनिर्माण
(Modeling, Labeling and Shaping)

व्यवहारवादी प्रारूप के ये मुख्य प्रत्यय है जिनके द्वारा बालक अपने व्यवहार का समायोजन करता है। मोडेलिग या अनुकरण, सीखने की प्रक्रिया में महत्वपूर्ण कार्य करता है। बालक अपने माता–पिता के प्रत्युत्तरों का अनुकरण कर नियमबद्ध व्यवहार करना सीखता है। यदि व्यक्ति अनुकरण करने में समर्थ है तो वह नये कार्यो को अधिक सुगमता से सीख लेता है। दूसरा महत्वपूर्ण नामांकित (Labeling) करने का प्रत्यय है। यदि एक बार एक विषय अथवा अनुभव को नामांकित कर दिया जाता है तो भविष्य के प्रत्युत्तर उसी नाम से जाने जाते हैं। इस प्रकार एक व्यक्ति को मनोविदल नामांकित कर दिया जाता है तो हम स्वतः

उसको उस श्रेणी में रखते हैं जिसमें कि मनोविदलता के रोगी और उससे उसी प्रकार के व्यवहार की आशा रखते हैं। उसके साथ उसी प्रकार की उपचार पद्धति का प्रयोग करते हैं जिस श्रेणी के अनुसार उसे नामांकित किया जाता है। इसी कारण से व्यवहारवादी विचारक अपरिपक्व गलत निर्देशित तथा अनुचित नामांकन को दूर करने पर जोर देते हैं। तीसरा महत्वपूर्ण प्रत्यय आकृति प्रदान करना है। प्रायः व्यक्ति के व्यवहार के सम्बन्ध में जब उचित उत्युत्तर नहीं प्राप्त होता है तो प्रत्युत्तर के सन्दर्भ में अथवा सांकेतिक पुष्टीकरण से ही व्यक्ति व्यवहार करना सीखता है।

सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के दृष्टिकोण पर व्यवहारवादी प्रारूप का प्रभाव

व्यवहारवादी प्रारूप के दृष्टिकोण से असामान्य व्यवहार दोषपूर्ण सीखने की प्रक्रिया से उत्पन्न होता है। सामान्य तथा असामान्य व्यवहार के तीन प्रमुख कारण है : (1) आवश्यक समायोजित व्यवहार को सीखने में असफलता या अक्षमता (2) कुसमायोजित तथा अप्रभावकारी व्यवहार का सीखना (3) मानसिक संघर्षमयी स्थितियां जिनमें व्यक्ति निर्णय नहीं कर पाता है।

व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों ने अनेक व्यवहार परिष्कृत परिवर्तन प्रतिनिधि यों (Behaviour Modification Techniques) का विकास किया है। जिनके द्वारा असामान्य व्यवहार के लक्षणों को दूर किया जा सकता है। इन प्रविधियों में निम्न प्रमुख प्रविधियां है:-

(1) सकारात्मक पुष्टीकरण में सुधार

(2) सकारात्मक पुष्टीकरण का उपयोग

(3) निषेधात्मक सम्बद्धता

(4) पुष्टीकरण का प्रत्याहार

(5) असंगत भय उत्पन्न होने वाली दशाओं को संवेदनाहीन कर देना।

व्यवहारवादी प्रारूप के अनुसार व्यक्ति का व्यवहार अपनी पूर्व संबद्धता (Previous canditioning) तथा वर्तमान पर्यावरण पर निर्भर है।

मानवतावादी प्रारूप

मानवतावादी प्रारूप के समर्थकों में विलियम जेम्स (William James) ए0 एच0 मास्लो (A. H. Maslow), फ्रेंडरिंक पर्ल्स (Fredrick Perls) तथा कार्ल आर0 रोजर्स (Carl R. Rogers) प्रमुख है। यद्यपि इस प्रारूप पर मनोविश्लेषणात्मक तथा व्यवहारवादी प्रारूपों का प्रभाव पड़ा परन्तु मानवतावादी मनोवैज्ञानिक इन दोनों प्रकार के प्रारूपों से सहमत नहीं हुये। इनके विचार से व्यवहारवादी प्रारूप एक अति सरलतम प्रक्रिया पर आधारित है। इसमें व्यक्ति की आंतरिक मनोवैज्ञानिक स्थिति तथा अनुभवों का कोई उल्लेख नहीं किया गया है जबकि व्यवहार के प्रदर्शन में इसका प्रमुख स्थान है। मनोविश्लेषण प्रारूप भी अधूरा हैं। इसमें नकारात्मक तथा निराशात्मक (Negative and Pessimistic) प्रकृति का विशेष चित्रण किया गया है।

आत्मनिदेशन एवं आत्म संतुष्टि पर बल
(Emphasis on self direction and self fulfilment)

मानवतावादी प्रारूप किसी प्रकार का व्यक्तित्व सम्बन्धी सिद्धांत प्रस्तुत नहीं करता है बल्कि व्यक्ति के सम्बन्ध में सामान्य स्थिति का ज्ञान कराता है। यद्यपि इस सिद्धान्त में कुछ आधार बहुत प्राचीन हैं परन्तु इसका महत्व वर्तमान समय में बढ़ गया है। सन 1950 ई0 व 1960 ई0 के बीच यह प्रारूप प्रमुख प्रारूप के रूप में माना जाने लगा क्योंकि अमरीका के लोगों में आत्मिक खालीपन (Spiritual Emptiness) का अनुभव महसूस होने लगा। व्यक्ति भौतिक शक्तियों से आत्मिक सुख नहीं प्राप्त कर सकता है। इसके लिये आवश्यक है कि उसे उचित प्रेम,समान मूल्य, जीवन का वास्तविक अर्थ तथा व्यक्तिगत स्वतन्त्रता प्राप्त हो। इस प्रकार इस प्रारूप क सम्बन्ध प्रेम, रचनात्मकता, मूल्य, अर्थ, व्यक्तिगत विकास तथा आत्मसंतुष्टि से है।

एकीकृत आत्म का प्रत्यय

वर्तमान समय में मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों में कार्ल रोजर्स (Carl Rogers) सर्व प्रमुख है। कार्ल रोजर्स ने व्यक्तित्व कार्यात्मकता के सम्बन्ध में व्यवस्थित आत्म प्रारूप का विकास किया। उन्होंने आत्म प्रारूप मनोव्याधिकी के

सम्बन्ध में विकसित किया। कार्ल रोजर्स के विचारों को संक्षिप्त रूप से इस प्रकार वर्णित किया जा सकता है

(1) प्रत्येक व्यक्ति के अपने व्यक्तिगत अनुभव होते है। इस अनुभव का मैं (I) मेरा (Me) तथा स्वयं (Myself) केन्द्र होता है।

(2) व्यक्ति की सबसे महत्वपूर्ण अभिलाषा आत्म को पूर्ण विकसित करने की होती है।

(3) वह परिस्थिति के प्रति अपने विशेष प्रत्यक्षीकरण के आधार पर प्रतिक्रिया करता है। अपने आत्म प्रत्यय के द्वारा वास्तविकता का ज्ञान प्राप्त करके प्रतिक्रिया करता है।

(4) यदि आत्म को कोई खतरा उत्पन्न होता है तो वह आत्म सुरक्षात्मक यन्त्रों का उपयोग, व्यवहार को समायेजित करने के लिए करता है।

(5) व्यक्ति की आंतरिक प्रवृत्तियां पूर्णता की ओर अग्रसित होती है तथा सामान्य दशाओं में व्यक्ति तार्किक एवं रचानात्मक व्यवहार करता है। वह व्यक्तिगत विकास एवं आत्म उत्कृष्टता के लिए पथ निर्धारित करता है।

आत्म की उत्कृष्टता के साथ ही साथ मानवतावादी प्रारूप वैयक्तिकता (Individuality) के महत्व को स्वीकार करता है। प्रत्येक व्यक्ति, सीखने की महान क्षमता एवं विशेषीकृत व्यक्तिगत अनुभव के कारण, बेजोड़ (Unique) है। इस प्रकार प्रत्येक व्यक्ति की आंतरिक भावनाओं, इच्छाओं, क्षमताओं, योग्यताओं, निपुणताओं को जानना आवश्यक होता है। ये व्यक्तिगत विशेषतायें व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती करती है। मानवतावादी प्रारूप व्यवहार के निर्माण में अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों एवं सामान्य सामाजिक सांस्कृतिक पृष्ठभूमि जिसमें व्यक्ति कार्य करता है, की महत्ता को भी स्वीकार करता है। इन कारकों से न केवल व्यक्ति का विकास एवं व्यवहार प्रभावित होता है बल्कि उसके जीवन का अर्थ एवं संतोष की सीमा भी निश्चित होती है।

मूल्य, व्यक्तिगत विकास तथा संतुष्टि

मानवतावादी प्रारूप का केन्द्र बिन्दु मूल्य, वैयक्तिक विकस एवं आत्म संतुष्टि है। मानव के अस्तित्व के लिए इन कारकों की भूमिका अत्यन्त महत्वपूर्ण

है। मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों का मत है कि व्यक्ति के अपने मूल्य, अपने विचारों एवं इच्छाओं पर ही आधारित होने चाहिए। उस पर सामाजिक पर्यावरण के मूल्य थोपे नही जाने चाहिए। उनका मत है कि व्यक्ति को आत्म अभिज्ञान (self Identity) का पूरा अवसर मिलना चाहिए जिससे वह यह समझ सके कि वह क्या है तथा क्या बन सकता है एवं उसकी क्या क्षमतायें है। इस दृष्टिकोण के अनुसार प्रत्येक व्यक्ति में एक आन्तरिक एवं मूलभूत शक्ति होती है जो परिपक्वता एवं आत्म उत्कृष्टता की ओर प्रयास करने के लिए प्रेरित करती है। यह प्रारूप मूल्यों एवं संतुष्टि की समस्या को न केवल व्यक्ति के लिए महत्वपूर्ण समझता है बल्कि सम्पूर्ण समाज के लिए भी इसकी अत्यन्त आवश्यकता है। विज्ञान का उत्तरदायित्व है कि वह सामाजिक मूल्यों एवं सामाजिक विकास के संदर्भ में कार्य करें। यह एक क्रान्तिकारी दृष्टिकोण है क्योंकि विज्ञान का परम्परागत सम्बन्ध वास्तविक तथ्यों से रहा है। मूल्यों एवं सामाजिक विकास के प्रश्न को सदैव धर्म, राज्य एवं अन्य शक्तियाँ सुलझाती रही है। फिर भी मास्लो (Maslow) ने यह स्पष्ट किया कि आधुनिक विज्ञान का कार्य अच्छे समाज के साथ–साथ अच्छे व्यक्ति का भी निर्माण करना है क्योंकि व्यक्ति की उत्कृष्टता एवं महत्ता तभी स्थापित हो सकती है जब अनुकूल सामाजिक परिस्थितियाँ भी हों। अन्यथा वह प्रत्यय केवल कोरा सिद्धांत ही रह जायेगा।

व्यक्ति का सकारात्मक दृष्टिकोण एवं उसकी क्षमतायें

व्यक्ति की मूल प्रकृति के सम्बन्ध में सदैव विरोधात्मक दृष्टिकोण कार्य करते रहे है। कुछ विद्वानों के अनुसार व्यक्ति स्वभाव से स्वार्थी, निर्दयी तथा हिंसक (Predatory) है। दूसरे विद्वानों का बिल्कुल इसके विपरीत मत है। कुछ विद्वानों ने व्यक्ति को कठपुतली के समान बताया है जिसके व्यवहार का निर्देशन इसकी शक्ति से परे शक्ति से होता है जबकि कुछ विद्वानों का मत है कि व्यक्ति में आत्म निर्देशन की पूर्ण क्षमता होती है।

व्यक्ति की मूल प्रकृति अच्छी या बुरी, तर्किक या अतार्किक, स्वतन्त्र या परतन्त्र के सम्बन्ध में अब भी संतुष्ट समाधान कोई नही प्राप्त हो पाया है। परन्तु सामाजिक हित की दृष्टि से यह प्रश्न अत्यन्त महत्वपूर्ण है। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति स्वभाव से स्वार्थी एवं हिंसक है तो यह समाज का उत्तरदात्वि है कि

सामाजिक बनावें। इसके विपरीत यदि व्यक्ति स्वभाव से सहयोगिक, त्यागी, दयावान एवं रचनात्मक व्यवहार करने वाला है तो समाज का उत्तरदायित्व है कि वह व्यक्ति के आत्मनिर्देशन एवं विकास में सहायता करे। मनोविश्लेषणात्मक प्रारूप व्यक्ति के स्वभाव के सम्बन्ध में नकारात्मक दृष्टिकोण रखता है, व्यवहारवादी प्रारूप तटस्थ (Neutral) दृष्टिकोण रखता है अर्थात् व्यक्ति के स्वभाव का अच्छा या बुरा, तार्किक या अतार्किक होना उसकी सम्बद्धता के इतिहास (Conditioning history) पर निर्भर है। मानवतावादी प्रारूप व्यक्ति के स्वभाव के सम्बन्ध में अधिक सकारात्मक दृष्टिकोण रखता है। इस प्रारूप के समर्थकों का मत है कि है कि अनुकूल एवं सामान्य दशाओं में व्यक्ति सहयोगिक, मित्रवत तथा रचानात्मक व्यवहार करने वाला है। उसमें हिंसात्मक, आक्रामक तथा स्वार्थी व्यवहार की उत्पत्ति भग्नाषा तथा संघर्ष के कारण होती है। इसी प्रकार इन विचारकों का मत है कि यद्यपि व्यक्ति अनुचित सूचनाओं, सामाजिक तथा आर्थिक व्याधियों तथा अन्य जटिल कारकों के कारण पथ से विचलित हो सकता है परन्तु उसमें तार्किक स्वभाव होता है।

सामान्य असामान्य व्यवहार से सम्बन्धित दृष्टिकोण पर मानवतावादी प्रारूप का प्रभाव

मानवतावादी प्रारूप दोषपूर्ण सीखना तथा मनोसुरक्षात्मक रचनाओं का अत्यधिक उपयोग मनोविकृतियों के लिए उत्तरदायी बताया है। इन कारणात्मक कारकों के प्रभाव से व्यक्ति के विकास में, संतुष्टि के मार्ग में बाधा उत्पन्न हो जाती है। अतः व्यक्ति दोषपूर्ण मूल्यों एवं प्रतिकूलित व्यवहारिक तरीकों को सीखता है। सामाजिक धमकी, संघर्ष, दबाव एवं विध्नात्मक शक्तियों के कारण व्यक्ति को चिन्ता उत्पन्न हो जाती है जिससे आत्म अवमूल्यन होता है। आत्म अवमूल्यन को न स्वीकार करने के लिए मनोसुरक्षात्मक रचनाओ का उपयोग करता है इस व्यवहार के कारण वास्तविकता का खंडन होता है और व्यवहार में असमान्यता उत्पन्न हो जाती है। जब चिन्ता उत्पन्न करने वाले तनावों एवं दबावों तथा सुरक्षात्मक रचनाओं का अधिकाधिक उपयोग होता है तो व्यक्तित्व का विघटन एवं मनोवैज्ञानिक व्यवधान उत्पन्न हो जाता है।

मानवतावादी प्रारूप व्यक्ति को अपनी शक्तियों, कमियों, क्षमताओं को ज्ञान कराने में सहायता करने पर बल देता है। जब व्यक्ति ऐसा सीख लेता है तो

वह सुरक्षात्मक रचनाओं का उपयोग नही करता है जिसके कारण स्वतन्त्र रूप से विकास तथा आत्म उत्कृष्टता के लिए कार्य कर सकने में समर्थ हो सकता है। इस दृष्टिकोण के कारण अनिर्देशित चिकित्सा प्रणाली (Non-directive Therapy) का उपयोग मानसिक रोगियों के लिए महत्वपूर्ण होता है।

अस्तित्ववादी प्रारूप

अस्तित्ववादी प्रारूप व्यक्ति की स्वतन्त्रता, आत्म निर्देशन, अनोखापन तथा आत्म संतुष्टि पर बल देता है। इस प्रारूप का विचार है कि व्यक्ति को अर्थो एवं मूल्यों के निर्धारण, आत्म निर्देशन, आत्म उत्कृष्टता एवं आत्म संतुष्टि के लिए स्वतन्त्रता होनी आवश्यक होती है। इस प्रकार यह प्रारूप काफी सीमा तक मानवतावादी प्रारूप के समान ही है। यही कारण है कि अधि ाकांश मानवतावादी मनोवैज्ञानिकों को अस्तित्ववादी कहा जाता है। लेकिन अस्तित्ववादी प्रारूप व्यक्ति के सम्बन्ध में कम आशावादी (optimistic) दृष्टिकोण रखता है। यह प्रारूप व्यक्ति की प्रकृति को अतार्किक कहता है। आत्म संतुष्टि के मार्ग की कठिनाइयों की उत्पत्ति का कारण व्यक्ति द्वारा निर्मित सामाजिक व्यवस्था लाल फीताशाही तथा मानवताहीन समाज है। ये विचारक आधुनिक विज्ञान पर कम विश्वास रखते है। इनका विचार है कि समस्या को समझने तथा दूर करने के लिए व्यक्ति की आन्तरिक दशाओं एवं अनुभवों को समझना आवश्यक होता है।

प्रारूप क मुख्य विषय तथा प्रत्यय

अस्तित्ववादी प्रारूप क्रमागत विचारों का उच्चतर सम्प्रदाय नही है लेकिन यह मानव अस्तित्व के सम्बन्ध में स्पष्ट विचारों की एक व्यवस्था है। इस प्रारूप का मत है कि मानव अस्तित्व के लिए व्यक्तिगत अभिज्ञान का भाव (Personal Identity) तथा वाह्य संसार से अर्थपूर्ण सम्बन्धों का होना आवश्यक है। इस मत के समर्थकों में सोरेन किर्केगार्ड (Soren Kirkegard) जीन पाल सारट्रे (Jean Paul Sartre), रोलों में (Roeco May) तथा आर० डी० लायंग (R.D. Liang) प्रमुख है।

अस्तित्व एवं सार

(Existance and Essence)

अस्तित्ववादी दृष्टिकोण से व्यक्ति की मूल प्रेरणा अति उत्तम जीवन पद्धति को प्राप्त करना, अपनी क्षमताओं को उत्कृष्ट करना तथा मानवीय गुणों को ग्रहण करना है। लेकिन आज के युग में सांस्कृतिक परिवर्तन इतनी तीव्रता से हो रहे है कि परम्परागत प्रतिमानों, विश्वासों, रूढ़ियों एवं परम्पराओं के समबन्ध में व्यक्ति प्रश्नवाचक हो गया है। आज का व्यक्ति अपने ही प्रति संदिग्ध हो गया है। इस परिवर्तन के परिणाम स्वरूप आज व्यक्ति भ्रमित है तथा उसे अति आत्मिक एवं सांवेगिक तनाव क अनुभव हो रहा है। मानसिक रोगियों की संख्या दिन प्रति दिन बढ़ रही है।

व्यक्ति अपनी इस विषय परिस्थिति का दो तरीकों से समाधान कर सकता है। (1) मूलभूत संप्रेरणा एवं इच्छाओं के त्याग कर, आँख मूँद कर समूह द्वारा स्थापित वर्तमान व्यवस्था का अंग बन जाय, या (2) अपने अस्तित्व की वास्तविकता के संदर्भ में आत्म विकसित करने का भरसक प्रयत्न करें। अस्तित्ववादी विचारकों का मत है कि प्रथम वर्णित तरीका अव्यवहाररिक, दोषपूर्ण तथा चिंता, आकुलता एवं भग्नाषा को उत्पन्न करने वाला है क्योंकि इससे व्यक्ति का अस्तित्व मिट जाता है। वह वर्तमान व्यवस्था के कुपरिणाम से बच नहीं सकता है और न ही किसी को अपनी असफलता का दोषी सिद्ध कर सकता है। अतः आवश्यक है कि व्यक्ति दूसरा रास्ता अपनावे तभी वह सर्वांगीण विकास कर सकता है एवं उसका अस्तित्व कायम रह सकता है।

स्वतंत्रता, इच्छा, मूल्य एवं अर्थ

(Freedom, Choice, Values, Meaning)

अस्तित्ववादी प्रारूप का दूसरा महत्वपूर्ण विषय इच्छा का अर्थ है। व्यक्ति को संतोषप्रद मूल्यों के चुनाव में पूर्ण स्वतंत्रता आवश्यक होती है क्योंकि मुल्यों के चुनाव के आधार पर ही व्यक्ति अपने जीवन का अर्थ एवं सार निश्चित करता है। अतः आवश्यक है कि व्यक्ति को मूल्यों के निर्धारण, जीवन लक्ष्य के स्थापन तथा समूह में मिलने या न मिलने की पूर्ण स्वतंत्रता होकर ही सामान्य व्यवहार कर सकता है एवं अपनी सम्पूर्ण क्षमताओं को बाहयीकृत कर सकता है। इस प्रकार यह स्पष्ट है कि व्यक्ति स्वयं अपने भाग्य का निर्माणकर्ता है।

इच्छा एवं उत्तरदायित्व (Choice and Responsibility) की समस्या प्रायः व्यक्ति के लिए कष्ट कर एवं भार हो जाती है। वे संतोषप्रद एवं वैयक्तिक मूल्यों की खोज करते हैं परन्तु इनको विपरीत मूल्य वर्तमान व्यवस्था के कारण प्राप्त होते हैं। अतः वयक्ति में इतनी क्षमता एवं साहस का होना आवश्यक होता है कि वह पुराने तरीकों को यदि आवश्यक हो तो तोड़ सके तथा अपने आप खड़े होकर संतोषप्रद तरीकों की खोज कर सके। सारांश में यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति को अपने जीवन के वास्तविक अर्थ के निर्माण की स्वतंत्रता होनी आवश्यक है।

अस्तित्वात्मक चिंता
(Existential Anxiety)

अस्तित्ववादी प्रारूप का कहना है कि आज मानव की स्थिति अत्यंत विषम, कष्टकर तथा दुखदायी हो गयी है। उसमें अस्तित्व हीनता की भावना उत्पन्न हो गई है। वह यह समझने में असमर्थ है कि स्वयं वह क्या है ? धीरे–धीरे कुछ भी नहीं (Nothingness) की धारणा दृढ़ होती जा रही है। वह अस्तित्व हीनता पर विश्वास करने लगा है। परन्तु व्यक्ति ही केवल ऐसा प्राणी है जिसको अस्तित्व के संबंध में ज्ञान होता है तथा उस ज्ञान के आधार पर व्यक्तिगत एवं सामाजिक उन्नति कर सकता है। वर्तमान समाज की समस्याओं ने व्यक्ति की इस योग्यता को क्षीण कर दिया है जिसके कारण व्यक्ति आतुर,, व्याकुल, परेशान, चिंतित एवं अस्तित्वहीन दिखाई देता है। ऐसे में अस्त्विात्मक चिंता उत्पन्न होती जा रही है। अस्तित्वात्मक चिंता प्रायः प्राणी अंप्राणी (being-nonbeing) के संदर्भ में आन्तरिक प्रतिद्वन्दों के कारण उत्पन्न होती है। अतः अस्तित्ववादी चिकित्सक व्यक्ति की सहायता उसके मूल्यों को स्पष्ट करने तथा अर्थपूर्ण अस्तित्व की धारणा स्थापित करने में करता है। वह दूसरे व्यक्तियों के साथ सकारात्मक संबंध स्थापित करने एवं रचनात्मक तरीकों द्वारा सामूहिक अंतः क्रिया में भाग लेने के लिए प्रेरित करता है।

सामान्य असामान्य दृष्टिकोण पर अस्तित्ववादी प्रारूप का प्रभाव

अस्तित्ववादी प्रारूप के प्रत्यय अस्तित्वहीन, स्वतंत्रता, इच्छा, अर्थ, वास्तविकता, वाध्यता, वचनबद्धता, अस्तित्वात्मक चिंता तथा व्याकुलता का वर्तमान

विचारों पर काफी प्रभाव पड़ा है। इस प्रारूप का मूल संबंध वर्तमान व्यक्ति की सामाजिक कठिन परिस्थिति से है। वर्तमान समाज में विश्वास के संबंध में संकटकाल (Crises) तथा परम्परागत मूल्यों की कमजोरी के कारण व्यक्तित्व का विघटन सामूहिक एवं वैयक्तिक दोनों रूप से हो रहा है। आज व्यक्ति इस व्यवस्था एवं संघर्षमयी स्थिति के कारण अपने को अर्थहीन समझने लगा है। वह अकेलेपन का अनुभव करता है तथा अपनी ही दृष्टि में अजनबी दिखाई देता हैं वर्तमान जीवन की परिस्थितियों ने उसे मनोविकृत व्यक्ति बना दिया है।

अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप

अभी तक जितने भी प्रारूपों का वर्णन किया गया है उनमें से कोई भी प्रायः पूर्णतया व्यक्ति का सामाजिक प्राणी के रूप में विश्लेषण नहीं करता है। अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप इस दिशा में एक महत्वपूर्ण सामाजिक प्रत्यय प्रस्तुत करता है। यह प्रारूप हेरी स्टैक सुलीवान (Harry Stack Sullivan) द्वारा विकसित किया गया तथा इरिक वर्ने (Eric Berne) द्वारा इसका विस्तारण किया गया। अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप आत्म तथा आत्म निर्देशन के प्रत्यय को यद्यपि अस्वीकार नहीं करता है परन्तु इसके विश्लेषण का मुख्य केन्द्र वर्तमान सामाजिक प्रकिया (Ongoing social process) है।

सामाजिक प्रकियायें एवं वयक्तित्व

सुलीवान के विचार से व्यक्तित्व का विकास विभिन्न अन्तर्वैयक्तिक संबंध तरीकों द्वारा होता है। व्यक्ति के प्रारम्भिक जीवन में अन्तर्वैयक्तिक संबंध अतुलनीय भूमिका अदा करतें हैं। बालक तथा माता पिता में जिस प्रकार के संबंध होते हैं उन्हीं के अनुसार उसका समाजीकरण संभव होता है। पारिवारिक सदस्यों में अंतर्क्रिया तथा बालक एवं परिवार के सदस्यों की बीच की अन्तः क्रिया के तरीके यह निश्चित करते हैं कि बालक का विकास किस प्रकार का होगा। बचपन में वह दूसरे सहयोगियों एवं साथियों से संबंध स्थापित करता है। उसका भी प्रभाव उसके जीवन पर पड़ता है। युवावस्था में वाहय संसार से पहले से अधिक अन्तः क्रिया करता है तथा वैवाहिक अन्तर्क्रिया के साथ–साथ माता–पिता की भी भूमिका निभाता है। बालक में प्रारम्भिक–अन्तर्वैयक्तिक संबंधों के आधार पर ही

आत्म प्रत्यय का विकास होता है। वह समाजीकरण के दबावों से अपने संबध में एक धारणा स्थापित करता है और उसी धारणा एवं विश्वास के आधार पर अपने में गुणों को विकसित करता है।

संचार एवं सर्वसम्मति द्वारा पुष्टीकरण
(Communication and Consensual validation)

संचार अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप का एक महत्वपूर्ण प्रत्यय है। संचार के माध्यम से ही बालक दूसरों से संबंध एवं सम्पर्क स्थापित करन सीखता है। संचार दो प्रकार का होता है : (1) मौखिक (2) अमौखिक। इन संकेतों के द्वारा लोग दूसरे के संवाद एवं क्रियाओं का विश्लेषण करते हैं। बालक संकेतों तथा शारीरिक मुद्राओं द्वारा संचार करता है परन्तु इससे अधिक अनुभव वाले संचारों का स्पष्टीकरण नहीं हो पाता है। भाषा के विकास के साथ–साथ वह संचार के वास्तविक तरीकों को प्राप्त करता है तथा पूर्ण संचार प्रयिा करना सीख लेता है। इस प्रकार की संचार प्रक्रिया करने का सर्वसम्मति द्वारा पुष्टिकरण होता है। जब व्यक्ति संचार विधि को सर्वसम्मति द्वारा पुष्टीकृत स्तर पर विकसित नहीं कर पाता है तो उसकी वास्तविकता विघठित हो जाती है जिसके परिणाम स्वरूप असमायोजित व्यवहार घटित होता है। दोषपूर्ण संचार प्रकिया के कारण ही व्यक्ति समाज के अनुकूल व्यवहार नहीं कर पाता है। इस प्रकार व्यक्ति जब अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में अन्तर्भेद एवं अन्तर्द्वन्द्व का अनुभव करते हैं तो उनमें एक दूसरे को संचारित करने की विधि में प्रायः दोष होता है। संघर्ष तभी प्रारम्भ होता है जब संचार प्रक्रिया में दोष उत्पन्न हो जाता है उवं संचार के सभी रास्तें बंद हो जाते हैं। उदाहरण के लिए वैवाहिक जीवन तभी असफल होता है जब पति–पत्नी संचार में भाग लेने के अयोग्य हो जाते हैं और संचार के श्रोत बंद हो जाते हैं।

सामाजिक भूमिकायें तथा अन्तर्वैयक्तिक व्यवस्थान

व्यक्तित्व विकास एवं व्यवहार के संबंध में सामाजिक भूमिकाओं के महत्व के संबंध में अनेकों अध्ययन किये गयें हैं। इन अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि सामान्य सामाजिक अन्तःक्रिया कि लिए परिवार के सभी सदस्यों को भाग लेना आवश्यक होता हे अर्थात भूमिका प्रतिदान (Role Reciprocity) का

होना महत्वपूर्ण होता हैं। इसका तात्पर्य यह है कि सदस्य अपनी भूमिका के अनुसार व्यवहार का प्रदर्शन करे। ऐसी ही स्थिति में सामाजिक कार्य हो सकते हैं तथा सामाजिक व्यवस्था बनी रह सकती है। अतः अनेक सामाजिक पुष्टीकरण भूमिका व्यवहार के साथ संबंधित कर दिये जाते हैं तथा उन्हे सामाजिक मान्यता प्रदान की जाती हैं। व्यक्ति, जिसको मानसिक रोगी घोषित कर दिया जाता है, वह होता है जो अपनी भूमिकाओं को नही पूरा कर पाता है और उसे रोगी की भूमिका (Sick Role) दी जाती है जिससे उसे भूमिका उत्तरदायित्व से छुटकारा मिल जाता है।

सामाजिक भूमिकायें तथा संचार तरीके दोनों ही अन्तर्वैयक्तिक व्यवस्थान के लिए महत्वपूर्ण होते हैं। सुलीवान के अनुसार अन्तर्वैयक्तिक व्यवस्थान एक प्रतिदान प्रक्रिया है जिसमें (1) पूरक आवश्यकताओं का समाधान होता है या अभाव में वृद्धि होती है, (2) प्रतिदान प्रक्रिया का विकास होता हे या विघटन होता है। (3) संतोष का पूर्व ज्ञान होता है या रोक लगती है। पूरक आवश्यकताओं का तात्पर्य वे आवश्यकतायें जो एक दूसरे की इच्छाओं की पूर्ति करती हैं। सुलीवान का मत है कि अन्तर्वैयक्तिक संबंधों की सुरक्षा की लिए इन आवश्यकताओं की पूर्ति अत्यन्त आवश्यक होती है।

सामान्य–असामान्य दृष्टिकोण पर अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप का प्रभाव

अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप के अनुसार दोषपूर्ण संचार एवं असंतोषप्रद अन्तर्वैयक्तिक संबंध मानसिक विकृतियों के कारण होते हैं। ये कारण बाल्यकाल से ही प्रभावकारी होते हैं जब बालक आत्म प्रत्यय का विकास करता है अतः चिकित्सा का मुख्य ध्येय संचार एवं संबंधों में सुधार करना होना चाहिए। पीड़ित व्यक्ति की सहायता अन्तर्वैयक्तिक संबंधों को सुधारने में की जानी चाहिए।

अन्तर्वैयक्तिक प्रारूप चिकित्सा के तीन मुख्य चरण है––

(1) असमायोजित अन्तर्वैयक्तिक संबंधों के परिवर्तन का निश्चय।

(2) उन दशाओं का पता लगाना जिनसे कि वर्तमान व्यवहार निर्देशित होता है।

(3) आत्म ज्ञान एवं दूसरों से उचित तरीकों द्वारा संबंध स्थापित करने की सहायता करना।

यह चिकित्सा प्रणाली परिवार के सदस्यों एवं मित्र समूह का भी अध्ययन करती है तथा व्यक्ति की सहायता में सहयोग प्राप्त करती है।

जब हम उपर्लिखित विभिन्न प्रारूपों मनोविश्लेषणात्मक, चिकित्सात्मक मानवतावादी, व्यवहारवादी, अस्तित्ववादी तथा अन्तर्वैक्तिक का अवलोकन करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि प्रत्येक प्रारूप ने मनोव्याधिकी के क्षेत्र में योगदान किया है लेकिन कोई भी एक प्रारूप असामान्य व्यवहार को स्पष्ट करने में पूर्ण सफल नहीं है। सभी प्रारूप एक दूसरे के संदर्भ में कार्य करते हैं।

अन्तर्व्यवस्थात्मक प्रारूप

अन्तर्व्यवस्थात्मक प्रारूप असामान्य व्यवहार को समझने से संबंधित प्रजनन शास्त्र, जैवरसायन, स्नायु विज्ञान, मनोविज्ञान, समाजशास्त्र, मानवशास्त्र में किये गयें अनुसंधानों को एकीकृत करता है। अन्तर्व्यवस्थापक प्रारूप के विकास के परिणम स्वरूप तीन प्रवृतियॉ (Trends) उत्पन्न हुई हैं (1) चिकित्सात्मक प्रारूप के महत्व की कमी (2) मनो सामाजिक प्रारूप के महत्व में वृद्धि (3) असामान्य व्यवहार को दूर करने क लिए नवीन प्रविधियों का विकास।

(1) चिकित्सात्मक प्रारूप के महत्व का ह्रास

यद्यपि चिकित्सात्मक प्रारूप ने मनोव्याधिकी को वैज्ञानिक स्तर प्रदान किया तथा असामान्य व्यवहार के कारणों की खोज में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई, परन्तु आज इस प्रारूप की आलोचना निम्न आधारों पर की जा रही है।

(1) अधिकांश असामान्य व्यवहार में मस्तिष्क विकार (Brain Pathology) या मानसिक रोग (Mental Illness) नही होता है। टामस साज़ ने चिकित्सकीय प्रारूप पर सर्वप्रथम कुठाराघात किया। उनके विचार से अधिकांश व्यक्ति जिनको मानसिक रोगी घोषित कर दिया जाता है वे वास्तव में चिकित्सकीय अर्थ में रोगी (Sick) नहीं होते हैं। उन्होंने अपनी पुस्तक मिथ आफ मेंटल इलनेस (Myth of Mental Illness) में सविस्तार से इस सन्दर्भ में वर्णन किया हैं। साज़ ने दो कारणों

से मानसिक रोगी को रहस्य की संज्ञा दी है (1) मानसिक रोग एक काल्पनिक प्रत्यय है क्योंकि इसका कारण आंगिक विकृति समझा जाता है जबकि इसका सम्बन्ध व्यक्ति के विश्वासों से होता है। अदाहरण के लिए चाहे व्यक्ति समाजवाद में विश्वास रखें, चाहे साम्यवाद में, चाहे वह विश्वास करे कि उसका शरीर सड़ रहा है या वह समझे कि वह पहले ही मर चुका है, इन सभी विश्वासों को स्नायु व्यवस्था की रोग ग्रस्तता के आधार पर वर्णित नहीं किया जा सकता है।

इस प्रकार के विश्वासों का कोई चिकित्सकीय महत्व नहीं होता है। वास्तव में उसके व्यवहार का कारण उसकी जीवन की समस्यायें होती हैं। नैतिक, वैधानिक तथा सामाजिक प्रतिमानों से परे व्यवहार आसामान्य होता है।

साज़ ने दूसरा कारण मानसिक रोगों को काल्पनिक प्रत्यय कहने का बताया है कि निदान वैषयिक (Subjective) विचार है और उस विचार से विपरीत व्यवहार को असामान्य कह दिया जाता हैं। मनोविकार चिकित्सक एक व्यकित को मानसिक रोगी नामांकित कर देते हैं क्योंकि उसके तथा रोगी के विश्वासों में अन्तर होता है।

(2) मानसिक रोगों का वर्गीकरण अनुचित तथा समान्यतया हानिकारक है। चिकित्सकीय प्रारूप मानसिक रोगों के वर्गीकरण पर विशेष बल देता हें यह दृष्टिकोण आंगिक रोगों के उपचार के लिए आवश्यक है परन्तु असामान्य व्यवहार के सम्बन्ध में यह उचित नहीं है क्योंकि इसकी उत्पत्ति दोषपूर्ण सीखने, अत्यधिक दबाव एवं अन्तर्द्वन्द्व के कारण होती है। उदाहरण के लिए किस आधार पर चिंतित एवं अप्रसन्न व्यक्ति को मनोस्नायुविक (Neurotic) नामांकित कर दिया जाता है।

(3) रोगी भूमिका (Sick Role) असमायोजित व्यवहार को उत्साहित करती है। चिकित्सकीय प्रारूप मानसिक विकृत व्यक्ति को रोगी कीं भूमिका प्रदान करता है जिससे उसे जीवन परिस्थितियों से निपटने के उत्तरदायित्व से मुक्ति मिल जाती है। परन्तु यह दशा उसके भविष्य के व्यवहार को प्रभावित करती है। उसको यह सिखाने के स्थान पर कि किस प्रकार अपनी विभिन्न भूमिकाओं का प्रतिपादन करे उसे इससे दूर दिया जाता है। अतः चिकित्सकीय प्रारूप मानसिक विकृतियों एवं असामान्य व्यवहारों के सम्बन्ध में उपयुक्त नहीं है।

मनोसामाजिक प्रारूप का बढ़ता हुआ प्रभाव

व्यवहारवादी, मानवतावादी तथा अन्तर्वैयक्तिक प्रारूपों ने व्यक्ति के मनोसामाजिक स्वरूप को उभार कर प्रत्यक्ष स्पष्ट कर दिया हे। इन प्रारूपों के सहयोग से यह सिद्ध हो गया है कि मानसिक व्याधियों का शिकार सामाजिक एवं मनोवैज्ञानिक कारणों से होता है।

अन्तर्व्यवस्थात्मक प्रारूप किसी एक विशेषज्ञ की सहायता पर विश्वास नहीं करता बल्कि सभी सामाजिक विज्ञानों की सहायता लेने पर बल देता है। मनोवैज्ञानिक, मनोविकार चिकित्सक, सामाजिक कार्यकर्ता, तथा अन्य व्यवसायों के कार्यकर्ताओं की सहायता से उपचार कार्यक्रम चलाने पर बल देता है। इस प्रारूप का मत है कि व्यक्ति की अनेकानेक समस्यायें होती है उनको किसी एक विशेषज्ञ द्वारा समझा नहीं जा सकता। अतः प्रत्येक क्षेत्र के विशेषज्ञों की सलाह एवं सहायता आवश्यक होती है।

3

व्यक्तित्व विकास एवं समायोजन

व्यक्तित्व शब्द का प्रयोग विभिन्न अर्थों में किया जाता है , यह व्यवहार की विशेषताओं, मानसिक क्षमताओं, समायोजन की योग्यताओं एवं शारीरिक बनावट को स्पष्ट करता है। साधारणतया व्यक्तित्व के अन्तर्गत व्यक्ति की उन क्रियोओं को सम्मिलित किया जाता है जिनको वह दूसरों के सम्मुख प्रस्तुत करता है। व्यक्तित्व शब्द अंग्रेजी के पर्सनाल्टी का हिन्दी रूपांतर है और पर्सनाल्टी शब्द की उत्पत्ति लैटिन भाषा के परसोना (Persona) से हुई है जिसका तात्पर्य एक ऐसे पहनावे से है जिसको कलाकार नाटक के समय पहन पहन कर मंच पर भूमिका निभाते है। इस अर्थ में व्यक्तित्व का मापन व्यक्ति के बाह्य गुणों के आधार पर किया जाता है। परन्तु व्यक्तित्व का वास्तविक अर्थ इस कथन से स्पष्ट नहीं होता है।

सैद्धान्तिक रूप से व्यक्तित्व को 5 दृष्टिकोणों से देखा जाता है। सामान्य दृष्टिोण से व्यक्तित्व का अर्थ उन गुणों के समावेश से लगाया जाता है जो दूसरे पर अपना प्रभाव स्थापित करने में सहायता करते हैं तथा यह वह उद्दीपक मूल्य है जो व्यक्ति दूसरे के प्रति रखता है। दार्शनिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व का तात्पर्य आत्मज्ञान तथा पूर्ण आदर्श से है समाजशास्त्रीय दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व उन गुणों का संगठित रूप होता है जो व्यक्ति का समाज में कार्य एवं पद का निर्धारण करता है। मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण इदम्, अहम् तथा पराहं के संतुलित व्यवहार की व्यक्तित्व का आधार मानता है। व्यक्ति का व्यक्तित्व इन शक्तियों से नियन्त्रित होता है तथा प्रभावकारी स्थितियों में सहायता करता है। मनावैज्ञानिक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्तित्व व्यक्ति का पूर्ण संगठन है जो किसी विकास के स्तर पर होता है। वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों ही व्यक्तित्व के विकास में महत्वपूर्ण कार्य करते हैं।

(I) व्यक्तित्व की परिभाषा

व्यक्तित्व की भिन्न–भिन्न विद्वानों ने निम्न परिभाषायें दी है।

मन (Munn)[1] व्यक्तित्व एक व्यक्ति के संगठित व्यवहार के तरीकों, रूचियों दृष्टिकोणों, क्षमताओं एवं तरीकों का सबसे विशिष्ट संगठन है।

आलपोर्ट (Allport)[2] व्यक्तित्व व्यक्ति के मनोदैहिक गुणों का गत्यात्मक संगठन है जो पर्यावरण के प्रति होने वाले उसके अभियोजनों का निर्णय है।

यंग (Young)[3] व्यक्तित्व का विचारों, मनोवृत्तियों, लक्षणों, मूल्यों तथा प्रतिक्रियाओं (आदतों) को, बहुत कुछ संगठित, उस समग्रता के रूप में परिभाषित किया जा सकता है जो बाहरी तौर पर तो कार्यों तथा स्थितियों के रूप में संगठित होता है, पर आन्तरिक रूप से प्रेरणाओं, लक्षणों तथा आत्म के विभिन्न पहलुओं से सम्बन्धित होते है।

लापियर ऐण्ड फांसवर्थ[4] व्यक्तित्व शब्द का वैज्ञानिक प्रयोग किसी समय विशेष में किसी व्यक्ति विशेष के सामाजीकरण के प्रतिफलन को दर्शाने के लिए किया जाता है। व्यक्ति उन सभी गुणों की समग्रता है जिन्हें व्यक्ति ने समाजीकरण द्वारा अर्जित किया है।

(II) संगठित व्यक्ति की विशेषतायें

व्यक्ति का मापन करना तथा उसके प्रकार का निर्धारण करना अत्यन्त कठिन है क्योंकि सामाजिक स्थितियों एवं अवसरों के अनुसार इसमें अन्तर आता रहता है। साधारण तथा संगठित व्यक्ति की निम्न विशेषतायें है :–

1.	मन, एन0 एल0	साइकोलोजी,, जार्ज जी, हेरेप ऐण्ड कं0, लंदन 1953 पृ0 569
2.	आलपोर्ट, जी0 डब्लू0	पर्सनाल्टी–ए साइकालोजिकल इण्टरप्रिटेशन, हेनरी हाल्ट ऐण्ड कं0, न्यूयार्क 1901 पृ0 18
3.	यंग, किम्ब्राल,	हैन्डबुक आफ सोशल साइकालोजी, रटलेज़ एण्ड केगन पाल लि0, लंदन, 1957, पृ0 58
4.	लापियर ऐण्ड फ्रांसवर्थ	सोशल साइकालोजी, मैकग्राहिल बुक कं0, न्यूयार्क, 1945, पृ0 180

(1) अच्छा स्वास्थ्य (2) सहकारिता की भावना (3) उत्तम चरित्र (4) समाज सेवा की प्रवृत्ति (5) साथियों से अच्छा व्यवहार (6) विपरीत लिंग वाले व्यक्तियों के साथ अच्छा व्यवहार (7) हर प्रकार के कार्यों के लिए बौद्धिक एवं शारीरिक क्षमता (8) श्रेय की अपेक्षा प्रेम को महत्व (9) अन्य व्यक्तियों के कार्यों एवं मनोभावों को समझना, उनकी सराहना करना और उनके अहं को ठेस न पहुँचाना (10) परिवर्तित परिस्थितियों के साथ सामान्यरूप स्थापित करना (11) सामान्य सांवेगितकता का होना (12) समूह के मूल्यों में आस्था रखना (13) न तो विशेष रूढ़िवादी होना और न ही अग्रगामी (14) आशावादी तथा मेहनती (15) संगठित व्यवहार, योग्यतायें एवं क्षमतायें (16) दृढ़ संकल्प का होना।

(III) व्यक्तित्व के निर्धारक

प्रत्येक व्यक्ति भिन्न–भिन्न होता है। इस भिन्नता का कारण वंशानुक्रम तथा पर्यावरण की भिन्नता होती है।

(1) वंशानुक्रम (Heredity)

संसार में विभिन्न प्रकार के जीव तथा पेड़–पौधे है परन्तु सभी अपने ही रूप में अपनी संतानों को विकसित करते हैं। इससे स्पष्ट है कि वंशानुक्रम द्वारा व्यक्ति अपने गुणों को अपनी संतानों में हस्तांतरित करता है। वंशानुक्रम व्यक्ति का निर्माण करता है तथा उसको जीव–शास्त्रीय दाय (Heritage) प्रदान करता है। जिस प्रकार का बीज होता है उसी प्रकार का बच्चे का व्यक्तित्व निर्मित होता है। माता–पिता जैसे होते हैं वैसे ही उनकी संतान होती है। बुद्धिमान माता–पिता की संतान प्रायः बुद्धिमान तथा मूर्ख माता–पिता की सन्तान प्रायः मूर्ख होती है।

वंशानुक्रम के तीन मुख्य नियम है :–

(1) समान–समान को जन्म देता है।

(2) भिन्नता का नियम पाया जाता है।

(3) प्रत्यागमन होता है।

वंशानुक्रम का यह सर्वमान्य एवं शतप्रतिशत सत्य नियम है कि अपने

ही अनुरूप एवं समान जीव का विकास होता है। साथ ही साथ माता–पिता के समान ही सन्तानों में विशेषतायें पाई जाती है। शारीरिक संरचना एवं विकास पर इसका विशेष प्रभाव पड़ता है। ठिगने माता–पिता की सन्तान ठिगनी तथा लम्बे माता–पिता की सन्तान कद में लम्बी होती है।

वशानुक्रम का दूसरा महत्वपूर्ण नियम भिन्नता का नियम है। सन्तान पूर्णतया माता–पिता के समान नहीं होती है। उसके रंग रूप तथा अन्य शारीरिक बनावट में कुछ न कुछ भिन्नता पाई जाती है। इस भिन्नता का कारण विभिन्न पैतृक का सम्मिलन होता है। माता–पिता के पैतृक अपनी अलग–अलग विशेषताओं को सन्तान में स्थापित करते है जिसके कारण बालक में भिन्नता उत्पन्न हो जाती है। एक ही माता–पिता की सन्तानों में भिन्नता का कारण प्रमुख तथा गौण (Decissive and Recessive) पैतृकों का होना है।

वंशानुक्रम का एक नियम यह भी है कि प्रतिभाशाली माता–पिता की सन्तान कम प्रतिभाशाली होने की प्रवृत्ति तथा निम्न कोटि के माता–पिता की सन्तान कम निम्नकोटि की होने की प्रवृत्ति पाई जाती है। यह प्रवृत्ति सदैव नहीं होती है बल्कि कुछ विशेष परिस्थितियों में ही घटित होती है। माता–पिता जो प्रतिभाशाली होते है उनके बीजकोष बालक को प्रतिभाशाली बनाते है परन्तु सदैव माता–पिता अथवा दादा व दादी प्रतिभावान ही नहीं होते है। अतः जब पित्रैक प्रतिभावान से कम प्रतिभावान मिलते है तो निम्नकोटि के गुणों का बालक में प्रादुर्भाव होता है। जिसके कारण बालक माता–पिता के समान प्रतिभावान नहीं होता है।

(2) पर्यावरण

पर्यावरण दो शब्दों से मिलकर बना है, परि + आवरण। परि का अर्थ है चारों ओर से और आवरण का अर्थ है ढ़के हुये। अर्थात् पर्यावरण का तात्पर्य चारों ओर से ढ़के हुये से है। इस प्रकार पर्यावरण में व्यक्ति को छोड़कर जो कुछ उसके चारों ओर है वह उसके पर्यावरण में सम्मिलित होता है। रास के अनुसार पर्यावरण कोई भी वाह्य शक्ति, जो हमें प्रभावित करती है, होता है[5]। जिसवर्ट

---

5. रास, इवा जे0 — सोसियॉलोजी ऐण्ड सोशल प्राबुलम्स, दि ब्रयूस पब्लिशिंग कं0, मिलवाकी, 1953, पृ0 35

ने कहा कि पर्यावरण उसको कहते है जो किसी वस्तु को चारों ओर से घेरे है तथा उस पर प्रत्यक्ष प्रभाव डालता है[6]।

इलियट के अनुसार "चेतन पदार्थ की किसी इकाई के प्रभावकारी उद्दीपन और अन्तःक्रिया के क्षेत्र को पर्यावरण कहते है[7],।"

इस प्रकार पर्यावरण के अन्तर्गत वह सभी कुछ आता है जिसका कि बालक के मानसिक, नैतिक और आध्यात्मिक जीवन से सम्बन्ध होता है।

जन्म के समय मनुष्य केवल एक सावयव होता है चूंकि पशुओं और कीड़ों के बच्चों से एकदम भिन्न होता है अतः उसे व्यक्ति की संज्ञा दी जाती है। वह व्यक्ति मनुष्य नहीं है। वह मनुष्य या मानव का रूप उस समय ग्रहण करता है जब मानवोचित गुणों का विकास होता है। उसमें इन गुणों का विकास परिवार में रहकर प्रारम्भ होता है। परिवार उसकी भूख, प्यास और संरक्षण की प्राथमिक आवश्यकताओं की पूर्ति यथोचित ढ़ग से करता है। परन्तु उनसे महत्पूर्ण आवश्यकतायें वह होती है जो उसे समूह का सदस्य होने पर अनुभव होती हैं। परिवार इन आवश्यकताओं की पूर्ति हेतु भी यथा सम्भव प्रयत्न करता है। व्यक्ति को अपने बाल्यकाल से ही ऐसी शिक्षा दी जाती है कि वह अपनी उच्च आवश्यकताओं को पूरा करने की योग्यता विकसित कर लें। व्यक्ति में मानव प्रकृति का विकास समूह के उचित पर्यावरण में ही रहकर हो सकता है। समूह के पर्यावरण से पृथक रहकर उसके विकास की कल्पना मात्र भी नहीं की जा सकती है। जब मानव शिशु को उचित सामूहिक संरक्षण और सहायता नहीं मिलती है तो उसका विकास सदैव अधूरा रहता है और जब उसे मानव का वातावरण नहीं मिलता है तो उसका विकास मानव के अनुसार न होकर जैसा पर्यावरण प्राप्त होता है उसी के अनुरूप होता है।

पर्यावरण व्यक्ति के व्यक्तित्व को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। पर्यावरण व्यक्ति के विकास पर अमिट प्रभाव डालता है। इसमें वे अनुभव जो दूसरों

---

6. जिसवर्ट पी० — फन्डामेन्टल्स आफ सोशियॉलोजी, ओरियन्ट लाँगकेस बाम्बे, 1959, पृ० 233
7. इलियट, टी०डी० — दि डिक्शनरी आफ सोशियॉलाजी, पृ० 107

के सम्पर्क से प्राप्त करता है अमिट तथा स्पष्ट प्रभाव डालते है। पर्यावरण के तत्व एक व्यक्ति के व्यक्तित्व में परिवर्तन लाते हैं। यह परिवर्तन दूसरों के व्यवहार का अध्ययन करके दृष्टिगोचर होता है। व्यवहारिक प्रतिक्रिया सम्बन्धी की गई खोजें–चिल्लाना, ईर्ष्या, चिड़चिड़ापन, शान्त प्रकृति आदि का अध्ययन किया गया तो यह संकेत मिलता है कि जैविक तथा पर्यावरण सम्बन्धी तत्व बालक के विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं। व्यक्ति एक विशेष प्रकार के सामाजिक पर्यावरण मे एक विशेष प्रकार का व्यक्तित्व बनाता है। परिवार जिसमें व्यक्ति बड़ा होता है तथा पाठशाला के अनुभव उसके विकास पर अमिट छाप डालते हैं।

व्यक्ति के व्यक्तित्व के विकास में पारिवारिक मूल्य का अपना प्रभाव होता है। माता–पिता का बालक के प्रति व्यवहार व्यक्तित्व पर अमिट छाप डालते हैं। परिवार के साथ–साथ स्कूल का प्रभाव भी बालक के विकासोन्मुख व्यक्तित्व पर पड़ता है। यदि वहाँ सन्तोषजनक अध्यापक, क्रीड़ास्थल आदि है तो इसका अच्छा प्रभाव होता है। पर इसके विपरीत होने पर बुरा प्रभाव पड़ता है। व्यक्ति जन्म के समय एक निरीह प्राणी होता है। धीरे–धीरे जिस प्रकार के सामाजिक पर्यावरण में रहता है उसी प्रकार का विकास उसमें हो जाता है इस प्रकार के अनेकों अध्ययन किये गये हैं। इस सम्बन्ध में कुछ अध्ययन प्रमुख है।

(1) कमला एवं अमला

सन् 1920 में पादरी जे0 सिंह को दो बच्चे एक भेड़िया की माँद में मिले। इनमें से एक की आयु लगभग दो वर्ष की थी और दूसरे की आठ वर्ष थी। पहले बच्चे की कुछ माह बाद मृत्यु हो गई, परन्तु बड़ी लड़की कमला जीवित रही। चूँकि कमला बचपन से ही मानव–समाज से दूर रही थी अतः उसमें कोई भी सामाजिक गुण विकसित नहीं हुये थे। पर्यावरण के प्रभाव के परिणाम स्वरूप ही वह चारों हाथ पैरों से चलती, भेड़िये के समान गुर्राती तथा भेड़िये की तरह दूध पीती थी। धीरे–धीरे मानव–समाज के पर्यावरण में रहकर उसने धीरे–धीरे बोलना सीखा, आस–पास के लोगों से विरोध कम हुआ तथा श्रीमती सिंह से उसका लगाव बढ़ गया। अतः इससे स्पष्ट हो गया कि उस पर पर्यावरण की कितनी गहरी छाप थी।

(2) अन्ना

अन्ना एक अवैध बालिका थी। उसकी माँ ने सामाजिक निन्दा के भय से उसे एक कमरे में बन्द रखा था। उसको खाना पानी देने के साथ उससे कोई सम्बन्ध नहीं रखा गया था। वह कमरे में इधर–उधर चक्कर न काटे इसलिए उसे एक कुर्सी से बाँध कर रखा जाता था।

सन् 1938 में जब वह पाँच वर्ष की थी उसे इस स्थिति से मुक्ति मिली। इस समय उसका शरीर हड्डियों का ढाँचा मात्र था। इस समय वह बोल एवं चल भी न सकती थी। अस्पताल में रखकर चिकित्सा से उसकी हालत सुधरी। बाद में उसे पिछड़े बालकों के साथ स्कूल में रखा गया। धीरे–धीरे चार साल में वह इशारे समझने लगी थी।

(3) अवेरान् का जंगली बालक

फ्रांस के अवीरा जंगल में एक बालक मिला था वह पर्यावरण के परिणामस्वरूप एक दम जंगली था और दूसरों को काटता था। जानवरों की तरह खाता और चारों हाथ पैरों से चलता था। उसको बोलना एकदम नहीं आता था वह जानवरों की तरह आवाजें निकालता था। पीनेल नामक प्रसिद्ध मनोवैज्ञानिक ने उसे जड़बुद्धि वाला बालक कहकर छोड़ दिया। उस ग्यारह वर्ष के बालक की बुद्धि एक वर्ष से कम थी। इसके बाद ईटार्ड ने उसे पालने का काम किया। आपका विश्वास था कि जड़ बुद्धि होता तो जीवित ही नहीं रहता, उसने उसका नाम विक्टर रखा। वह धीरे–धीरे पर्यावरण के प्रभाव से नहाना, कपड़े पहनना तथा चलना आदि सीख गया। वह गर्मी–सर्दी के प्रभाव को समझने लगा। वह बोलने के स्थान पर संकेत से बात करता था। इस प्रकार प्रारम्भिक अवस्था में मानव पर्यावरण की अनुपस्थिति तथा बाद में उस प्रकार का पर्यावरण प्राप्त होने पर भी विकास की गति मन्द होती है।

(4) इजावेल

यह भी अन्ना के समान ही अवैध बालिका थी। वह सात वर्ष की आयु में सन् 1938 में मिली थी। उसे भी मानव समाज का पर्यावरण नहीं मिला था। उसकी माँ गूँगी और बहरी थी। परिवार में अन्य कोई सदस्य नहीं था। सात वर्ष

की आयु में भी वह नवजात शिशु के समान थी। मानव के सम्पर्क तथा पर्यावरण में आकर उसके व्यवहार में कुछ परिवर्तन आने लगा। कुछ महीने बाद वह बोलने लगी, उसके बाद की प्रगति काफी तीव्र गति से हुई। सात माह में वह 1500से 2000 के बीच के शब्द जान गई। उसने सत्रह वर्ष की आयु में छठीं कक्षा भी पास की।

(5) कैस्पर हाउजर

सन् 1828 में नुरेमवर्ग के रास्ते पर एक सत्रह वर्ष का युवक जंगली जानवरों की तरह घूमता पाया गया। उसे जंगली जानवर उठा ले गये थे। मानव पर्यावरण से दूर रहने के फलस्वरूप उसमें मानवोचित गुणों का विकास न हो सका था। न वह चल सकता था और न ही उसके मस्तिष्क का ही विकास हुआ था वह केवल कुछ अर्थहीन आवाज निकालता था। मानव पर्यावरण से दूर रहकर उसमें मानवीय गुणों का भी विकास नहीं हो पाया था।

वंशानुक्रम तथा पर्यावरण का सापेक्ष महत्व

वंशानुक्रम तथा पर्यावरण दोनों में किसका महत्व कितना है, कौन कम महत्वपूर्ण है, कौन अधिक यह हमारे सम्मुख विचारणीय प्रश्न बना रहेगा। इस बात से सभी सहमत है कि दोनों ही विकास में अपना–अपना योगदान देते हैं। ये दो शक्तियाँ हैं जो मानव जीवन को अत्यन्त प्रभावित करती है। मानव इन दोनों शक्तियों की देन है। पर्यावरण में वे समस्त नैतिक, सामाजिक एवं बौद्धिक परिस्थितियाँ आ जाती है जो मानव जीवन को प्रभावित करती हैं। वंशानुक्रम उन गुणों का प्रतिफल है जो मानव जन्म से प्राप्त करता है। ये गुण व्यक्ति को निश्चित विशेषताऐं प्रदान करता है जिसे साँचे में ढ़ालना पर्यावरण का एकमात्र कार्य है। अतः ये दोनों व्यक्तित्व के विकास की महान शक्तियाँ है तथा एक के अभाव में दूसरा एकदम कार्य नहीं कर सकता है। यही कारण है कि एक बच्चा जो कि मानव सन्तान होता है यदि उसे जानवरों के साथ मानव समाज से दूर रखा जाय तो उसका सही विकास सम्भव नहीं होता है। दूसरी ओर यदि हम पशुओं को कितना भी मनुष्यों के मध्य रखें पर वह मनुष्य के समान क्रियायें नहीं कर सकते हैं। इस प्रकार दोनों ही महत्वपूर्ण हैं। व्यक्ति के विकास में न तो

वंशानुक्रमण ही एक मात्र कारक है न पर्यावरण, दोनों ही मानव विकास को प्रभावित करते है। अतः पर्यावरण मनुष्य के मानव रूप की तथा वंशानुक्रम उसके पशु रूप की व्याख्या करता हैं। दोनों ही एक दूसरे के साथ जुड़ हुए हैं।

मैकाइवर और पेज ने कहा है कि जीवन की प्रत्येक घटना इन दोनों का ही प्रतिफल होती है।[8] उनमें से किसी को न तो दूर कर सकते हैं और न ही पृथक कर सकते है। वास्तव में मानव के विकास में पर्यावरण और वंशानुक्रम दोनों की अलग–अलग कल्पना नहीं की जा सकती है। जिस वृक्ष का बीज होता है उससे वही वृक्ष उत्पन्न होता है। बीज के विकास के लिए पर्यावरण की आवश्यकता होती है। पर्यावरण के बिना वृक्ष का विकास सम्भव नहीं होता है। मनुष्य क्या कर सकता है यह वंशानुक्रम द्वारा निश्चित होता है। लेकिन वस्तुतः क्या करता है यह उसके पर्यावरण द्वारा निश्चित होता है। इस प्रकार पर्यावरण और वंशानुक्रम दोनों ही मनुष्य के व्यक्तित्व को प्रभावित करते हैं। इनमें से किसी भी एक कारक को पृथक नहीं किया जा सकता है । वंशानुक्रम तो केवल क्षमता प्रदान करता है लेकिन इस क्षमता के विकास का अवसर तो पर्यावरण देता है। इन दोनों में कौन अधिक महत्वपूर्ण है इस प्रकार का प्रश्न करना ऐसी ही बात करना है कि मनुष्य के लिए भोजन अधिक महत्वपूर्ण है या वायु; वास्तव में दोनों संश्लिष्ट रूप से मनुष्य के लिए अनिवार्य है। लैडिस के अनुसार वंशानुक्रम हमें विकसित होने की सामर्थ्य देता है, पर इस सामर्थ्य के विकसित होने का सुअवसर हमें पर्यावरण से ही मिल सकता है। वंशानुक्रम हमें हमारी कार्यशील पूंजी देता है और पर्यावरण हमें इसके विनियोजन (Investments) के अवसर प्रदान करता हे।[9]

(3) आत्म (Self)

तीसरा महत्वपूर्ण कारक व्यक्ति स्वयं है। आत्म के विकास पर व्यक्तित्व की विशेषतायें निर्भर होती है। आत्म वह शक्ति है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी

---

8. मैकाइवर आर0 एम0 तथा पेज, सी0 एच0 — सोसाइटी, मैकमिलन कम्पनी न्यूयार्क, 1952 पृ0 52
9. लैंडिस एन्ड लैंडिस — मैन ऐन्ड हिज इनवाइरनमेंट, न्यूयार्क, 1952, पृ0 192

ज्ञानात्मक, कार्यात्मक तथा प्रत्यक्षीकरण क्रियाओं को करने में सफल होता हैं। कूले का विचार है कि आत्म के विकास में तीन तत्व मुख्य है :

1– दूसरे व्यकित में अपनी आकृति की कल्पना

2– उस आकृति के सम्बन्ध में दूसरे के निर्णय की कल्पना

3– किसी प्रकार की आत्म भावना जैसे अहंकार या अनुशोचन[10](Modification)

1– दूसरे व्यक्ति मे अपनी आकृति की कल्पना

सामाजिक अन्तःक्रिया की आवश्यकता व्यक्ति के अस्तित्व के लिए परमआवश्यक है जब वह दूसरों के सम्पर्क में आता है तो उसमें अनेक क्रियायें–प्रतिक्रियायें होती हैं। उसको अन्तःक्रिया के मध्य अनेक अनुभव होते हैं। ये अनुभव उसे इस बात को जानने का अवसर प्रदान करते है कि दूसरे व्यक्ति उसके विषय में क्या धारणा रखते हैं तथा उसके मानसिक एवं शारीरिक क्षमताओं की विशेषतायें महत्वपूर्ण समझते हैं। वह यह समझने का प्रयत्न करता है कि उसकी अपनी स्थिति दूसरों की दृष्टि में क्या है। इसका ज्ञान सम्पर्क स्थापित करने पर ही सम्भव होता है। कूले का विचार है कि जब तक व्यक्ति दूसरों से संम्पर्क नहीं स्थापित करता है तब तक उनके विचारों दृष्टिकोणों, व्यवहारों, विश्वासों, मनोभावों आदि से अवगत होने का अवसर नहीं पाता है। इस स्थिति में वह अपने संबंध में किसी भी प्रकार का विचार बना नही सकता है।

जब वह सम्पर्क में आता है तो कल्पना के द्वारा दूसरे के मस्तिष्क में प्रवेश करके यह पता लगा लेता है कि वह उसके संबधं में क्या सोचता है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति किसी व्यक्ति से उचित व्यवहार नहीं करता तो वह पता लगा लेता है कि उसकी उसके प्रति क्या धारणा है। इस प्रकार दूसरे व्यक्तियों के व्यवहार, हावभाव, वाक्य, कथन आदि वह आइना है जिसमें व्यक्ति अपनी आकृति देखता है और किसी निष्कर्ष पर पहुँच कर अपने सम्बन्ध में कोई धारणा बनाता है।

---

10. कूले, सी0 एच0 ह्यूमन नेचर एण्ड सोशल आर्डर, पृ0 152

2– उस आकृति के संबंध में दूसरों के निर्णय की कल्पना

सम्पर्क के माध्यम से एक व्यक्ति दूसरे के विचारों तथा व्यवहारों से पूर्णरूप से अवगत होता है। वह सम्पर्क के द्वारा अपनी आकृति की कल्पना दूसरे के व्यवहार तथा अन्तःक्रिया के माघ्यम से करने के पश्चात ज्ञात कर लेने का प्रयत्न करता है कि अपनी आकृति के विभिन्न पक्षों के विषय में दूसरे व्यक्तियों की क्या धारणा है। उदाहरण के लिए यदि कोई व्यक्ति काला है या सामान्य है। उसके बाद वह जानता है कि अन्य व्यक्तियों में उसका रंग अच्छा है, खराब है, कम खराब है या अधिक खराब है। यदि समाज में काले रंग को अच्छा माना जाता तो वह अपने सम्बन्ध में समझ लेता है कि दूसरे व्यक्ति उसके प्रति गलत धारणा रखते हैं। सारांश में यह कहा जा सकता है व्यक्ति कल्पना के द्वारा दूसरे व्यक्ति या समूह की प्रतिक्रियाओं को जान लेता है और उसी कल्पना के आधार पर अपने व्यवहार का विकास करता है।

3– किसी प्रकार की आत्म भावना

व्यक्ति पहले दूसरों की अपने प्रति आकृति की कल्पना करता है उसके बाद उनके निर्णयों से अवगत होता है। निर्णयों से अवगत होने के पश्चात अपने सम्बन्ध में किसी न किसी प्रकार की भावना का विकास करता है। दुःख, सुख, ग्लानि, आशा, निराशा, आदि भावनाओं का अनुभव करता है। यदि वह यह देखता है कि उसके कार्यों को अन्य व्यक्ति अच्छा नहीं समझते हैं तो उनमें या तो परिवर्तन करने का प्रयत्न करता है या उग्र व्यवहार करने लगता है। ये दोनों परिस्थितियाँ सम्पर्क पर निर्भर होती हैं।

कूले के विचार से बच्चों में आत्म भावना के विकास की प्रक्रिया को समझना कठिन नहीं है। वे दूसरे व्यक्तियों के कार्यों मे परिवर्तन या प्रभाव को अपने कार्यों द्वारा देखते है। अर्थात वे यह जानने का प्रयत्न करते है कि उसके कार्य एवं व्यवहार का प्रभाव दूसरे को कितना प्रभावित करता है। इस प्रकार वे दूसरों का अपने प्रति प्रभाव या शक्ति को देखते है। जिस कार्य को करने से दूसरे व्यक्ति प्रसन्नता प्रकट करते है बच्चा उसको बार–बार करता है और इस प्रकार अपने में उन्हीं गुणों का विकास कर लेता है। धीरे–धीरे यह प्रक्रिया चलती रहती है और बालक सामाजिक गुणों का विकास करता है।

मीड़ ने समाजीकरण प्रक्रिया में मेरा तथा मैं (Me and I) शब्द का प्रयोग किया है। आत्म का विकास इन्हीं दोनों से होता है।

मेरा शब्द का अर्थ उन कार्यों तथा मनोवृत्तियों से है जो व्यक्ति अपने माता–पिता, सगे–सम्बन्धियों तथा खेल के साथियों और उसके पश्चात शिक्षकों, उपदेशकों, पुलिस के लोगों यहाँ तक कि काल्पनिक चरित्रों से ग्रहण करता है तथा अपनी क्रिया एवं विचार में सम्मिलित कर लेता है। इस प्रकार एक बालक अनुकरण की प्रक्रिया द्वारा दूसरे के विचारों तथा कार्यों को अपने में ग्रहण करना ही मेरा (My) की अभिव्यकित है।

जब बच्चा दूसरों के कार्यों को स्वयं करता है तो वह उनके कार्यों को ही नहीं दोहराता है जिनको कि दूसरों से ग्रहण करता है बल्कि वह उन क्रियाओं को भी अपने कार्यों तथा व्यवहारों में जोड़ लेता है जो अन्तःक्रिया द्वारा प्राप्त करता है। अन्तःक्रिया के द्वारा उसमें नवीन व्यवहार का विकास होता है। इन दोनों की मिली–जुली क्रिया व्यवहार का रूप जब बालक में ग्रहण कर लेती है तो उसे मैं की अभिव्यक्ति समझा जाता है। प्रारम्भिक अवस्था में मै उन आवश्यकताओं से सम्बन्धित है जो उसकी प्रारम्भिक संप्रेरणायें होती है। अर्थात मैं का सम्बन्ध उस समय प्राथमिक आवश्यकताओं, भूख, प्यास आदि से होता है परन्तु उनकी संतुष्टि के साधन सामाजिक होने के कारण उसका व्यवहार सामाजिक हो जाता है। अर्थात वह अन्य प्राणियों की तरह जैविकीय ही नहीं है बल्कि बुद्धि तर्क तथ चेतना को भी प्रयोग करना जानता है। दूसरे व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया जब संपन्न होती है तो दूसरे के व्यवहारों तथा कार्यों का प्रभाव पड़ता है। इसके कारण आवश्यकताओं की पूर्ति के समय उनका ढंगों पर प्रभाव पड़ता है। सांराश में कह सकते हैं कि मैं व्यक्ति की दूसरी मनोवृत्ति का एक संगठित स्वरूप हे, जिसे व्यक्ति ने स्वयं अपना लिया है।[11]

समाजीकृत व्यक्ति में दो आत्म (Self) होते हैं जो दो भिन्न–भिन्न प्रकार के आधारों पर निर्भर होते हैं। पहले प्रकार का आत्म प्राथमिक या जन्मजात आवश्यकताओं से सम्बन्धित होता है अर्थात एक का सम्बन्ध प्राणिशास्त्रीय

---

11. मीड, जार्ज0 एच0 — माइन्ड, सैल्फ ऐण्ड सोसाइटी, शिकागो यूनिवर्सिटी प्रेस, शिकागो, 1934, पृ0 172।

प्रकृति पर आधारित होता हैं। दूसरे प्रकार का आत्म समाज जनित विशेषताओं पर आधारित होता है। उसका विकास दूसरे की भूमिकाओं तथा कार्यों को ग्रहण कर लेने के बाद होता है। पहले प्रकार का आत्म (Self) मैं से सम्बन्धित होता है और दूसरे प्रकार का आत्म (Self) मेरा (My) से सम्बन्धित होता है।

समाजीकृत व्यक्ति

मीड के विचार से समाजीकृत व्यक्ति वह होता है जो अपनी आवश्यकताओं तथा सामाजिक मनोवृत्तियों एवं कार्यों के बीच संघर्ष को ठीक प्रकार से समाधान कर लेता है अर्थात मैं, तथा मेरा का इस प्रकार से वह एकीकरण करता है कि उसकी आवश्यकतायें समाज की मान्यताओं तथा मनोवृत्तियों के अनुकूल होती है। आत्म के दोनों पक्ष व्यक्ति को सामाजिक बनाते हैं। आत्म वास्तव में एक ऐसी सामाजिक प्रक्रिया है जो एक–दूसरे से पृथक किये जाने वाले इन दोनों पक्षों (अर्थात मैं और मुझे) के साथ–साथ चलती हैं। यदि आत्म के ये दो पक्ष न हो तो न तो कोई चेतन उत्तरदायित्व हो और न ही अनुभव में काई नवीनता आये।[12]

4— सीखना

(Learning)

जन्म के समय बालक अबोध तथा असहाय होता है परन्तु सीखने की प्रक्रिया द्वारा वह दूसरों के अनुभवों से लाभ उठाता है। यह प्रक्रिया जीवन पर्यन्त चलती रहती है तथा इसी के माध्यम से उसके व्यवहार में परिवर्तन आता है। अतः उचित एवं सामान्य सीखने की प्रक्रिया का होना व्यक्तित्व के सामान्य विकास के लिए आवश्यक होता है। इस प्रक्रिया में तीन मुख्य कारकों का समावेश होता है :

(1) प्रौढ़ता (Maturation)

(2) उत्तेजक तथा प्रत्युत्तर (Stimulus and Response)

(3) आदत (Habit)

---

12. मीड, जी0 एच0 उपर्लिखित— पृ0 178।

प्रौढ़ता प्राकृतिक एवं स्वाभाविक क्रिया है। इसकी वृद्धि के साथ–साथ सीखने में भी वृद्धि होती जाती है। सीखने मे उत्तेजक का विशेष महत्व होता है। उत्तेजक के प्राप्त होने पर ही वह किसी प्रकार का प्रत्युत्तर करता है जिसके परिणामस्वरूप सीखने की प्रक्रिया बढ़ती है। प्रत्येक व्यक्ति में विभिन्न प्रकार के उत्तेजकों के लिए प्रत्युत्तर का एक वर्ग होता है जिसे आदत परिवार (Habit Families) कहते हैं। आदत ही सीखने की सीमा निर्धारित करती है।

सीखने के निम्नलिखित नियम प्रमुख हैः–

(1) अभ्यास का नियम (Law of Exercise)

(2) प्रभाव का नियम (Law of Effect)

(3) संम्बद्ध प्रत्यावर्तन का नियम (Low of Conditioning)

(4) पुरस्कार तथा दण्ड (Reward and punishment)

(5) स्थानापन्नता का नियम (Law of substitution)

व्यक्ति जब बार–बार किसी कार्य को करता एवं दोहराता है तो वह उसे सीख लेता हैं क्योंकि वह क्रिया उसके व्ययवहार का अंग बन जाती है। ध ीरे–धीरे वह क्रिया विशेष करने का इतना आदी हो जाता है कि उसे कार्य करने का अनुभव तक नहीं होता है। स्वतः कार्य करने की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। परन्तु अभ्यास के साथ–साथ लक्ष्यों का निर्धारण भी होना आवश्यक होता है। यदि लक्ष्य स्पष्ट नहीं होते हैं तो सीखने की गति शिथिल होती है। इसके अतिरिक्त क्रिया सामान्य होनी चाहिए तभी सामान्य सीखना सम्भव हो सकता है। दोषपूर्ण क्रिया तथा पद्धति के कारण असामान्य व्यवहारिक लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

व्यक्ति उद्देश्य प्राप्ति के लिए अनेक प्रकार की क्रियायें करता है जिन क्रियाओं से वह लक्ष्य प्राप्त करने में असफल रहता है, उन्हें छोड़ देता है परन्तु जिनसे उसे सफलता प्राप्त होती है, उन्हें अपने जीवन में सम्मिलित कर लेता है। अतः सकारात्मक पुष्टीकरण का होना सामान्य सीखने एवं सामान्य व्यवहार के लिए आवश्यक होता है।

सीखने में सम्बद्ध प्रत्यावर्तन का नियम भी महत्वपूर्ण है। इस नियम के अनुसार जब किसी बालक को एक निश्चित परिस्थिति में एक निश्चित प्रकार का

व्यवहार करना सिखाया जाता है तो वह बाद में उस प्रकार की स्थिति उत्पन्न होने में वैसा ही व्यवहार करता है। चित्र तथा प्रतीक (स्थानापन्न) भी व्यक्ति में सीखने की प्रक्रिया को सुदृढ़ करते हैं। पुरस्कार तथा दण्ड का नियम सबसे महत्वपूर्ण नियम है। जिन कार्यों को करने से बालक का पुरस्कार मिलता है तथा उसकी प्रशंसा की जाती है वह उस प्रकार का कार्य तथा व्यवहार बार–बार करता करता है। उस प्रकार के कार्य एवं व्यवहार को अपनी जीवन शैली का अंग बना लेता है। परन्तु जिस कार्य को करने से दण्ड मिलता है उसका छोड़ देता है। इस प्रकार प्रतिकूल दशा में बढ़ने से उस पर रोक लगती है। अतः आवश्यक है कि दण्ड एवं पुरस्कार की उचित व्यवस्था हो अन्यथा सामान्य विकास सम्भव नहीं हो सकता है। क्योंकि सीखने से ही विचारों, आदतों तथा अभिवृत्तियों का निर्माण होता है।

5. सम्प्रेरणा
(Motivation)

व्यक्ति का व्यवहार कुछ प्रेरकों द्वारा नियन्त्रित तथा संचालित होता है। इस नियन्त्रण तथा संचालन के साथ–साथ इनका कार्य व्यवहार को रूपान्तरित भी करना होता है। जब कोई व्यक्ति भूखा होता है तो वह खाने की तलाश करता है। इस अवस्था में ऐसे तत्वों को ढूंढा जा सकता है जो उसकी क्रिया को आरम्भ करते हैं इसके साथ ही साथ उसके कार्यों का पथ प्रदर्शन करने तथा सफलता एवं असफलता होने की अवस्था में व्यवहार को मोड़ते हैं। इन तत्वों को जिनसे व्यक्ति कार्य प्रारम्भ करता है, जिनसे व्यवहार का पथ प्रदर्शन होता है तथा व्यवहार में परिवर्तन होता है, प्रेरक (Motives) कहते हैं। व्यक्ति खाना इसलिए तलाश करता है क्योंकि भूख एक प्रेरक है और यह प्रेरक व्यक्ति को खाना तलाश करने के लिए मजबूर करता है, उसको स्फूर्ति प्रदान करता है तथा व्यवहार को प्रभावित करता है। इस प्रकार से प्रेरक मानव प्रकृति का कच्चा पदार्थ (Raw material of Human nature) है जिससे हमारे सामाजिक एवं शारीरिक कार्य सम्भव होते हैं। प्रेरकों की उचित संतुष्टि हो जाने पर ही व्यक्ति सामाजिक अनुकूलन प्राप्त करता है। यदि प्रेरकों की उचित संतुष्टि नही होती है तो व्यक्ति असामान्य व्यवहार करने लगता है। उदाहरण के लिए यदि भूख के प्रेरक की संतुष्टि नहीं होती तो व्यक्ति किसी भी प्रकार का व्यवहार कर सकता है।

सम्प्रेरणाओं का वर्गीकरण

जैव जनित (जन्मजात) समाज जनित (अर्जित)

भूख प्यास काम सामान्य व्यक्तिगत

सामूहिकता आत्म स्थापन संग्रह युयुत्सा

आदत जीवन लक्ष्य आकांक्षा का स्तर अभिरुचि मनोवृत्ति संवेग

अचेतन संप्रेरणायें

जैवजनित सम्प्रेरणाएं– इन सम्प्रेरणाओं का आकार शारीरिक क्रियाएं होती हैं। ये उन क्रियाओं को करने के लिए प्रेरित करती हैं जो जीवन के लिए आवश्यक होती हैं जैसे–भूख, प्यास, काम।

समाजजनित सम्प्रेरणाएं– ये वे सम्प्रेरणाएं होती हैं जो समाज से प्राप्त होती है और व्यक्ति समाजीकरण की प्रक्रिया द्वारा प्राप्त करता है।

भूख

भूख की यह विशेषता है कि वह व्यक्ति को सक्रिय बनाती है। भूख से व्यक्ति बेचैन हो जाता है तथा उसकी बेचैनी तभी दूर हो सकती है जब उसकी भूख दूर हो जाय। भूख लगने पर व्यक्ति न केवल सक्रिय होता है बल्कि भूख मिटाने के लिये विशिष्ट प्रकार की क्रियायें करता है जिसके सम्पन्न करने से व्यक्ति की भूख मिट जाती है। परन्तु यह भूख कुछ समय के लिए ही लुप्त होती

है। और कुछ समय बाद फिर सक्रिय होकर कार्य करने लगती है। जब इस आवश्यकता की पूर्ति नहीं होती है तो उसमें तनाव उत्पन्न हो जाता है तथा शारीरिक संतुलन भंग हो जाता है। शारीरिक संतुलन समस्थिति (Homeostasis) के द्वारा किया जाता है।

जब व्यक्ति को आमाशय में खालीपन का अनुभव होने लगता है तब भूख लगती है। भूख की स्थिति में दो प्रकार का परिर्वतन होता है–

(1) वाह्य व्यवहारों में परिवर्तन।

(2) शरीर की दशा में परिवर्तन।

वाह्य परिवर्तनों के संबधं में टालमेन (Talmann), हाजिक (Hanzik) एवं राबिन्सन द्वारा चूहों पर किये गये परीक्षण अधिक उपयोगी सिद्ध होंगे। उन्होंने अपने प्रयोग में पाया कि भूख की अवस्था में चूहे कम गलतियां करते हैं तथा अधिक सक्रिय हो जाते हैं।

शारीरिक दशाओं में परिवर्तन के संबधं में यह स्पष्ट हो गया है कि पेट में सिकुड़न भूख के साथ–साथ होती है। भूख शारीरिक अवस्था की पूर्ति है परन्तु इससे संबन्धित व्यक्ति के व्यवहार पर समाज तथा परिवार का भी प्रभाव पड़ता है। भूख लगने पर उन विधियों को अपनाता है जो समाज द्वारा स्वीकृत होती है। हम कहीं भी तथा किसी भी अवस्था में खाना प्रारम्भ नहीं करते हैं।

भूख व्यक्ति पर अनेक प्रकार से प्रभाव डालती है। भूखे व्यक्ति का कोई भी कार्य करने में मन नहीं लगता है। उसका सारा ध्यान भूख पर चला जाता है। उस वक्त उसे भोजन ही चाहिए। भोजन न मिलने पर या भूख की अवस्था में बौद्धिक क्रियाओं को रोक देता है। श्रम से जी चुराने लगता है तथा श्रम बंद हो जाता है। बोमेन (Bowman) तथा उनके साथियों ने अपने प्रयोग के आधार पर यह निष्कर्ष निकाला है कि ऐसा बिरला ही व्यक्ति मिला जिसने भुखमरी के अन्त तक प्रणय क्रिया को बनाये रखा हो। प्रफुल्लित रोमांस निष्प्राण हो गये और कुछ व्यक्तियों को तो इस बात का आश्चर्य रहा कि वे अब तक किस प्रकार एक लड़की विशेष में इतनी रूचि रखते रहे।

प्यास

प्यास भी एक शारीरिक अवस्था है जो व्यक्ति को क्रिया आरंभ करने के लिए प्रेरित करती है। प्यास जब लगती तो व्यक्ति में बेचैनी बढ़ती है तथा जब तक बुझती नहीं है तब तक बेचैनी समाप्त होने के बजाय बढ़ती जाती है। प्यास की अवस्था में व्यक्ति प्यास मिटाने के लिए किसी भी सीमा तक जा सकता है। इस संप्रेरणा पर भी समाजीकरण का प्रभाव पड़ता है। वह सीखता है कि किस प्रकार पानी पिया जाय, किन वर्तनों का उपयोग किया जाय तथा कहाँ से पीने का पानी उपलब्ध किया जाय।

काम

काम इच्छा को मनोविश्लेषक बहुत ही महत्व देते हैं। फ्रायड का सम्पूर्ण मनोविज्ञान काम पर निर्भर करता है। कामेच्छा सम्प्रेरणा प्रत्येक व्यक्ति में पाई जाती है और उसका व्यवहार तद्नरूप परिवर्तित होता है। कामेच्छा यद्यपि सभी आयु स्तरों में कुछ न कुछ कार्य करती है परन्तु किशोर अवस्था में सम्भोग की प्रेरणा अत्यधिक बढ़ जाती है। वृद्धावस्था में इसमें अत्यधिक कमी हो जाती है। पशुओं में ऋतु के अनुसार कामेच्छा बढ़ती है। जब काम की इच्छा प्रबल होती है तो सक्रियता बढ़ जाती है।

कामेच्छा में व्यक्तिगत भिन्नता भी होती है तथा इस भिन्नता का आधार सामाजिक परम्परायें होती हैं। कामेच्छा की संतुष्टि के लिए उचित अवसरों का होना आवश्यक होता है और यदि इसकी संतुष्टि नहीं होती है तो व्यक्ति असामान्य व्यवहार करने लगता है।

सामाजिक सम्प्रेरणायें

शारीरिक प्रेरकों के अतिरिक्त सामाजिक प्रेरक व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करते हैं तथ उनको भी संतुष्ट करना उतना ही आवश्यक होता है जितना कि भूख एवं प्यास। इन सम्प्रेरणाओं की उत्पत्ति सामाजिक प्रभावों के कारण होती है। शेरिफ तथा शेरिफ के अनुसार "समानजनित प्रेरक वे हैं जिन्हें व्यक्ति द्वारा अपने सामाजिक तथा सांस्कृतिक पर्यावरण से प्राप्त किया जाता है।" सामाजिक मूल्य, सामाजिक आदर्श एवं सामाजिक अवरोध व्यक्ति के अभिप्रेरकों

को प्रभावित करते हैं। ये सम्प्रेरणायें जैविक सम्प्रेरणाओं पर भी नियन्त्रण रखती हैं। सामाज जनित प्रेरकों को दो भागों में वर्गीकृत किया जाता है।

(1) सामान्य सम्प्रेरणाएं (General Motivations)

(2) व्यक्तिगत सम्प्रेरणायें (Personal Motivations)

सामान्य सम्प्रेरणायें

सामान्य सम्प्रेरणाओं का तात्पर्य ऐसी सम्प्रेरणाओं से है जो प्रत्येक को सामाजिक व्यवहार करने की प्रेरणा देते हैं। इस प्रकार की सम्प्रेरणाएं निम्न हैं–

सामूहिकता
(Gregariousness)

यह एक समाजजनित प्रेरणा है। यह प्रेरणा मनुष्यों में ही नहीं बल्कि पशुओं में भी पाई जाती है। इस प्रेरक का आधार सुरक्षा है। वे समूह में इसलिए रहते हैं जिससे शत्रु से अपनी रक्षा संभव हो सके। इसके अतिरिक्त उसकी अनेक सामाजिक, आर्थिक तथा शारीरिक आवश्यकताएं होती हैं जिनकी पूर्ति वह स्वयं अकेले नहीं कर सकता है अतः दूसरों का सहयोग प्राप्त करना उसके लिए अनिवार्य होता है। ऐसा होना तभी संभव हो पाता है जब वह समूह में रहता है। जन्म के समय बालक इतना असहाय होता है कि वह स्वयं कुछ नहीं कर सकता है। अतः जन्म से दूसरों के साथ रहने की इच्छा प्रबल हो जाती है। परन्तु यह प्रेरणा जन्मजात नहीं है। हाब हाउस (Hob House) के मतानुसार यह प्रेरणा सर्वव्यापी नहीं हैं। सभी व्यक्ति समूह में रहना पंसद नहीं करते। ब्राजील में अनेक परिवार दूसरे परिवार से अलग रहना चाहता हैं। अतएव हम कह सकते हैं कि साम्प्रदायिकता की सम्प्रेरणा संस्कृति से सीखी जाती है।

आत्म प्रकाशन
(Self Assertion)

आत्म प्रकाशन की प्रेरणा सभी व्यक्तियों में पाई जाती है इसलिए मैकडुगल (Mc Dougall) ने इसे जन्मजात या मूल प्रवृत्ति की संज्ञा दी है। प्रत्येक व्यक्ति में यह प्रवृत्ति पाई जाती है कि वह अपने आपको दूसरों की अपेक्षा महत्वपूर्ण महसूस करें, दूसरों से शक्तिशाली हो तथा शत्रुओं पर उसकी

धाक हो अर्थात् वह सबसे अधिक महत्व का व्यक्ति हो। इसी प्रेरणा से प्रेरित होकर व्यक्ति इच्छाओं तथा कामनाओं को आत्म प्रकाशन कर पूरा करता है। वह मेहनत इसीलिए करता है कि जिससे उसका अधिक से अधिक प्रभाव बढ़े। इन सभी तत्वों के उपस्थित होने के बावजुद भी इस सम्प्रेरणा को मूल सम्प्रेरणा नहीं मान सकते हैं क्योंकि कुछ समाजों में यह प्रेरणा बिल्कुल नहीं पाई जाती है। एरापेश पहाड़ी जाति में भी यह प्रेरणा बिल्कुल नहीं मिलती है। जूनी जाति तथा होपी जाति में भी यह प्रेरणा बहुत कम होती है। इस प्रेरणा का आधार प्रतियोगिता तथा संपर्क हैं। जिन समाजों में जितनी अधिक प्रतियोगिता तथा स्पर्धा होती है वहाँ के व्यक्ति उतने ही प्रभावपूर्ण प्रेरक रखते हैं। जहाँ पर स्पर्धा का महत्व नहीं होता है वहाँ के लोग इस सम्प्रेरणा से वंचित रहते हैं।

संग्रहता

(Acquisitiveness)

संग्रहता की सम्प्रेरणा शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए विकसित होती है। व्यक्ति विभिन्न वस्तुओं का अर्जन इसलिए करता है कि जिससे वह भविष्य में उसको जीवित रहने के लिए सुरक्षा प्राप्त हो सके।

यह प्रेरणा वास्तव में बचपन से ही कार्य करने लगती है। जो वस्तुयें उसे पसंद होती हैं उनका वह संग्रह करता है। बड़े होने पर सामाजिक मूल्य के अनुरूप संग्रह करना प्रारम्भ करता है। यह सम्प्रेरणा व्यक्ति को अधिक मेहनत करने तथा उचित दिशा प्रदान करने में सहायता करती है।

यद्यपि यह प्रेरणा जीवन के प्रारम्भ से कार्य करती है परन्तु यह जन्म से नहीं पाई जाती है। मेलेनिशियन (Malaneosian) जाति के लोगों में जाति के प्रत्येक व्यक्ति का सम्पत्ति में बराबर अधिकार होता है। उनकी कोई व्यक्तिगत सम्पत्ति नहीं होती है तथा संग्रहता की प्रेरणा बिलकुल विकसित नहीं है।

युयुत्सा

(Pugnacity)

यह प्रवृत्ति व्यक्ति को संघर्ष के लिए प्रेरित करती है। मैकडुगल ने इस प्रवृत्ति को जन्मजात माना है क्योंकि बच्चे में संघर्ष की भावना प्रारम्भ से ही होती

है। शारीरिक पूर्ति में बाधा उपस्थित होने से व्यक्ति संघर्ष की स्थिति मे आ जाता है। परन्तु यह सम्प्रेरणा भी जन्मजात नहीं है क्योंकि सभी समाजों में समान रूप से यह नहीं पाई जाती है। क्वाक्टिल (Kauktle) जाति के लोग अधिक संघर्ष करते हैं, उनमें सहनशीलता बिलकुल नहीं होती है। इसके विपरीत होपी जाति के लोग बहुत शांत होते हैं। एस्किमों भी लड़ना पंसद नहीं करते हैं। अतः स्पष्ट है कि इस सम्प्रेरणा का आधार समाज एवं संस्कृति है। जो संस्कृति लड़ना झगड़ना सिखाती है उसके निवासी इसको बहुत अधिक महत्व देते हैं।

उपर्लिखित सामान्य सम्प्रेरणाओं के अतिरिक्त दो अन्य सम्प्रेरणाओं को भी सामाजिक माना जाता है वे हैं–

(1) प्रशंसा तथा निन्दा (Praise and Blame)

(2) आत्म रक्षण (Self preservation)

प्रशंसा तथा निन्दा

प्रशंसा पाने की प्रवृत्ति भी व्यक्तियों में पाई जाती है। यह व्यवहार को निर्धारित करने में सबसे महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। व्यक्ति उन कायों को करने के लिए अधिक प्रेरित होता है जिनसे उसे प्रशंसा एवं मान्यता प्राप्त होती है। इससे उसे आन्तरिक आनन्द प्राप्त होता है। समाजीकरण की सम्पूर्ण प्रक्रिया प्रशंसा पर निर्भर होती है। बालक ऐसे कार्य करना धीरे–धीरे त्यागता जाता है जिनसे उन्हें दण्ड मिलता है।

आत्मरक्षा

फायड के मतानुसार प्रत्येक व्यक्ति संतान उत्पन्न करके अपने को अमर बनाना चाहता है। आत्म रक्षा के लिए वह अनेक उपाय करता है।

व्यक्तिगत सामाजिक सम्प्रेरणायें

उपर्लिखित सामान्य प्रेरणाओं के अतिरिक्त कुछ व्यक्तिगत सम्प्रेरणायें भी होती हैं जिनको वह विकसित कर लेता है। ये सम्प्रेरणायें व्यक्ति विशेष के व्यक्तित्व पर निर्भर होती हैं। अतः व्यक्ति–व्यक्ति की व्यक्तिगत सम्प्रेरणाओं में भिन्नता पाई जाती है। उदाहरण के लिए प्रत्येक व्यक्ति की आदत, आकाँक्षा का स्तर, मनोवृत्ति इत्यादि पृथक–पृथक होती हैं।

जीवन लक्ष्य

(Life goal)

प्रत्येक व्यक्ति का कोई न कोई जीवन लक्ष्य होता है उसकी पूर्ति के लिए वह उसी दिशा में प्रयत्न करता है तथा उसकी क्रियायें एवं व्यवहार निर्देशित होता है। ये लक्ष्य व्यक्ति को परिश्रम करने की शक्ति प्रदान करते है तथा वह मार्ग की बाधाओं को दूर करने में समर्थ होता है। जो विद्यार्थी आई. ए. एस. बनना चाहता है उसका प्रयत्न व्यापारी बनने वाले या इंजीनियर बनने वाले से बिलकुल भिन्न होता है। समान जीवन लक्ष्य होने पर भी व्यवहार आवश्यक नहीं है कि एक सा ही हो। इसका कारण सामाजिक पर्यावरण तथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत सीमाएँ होती है।

आदत की शक्ति

(Force of Habit)

आदतें महत्वपूर्ण होती है। जिस चीज के सेवन की व्यक्ति को आदत पड़ जाती है उसकी प्राप्ति उसके लिए आवश्यक हो जाती है। आदत को व्यक्ति की दूसरी प्रकृति (Second nature of man) इसीलिए कहा जाता है। आदत की शक्ति व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती है। शराब पीने वाला व्यक्ति शराब के बिना व्याकुल तथा बेचैन हो जाता है और कोई भी कार्य सामाजिक अथवा असामाजिक करने के लिए तत्पर हो जाता है। जेम्स (James) ने इस सन्दर्भ में कहा है कि आदत समाज का विरॉट गतिपालक चक्र एवं उसका सर्वाधिक संरक्षक है।[13] केवल आदत ही जीवन के कठोर मत और सहानुभूति रहित रास्तों पर चलने के लिए तैयार लोगों को इस प्रकार रोके रहती है कि वे उन रास्तों अर्थात कार्यों को छोड़ नहीं पाते।

आकाँक्षा का स्तर

(Level of aspiration)

जीवन लक्ष्य की भाँति व्यक्तियों की विभिन्न आकांक्षायें होती हैं जैसे नौकरी प्राप्त करना, विवाह करना, एम. ए. करना इत्यादि। प्रत्येक व्यक्ति की आकांक्षा का स्तर होता है। कोई सूखी रोटी में प्रसन्न है और कोइ लखपति हो

---

13. जेम्स, विलियम दि प्रिंसपल्स आफ साइकालोजी, वाल्यूम 1 पृ0 121

कर भी असंतुष्ट है। किसी की अकांक्षा का स्तर केवल 400 रूपये की नौकरी प्राप्त करना है तो किसी का स्तर बहुत बड़ा रोजगार या व्यवसाय करने का है। अकांक्षा का स्तर व्यक्ति के प्रयत्नों को प्रभावित करता है। उसका व्यवहार भी इससे निश्चित होता है। उदाहरण के लिए एक विद्यार्थी 59.9% अंक पाकर आत्म–हत्या कर लेता है परन्तु दूसरा विद्यार्थी 33 % अंक पाकर भी बहुत आनंदित एवं खुश होता है। इन दोनों विद्यार्थियों के व्यवहारों में अन्तर का कारण आकांक्षा का स्तर है। पहला विद्यार्थी प्रथम श्रेणी पाने के लिए प्रयत्नशील था परन्तु दूसरे विद्यार्थी का केवल पास होना ही उसका एक मात्र लक्ष्य था।

अभिरुचियाँ
(Interests)

प्रत्येक व्यक्ति की अभिरुचियाँ पृथक–पृथक होती हैं। इन रुचियों के विकास में सामाजिक प्रभावों का विशेष हाथ होता है। इनका कार्य व्यक्ति में कार्य करने की भावना एवं जिज्ञासा का विकास करना तथा मन लगाकर उस कार्य को पूरा करना है। वह उन अभिरुचियों को अवश्य पूरा करना चाहता है जिससे उसे प्रसन्नता प्राप्त होती है। अभिरुचियों से न केवल व्यक्ति का व्यवहार एवं कार्य प्रभावित होता है बल्कि ध्यान भी प्रभावित होता है। हमारा ध्यान उसी दिशा में जाता है जिस ओर अभिरुचि होती है। ध्यान आकर्षित करके अभिरुचियाँ व्यक्ति को गतिशील बना देती है। स्ट्रांग के अनुसार...... अभिरुचि में सुख का भाव तथा वस्तु के प्राप्त करने एवं उसके सम्बन्ध में कुछ करने की गतिशील प्रवृत्ति होती है। अभिरुचियों के निर्माण में परिवार का हाथ मुख्य होता है। जिस परिवार में पूजा–पाठ अधिक होता है उस परिवार के बालक में आध्यात्मवाद की रुचि विकसित होती है। इसके प्रभाव के कारण ही व्यक्तियों में साहित्य, विज्ञान, कला, व्यवसाय आदि क्षेत्रों में रुचि विकसित होती है।

मनोवृत्ति
(Attitudes)

मनोवृत्ति एक मानसिक तथा स्नायुविक तत्परता है जो अनुभवों द्वारा संगठित होती हैं, जो व्यक्ति के प्रत्युत्तर का निर्दिष्ट गतिगामी प्रयत्न उन सब वस्तुओं तथा स्थितियों के प्रति करती है, जिनसे वह सम्बन्धित है। क्रेच तथा

क्रचफील्ड के अनुसार मनोवृत्ति को स्थाई प्रेरणाओं, संवेगों, प्रत्यक्षीकरण तथा ज्ञानात्मक प्रक्रियाओं के उस संगठन के रूप में परिभाषित कर सकते हैं जो कि वैयक्तिक संसार के कुछ पहलुओं से सम्बन्धित है। मनोवृत्ति एक आन्तरिक दशा है जो व्यक्ति को किसी कार्य करने अथवा छोड़ने के लिए प्रेरित करती है। इस प्रवृत्ति के कारण ही व्यक्ति उन वस्तुओं की ओर अधिक अग्रसित होता है जिनको वह पसन्द करता है। मनोवृत्ति के निर्माण मे सांस्कृतिक कारक महत्वपूर्ण योगदान देते हैं। समाजीकरण द्वारा व्यक्ति सामाजिक ज्ञान प्राप्त करता है तथा जिसके फलस्वरूप मनोवृत्तियों का निर्धारण होता है। उचित तथा अनुचित भावना पर ही मनोवृत्तियाँ आधारित होती हैं। व्यक्तियों की मनोवृत्तियाँ भिन्न–भिन्न प्रकार की होती हैं। व्यक्तियों की मनोवृत्तियाँ भिन्न–भिन्न वस्तुओं तथा भिन्न–भिन्न परिस्थितियों के प्रति अलग–अलग होती हैं। इसी मनोवृत्ति के आधार पर कोई व्यक्ति वस्तु या परिस्थिति के विषय में सोचता है तथा उससे सम्बन्ध स्थापित करता है। मनोवृत्तियाँ व्यक्ति के व्यवहार को प्रभावित करती हैं। उदाहरण के लिए यदि व्यक्ति दहेज प्रथा को बुराई समझता है तो वह अपनी या अपने लड़के की शादी में दहेज नहीं लेगा। इसी प्रकार यदि हरिजनों के प्रति उचित मनोवृत्ति है तो उनके साथ व्यवहार भी सामान्य होगा।

अचेतन सम्प्रेरणायें
(Unconscious Motivations)

जिन इच्छाओं व कामनाओं की पूर्ति नहीं हो पाती है वे अचेतन मन में दब जाती है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि वे नष्ट हो जाती हैं या समाप्त हो जाती हैं बल्कि अचेतन मन में रहकर संतुष्ट होने का प्रयास करती हैं। फ्रायड ने मानव जीवन तथा व्यवहार में इन चेतनाओं को विशेष महत्व दिया है क्योंकि अचेतन मन का प्रभाव चेतन क्रियाओं पर पड़ता है। चेतन मन की क्रियायें छिपी रहकर चेतन स्तर की क्रियाओं को संचालित करती हैं। जब अचेतन मन अधिक शक्तिशाली हो जाता है या व्यक्ति उन संवेगों को दबा देता है जो उसे कष्ट पहुँचाते है तो मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते हैं। हिस्टीरिया के रोगी इसके उदाहरण हें जो बालक पानी में डूबते–डूबते बच जाता है वह पानी से डरने लगता है तथा थोड़ा भी पानी होने पर भी उसका व्यवहार सामान्य नहीं रहता हैं। नदी में घुटनों तक पानी होने पर भी वह उसमें उतर नहीं सकता है।

समायोजन का अर्थ

जब हम किसी व्यक्ति को सम्बोधित करते हुये कहते हैं कि वह अच्छी प्रकार से समायोजित, मनोवैज्ञानिक रूप से स्वस्थ तथा सुखमय जीवन व्यतीत कर रहा है तो इसका तात्पर्य यह नहीं कि वह या उसकी परिस्थितियाँ किसी एक प्रकार की निलम्बित उत्कृष्ठता (Suspended perfection) में स्थिर हो गई हैं तो इसका तात्पर्य यह है कि वास्तविक समस्यायें जिनसे वह संघर्ष करता है वे न बल्कि संख्या में अधिक हैं और न ही अधिक शक्तिशली, बल्कि वे उसके प्रबन्ध की सीमा में है तथा दिन–प्रतिदिन की समस्याओं से निपटने के लिए उसकी प्रणाली यथोचित तथा अल्पव्ययी है।[14]

समायोजन एक सार्वभौमिक तथा निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है। जीवित अवयव साधारण से जटिल अवस्था में निरन्तर समायोजन का प्रयास करता है। इस समायोजन का सम्बन्ध प्राणिशास्त्रीय आवश्यकताओं जैसे भूख तथा प्यास, की संतुष्टि से सम्बन्धित होती है अथवा मानवीय स्तर पर मनोवैज्ञानिक आवश्यकताओं जैसे सम्बन्ध स्थापना की इच्छा, प्रेम तथा वात्सल्य प्राप्त करने की इच्छा या रचनात्मक आत्म प्रदर्शन के अवसर प्राप्त करने की इच्छा, की पूर्ति से होता है।[15]

हमारी दिन–प्रतिदिन की क्रियाओं का अधिकांश सम्बन्ध समायोजन तथा अनुकूलन से होता है। हम अनेक यन्त्रों को इस प्रकार से यथा स्थान पर व्यवस्थित करते हैं जिससे उनकी कार्यात्मकता में वृद्धि होती है।

इस अर्थ में समायोजन का तात्पर्य किसी वस्तु को इस प्रकार से व्यवस्थित एवं संगठित करना जिससे जिस उद्देश्य के लिए वह बनाया गया है,

---

14. जाहोडा, मेरिई, — दि मीनिंग आफ साइकोलाजिकल हेल्थ, इन सोशल–वेलफेयर फोरम 1953, इन दि बुक पर्लमैन एच, एच.: सोशल केसवर्क : ए प्राबुलम साल्विंग प्रोसेस, दि यूनिवर्सिटी आफ शिकागो प्रेस, शिकागो, 1957, पृ0 53

15. लेहनर जे0 एफ0 ऐण्ड क्यूबे इला, — दि डायनामिक्स आफ पर्सनल एडजस्टमेंट, प्रेन्टिस हाल, इंगलैंड फिलफस, 1956, पृ0 3

उसकी पूर्ति सम्भव हो सके। इसी प्रकार हम सामाजिक परिस्थितियों तथा दशाओं को पर्यावरण मे इस प्रकार समायोजित करने का प्रयत्न करते है जिससे क्रियाओं के प्रतिदिन के कार्यक्रम सरलता से चल सकें।[16]

हम पर्यावरण के तत्वों को अपनी आवश्यकताओं तथा रुचियों को प्राप्त करने के लिए समायोजित करने का निरन्तर प्रयत्न करते रहते हैं। परन्तु इस कार्य के साथ–साथ हम अपनी मनोवृत्तियों तथा व्यवहारों को भी समय के अनुसार बदलते रहते हैं जिससे अधिक से अधिक व्यकितगत समास्याओं के समाघान सन्तोष प्राप्त करते हुये सामाजिक सम्बन्धों को सुदृढ़ बनाते हैं। पर्यावरण का समायोजन तथा आत्म का समायोजन दोनों ही व्यक्तित्व विकास के मूलाधार हैं। व्यक्ति का इन परिवर्तनों से सम्बन्ध प्रत्यक्ष, चेतन तथा अचेतन रूप से जन्म के समय से ही प्रारम्भ हो जाता है और आजीवन चलता रहता है। उसका व्यवहार इन शक्तियों एवं कारकों के उचित परिवर्तन एवं समायोजन पर निर्भर होता है।

समायोजन प्रक्रिया में 3 तत्व मुख्य रूप से विद्यमान होते हैं। कुंठित करने वाली परिस्थितियाँ, विविध प्रत्युत्तर तथा प्रेरणायें। यदि आवश्यकताओं की पूर्ति में पर्यावरणीय परिस्थितियाँ बाधा नहीं उत्पन्न करती हैं तो समायोजन स्वतः हो जाता है अन्यथा इसके लिए प्रयास करना पड़ता है जिसके कारण वह अनेक प्रक्रियायें तथा प्रत्युत्तर करता है जिसके पीछे प्रेरणा शक्ति विद्यमान रहती हैं।

व्यक्ति किस सीमा तक सफल समायोजन स्थापित करेगा, प्रायः दो बातों पर निर्भर होता है।

(1) पर्यावरण सम्बन्धी उद्दीपक (Stimuli) जिनसे वह सम्पूर्ण जीवन में विशेषकर बचपन तथा युवा अवस्था में आरक्षित रहा है।

(2) जन्मजात तथा अर्जित शक्ति जिनसे वह अपने में परिवर्तन करता है तथा रचनात्मक विचारों, भावनाओं तथा क्रियाओं का विकास होता है।

पर्यावरणीय दशायें तथा व्यक्ति की अपूर्ण एवं दोषयुक्त क्षमतायें प्रायः असमायोजन के विकास में सहयोग प्रदान करती हैं। जिनसे न केवल सम्बन्धित

---

16. क्रो, लेस्टर डी0 — साइकोलोजी आफ ह्यूमन एडजस्टमेंट, आलफ्रेड ए0 नाफ, न्यूयार्क, 1967, पृ0 4।

व्यक्ति को हानि होती है बल्कि उन व्यक्तियों को भी जिनके प्रति व्यवहार एवं मनोवृत्तियाँ प्रदर्शित करता है, क्षति पहुँचाती हैं।

समायोजन की आवश्यकता

व्यक्ति की सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता समायोजन प्राप्त करने की आवश्यकता है। क्योंकि यह वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा व्यक्ति जीवन रक्षा के अवसर प्राप्त करता है। इस मूल उद्देश्य के अतिरिक्त निम्न कारणों से समायोजन की आवश्यकता होती है।[17]

(1) स्वयं को भलीभांति समझना।

(2) दूसरों को भलीभांति समझना।

(3) आस–पास की दुनियाँ को भली भांति जानना।

दूसरे शब्दों में समायोजन को हम आवश्यक समझते हैं जिससे दूसरों के साथ सम्बन्ध स्थापन सीख सकें, विद्यालय से लाभ उठा सकें, कार्यात्मक समस्याओं को हल कर सकें तथा सामान्य एवं संवेगात्मक समस्याओं का निराकरण कर सकें। व्यक्ति जब तक इस सांसारिक दुनियां में रहता है तब तक अनेकानेक समस्यायें उनकों घेरती रहती हैं और समायोजन स्थापित करने के लिए बाध्य करती हैं। समस्याओं की यह तारतम्यता व्यक्ति को निरन्तर किसी न किसी क्षेत्र में समायोजन स्थापित करने के लिए बाध्य करती है। हम समस्याओं को दूर नहीं कर सकते हैं केवल उनको समाधान करने की कला सीख सकते है और यह कला तभी आ सकती है जब हम दूसरों के विषय में अधिक जानते हों परन्तु दूसरों को समझने के लिए पर्यावरण का भी जानना आवश्यक होता है।

समायोजन की प्रक्रिया

मानव समायोजन प्रक्रिया सम्बन्धी दो दृष्टिकोण हैं। एक दृष्टिकोण के अनुसार व्यक्ति स्वयं अपनी मनोवृत्तियों एवं व्यवहारों के लिए जो जीवन के विभिन्न सम्बन्धों में प्रदर्शित करता है, व्यक्तिगत रूप से उत्तरदायी है। व्यक्ति को अपना पथ निर्धारित करने के लिए उत्तरदाई समझा जाता है। वह स्वयं अपने भाग्य का विधाता है। परन्तु दूसरे सम्प्रदाय के विचारकों का मत है कि व्यक्ति

17. लेहनर, जे0 एफ0 जे0 ऐण्ड क्यूबे, इला : उल्लिखित पृ0 3

के विश्वास, मनोवृत्तियों तथा सामान्य समायोजन के तरीके उसके पूर्व अनुभव तथा वर्तमान पर्यावरणीय प्रभावों पर निर्भर होता है।

जब हम समायोजन सम्बन्धी प्रक्रिया का वास्तविक जीवन में विश्लेषण करते हैं तो यह सर्वथा निश्चित होता है कि व्यक्ति में समायोजन की क्षमता पूर्व अनुभवों, वाह्य पर्यावरणीय दशाओं तथा व्यक्तिगत शक्तियों पर निर्भर होती हैं।[18]

समायोजन की प्रक्रिया कार्य कारण सम्बन्ध पर स्थित होती है। यह सिद्धान्तों का भी उपयोग अपनी कार्यप्रणाली में करती है। इसके लिए अन्तर्क्रिया का होना आवश्यक होता है। अतः इन तत्वों को हम यहाँ पर समझने का प्रयास करेंगे।

समायोजन के मूल सिद्धान्त

व्यक्ति सदैव अपनी स्थितियों, दशाओं, अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धों आदि से समायोजन करने की प्रक्रिया में लगा रहता है। परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि जिस प्रकार से वह समायोजन स्थापित करता है उससे व्यक्तिगत सफलता तथा सामाजिक कल्याण सम्भव ही हो। व्यक्ति का समायोजन उस सीमा तक उपयुक्त, पूर्ण स्वस्थ होता है जिस सीमा तक वह अपने तथा अपनी दशाओं, परिस्थितियों तथा व्यक्तियों जो उसकी भौतिक तथा सामाजिक पर्यावरण में निहित होते हैं, के बीच मधुर सम्बन्ध (Harmonious relationship) स्थापित करता है।[19] जो व्यक्ति अपनी बाधाओं को दूर करने में असमर्थ होता है अथवा जो समूह सदस्यों द्वारा वहिष्कृत कर दिया जाता है वह अपने को समायोजित नहीं कर पाता है। परन्तु यदि पूर्ण बहिष्कार तथा बार–बार असफलता का सामना करता है तो वह कुसमायोजित हो जाता है और असामान्यता के लक्षण प्रदर्शित करता है।

व्यक्ति के व्यवहार के तरीके तथा मनोवृत्तियाँ प्रायः उसके समायोजन प्रस्थिति (Status) का प्रतिनिधित्व करती है। परन्तु प्रत्येक व्यवहार का तरीका तथा मनोवृत्ति समायोजन प्रक्रिया में समान महत्व रखती हैं। समायोजित व्यवहार के निम्नलिखित तत्व होते हैं।

---

18. क्रो, लेस्टर डी0 उल्लिखित पृ0 5
19. उपर्लिखित पृ0 5–6

(1) जीवन के प्रति सम्पूर्ण दृष्टिकोण।

(2) जीवन का वास्तविक प्रत्यक्षीकरण।

(3) सांवेगिक तथा सामाजिक परिपक्वता।

(4) आन्तरिक एवं वाह्य परिस्थितियों में जो मानव व्यवहार को प्रभावित करती हैं, अच्छा संतुलन।

कार्यकारण सम्बन्ध

वैज्ञानिक रूप से जब हम समायोजन को विश्लेषित करते हैं तो इसका सम्बन्ध कार्य कारण से पाते हैं। समायोजन की सीमा तथा स्वरूप विभिन्न कारकों पर निर्भर होता है। व्यक्ति की इतनी अधिक समस्यायें होती हैं जिनकी संतुष्टि के लिए उसे अनेकों प्रयत्न करने पड़ते है। जीवन के विभिन्न कारक उसके व्यवहार के तरीकों को प्रभावित करते हैं। वही पर्यावरण सम्बन्धी कारक एक व्यक्ति की कठिनाइयों, दुखों, तनावों तथा दबावों का कारण होता है और वही दूसरों को कम प्रभावित अथवा बिलकुल प्रभावित नहीं करता है। इसका कारण यह है कि व्यक्ति एक–दूसरे से शारीरिक संरचना, स्वास्थ्य स्तर, मानसिक तथा सांवेगिक स्थितियों में भिन्न होता है। स्वभाव में अन्तर से उनकी रुचियों, अरुचियों, पसन्दों, नापसन्दों तथा सम्प्रेरणाओं में अन्तर होता है। लेकिन सभी व्यक्तियों में समायोजन की इच्छा अवश्य पाई जाती है।

अन्तः क्रिया

कोई भी व्यक्ति अकेले न रहता है और न ही रहना पसन्द करता है प्रतिदिन की क्रियाओं में वह अनेकों व्यक्तियों के साथ अन्तःक्रिया करता है। परिवार के सदस्य, विद्यालय साथी, कार्यसाथी, मित्र तथा सम्बन्धियों से वह अपने विचारों का आदान प्रदान करता रहता है। साथ ही साथ पर्यावरणीय प्रभावों जैसे जलवायु सम्बन्धी दशाओं, के प्रति भी प्रत्युत्तर करता है। परन्तु अन्तःक्रिया के तरीकों में भिन्नता होती है। एक बच्चे वाले परिवार में बालक का समायोजन दूसरे परिवार के बच्चे से जिसमें कई बच्चे होते हैं, भिन्न होता है। जिस बालक की बुद्धि लब्धि अधिक होती है उसका विद्यालय कार्य में समायोजन कम बुद्धि लब्धि वाले बालक से भिन्न होता है। मालिक अपनी

शक्ति की स्थिति को दूसरे प्रकार से समायोजित करता है और कर्मचारी दूसरे प्रकार से आयु अन्तर भी समायोजन की दशा को प्रभावित करता है परन्तु उचित समायोजन सौहार्द पूर्ण वातावरण में उत्पन्न होता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता इन खतरों तथा सम्बद्ध स्थितियों को अपने व्यावहारिक कार्य में लाता है।

जब व्यक्ति पर्यावरणीय तत्वों से अन्तःक्रिया में समायोजन करने का प्रयत्न करता है उस समय या तो वह उनको अपने व्यवहार का अंग बना लेता है या अपनी रुचियों एवं आवश्यकताओं के अनुसार परिवर्तित कर देता है। अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धों को इस प्रकार से समायोजित करने का प्रयत्न करता है जिससे समूह अथवा समूहों मे आदरणीय स्थान प्राप्त हो सके। अन्तःक्रिया की प्रक्रिया में बिना ज्ञात हुए कि हम क्या करने जा रहे हैं, उन तरीकों का प्रयोग करते हैं जिनको दूसरों में अवलोकन किया है, इससे व्यवहार तरीके का विकास करते हैं जो कि समायोजन के वैयक्तिगत तरीके की संरचना करता है।[20]

जीवन के विभिन्न स्तरों में समायोजन

यहाँ पर प्रत्येक स्तर के समायोजित आत्म की कुछ विशेषताओं का वर्णन किया जा रहा है।

शिशु तथा सामाजिक समायोजन

यदि शिशु की रुचि का भोजन मिलता है, सुखदायी वस्त्र मिलते हैं, उसकी क्रियाओं पर किसी प्रकार का बन्धन नहीं होता है तथा उसकी मांग के प्रति व्यक्तिगत ध्यान दिया जाता है तो वह सन्तोष का अनुभव करता है। शारीरिक आवश्यकताओं तथा व्यक्तिगत ध्यान में कमी अथवा कोई परिवर्तन (जैसे एकाएक आवाज) उसके असन्तोष का कारण बन जाता है और वह भय अथवा क्रोध का व्यवहार प्रदर्शित करता है। किसी सन्तोषपूर्ण अथवा असन्तोषपूर्ण स्थिति में वह किस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित करता है यह उसको दिये गये प्रशिक्षण पर निर्भर करता है।

---

20. लेहनर, जार्ज एफ0 जे0 एण्ड इला कूवे उल्लिखित पृ0 4–5

पूर्व विद्यालय बालक तथा सामाजिक समायोजन

2 अथवा 3 वर्ष की आयु में बालक अपनी रुचि का खेल खेलना पसन्द करता है। यद्यपि वह अन्य बालकों के उपस्थिति में ही ऐसा करता है परन्तु वह अपने साथ ही खेलना अधिक रूचिकर समझता है। परन्तु धीरे–धीरे यह मनोवृत्ति समाप्त हो जाती हे और वह दूसरों के खेलों में रुचि लेना प्रारम्भ करता है। इस अवस्था में धैर्य की सीमा कुछ–कुछ बढ़ने लगती है। वह दिन प्रतिदिन के कार्यों की निपुणताओं का विकास करता है। वह अपने आप स्नान करना, दाँत साफ करना और अन्य साधारण कार्य करने लगता है। उसको कार्य करने में सुख प्राप्त होता है। जब वह चौथे वर्ष में प्रवेश करता है तो प्रशंसा तथा आलोचना करना सीखता है। उसको अपने अनुरूप कहानियाँ अच्छी लगती है तथा स्वप्न की दुनियाँ और वास्तविक दुनिया में विशेष अन्तर नहीं करता है।

बालक का सामाजिक विकास धीरे–धीरे बढ़ता रहता है। यदि किसी भी प्रकार की खराब सामाजिक दशायें इस अवस्था में आ जाती हैं तो सामान्य विकास में बाधा पड़ती हैं। पूर्व स्कूल अवधि समाप्त होने तक बालक तार्किक आज्ञा पालन की समझ उत्पन्न कर लेता है तथा अपने उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए कार्य की तारतम्यता स्थापित कर सकता है। वह अपनी आयु के अनुकूल क्रियायें कर लेता है। वह स्वभाव से प्रजातांत्रिक होता है तथा दूसरों पर विश्वास रखता है। यदि कोई भी असमाान्य लक्षण इस अवस्था में उत्पन्न होते है तो वे अयोग्य, असन्तोषपूर्ण तथा हानिकारक प्रशिक्षण विधि के कारण होते है।

विद्यालय, बालक तथा सामाजिक समायोजन

युवा बालक मूल रूप से अहंवादी (Egoistic) होता है। विद्यालयों से आकर दूसरे व्यक्तियों के प्रति अपनी मनोवृत्तियों का विकास करता है तथा स्थायी सामाजिक सम्बन्धों को स्वरूप प्रदान करता है। विद्यालय के कर्मचारियों का कर्तव्य होता है कि वे बालक में सहिष्णुता, सहयोग, प्रेम, दया, आदर आदि गुणों का विकास करे। सामाजिक समूह में सामाजिक सुरक्षा की अनुभूति कराना भी एक महत्वपूर्ण कार्य होता है। विद्यालय जाने के प्रारम्भिक दिनों में प्रत्येक बालक अपने परिवार के सदस्यों के विषय में बात करता है और यदि ऐसा नहीं करता है तो कोई न कोई परिवार में अवश्य समस्या होती है। शिक्षक यदि इस

अवस्था में इन कारणों को दूर कर देता है तो बालक का सामान्य विकास नहीं रुकता अन्यथा कुसमायोजन का लक्षण उसके व्यवहार को प्रभावित करता है। अतः विद्यालय के कार्य, शिक्षा प्रणाली तथा शिक्षकों का व्यवहार बालक के विकास में सहयोगात्मक होने चाहिए।

किशोर तथा सामाजिक समायोजन

इस अवस्था में व्यक्ति अपने परिवार के सदस्यों द्वारा लगाये गये बंधनों से मुक्त होने का प्रयास करता है। परन्तु वे इस संघर्ष के प्रति अनभिज्ञ होने के कारण निर्देशों तथा आदेशों को उसके समक्ष रखते हैं। इस प्रकार के व्यवहार के परिणामस्वरूप वह युवक या तो नियन्त्रण का विरोध करता है और सामाजिक अवांछनीय व्यवहार का प्रदर्शन करता है अथवा संघर्ष को त्याग कर बचपन की अवस्था में प्रतिगमन (Regression) करता है जिससे व्यवहार का विकास अवरुद्ध हो जाता है। दोनों ही स्थितियों में असामान्य सामाजिक व्यवहार प्रदर्शित होता है। पहली प्रकार की समस्या (अवज्ञा) से सम्बन्धित व्यक्ति संदेही, क्रोधी, असहयोगी होता है। वह समायोजन करने में बाधा उत्पन्न कर देता है। अपने साथियों से लड़ता झगड़ता है तथा अपने कष्टों का उन पर प्रक्षेपण करता है। दूसरी समस्या से सम्बन्धित व्यक्ति दूसरों पर निर्भर हो जाता है, उसकी निर्णय शक्ति का विकास नहीं होता तथा साधारण से साधारण समस्या के समाधान के लिए दूसरों की सहायता की आशा करता है।

युवक तथा सामाजिक समायोजन

युवावस्था के सामाजिक तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों का आधार उसके बचपन के अनुभव होते हैं। सामाजिक समूहों की संख्या तथा स्वरूप आयु बढ़ने के साथ–साथ बढ़ता जाता है। यदि वह इस अवस्था तक विभिन्न समूहों के साथ समायोजन करना सीख जाता है तो पहले की मित्रता इस अवस्था में घनिष्ठ हो जाती है। वह आत्म स्वार्थ को समायोजन में बाधक नहीं होने देता है। उसकी रुचियां सामाजिक बन जाती है। उसकी सम्प्रेरणायें सकारात्मक रूप से नियन्त्रित होती हैं तथा उसका व्यवहार एकीकृत होता है। वह दूसरों से प्रभावित होता है तथा दूसरों को प्रभावित करता है।

सम्प्रेरणायें एवं समायोजन

किसी व्यक्ति की आंतरिक एवं बाह्य स्थिति समझने के लिए उसकी सम्प्रेरणाओं तथा सम्प्रेरणा शक्ति को समझना आवश्यक होता है। सम्प्रेरणा ऐसी शक्तियों का योग होता है जो एक उद्देश्य की ओर व्यवहार को उत्साहित निर्देशित एवं स्थायी बनाती है[21] आवश्यकतायें दो प्रकार की होती हैं, जैविकीय तथा व्यक्तिगत–सामाजिक आवश्यकतायें[22]। इन आवश्यकताओं की पूर्ति सामान्य व्यवहार के लिए आवश्यक होती है। इनसे वह न केवल अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि करता है बल्कि ज्ञान, निपुणता, विचार, आदर्श, आदत, सारांश में व्यवहार का विकास करता है जिससे सामूहिक सदस्य की भूमिका सफलता पूर्वक ग्रहण करता है। प्रत्येक कार्य के पीछे प्रेरक शक्ति उपस्थित होती है। उसमें कारण और परिणाम का सम्बन्ध होता है। मानव व्यवहार न केवल एक सक्रिय प्रक्रिया बल्कि यह उद्देश्य से निर्देशित होने वाली भी प्रक्रिया है। व्यक्ति प्रायः निम्न आवश्यकताओं से प्रेरित होता हैः–

1– शारीरिक आवश्यकताओं की संतुष्टि करना।

2– उद्देश्य को प्राप्त करना।

3– एक या दूसरे प्रकार की सामाजिक स्वीकृति द्वारा सन्तोष प्राप्त करना।

4– पूर्वानुमानित अनुभवों को दूर करना।

फ्रायड का विचार था कि व्यक्ति का संपूर्ण व्यवहार अचेतन चालकों (अन्तर्जात प्रवृत्तियों) द्वारा संचालित होता है। अतः उसके व्यवहार को समझने के लिए उसकी सम्प्रेरणाओं को समझना आवश्यक होता है। प्रेरणायें व्यक्ति की चेतन तथा अचेतन दोनों स्तरों पर होती है। इन दोनों शक्तियों में संघर्ष होता है और उसका प्रभाव व्यक्ति पर पड़ा है। वह जब

---

21. लिंडसे, डोनाल्ड वी0 — साइकोफिजियालोजी एण्ड मोटीवेशन, क्रो लिस्टर डी0 साइकोलोजी आफ ह्यूमन एडजैस्टमेंट, एलफ्रेड ए नाफ न्यूयार्क, 1567, पृ0 55

22. क्रो, लिस्टर डी0 — उपर्लिखित, पृ0 55

इस संघर्ष को उचित प्रकार से निपटा लेता है तो उचित समायोजन संभव होता है, परन्तु जब इन प्रेरकों की संतुष्टि में बाधा महसूस करता है और उस बाधा को दूर नहीं कर पाता है तो उसका उचित समायोजन नहीं हो पाता और असामान्य व्यवहार प्रदर्शित करता है।

संवेग तथा समायोजन

संवेग एक प्रभावात्मक अनुभव है जो सामान्यीकृत समायोजन से उत्पन्न होता है। यह प्रभावात्मक अनुभव शारीरिक तथा मानसिक दोनों स्थितियों में प्रकट होता है। संवेग व्यक्ति के लिए अत्यन्त आवश्यक होते हैं क्योंकि इन्हीं द्वारा वह अपनी भावनाओं को प्रकट कर अपने व्यवहार को संतुलित बनाये रखता है। परन्तु यदि संवेगों पर व्यक्ति का नियन्त्रण शिथिल हो जाता है तो उसमें असामान्यता के लक्षण भी प्रकट हो जाते है।

यद्यपि समायोजन से सम्बन्धित अनेकों संवेग समस्यायें होती है परन्तु यहाँ पर हम उन्हीं संवेग समस्याओं का वर्णन करेंगे जिनका संबंध भय, चिन्ता, क्रोध, द्वेष तथा प्रेम से है।

भय

व्यक्ति भय उत्पन्न करने वाले उत्तेजक के प्रति निम्न प्रकार से प्रत्युत्तर करता है :

				रोग
बालक				पलायन
		भय उत्पन्न करने वाले		क्रिया में कमी
किशोर	प्रत्युत्तर प्रति	उत्तेजक	द्वारा	उग्र व्यवहार
				चोरी
युवक				
				असत्यभाषी
				डींग मारना

भय की उत्पत्ति प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों कारकों से होती है। प्रत्यक्ष भय पर्यावरण की घटना से उत्पन्न होता है परन्तु अप्रत्यक्ष भय उस समय उत्पन्न होता है जब व्यक्ति मानसिक चिंताओं और परेशानियों में डूबा होता है। उसका मन भावी आशंका से परिवार के अहित की कल्पना से सिहर उठता है, वह भयभीत हो जाता है। भय का सुस्पष्ट होना समायोजन के लिए आवश्यक होता है। इससे व्यक्ति हानि से बचता है तथा वह व्यर्थ के अनुपयोगी कार्यों में प्रवृत होने से बचता है। भय के कारण नियंत्रित व्यवहार का विकास होता है परन्तु अत्यधिक भय से निषेधात्मक प्रवृत्ति जाग्रत होती है। भय से कष्ट की सीमा बढ़ जाती है। उपरोक्त सभी प्रतिक्रियायें असामान्य को उत्पन्न करती हैं और समयोजन को कठिन बनाती हैं।

चिन्ता

चिन्ता का अर्थ ऐसी मानसिक स्थिति से है जिसमें व्यक्ति भारी विपत्तियों की आशंका से व्याकुल होता है। चिन्ता भय से भिन्न होती है। चिन्ता का विषय स्वयं व्यक्ति होता है। चिन्ता में हृदयगत परेशानी के प्रति मस्तिष्क की प्रतिक्रिया है। व्याधि की चिन्ता को फोबिया (Phobia) कहते हैं जिसमें अकारण ही व्यक्ति किसी वस्तु, स्थिति अथवा कारक के प्रति चिन्ता करने लगता है जैसे भूत का भय, ऊँचे स्थान का भय बन्द कमरे में भय, आदि। सामान्य रूप से हमारे जीवन में अनेक कारक चिन्ता को उत्पन्न करते हैं। ये कारक शैक्षिक, पारिवारिक, वैवाहिक व्यवसायिक, स्वास्थ्य आदि समस्याओं से संबंधित होते हैं। इन चिन्ताओं का समाधान मनोवैज्ञानिक स्वास्थ्य तथा सामाजिक कल्याण के लिए आवश्यक होता है।

क्रोध

क्रोध का प्रकाशन कई प्रकार से होता है। यह तीव्र रोष के रूप में होता है और कभी–कभी सामान्य खीझ और चिढ़ के रूप में भी। घृणा के रूप में भी हो सकता है। शैशव के प्रारम्भ में क्रोध का कारण बालक की क्रियाओं में तथा इच्छाओं में बाधायें होती हैं। आयु बढ़ने के साथ–साथ क्रोध के अवसर भी बढ़ते जाते हैं और पर्यावरणीय तथा मनोवैज्ञानिक दोनों कारक कार्य करते हैं। यद्यपि क्रोध को स्पष्ट कर देने से सांवेगिक तनाव कम हो जाता है परन्तु इसकी

उपस्थिति में असामान्य व्यवहार प्रदर्शित होता है।

संघर्ष

चिढ़ना (Pouting)

क्रोध उत्पन्न

व्यक्ति प्रत्युत्तर करने वाला द्वारा अपशब्दों का प्रयोग

उत्तेजक

स्वभाव की उत्तेजनायें

कार्य में तनाव की अनुभूति

आन्तरिक प्रतिक्रियायें

बागी व्यवहार

उग्र व्यवहार

क्रोध की उपयुक्त अभिव्यक्ति तथा उचित क्रोध की अनुभूति का विकास आवश्यक होता हैं। जहाँ तक सम्भव हो क्रोध के कारकों को कार्यात्मक प्रविधि द्वारा दूर करने का प्रयत्न करना चाहिए।

ईर्ष्या

ईर्ष्या में पराधीनता तथा हीनता दोनों ही भावनायें पाई जाती हैं। क्रोध तथा प्रेम का भी प्रदर्शन होता है। ईर्ष्या की उत्पत्ति उस समय होती है जब व्यक्ति को अपनी स्थिति, इज्ज़त, मान–सम्मान अथवा प्रेम के खो जाने अथवा कमी हो जाने की आशंका उत्पन्न हो जाती है। हानि के अवसर अथवा वास्तविक हानि व्यक्ति के आत्म–सम्मान एवं आत्म–शक्ति को धक्का पहुँचाती है। इससे क्रोध उत्पन्न होता है और प्रतिक्रियात्मक एवं बदला लेने की भावना का जन्म होता है।

ईर्ष्या की उत्पत्ति बालक या युवक में उस समय अधिक होती है जब उसको अपनी रुचि की आवश्यकता से वंचित कर दिया जाता है परन्तु दूसरे को प्रदान कर दी जाती है। यह स्थिति सामाजिक जीवन के सभी क्षेत्रों में घटित हो सकती है। ईर्ष्या की स्थिति में बालक प्रतिगमन करने लगता है जिससे छोटे भाई बहनों के समान ही उसका भी ध्यान दिया जाय। स्कूल में बालक उग्र व्यवहार करने लगता है, काल्पनिक कहानियों को सुनाने लगता है तथा झूट बोलना सीख जाता है।

प्रेम

व्यक्ति अपनी संतान के प्रति जिस प्रेम का अनुभव करता है वह जन्म–जात एवं प्राकृतिक होता है परन्तु यह विभिन्न व्यक्तियों में विभिन्न मात्रा में पाया जाता है। प्रेम का प्रदर्शन कई बातों पर निर्भर करता है जैसे घर की आर्थिक स्थिति, बालको की संख्या, बालक उत्पन्न होने की लालसा, माता–पिता में पारस्परिक सम्बन्ध, आदि। गरीबी की अवस्था में माता–पिता के सम्बन्ध अच्छे न होने पर अथवा अनिच्छित उत्पत्ति होने पर प्रेम का सामान्य प्रदर्शन नहीं हो पाता है। इसके विपरीत अधिक धनवान, एक संतान वाले माता–पिता का बालक अधिक दुलारा होने के कारण अत्यधिक एवं अनावश्यक प्रेम प्राप्त करता है। दोनों ही अवस्थायें बालक को भावी जीवन में समायोजन स्थापित करने में बाधायें उत्पन्न करती हैं।

समायोजन तथा मानसिक सुरक्षात्मक रचनायें

व्यक्ति अपने जीवन में ऐसी अनेक बाधाओं, विषम परिस्थितियों तथा समस्याओं का सामना करता है जो उसके लिए असहनीय तथा अति कष्टकर होती हैं इससे उसमें विषम तनाव उत्पन्न होता है क्योंकि समाधान में असफलता प्राप्त होने से एक ओर मानसिक क्लेष तथा पीड़ा की सम्भावना होती है दूसरी ओर स्थान पतन की आशंका रहती है। अतः इस विषम तनावपूर्ण स्थिति में दो प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(1) समायोजनात्मक माँग को पूरा करना।

(2) मनोवैज्ञानिक विघटन से अपनी रक्षा करना।[23]

इन समस्याओं को दूर करने के लिए प्रायः तीन प्रकार की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें घटित होती है :–

(1) मनोवैज्ञानिक क्षति पूर्ति जैसे चिल्लाना

(2) आत्म–सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें

(3) औषधि पर आश्रित होने से व्यवहार

उपर्लिखित तीनों प्रकारों से प्रथम तथा तृतीय विधि व्यक्ति को सामान्य

---

23. कोलमैन, जे0 सी0 — अवनारमल साइकोलोजी ऐण्ड माडर्न लाइफ, डी0 वी0 तारपोरवाला एण्ड सन्स कं. बाम्बे 1974, पृ0 126

व्यवहार से अधिक दूर ले जाती है अतः वह सुरक्षात्मक यन्त्रों का उपयोग निराशा व चिन्ता दूर करने के लिए करता है। इस विधि द्वारा वह अचेतन समाज विरोधी प्रवृत्तियों को चेतन में आने से रोकता है। वद्यपि इन यन्त्रों से व्यक्ति को लाभ होता है परन्तु उस समय ये क्रियायें व्याधिकीय हो जाती हैं जब तनाव एवं विषम परिस्थिति में साधन का कार्य करने लगती हैं।

समायोजित व्यक्ति की विशेषतायें

सन्तोषजनक समायोजन के लिए निम्नलिखित विशेषतायें आवश्यक होती है :-

1-वैयक्तीकृत की भावना

(Sense of Individuality)

बालक प्रारम्भ से ही यह जान लेता है कि उसका अस्तित्व दूसरों से भिन्न है। जैसे-जैसे वह बढ़ता है वैसे-वैसे अहं ज्ञान की योग्यता बढ़ती जाती है। एक समायोजित व्यक्ति समाज के आदर्शों के अनुरूप अपने आप को परिवर्तित कर लेता है और यह निश्चित करने में समर्थ होता है कि वह कौन सी परिस्थिति होगी जब समाज की मांगों को पूरा करना अनुचित होगा।

समायोजित व्यक्ति में अपने अधिकारों तथा कर्तव्यों के ज्ञान के साथ ही साथ दूसरे के प्रति उत्तरदायित्व की चेतना भी होती है।

2-आत्मनिर्भरता

(Independence)

समायोजत व्यक्ति समस्याओं के समाधन के लिए स्वयं आत्पनिर्भर होता हे। अपने उद्देश्यों एवं इच्छाओं की पूर्ति स्वयं कर लेता है।

3-विश्वास

(Confidence)

विश्वास के आधार पर ही एक व्यक्ति दूसरे व्यक्तियों से धनिष्ठ सम्बन्ध स्थापित करता है। वह अपनी शक्तियों एवं कमियों को समझता है तथा उसके अनुसार कार्य करता है।

4–स्वयं तथा अन्य व्यक्तियों की स्वीकृति
(Acceptance of himself and others)

समायोजित व्यक्ति अपनी स्थिति को सही–सही समझता है तथा अपना स्थान समाज में निश्चित करता है। वह अन्य व्यकितयों को स्वीकार करता है तथा उनके अधिकारों की रक्षा करता है।

5–सुरक्षा की भावना
(Feeling of security)

समायोजित व्यक्ति अपने को आंतरिक एवं बाह्य रूप से सुरक्षित महसूस करता है।

6–उत्तरदायित्व की भावना
(Sense of Responsibility)

समायोजित व्यक्ति अपने कार्यों का उत्तरदायित्व ग्रहण करता है और कार्यों के परिणामों को स्वीकार करता है तथा दूसरों की आवश्यकताओं को ध्यान रखता है। वह उन उत्तरदायित्वों को पूरा करता है जो परिवार, समूह तथा समाज द्वारा निश्चित किये जाते है।

7–अभिस्थापन
(Orientation)

समायोजित व्यक्ति नये ज्ञान की खोज के लिए सदैव तत्पर रहता है। वह अपनी प्रेरणाशक्ति को अपनी योग्यताओं एवं क्षमताओं को विकसित करने के लिए अधिकाधिक उपयोग करता है। उसके निश्चित उद्देश्य होते हैं तथा लक्षण की दिशा भी निश्चित होती हैं।

8–अनुभव का उचित उपयोग
(Proper use of experience)

एक समायोजित व्यक्ति वर्तमान समस्याओं को निपटाने तथा क्रियाओं के सम्पादन में अपने पूर्व अनुभव का समुचित उपयोग करता है।

9—समस्या समाधान की मनोवृत्ति

(Problem solving attitude)

समायोजित व्यक्ति की मनोवृत्ति सदैव परिस्थिति का सामना करने के लिए तैयार रहती है। वह समस्या का सामना करने के लिए अपने व्यवहार में परिवर्तन लाता है तथा परिस्थिति में भी परिवर्तन करना जानता है।

10—व्यक्तिगत मूल्य एवं जीवन दर्शन

(Personal values and philosophy of life)

समायोजित व्यक्ति के मूल्य सामाजिक मूल्यों के समान विकसित होते हैं। उसके जीवन का दर्शन व्यक्तिगत एवं सामाजिक कल्याण करना होता है।

इस प्रकार यह स्पष्ट रूप से कहा जा सकता है कि समायोजित व्यक्ति में विश्वास, सुरक्षा, उत्तरदायित्व, अनुभव से सीखने की क्षमता, व्यक्तिगत मूल्य एवं आदर्शों की उपयुक्तता आदि विशेषतायें पायी जाती हैं।

4

मानसिक सुरक्षात्मक रचनायें

जब आवश्यकताओं की पर्याप्त संतुष्टि नहीं होती है तो दूसरी द्वितीयक अथवा अतिरिक्त आवश्यकतायें उत्पन्न होती हैं जिनकी संतुष्टि द्वारा व्यक्ति प्रथम प्रकार की असंतुष्ट स्थिति में भी संतुष्ट रहना सीखता है। जो व्यक्ति किसी आवश्यकता को संतुष्ट करने में असफल हो जाता है अथवा असफलता पूर्ण सम्भावित लगती है वह तुरन्त किसी न किसी प्रकार की अपनी असफलता के लिए व्याख्या अथवा सुरक्षा ढूंढता है क्योंकि असफलता स्वीकार करने से एक ओर तो उसे मानसिक क्लेश तथा पीड़ा होती है और दूसरी ओर उसकी सामाजिक स्थिति में परिवर्तन आने की सम्भावना रहती है। अतः वह अपनी असफलता को अपनी दृष्टि तथा साथियों व समाज की दृष्टि में उचित सिद्ध करने का भरसक प्रयत्न करता है। साधारणतया जब इस प्रकार की प्रतिक्रिया होती है तो व्यक्ति इससे पूर्ण रूप से अनभिज्ञ रहता है

बालक में प्रारम्भिक शैशवकालीन अवस्था से ही अहं का अस्तित्व उपाहं (Id) से पृथक होने लगता है तथा उसके व्यक्तित्व का पृथक भाग बनने का प्रयत्न करता है। अहं सभी प्रवृत्तियों की स्वतन्त्र संतुष्टि पर प्रतिबन्ध लगाकर संतुष्टि के तरीके निर्धारित करता है। अहं के द्वारा ही मूल प्रवृत्तियों की संतुष्टि सम्भव होती है। प्रारम्भिक बचपन के अपरिपक्व स्तरों में अहं को मूल प्रवृत्तियों पर अवरोध लगाने के लिए कठिन परिश्रम करना पड़ता है और कभी–कभी उसके प्रति विरोध इतना कठिन हो जाता है कि उसे कुछ समय के लिए स्थिर हो जाना पड़ता है। बचपन की सम्पूर्ण अवस्था में अहं का निर्माण सुरक्षा के यन्त्रों (Mechanism of defence) से होता है। इन सुरक्षात्मक यंत्रों द्वारा अहं प्रवृत्तियों से निपटने का प्रयत्न करता है, जिनकी संतुष्टि कष्टकर या खतरनाक ही क्यों न हो। जब निषेधात्मक (Forbidden) उत्तेजना (Urge) संतुष्टि के लिए अहं पर कुठाराघात करती है तो चिन्ता (Anxiety) प्रकट होती है और चिन्ता का अत्यन्त

कष्टकर, पीड़ाजन्य तथा दुखदायी प्रभाव होता है। सुरक्षा के विभिन्न यन्त्र चिन्ता की अनुभूति को दूर करने का प्रयत्न करते है। साधारणतया व्यक्ति इन विभिन्न सुरक्षात्मक यन्त्रों से कुछ ही को अपने उपयोग में लाता है जिससे वे उसके व्यवहार का अंग बन जाते हैं।

अहं सुरक्षात्मक यन्त्रों की अवधारणा फ्रायड ने सन् 1854 ई0 में सर्वप्रथम स्पष्ट की थी। उन्होने सुरक्षात्मक यन्त्रों का विवरण अपने लेख 'दि डिफेन्स इन न्यूरोसाइकोसिस' में दिया था। इस लेख में केवल दमन (Respression) यन्त्र का विवरण दिया था। बाद में इस क्रम में अन्य यन्त्र सम्मिलित होते चले गये। इन विभिन्न यन्त्रों में इतनी पारस्परिक निर्भरता है कि इनको अलग–अलग स्पष्ट करना कठिन प्रतीत होता है। व्यक्ति एक ही समस्या को सुलझाने के लिए एक ही समय में एक से अधिक सुरक्षात्मक यंत्रों का उपयोग है परन्तु ये सुरक्षात्मक यन्त्र अचेतन तथा स्वतन्त्र रूप से कार्य करते रहते हैं और व्यक्ति इनके अस्तित्व से अनभिज्ञ रहता है। वह सुरक्षात्मक यन्त्रों का उपयोग तभी करता है जब मूल प्रवृत्तियों को अत्यधिक प्रभाव एवं दवाब का खतरा उत्पन्न हो जाता है।

चिषम तनावपूर्ण स्थिति में व्यक्ति को दो प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ता है।

(1) समायोजनात्मक माँग पूरा करना (To meet adjustive demands)

(2) मनोवैज्ञानिक विघटन से अपनी रक्षा करना (To protect himself from psychological disorganisation)[1]

इन समस्याओं को दूर करने के लिए प्रायः तीन प्रकार की सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें घटित होती हैं :–

(1) मनोवैज्ञानिक क्षतिग्रस्त–क्षतिपूर्ति यन्त्र (Psychological damage-Repair mechanism) जैसे चिल्लाना तथा बातों की पुनरावृत्ति।

---

1. कोलमैन, जेम्स सी0 — अबनारमल साइकालोजी ऐण्ड माडर्न लाइफ, डी0वी0 तारापोरेवाला ऐण्ड सन्स कं0 बाम्बे 1574, पृ0 126

(2) अहं या आत्म सुरक्षातमक प्रतिक्रियायें (Ego or self defense Mechanism) जैसे अस्वीकृत तथा औचित्य स्थापन। इसके द्वारा आघात तथा अवमूल्यन से अहं की रक्षा होती है।

(3) व्यक्ति का औषधि (Drugs) पर आश्रित होने का व्यवहार (Reliance on drugs)

उपर्लिखित तीनों प्रकारों से व्यक्ति अपनी मनोवैज्ञानिक एकता की सुरक्षा करता है। परन्तु प्रथम तथा तृतीय विधि व्यक्ति को सामान्य व्यवहार से अधिक दूर ले जाती है अतः मूलतः एवं अधिकांशतः व्यक्ति आत्म सुरक्षात्मक यन्त्रों को मनोवैज्ञानिक एकता तथा निराशा व चिन्ता को दूर करने के लिए प्रयोग में लाता है। इन सुरक्षात्मक प्रतिक्रियाओं से व्यक्ति एक ओर आंतरिक ध मकी (Internal Threat) जैसे अपराधी प्रवत्तियों तथा, दूसरी ओर बाह्य धमकी जैसे असफलता से आत्म अवमूल्यन की रक्षा करता है। मानसिक सुरक्षात्मक यन्त्र निम्न प्रकार से आत्म (Self) की सहायता करते हैं।

(1) व्यक्ति को वास्तविक अनुभव से दूर कर, वास्तविकता को न स्वीकार करके या वाधक उत्पन्न करके, जिससे वह स्थिति की गम्भीरता को न समझे।

(2) सांवेगिक तथा आत्म भागीकरण को कम करके।

(3) धमकी तथा क्षति के विरोध में प्रतिक्रिया करके।

इस प्रकार मानसिक रचनायें वे यन्त्र हैं जिससे व्यक्ति आत्म अवमूल्यन की रक्षा करता है तथ मनोवैज्ञानिक एकता बनाये रखता है। इस प्रक्रिया द्वारा वह अचेतन समाज विरोधी प्रवृत्तियों को चेतन में आने से रोकता है। हम में से प्रत्येक व्यक्ति इन यन्त्रो का उपयोग दिन प्रतिदिन के जीवन में करता है परन्तु उस दिशा में ये प्रतिक्रियायें ब्याधिकी हो जाती है जब वे तनाव एवं विषम परिस्थिति में साधन का कार्य करने लगती हैं।

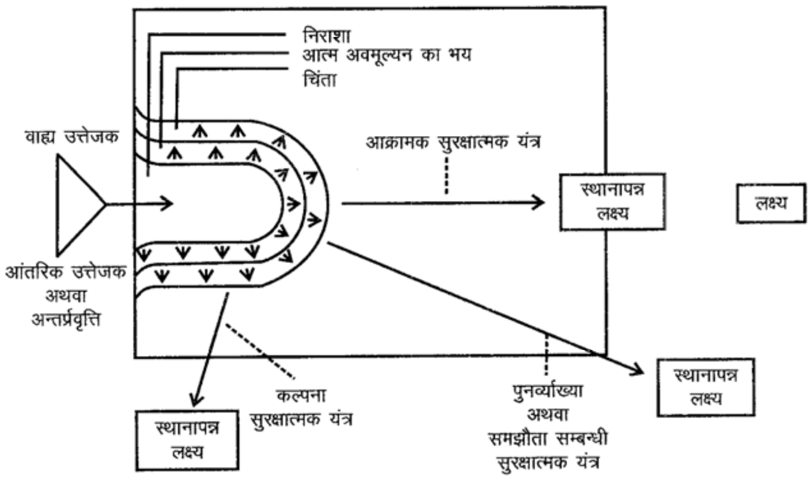
मानसिक सुरक्षात्मक यन्त्रों की दो मुख्य विशेषतायें होती है :–

(1) वे वास्तविकता को खंडित करती हैं, मिथ्या सिद्ध करती हैं तथा तोड़–मरोड़ कर व्यक्त करने में सहायता करती हैं।

(2) वे अचेतन रूप से कार्य करती रहती हैं जिनसे व्यक्ति को ज्ञान नहीं होता है।

मानसिक सुरक्षात्मक रचनाओं के प्रकार
(Types of Mechanisms)

सुरक्षात्मक रचनाओं से सम्बन्धित निम्नलिखित चार्ट दर्शाता है कि किस प्रकार व्यक्ति उद्देश्य को प्राप्त करने में निराशा, आत्म अवमूल्यन तथा चिन्ता का निराकरण विभिन्न सुरक्षात्मक तरीकों का उपयोग करके स्थानापन्न (Substitute) उद्देश्यों की दिशा में प्रयास करता है।



इस प्रकार समस्त सुरक्षात्मक यन्त्रों को 3 वृहद वर्गों में विभाजित किया जा सकता है:—

(1) आक्रामक।

(2) कल्पनात्मक।

(3) पुनर्व्याख्यात्मक अथवा समझौता सम्बन्धी।

यहाँ पर हम इन तीनों वर्गों के कुछ महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक यन्त्रों का विवरण प्रस्तुत कर रहे हैं।

प्रक्षेपण

(Projection)

प्रक्षेपण एक यन्त्र है जिसके द्वारा क्लेशकर तथा आपत्तिजनक प्रभावों व विचारों को वाह्य पर्यावरण में व्यक्तियों अथवा वस्तुओं पर आरोपित करते है। इसके द्वारा व्यक्ति अनुभव करता है कि उस स्थिति का सम्बन्ध उससे नही है[2]। यह वह प्रवृत्ति है जिसमें व्यक्ति बाह्य जगत में अपनी दमित मानसिक प्रक्रियाओं का आरोपण करता है। प्रक्षेपण बहुत ही प्रारम्भिक प्रकार का मानसिक यन्त्र है क्योंकि इसका उपयोग शैशव अवस्था से ही प्रारम्भ हो जाता है। इस अवस्था में व्यक्ति की यह प्रवृत्ति होती है कि वह हितकारी तथा सुखदायी वस्तुओं को अपने आत्म का भाग बताता है और क्लेशकर तथा अहितकारी वस्तुओं तथा घटनाओं का सम्बन्ध वाह्य जगत से लगाता है। शिशु अक्षरशः क्लेशकर तथा आपत्तिजनक वस्तुओं तथा भावनाओं का दूसरे व्यक्ति पर प्रक्षेपण करता है तथ उत्तर में केवल सुखद भावनाओं को संचित करता है।

प्रक्षेपण एक ऐसा तरीका है जिसका उपयोग अधिक सीमा में तब तक नहीं किया जा सकता है जब तक कि अहं (Ego) में वास्तविकता परीक्षण (Reality Testing) की शक्ति रहती है। साधारणतया प्रक्षेपण के द्वारा व्यक्ति आपत्तिजनक वस्तुओं अथवा स्थितियों को अस्वीकार करता है। और उसका सम्बन्ध बाह्य जगत से लगाता है। यह एक ऐसी मनोवैज्ञानिक रचना है जिससे व्यक्ति दूसरों पर अपनी दमित भावनाओं तथा संवेगों को आरोपित करता है[3] प्रक्षेपण सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया में व्यक्ति दो कार्य करता है।

(अ) अपनी त्रुटियों, कमियों तथा अकार्यों के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है।

2.	इंगलिश, ओ स्पर्जन एण्ड फिंच स्टुआर्ट, एम	इन्ट्रोडक्शन टु साइकियाट्री, डब्ल्यू 2 नार्टन एण्ड कं0 न्यूयार्क 1554, पृ0 57–58
3.	मैकडोनाल्ड, लैडेल	ए डिक्शनरी आफ साइकोलोजिकल टर्म्स, पब्लिश्ड बाई दि साइकोलोजिकल सेरीज, लंदन, 1555 पृ0 36

(ब) अपनी आपत्तिजनक तथा अस्वीकृत मूल प्रवृत्तियों, विचारों तथा इच्छाओं को दूसरों पर आरोपित करता है[4]।

प्रक्षेपण एक प्रकार का सामान्य तरीका है जिसका प्रयोग बालक प्रारम्भ से ही करना सीखता है। जो बालक परीक्षा में असफल हो जाता है वह अध्यापकों को बेईमान बताता है। बाल अपराधी अपनी समस्याओं को माता पर आरोपित करता है। जब मानसिक दशा गम्भीर हो जाती है तो व्यक्ति यह समझने लगता है कि दूसरे व्यक्ति उसके विराध में कार्य कर रहे है अथवा उसके विरूद्ध कोई षड्यन्त्र रच रहे हैं।

दूसरे प्रकार की प्रक्षेपण प्रतिक्रिया में व्यक्ति अपनी क्लेशकर पीड़ाजन्य तथा आपत्तिजनक विचारों तथ इच्छाओं को दूसरे पर आरोपित करता है। यह तरीका उन व्यक्तियों के लिए अधिक उपयुक्त होता है जिनका विकास कठोर, नियन्त्रित तथा दृढ़ नैतिक मूल्यों के बीच होता है तथा जिनमें इच्छा को अनैतिक तथा आत्म अवमूल्यन माना जाता है। ये लोग औचित्य स्थापन या अन्य किसी मानसिक रक्षणात्मक तरीकों का उपयोग करने में समर्थ नहीं होते हैं।

प्रक्षेपण अन्य तरीकों के समान ही एक अचेतन प्रक्रिया है जिसमें पहला कदम दमन (Repression) का होता है। व्यक्ति अपने पीड़ाजन्य तत्व को चेतन में आने से रोकता है। परन्तु दूसरे तनाव तथा संघर्ष जो स्थिति के कारण उत्पन्न होते हैं समाप्त नहीं होते हें। अतः वह दूसरे तरीकों का सहयोग प्राप्त करता है जिसकी सहायता से आंतरिक संघर्ष को बाह्यकृत (Extrernalise) कर देता है।

इस प्रकार के मानसिक यंत्र का उपयोग प्रायः महिला में देखने को अधिक मिलता है जो अचेतन रूप से अनुभव करती है कि वह स्त्री, माँ, और पत्नी के रूप में उपयुक्त नहीं है तथा अपने पति को भी इसी प्रकार की अयोग्यताओं के लिए दोषी ठहराती है अर्थात पति पर दोष लगाती है कि वह न तो पति की भूमिका अदा करने में समर्थ है और न ही पिता की । इस प्रकार वह अपनी दमित या अचेतन इच्छाओं को पति पर प्रक्षेपित करती है। चेतन रूप में वह इस

---

4. कोलमैन, जेम्स सी0 अबनारमल साइकालोजी ऐण्ड माडर्न लाइफ, डी0वी0 तारपोरवाला ऐण्ड सन्स कं0 बाम्बे, 1574, पृ0 123

प्रकार का व्यवहार करती है कि वह स्त्री, पत्नी तथा माँ का अति सुन्दर आदर्श है तथा अपनी अचेतन असुरक्षा तथा अनौचित्य भावनाओं के प्रति अजागरूप है। गंभीर तथा विषम प्रक्षेपण का रूप स्थिर व्यामोहात्मक मनोविदल के रूप में (Paranoid Schizophrenic) विभ्रम (Hallucination) के रूप में देखने को मिलता है। वह उन आवाजों तथा आकृतियों को देखता है तथा सुनता है जिनको वह अनेक रूप में आरोपित करता है।

दमन

(Repression)

दमन सुरक्षात्मक यंत्र के द्वारा व्यक्ति कष्टकर आपत्तिजनक तथा अन्तर्द्वन्द उत्पन्न करने वाले विचारों, इच्छाओं तथा भावनाओं को चेतनता (Consciousness) से वहिष्कृत कर देता है। यद्यपि इस यंत्र क्रिया को चयनात्मक विस्मरण (selective forgetting) के रूप में जाना जाता है परन्तु अधि ाकांशतः उसकी प्रकृति चयनात्मक स्मरण (selective remembering) होती हे। इस यंत्र के द्वारा जो विचार तथा भावनाएँ चेतन रूप में आने से रोकी जाती है वे वास्तव में विस्मरण नहीं होती है। जो व्यक्ति अपनी आँखों अपने निकटतम संबंधी की हत्या देखता है उसको यह दृश्य इतना भयानक लगता है कि उसको भूलने का वह प्रयत्न करता है परन्तु अचेतन की याद बनी रहती है तथा कष्ट देती है।

दमन एक अत्यन्त महत्वपूर्ण सुरक्षात्मक यंत्र है जिसके द्वारा खतरनाक, विषम, कष्टकर, तथा पीड़ाजन्य परिस्थितियों से व्यक्ति बचता है। परन्तु इससे व्यक्ति में परिस्थिति का सामना करने की क्षमता का ह्रास होता है। इस यंत्र का उपयोग उस समय किया जाता है जब वास्तविकता से सामना करने की क्षमता कम हो जाती है। फ्रायड ने इस यंत्र का सबसे पहले वर्णन किया। उसको इसके बारे में ज्ञान उस समय हुआ जब वे हिस्टीरिया के रोगियों का उपचार कर रहे थे। यह उनके मनोविश्लेषण सिद्धान्त का एक महत्वपूर्ण अंग है। इस अवस्था में व्यक्ति का अहं (Ego) अपनी पूर्ण शक्ति को अवांछनीय तथा कष्टप्रद स्मृति को चेतन अवस्था में आने से रोकने में लगा देता है। दोनों शक्तियों में संघर्ष होता है और विजय उसी की होती है जो शक्तिशाली होती है।

फ्रायड ने अपने मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त को इड, इगो तथा सुपर इगो के आधार पर स्थापित किया था परन्तु इसके पूर्व उन्होने मस्तिष्क को 3 भागों में विभाजित किया था–चेतन, अर्धचेतन तथा अचेतन। अर्धचेतन अवस्था में वे मनोवैज्ञानिक तत्व विद्यमान रहते हैं जिनको आवश्यकता पड़ने पर चेतन स्तर में लाया जा सकता है। अचेतन अवस्था में वह तत्व रहता है जो चेतन अपस्था में आने के योग्य नहीं होता है अथवा उसके चेतन अवस्था में आने पर पीड़ा तथा कष्ट का अनुभव होता है। इस स्थिति को फ्रायड ने दमन की संज्ञा दी है।

साधारण प्रकार का दमन उस अवस्था में होता है जब व्यक्ति कहता है कि अमुक नाम उसकी जीभ पर है परन्तु याद नहीं आता है। इसका तात्पर्य यह है कि उस व्यक्ति को वह पंसद नही करता है अथवा उस नाम का संबंध किसी अरुचिकर विचार तथा भावना से है। दमन की विषम स्थिति उस समय होती है जब व्यक्ति की स्मृति बिल्कुल समाप्त हो जाती है। हिस्टीरिया उत्पन्न करने में 'दमन' का कार्य विशेषकर महत्वपूर्ण होता है। उदाहरण के लिए व्यक्ति की दृष्टि ठीक होने पर भी उसे दिखाई नहीं देता है क्योंकि उसका प्रत्यक्षीकरण दमित हो जाता है। दमन से शारीरिक क्रियाओं में भी बाधा उत्पन्न होती है। उदाहरण के लिए लैंगिक रूप से स्वस्थ होने पर भी व्यक्ति अनुभव करता है कि वह ऐसा करने में सक्षम नहीं है क्योंकि उसकी विरोधात्मक प्रवृति का दमन हो जाता है। दमन कभी –कभी विस्थापन (Displacement) के द्वारा भी प्रकट होता है। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति पिता के प्रति अपनी उग्र भावनाओं को दबा लेता है, वह किसी अवस्था में किसी अन्य शक्ति के प्रति प्रदर्शित करता है।

प्रतिगमन
(Regression)

जब व्यक्ति वर्तमान व्यवहार पद्धति को त्यागकर पूर्वकालीन स्थिति के समान व्यवहार करने लगता है तो उसे हम प्रतिगमन कहते हैं। इस अवस्था में व्यक्ति पूर्व व्यवहार के स्तर को स्वीकार कर लेता है क्योंकि वर्तमान व्यवहार उसे कष्टप्रद प्रतीत होता है। इस प्रकार प्रतिगमन की स्थिति में व्यक्ति प्रायः

अपनी शैशवकालीन अवस्थाओं में लौट आता है तथा उसी प्रकार का व्यवहार करने लगता है। अक्सर जब परिवार में नया शिशु उत्पन्न होता है तो बच्चा उसके प्रति प्रतिक्रिया करता है। वह घुटनों से चलना शुरू कर देता है तथा बिस्तर पर पेशाब करने लगता है यद्यपि चलना तथा उचित टट्टी–पेशाब करना काफी समय पहले ही वह सीख चुका होता है। वह प्रतिक्रिया के फलस्वरूप अपनी पूर्व स्थिति में वापस आ जाता है क्योंकि इस स्थिति में उसे अधिक प्यार मिला था और अपने माता–पिता पर पूरा अधिकार था।

प्रतिगमन व्यवहार आयु के किसी भी स्तर पर घटित हो सकता है तथा यह प्रतिगमन कई प्रकार का होता है। प्रायः जब एक स्थान से दूसरे स्थान को एक व्यक्ति जाता है ता वह अपने मित्रों तथा वाह्य परिस्थितियों से विलग होता है। परन्तु यदि उसे बराबर याद बनी रहती है और उससे कष्ट होता है तो वह कभी–कभी प्रतिक्रिया स्वरूप प्रतिगमन करता है। जो व्यक्ति घर से अधिक लगाव रखते हैं उनके साथ प्रायः इस प्रकार की समस्या उत्पन्न हो जाती है। उनके लिए घर से बाहर समायोजन स्थापित करना कठिन हो जाता है। यही कारण है कि गृहरोगी व्यक्ति (Home sick person) शारीरिक रोग से पीड़ित हो जाता है तथा ठीक होने के लिए घर वापस आना आवश्यक होता है।

प्रतिगमन का व्यवहार उन व्यक्तियों में प्रायः अधिक होता है जिनको आवश्यकता से अधिक बचपन में लाड़ प्यार मिलता है तथा अतिरक्षा (overprotection) प्राप्त होती है। इसका दूसरा महत्वपूर्ण कारण यह है कि व्यक्ति के मस्तिष्क की यह विशेषता है कि सुखदायी अनुभवों को याद करना तथा दुखदायी स्थिति भूलना चाहता है क्योंकि वर्तमान परिस्थितियों से समायोजन करना कठिन हो जाता है। वह उपने जीवन की वर्तमान स्थितियों से निरुत्साहित होकर पूर्व जीवन की शैशवकालीन अवस्था में लौटकर सुख की अनुभूति करता है। उदाहरण के लिए कोई 20 वर्ष का युवक थोड़ी सी कठिन स्थिति में रोने लगता हे, सहायता की प्रार्थना करता है अथवा बच्चों सा व्यवहार करने लगता है तो उसका व्यवहार प्रतिगमनात्मक होता है। इस अवस्था में व्यक्ति की इच्छा शक्ति (Will power) प्रतिगमित हो जाती है।

प्रतिगमन दो प्रकार का होता है–

1—काम शक्ति का प्रतिगमन (Libido–regression)

2— अहं प्रतिगमन (Ego-regression)

व्यक्ति में दोनों प्रकार के प्रतिगमन प्रायः किसी विशेष अवस्थाओं में उत्पन्न होते हैं परन्तु इनका अन्तर्सम्बंध अवश्य होता है। कामशक्ति का दमन होने की अवस्था में रोगी बच्चों सी क्रियाओं करने लगता है, वह खिलौनों से खेलता है, घुटनों के बल चलता, जरा जरा बात पर चिल्लाता तथा रोता है। वह क्रोध की अवस्था में बच्चों के समान तोड़—फोड़ भी करने लगता है। अहं प्रतिगमन की अवस्था में व्यक्ति अपनी भूमिकाओं को नहीं निभाता है और गैर जिम्मेदारी से कार्य करने लगता है। वह अपने उत्तरदायित्वों की चिंता नहीं करता है।

परन्तु प्रतिगमन का तात्पर्य पूर्व अनुभवों अथवा पूर्व व्यवहार के आधार पर समान समस्या अथवा परिस्थिति का सामना करना नहीं है जिनसे उसे पूर्व समय में सफलता प्राप्त हुई है। जब कोई व्यक्ति पूर्व व्यवहार पर लौट आता है जो कि बहुत अधिक अपरिपक्व तथा शैशविक होता है तब उसे प्रतिगमन की स्थिति कहते हैं।

मसरमैन[5] (Masser man) ने विषम प्रतिगमनात्मक व्यवहार का एक सुन्दर उदाहरण दिया है।

एक 17 वर्षीय पुत्री की माँ की शिकायत थी कि उसकी लड़की पिछले कुछ महीने से विध्वन्सात्मक तथा चिड़चिड़ी होती जा रही है। उसका सामान्य व्यवहार अति वाल्योचित (Childish) था। वह छोटे छोटे वाक्य बोलती थी तथा खिसियाई हँसी (giggle) हँसती थी। उसको भोजन हाथ से कराना पड़ता था तथा स्नान एवं सफाई का भी कार्य माता के द्वारा होता था। उसकी पारिवारिक पृष्ठ भूमि का अध्ययन करने से पता चला कि उसका परिवार अस्थिर था। रोगी जब 4 वर्ष की थी तभी उसके माता पिता में संघर्ष होने लगा था। रोगी को माता के साथ रहना पड़ा था जिससे उसे अत्यधिक कष्ट महसूस हुआ था क्योंकि वह पिता को अधिक प्यार करती थी। वह निराश रहने लगी थी। कुछ समय उपरान्त

---

5. मसरमैन, जूल्स0 एस0 — प्रिंसिपल्स आफ डायनिमिक साइक्याट्री, डब्लू0 वी0 सैन्डरर्स कं0, फिलेडेल्फिया, 1946, पृ0 64

माता पिता में किसी बात पर पुनः संघर्ष हुआ तब रोगी की हालत और भी गम्भीर हो गई। उसने विद्यालय जाना बंद कर दिया। जब उसकी माँ काम पर जाती थी तो वह अपने कपड़ो को इधर उधर विखेर कर फाड़ती थी तथा घर को अव्यवस्थित बनाने लगी थी। एक दिन उसने अपनी 5 वर्ष की अवस्था की फोटो देखी जिसमें उसके बाल कटे थे तथा रोशनी की गड़बड़ी के कारण भौंहें नहीं थी उसने तुरन्त अपने बालों को कॉट डाला तथा भौंहें को पूरी तौर से साफ कर दिया तथा फोटो के समान ही शरीर की आकृति बनाकर बैठना प्रारम्भ कर दिया।

प्रतिगमनात्क व्यवहार के प्रायः 3 प्रेरणात्मक कारक हैं।[6]

शारीरिक विकास के स्तर में अति मनौलैंगिक विकास (Enhanced level of psycho-sexual development) कुछ बच्चों को मौखिक, गुदा तथा ज़ननात्मक (genital) अवस्था में कठिनाई महसूस होती है अतः वह एक ही स्थिति में अधिक समय तक रहता है क्योंकि दूसरी अवस्था कष्टकर प्रतीत होती हैं। वह मौखित (oral) अवस्था के लक्षणों को लम्बी अवधि तक प्रदर्शित करता है। वह बोतल से दूध पीता है तथा माँ के हाथ से ही खाना खाता है।

माता पिता का बालक के प्रति ध्यान भी व्यवहार को काफी सीमा तक प्रभावित करता है। यदि माता पिता बालक के किसी एक विकास की अवस्था में अधिक सुविधायें प्रदान करते हैं तथा दूसरी अवस्था में कठोर हो जाते हैं तो बालक पूर्व अवस्था में ही रहना अधिक पंसद करता है। तीसरा महत्वपूर्ण कारण बालक का व्यक्तित्व स्वयं होता हैं। यदि किसी व्यक्ति का मौखिक अवस्था में गम्भीर रूप से अलगाव अथवा विछोह (Depriviation) हो जाता है तो उसकी इच्छायें तथा भावनायें सदैव अपूर्ण रहती हैं वह इनको प्राप्त करने के लिए भी प्रयत्न कर सकता है।

औचित्य स्थापन
(Rationalisation)

औचित्य स्थापन मानसिक सुरक्षात्मक यंत्र में अहं को अपने विचारों तथा कार्यों को उचित सिद्ध करने के लिए उन तरीकों का सहारा लेने के लिए

---

6. इंगलिस ओ स्पर्जन एण्ड पिंच, स्टुआर्ट मिल, उल्लिखित पृ0 64–65

बाध्य किया जाता है जो वास्तविक नहीं हैं। जब व्यक्ति को व्यवधान अथवा भय उन्पन्न होने से किसी प्रकार की आशंका होती है तो वह ऐसे तरीकों का सहारा लेता है जिनसे उसके व्यवधान तथा भय में कमी आ जाती है। अर्थात अन्तर्द्वन्द की स्थिति में व्यक्ति ऐसे उपायों तथा बहानों का प्रयोग करता है जिनसे उसे संतोष प्राप्त होता है। जो व्यक्ति औचित्य स्थापन करता है वह अच्छे सुखद लाभकारी तथा सामाजिक स्वीकृति के कारण अपने विचारों तथा कार्यों को अपने पक्ष में प्रस्तुत करता है। इस प्रकार वह वास्तविक कारकों के विषम प्रभाव से बच जाता है। यदि वह किसी कार्य में असफल होता है तो उसका कुछ न कुछ कारण निकाल कर कहता है कि चलो अच्छा हुआ अगर सफल भी हो जाते तो क्या मिल जाता, जिंदगी नर्क हो जाती। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति पी0 सी0 एस0 अथवा अन्य प्रतियोगिता में सफल नहीं होता है तो उसे असीम आंतरिक कष्ट होता है। परन्तु उस कष्ट को कम करने के लिए वास्तविक कारण नहीं ढूढता क्योंकि उसमें और भी कष्ट होता है। अतः वह कहता है कि पी. सी. एस. की नौकरी में उच्च अधिकारियों की हर समय खुशामद करनी पड़ती है तथा वे सदैव तानाशाह बने रहते हैं, कार्य अधिक करना पड़ता है तथा प्रत्येक क्षण व्यस्त रहना होता है। अतः वह सेवा उसके लिए उचित नहीं है।

औचित्य स्थापन कई प्रकार का होता है परन्तु सबसे प्रमुख 'अंगूर खट्टे हैं' प्रतिक्रिया है। लोमड़ी अंगर पाने का पूरा प्रयत्न करती है, उछल कूद मचाती है परन्तु जब किसी प्रकार से उन तक नहीं पहुँच पाती तो कहने लगती है कि वे अंगूर उसे पसंद नहीं है, खट्टे हैं। इसी प्रकार की प्रतिक्रिया व्यक्तियों में भी हाती है। उदाहरण के लिए जब अमुक व्यक्ति नौकरी तलाश करते करते थक गया तो अपनी असफलता को स्वीकार करने के स्थान पर कहने लगा कि नौकरी करना आज कल बहुत कठिन हो गया है क्योंकि अफसरशाही बहुत बढ़ गई है। इसके लिए काम भी जायज तथा नाजायज सभी प्रकार का लिया जाता है। अतः खेती करना सबसे अच्छा है। इस प्रकार वह अपने कार्य को उचित टहराता है तथा संतोष प्राप्त करता है। परन्तु यदि उसके विचारों को उचित समझा जाय तो उसने इस दिशा में प्रयास ही क्यों किया। उसको न तो कहीं आवेदन देना था और न किसी साक्षात्कार में जाना था।

औचित्य स्थापन का मुख्य आधार सुख दुख का सिद्धान्त (Pleasure

pain principle) है। इस अवस्था में व्यक्ति का यद्यपि समुचित समायोजन नहीं प्राप्त होता है परन्तु दुखद स्थितियों को वह सुखद बनाकर सहन करता है। उदारण के लिए एक छात्र का प्रेम एक छात्रा से हो जाता है, दोनों साथ साथ उठते बैठते हैं, साथ साथ चाय पीते हैं और दोनों प्रतिज्ञा कर लेते हैं कि वे जीवन भर साथ साथ रहेंगे। परन्तु किसी कारण वश छात्रा अपना कर्तव्य निभाने में असमर्थ होती है और किसी अन्य छात्र से मित्रता स्थापित कर लेती है, यह स्थिति उस छात्र के लिए अत्यन्त कष्टकर तथा दुखदायी होती है। अतः इसको दूर करने के लिए उसमें दोष निकालना प्रारम्भ कर देता है जिससे उसे सान्त्वना प्राप्त होती है। वह न केवल उस छात्रा के प्रति बल्कि उस वर्ग की सभी लड़कियों के प्रति इर्ष्यालु हो जाता है।

कभी कभी व्यक्ति विपरीत दशा में औचित्य स्थापित करता है। यह कहने के बजाय कि जिस वस्तु के लिए वह प्रयत्न कर रहा था वास्तव में उसको प्राप्त करने की उसकी इच्छा नहीं थी, वह कहता है कि जिस स्थिति में वह इस समय है वह अत्यन्त सुखकर तथा संतोषजनक है, उसको उससे अधिक कुछ नहीं चाहिए। यह औचित्य प्रायः प्रोन्नति रुकने अथवा ऊँचा स्थान प्राप्त करने की असफलता पर उपयोग में लाया जाता है।

औचित्य स्थापन के दो मुख्य कार्य है :

1 व्यक्ति–व्यवहार को उचित सिद्ध करने की सहायता करता है, तथा
2 उद्देश्य प्राप्त करने की असफलता से उत्पन्न असंतोष को कम करता है।

औचित्य स्थापन व्यवहार की अवस्था में व्यक्ति अपने किये गये व्यवहार के प्रति अनेकों कारण तथा तर्क प्रस्तुत करता है, विरोधी विचारों को बिल्कुल अस्वीकार करता है तथा जब उसके कारणों या तर्कों पर प्रश्न किया जाता है तो वह अस्थिर एवं दुखी हो जाता है। क्योंकि प्रश्न करने से उसके सुरक्षात्मक प्रयत्नों को आघात पहुंचता है जो उसने बहुत ही कठिनाई से आत्म अवमूँल्यन को बनाने के लिए प्रस्तुत किया है।

औचित्य स्थापन से यद्यपि व्यक्ति को सुख प्राप्त होता है परन्तु वास्तविकता से संबंध कम हो जाता है और कल्पना में विचरण करना सीख

जाता है। धीरे धीरे यदि यह प्रवृति बन जाती है तो उसमें सामाजिक व्यवहार करने की क्षमता का ह्रास हो जाता है और उसका प्रत्यक्षीकरण प्रभावित हो जाता है। सारांश में व्यक्ति औचित्य स्थापन द्वारा अपने को धोखा देता है।

विस्थापन
(Displacement)

जब किसी संवेग अथवा सांकेतिक अर्थ (symbolic meaning) की अभिव्यक्ति उस व्यक्ति अथवा विषयों (object) के प्रति न होकर जिससे कि उनकी उत्पत्ति हुई है दूसरे व्यक्ति अथवा विषयों के प्रति होती है तो हम उसे विस्थापन कहते हैं। व्यक्ति कभी–कभी अपने संवेगों को उत्पन्न करने वाले कारक के समक्ष स्पष्ट नहीं कर सकता है क्योंकि इससे उसको भय तथा असुरक्षा की संभावना होती है। अतः उसकी अभिव्यक्ति उस स्थिति अथवा कारक के प्रति करता है जिस पर उसका पूर्ण अधिकार होता है। विस्थापन में संवेग प्रायः निर्दोष व्यक्ति अथवा विषय के प्रति विस्थापित होते हैं। उदाहरण के लिए आफिस में आफिसर की डांट पड़ने पर अथवा उसकी आलोचना होने पर व्यक्ति अपने क्रोध के संवेगों को वहाँ पर प्रकट होने से दबा लेता है परन्तु अपने छोटे कर्मचारियों के सम्मुख अभिव्यक्त कर देता है। अथवा घर जाकर जरा सी बात पर पत्नी को मारने लगता है। विस्थापन की आवश्यकता इसलिये होती है कि व्यक्ति अपनी विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति खतरे तथा भय के कारण उत्पन्न कारक के प्रति नहीं कर सकता, अतः उसको दूसरे कारक के प्रति विस्थापित कर देता है । कभी–कभी व्यक्ति विस्थापन की स्थिति में स्वय के प्रति विरोधी भावनाओं तथा विचारों की अभिव्यक्ति करता है। वह आत्म निन्दा करने लगता है, अपराधी भावना विकसित हो जाती है तथा आत्म अवमूल्यन होता है। यद्यपि इस अवस्था में विरोधी भावनाओं की अभिव्यक्ति दूसरे व्यक्तियों अथवा विषयों के प्रति नहीं होती है। इससे व्यक्ति विषादी हो जाता है तथा आत्म हत्या करने का भी प्रयत्न करता है।

सामाजिक स्तर पर विस्थापन प्रायः प्रक्षेपण से संयुक्त कर दिया जाता है। नाजी (Nazi) जर्मनी में देश की बरबादी की जिम्मेदारी ज्यूज तथा कम्युनिस्ट पर प्रक्षेपित कर दी गई थी। इस प्रकार विषाद तथा विरोधात्मक भावनाओं को इन दो समूहों पर विस्थापित कर दिया गया था। सांकेतिक सम्बन्धों की प्रक्रिया

के द्वारा व्यवस्थापन अति जटिल तथा विचलित हो जाता है। विरोधात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति के लिए व्यक्ति अपशब्द कहने लगता है। वह प्रतिशोध पूर्ण (Vindictive) वार्तालाप का उपयोग अपना आंतरिक विरोध स्पष्ट करने के लिए करता है। फ्रैन्च तथा इपस्टीन ने आकाश गोताखोर (Sky divers) के अध्ययन में पाया कि आकाशगोताखोरी (Sky diving) से सम्बन्धित भय तथा चिन्ता पैराशूटिंग के स्थान पर अन्य स्थितियों पर विस्थापित हो गई थी। इस प्रकार की सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया को उत्तेजक व्यवस्थापन (Stimulus displacement) कहते हैं।[7]

प्रतिक्रिया निर्माण
(Reaction-formation)

जब व्यक्ति क्लेशकर–दुखकर तथा अनिच्छित मनोवृत्ति की अभिव्यक्ति रोकने के लिए विपरीत प्रकार की मनोवृत्ति अथवा चारित्रिक गुण उत्पन्न कर लेता है तो उसे प्रतिक्रिया निर्माण सुरक्षात्मक यन्त्र कहते हैं। प्रतिक्रिया निर्माण में व्यक्ति का व्यवहार बिल्कुल बदल जाता है। उसका यह व्यवहार स्थिर, कठोर तथा अवास्तविक होता है। आपत्तिकारी गुण प्रकट होने के लिए अचेतन रूप से व्यक्ति पर निरन्तर दबाव डालते रहते हैं। अतः प्रतिक्रिया निर्माण स्थिर रहता है चाहे वह लाभकर हो या न हो।

कभी–कभी व्यक्ति खतरनाक इच्छाओं, भावनाओं तथा स्थितियों से न केवल दमन के द्वारा बचता है बल्कि चेतन मनोवृत्ति तथा ब्यवहारिक तरीकों का विकास करता है जो प्रायः विरोधात्मक होते हैं। इस प्रकार घृणा को वाह्य प्रेम प्रदर्शन (Facade love) निर्दयता को दयालुता द्वारा या लैंगिक रूप से पीड़ित होने पर नैतिकता के द्वारा प्रतिक्रिया निर्माण किया जाता है। इस प्रकार वह ऐसी रूकावटों (Barriers) का निर्माण करता है जो कि दमन को प्रभावकारी बनायें रखता है तथा जिससे वास्तविक भावना एवं इच्छा की अभिब्यक्ति चेतन तथा वाह्य रूप में नहीं होती है। उदाहरण के लिए मद्य सेवन करने वाले ब्यक्तियों का सुधार की बड़ी–बड़ी बातें करना अथवा दुष्ट, भ्रष्टाचारी तथा निर्दयी ब्यक्ति का मन्दिर, धर्मशाला इत्यादि बनवाना। इस प्रकार के व्यक्ति इन

---

7. फेंच, डब्लू0 डी0 एण्ड स्ट्रेस एपस्टीन, एस0 — दि मेयर साइक्पार्ट्री टुडे, 1565 (3) 4 107 पृ0 27–28

समस्याओं से स्वयं इतना ग्रस्त होते हैं कि इनको दूर करने के लिए सुधारात्मक एवं आदर्शात्मक कार्यों का सहारा लेते हैं जिससे उन्हें शान्ति प्राप्त होती है।

प्रतिक्रिया निर्माण से दमन की भाँति ही समायोजित करने की क्षमता उत्पन्न होती है क्योंकि ब्यक्ति इसके द्वारा सामाजिक स्वीकृत व्यवहार को बनाये रखता है तथा आत्म अवमूल्यन व असामाजिक प्रवृत्ति को दूर करता है। परन्तु यह यन्त्र भी व्यक्ति को धोखा देना सिखाता है या वह इसके द्वारा स्वयं को ध ोखा देता है। अतः व्यक्ति का विश्वास एवं व्यवहार आवश्यकता से अधिक कठोर एवं स्थिर हो जाता है जिससे उसके लिए सामान्य परिस्थितियों से सामंजस्य स्थापित करना कठिन हो जाता है।

परिपूर्ति

(Compensation)

परिपूर्ति प्रतिक्रिया एक सुरक्षात्मक यन्त्र है जिसके द्वारा व्यक्ति संभावित असफलता अथवा कमी व हीन भावना को दूर करता है। जब वह सोच लेता है कि अमुक कार्य में वह असफल हो रहा है तो वह उस इच्छा पूर्ति के लिए दूसरा रास्ता अपनाता है तथा दूसरा उद्देश्य निर्धारित करता है। अपनी वास्तविक अथवा काल्पनिक कमी की पूर्ति के लिए नवीन दिशा में प्रयास करता है। उदाहरण के लिए पढ़ाई में कमजोर होने पर खेलों में निपुण होने के लिए कड़ा परिश्रम करना, सुन्दर न होने पर तड़क भड़क के कपड़े पहनना इत्यादि। प्रायः सभी व्यक्तियों में कोई न कोई कमी होती है, उनको प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष तरीकों से दूर करने का प्रयत्न करते हैं। पडित जवाहर लाल नेहरू को भाषण देने का बिल्कुल गुण न था। उनको इसके लिए कालेज में दन्ड भी दिया गया था परन्तु बाद में वे इतने अच्छे वक्ता बने कि उसकी दुनिया में बहुत ही कम मिसाल मिलती हैं। हिटलर इतना कुरूप था कि वह कक्षा में पीछे बैठता था तथा कोई भी उसे पसन्द नहीं करता था। परन्तु उसने अपनी इस दुर्बलता की पूर्ति किस प्रकार की इसको दुनिया जानती है।

परिपूर्ति प्रायः दो प्रकार की होती है। प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष। जब व्यक्ति 'अमुक' कमी को दूर करने के लिए उसी दिशा में कड़ी मेहनत करता है तो उसे प्रत्यक्ष परिपूर्ति कहते हैं। उदाहरण के लिए शरीर से कमजोर होने पर कसरत

करना, सुबह दौड़ना तथा पौष्टिक भोजन करना। इसके विपरीत जब व्यक्ति एक क्षेत्र की कमी को दूर करने के लिए दूसरे क्षेत्र में प्रयास करता है तथा विशेषता ग्रहण करता है तो उसे अप्रत्यक्ष परिपूर्ति कहते हैं। उदाहरण के लिए पढ़ाई में सफलता न पाने पर खेलकूद में नाम कमाना, अथवा सुन्दर न होने पर संगीत में पारंगत होना। प्रायः परिपूर्ति प्रक्रियायें अप्रत्यक्ष ही होती हैं क्योकि व्यक्ति जब एक दिशा में कमजोरी अनुभव करता है और यह भी अनुभव कर लेता है कि किसी भी प्रकार से वह उस पर विजय नहीं पा सकता या सफलता के बहुत ही कम चिन्ह हैं तो दूसरी दिशा में प्रयास करता है इससे इसके आंतरिक संघर्ष एवं असफलता के दुःख को प्रतिकूल पर्यावंरण मिलता है। आकर्षणहीन लड़का या लड़की प्रायः इस प्रकार का आकर्षक व्यवहार विकसित करती हैं कि दूसरे लोग उसके व्यवहार से प्रभावित होते हैं। सुन्दर स्वस्थ न होने में प्रायः श्रृंगार बनाव का सहारा लिया जाता है। सम्पूर्ण श्रृंगार बनाव के कारखाने परिपूर्ति के लिए ही विकसित किये गये हैं जिससे कि अवाँछनीय (Undesirable) चेहरे को वांछनीय बनाया जा सके।

परन्तु सभी परिपूर्ति प्रतिक्रियायें लाभकारी एवं वांछनीय (desirable) नहीं होती हैं, जैसे योग्यता न होने पर शान बघारना अथवा पढ़ाई में कमजोर होने पर शरारत करना। जो ब्यक्ति हीन भावना से ग्रसित है यदि वह गुण्डा बनकर परिपूर्ति करता है तो यह अवांछनीय प्रतिक्रिया होती है। अधिकारियों का उलंघन भी परिपूर्ति के कारण ही किया जाता है। अतः जब परिपूर्ति अवास्तविक अथवा अवांछनीय पद्धति पर की जाती है तो वह समाज विरोधी हो जाती है।

आत्मीकरण
(Identification)

जब व्यक्ति अपने उद्देश्य में असफल रहता है तो दूसरों की उपलब्धियों को अपनी उपलब्धियाँ मानकर संतोष करता है तथा आत्म शक्ति को स्थिर बनाये रखता है। अर्थात वह दूसरों की उपलब्धियों से आत्मीकरण कर लेता है[9]। वीर

8. लेहनर, जार्ज एफ0 जे0 एण्ड कुवे इला, दि डायनमिक्स आफ पर्सनल एडजस्टमेंट, प्रेंन्टिस हाल, न्यूयार्क, 1956 पृ0 120

पूजा (Hero worship) सबसे सामान्य प्रकार का आत्मीकरण है[9]। वह जिस क्षेत्र में असफलता अथवा हीन भावना अनुभव करता है उस क्षेत्र में सबसे सफल व्यक्ति से आत्मीकरण करता है। उसके स्वभाव, भाषा तथा व्यवहार का अनुकरण करता है। समाजीकरण की प्रक्रिया आत्मीकरण की प्रमुख भूमिका होती है। बालक माता पिता से आत्मीकरण करने में न केवल सुरक्षा अनुभव करते हैं बल्कि उन कार्यों को भी करना सीखते हैं जिनकी उनसे आशा की जाती है। परन्तु आत्मीकरण अचेतन स्तर पर होता है। जबकि अनुकरण चेतन स्तर पर होता है। ब्यक्ति न केवल विशेष व्यक्तियों से बल्कि अनेक समूहों से भी आत्मीकरण करता है। वह किसी क्लब का सदस्य बनता है। कुछ समय बाद उसको अपना क्लब कहने लगता है। कालेज को अपना कालेज तथा देश को अपना देश कहता है। समूह की उपलब्धियां उसकी उपलब्धियाँ हो जाती हैं। तथा यदि कोई उसके समूह में विषम परिस्थिति उत्पन्न होती है तो वह स्वयं चिन्तित हो जाता है। यदि कोई अनुचित रिमार्क उसके समूह के प्रति करता है तो वह विपरीत प्रतिक्रिया अवश्य करता है। साधारणतया आत्मीकरण रचनात्मक भूमिका अदा करता है परन्तु यदि व्यक्ति अपने को पूर्णतया भुला देता है अथवा खलनायक से आत्मीकरण करता है तो वह ध्वंसात्मक आत्मीकरण होता है। उदाहरण के लिए विषय आत्मीकरण (स्थिर व्यामोह) की अवस्था में व्यक्ति अपने तथा आत्मीकृत करने वाले व्यक्ति के बीच अन्तर स्पष्ट करने वाली ज्ञानेन्द्रियों की शक्ति खो देता है तथा वह अपने को साक्षात नायक, राजा, नेता, सन्त, वैज्ञानिक अथवा वक्ता मानने लगता है।

स्थिरता

(Fixation)

बालक के सामान्य विकास की अवस्था मे अनेक ऐसे अवसर आते हैं जहाँ पर उसको समायोजित करने में कठिनाई अथवा व्यवधान अनुभव होता है। व्यक्तित्व का विकास कई स्तरों से होकर गुजरता है अतः प्रत्येक नवीन स्थिति बालक के लिए कुछ न कुछ निराशाजन्य अवश्य होती है। उसको प्रत्येक नवीन परिस्थिति का सामना करने के लिए विशेष साहस, उत्साह, प्रशिक्षण की

---

9. उपर्लिखित, पृ0 120

आवश्यकता होती है अतः चिन्ता तथा निराशा स्वभावतः उत्पन्न हो जाती है। जब चिंता और निराशा अधिक होती है तो स्थायी अथवा अस्थायी रूप से व्यक्तित्व स्थिर हो जाता है। दूसरे शब्दों में व्यक्ति प्रारम्भिक विकास के किसी स्तर पर स्थिर हो जाता है क्योंकि दूसरे स्तर अथवा स्थिति में प्रवेश करने से चिन्ता व निराशा उत्पन्न होती है। जो बालक माता पिता पर अत्यन्त निर्भर रहता है वह इस प्रकार का सुरक्षात्मक यन्त्र का उपयोग करता है क्योंकि स्वतन्त्र रूप से कार्य सीखने में चिन्ता व्यवधान उत्पन्न करती है।

प्रायश्चित

(Atonement)

प्रायश्चित के द्वारा ब्यक्ति अस्वीकृत विचारों, क्रिया तथा भावनाओं को निष्प्रभावित (Annul) करता है। गलतियों के लिए क्षमा माँगना, पश्चाताप करना तथा अपने को दण्डित करना प्रायश्चित के तरीके हैं। जब व्यक्ति में अपराध की भावना बढ़ जाती है और उसको वह किसी भी तरीके से समाधान करने में असफल रहता है तो वह अपने अपराध को स्वीकार कर लेता है और उसके लिए क्षमा–याचना करता है। इस प्रकार वह जीवन को पुनः सुखी बनाने का प्रयत्न करता है।

प्रायश्चित तरीकों का विकास प्रारम्भिक प्रशिक्षण पर निर्भर करता है। जिन बालकों को जरा–जरा सी बात पर क्षमा माँगने के लिए वाध्य किया जाता है या उन्हें दण्डित किया जाता है ऐसे बालक भविष्य में ऐसे ब्यक्तित्व का विकास करते हैं जिसमें प्रायश्चित करना एक लक्षण होता है। आज के ब्यवहार में साधारण प्रायश्चित करना एक सामान्य बात हो गई है। मैं दुःखी हूं, या मुझे माफ करना, प्रायश्चित करने का एक तरीका है। वह अपराध की प्रवृत्ति को दूर करने के लिए अनेकों प्रयत्न करता है। उदाहरण के लिए अविश्वासी पति अपनी पत्नी के लिए उपहार लाता है या अनैतिक ब्यापारी दान में बहुत अधिक धन देता है। विषम प्रायश्चित की अवस्था में ब्यक्ति व्यामोह (Delusion) से पीड़ित हो जाता है और वह समझने लगता है कि उसने ऐसे कृत्य किये हैं जिनको कोई क्षमा नहीं कर सकता है।

कल्पना–तरंग तथा दिवास्वप्न
(Fantasy and Daydreaming)

कल्पना तथा दिवास्वप्न द्वारा व्यक्ति उन सुखों का अनुभव प्राप्त करता है जिनको कि वास्तविक जीवन में प्राप्त करने में असफल रहता है। कल्पना में वह उन बन्धनों को अस्वीकार करके निराशा को समाप्त करता है तथा जिस प्रकार का व्यवहार करना चाहता है, करता है। दिवास्वप्न की अवस्था में वह अपने में उन गुणों को देखता है तथा उनका समुचित उपयोग करता है जिनको वह सामाजिक बन्धनों अथवा बाधाओं के कारण नहीं प्राप्त कर सकता है। हस्त मैथुन का प्रारम्भ प्रायः कल्पना तथा दिवास्वप्न द्वारा होता है। इस विधि द्वारा ब्यक्ति सन्तोष को प्राप्त करता है परन्तु वास्तविकता को बिलकुल भूला देता है जिसके परिणाम स्वरूप असमाजिक लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

कल्पना तंरग तथा दिवास्वप्न सामाजिक तथा असामाजिक दोनों प्रकार के लक्षणों को प्रदर्शित करता है। रचनात्म्क तथा सामाजिक रूप में इसके उपयोग द्वारा स्वप्न को साकार बनाने का प्रयत्न किया जाता है, ब्यक्ति अपनी शक्ति व मेहनत को और अधिक बढ़ाने का प्रयत्न करता है। कवि तथा चित्रकार को कल्पना करना अनिवार्य होता है। परन्तु यदि कल्पना तथा दिवास्वप्न का उपयोग समस्याओं से छुटकारा पाने के लिए किया जाता है तो वह घ्वंसात्मक होता है।

इस अवस्था में व्यक्ति कल्पना (Imagination) में अपने उद्देश्यों को पूरा करता है तथा आवश्यकताओं व इच्छाओं की संतुष्टि करता है। इच्छापूर्ति कल्पना तरंग (wish fulfilling fantasy) दो तरीकों से अभिव्यक्त होती हैं :

1– विजयी नायक तरीका (Conquering hero pattern)

2– वेदनाग्रस्त नायक तरीका (Suffering hero pattern)

प्रथम तरीके के अन्तर्गत व्यक्ति अपने को महान नायक, विजेता, सर्जन, वैज्ञानिक समझता है एवं दूसरों से प्रशंसा प्राप्त करता है। वह अपने को शक्तिशाली, योग्य तथा आदरणीय समझता है। इस प्रकार विरोधी भावनायें आसानी से कल्पनातरंग द्वारा अभिव्यक्त हो जाती हैं। इसके द्वारा वह उन सभी व्यक्तियों को कल्पना में नष्ट करता है या दण्ड देता है जो उसके रास्ते में रोड़ा अटकाते हैं। व्यक्ति कल्पनातरंग द्वारा क्षतिपूर्ति भी करता है।

वेदनाग्रस्त नायक तरीके द्वारा व्यक्ति को किसी व्यक्तिगत हीनता को स्वीकार नहीं करना पडता है क्योंकि वह अपने में किसी जन्मजात कमी अथवा दुर्भाग्य के प्रभाव की कल्पना करता है। अपनी असफलता के लिए स्वयं दोषी न ठहराकर भाग्य को दोष देता है। इस दशा में विरोधात्मक भावनाओं की अभिव्यक्ति आसान हो जाती है।

यद्यपि कल्पना तरंगों तथा दिवास्वप्नों से जीवन की दुखद स्थिति तथा अन्तर्द्वन्द में कमी आती है और व्यक्ति को संतोष प्राप्त होता है परन्तु वह संघर्ष से प्रतिगमित होता है और वास्तविकता से मुह मोड़ता है, फलस्वरूप अयथार्थवादी बन जाता है।

प्रत्याहार
(Withdrawl)

प्रत्याहार की अवस्था में व्यक्ति सामाजिक सम्पर्कों तथा विभिन्न दबावों से अपने को पृथक कर लेता है। यदि इस प्रकार का व्यवहार लम्बी अवधि तक बना रहता है तो वह जीवन की सभी परिस्थितियों से अपने को पृथक समझता है। साधारणतया प्रत्याहार की सरल अवस्था में उसे समस्याओं, विचारों तथा सम्बन्धों के पुनर्मूल्यांकन का अवसर मिलता है। कभी–कभी व्यक्ति घनिष्ठ रूप से परिस्थिति से सम्बन्धित होने के कारण बुद्धिमत्ता पूर्ण निर्णय लेने में कठिनाई अनुभव करता है अतः वह कुछ समय के लिए स्वयं को पृथक कर लेता है जिससे उसे निर्णय लेने में सहायता प्राप्त होती है। कुछ समयान्तर के पश्चात वह स्थिति का सुस्पष्ट तथा प्रभावकारी तरीके से सामना करता है।

प्रत्याहार कई प्रकार का होता है। जो व्यक्ति अपने को सामाजिक परिस्थितियों के साथ समायोजित होने के अयोग्य समझता है वह विनम्र (Submissive) तथा शर्मीला (Shy) होता है। वह संपर्कों से अपने को पृथक कर लेता है तथा सामाजिकता की अपेक्षा एकान्तता (Solitary) को महत्व देता है। वह अपने चारों ओर की क्रियाओं में भाग लेने के वजाय देखना रुचिकर समझता है। यदि प्रत्याहार की प्रवृत्ति अत्यधिक (Pronounced) हो जाती है तो उसमें विषम असमायोजन के लक्षण प्रदर्शित होने लगते हैं। जो व्यक्ति उदासीन एवं संकोची (Reserved) होता है तथा अपने सम्बन्धों में सदैव औपचारिक (Formal)

रहता है उसमें प्रत्याहार के लक्षण होते हैं। क्योंकि औपचारिकता की अवस्था में वह अपनी आंतरिक हीनभावना को छिपा लेता है। वह अपनी भावना से दूसरों को परिचित होने से रोकने के लिए प्रायः औपचारिकता का तरीका अपनाता है। इस प्रकार के व्यक्ति को न तो अपने पर विश्वास होता है और न ही दूसरों का विश्वास करता है। वह प्रायः चिन्तित तथा भयभीत रहता है। यदि किसी समय असुरक्षात्मक तथा कष्टकर घटना घर, स्कूल, आफिस अथवा किसी स्थान पर घटित हो जाती है तो पुनः घटित होने का भय उसे लगा रहता है। वह एक स्थिति से दूसरी स्थिति के प्रति सामान्यीकरण करता है तथा भविष्य की परिस्थितियों से दूर रहने का प्रयत्न करता रहता है। इस प्रकार का व्यवहार पूर्व अनुभवों तथा दोषपूर्ण लालन–पालन के कारण व्यक्ति सीखता है। कभी–कभी अप्रत्याशित आघातजन्य परिस्थितियों से भी इतना धक्का लगता है कि उसमें अलगाव के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। उदाहरण के लिए यदि कोई लड़की किसी पुरूष द्वारा इस आश्वासन के विपरीत कि वे दोनों विवाह कर लेंगे, त्याग दी जाती है तो यह घटना तथा परिस्थिति आघातजन्य होती है। यदि इस प्रेम सम्बन्ध के विषय में उसकी सहेलियों को भी पता होता है तो उस पर अत्यधिक कुठाराघात होता है। इस परिस्थिति में सहेलियों तथा सम्बन्धियों की आलोचना तथा दया भाव से बचने के लिये लड़की सामाजिक सम्बन्धों तथा सम्पर्कों से प्रथक्करण कर लेती है। इस यन्त्र के उपयोग द्वारा वह दुःखद स्थिति का पुनर्मूल्यांकन होने से बच जाती है तथा व्यक्ति को भूलने का प्रयत्न करती है। वह इसका औचित्यीकरण यह कहकर करती है कि सामाजिक कार्यों में भाग लेने का तात्पर्य समय की बर्बादी है, उतने समय में पढ़ा–लिखा जा सकता है।

प्रत्याहार के लक्षण उस व्यक्ति में भी पाये जाते हैं जो अपनी उन्नति के लिए सभी रास्ते ढंढ़ने का प्रयत्न करता है परन्तु उनका समुचित उपयोग नहीं करता है। उदाहरण के लिए संवादपत्र में नवीन रिक्त स्थान का विज्ञापन तो बहुत शीघ्र ही देख लेता है परन्तु अपना आवेदन–पत्र भेजने में प्रायः विलंब करता है।

कुछ व्यक्ति समस्याओं तथा संघर्षों से मुक्ति पाने के लिए बीमार हो जाते हैं। वे यह कार्य जानबूझ कर यद्यपि नहीं करते हैं लेकिन उनकी शारीरिक संरचना इस प्रकार की संवदेनशील हो जाती है कि शारीरिक व्यवधान किसी संघर्ष अथवा समस्या के उत्पन्न होने पर शीघ्र ही प्रकट हो जाते हैं।

उदासीनता (Apathy) तथा अरुचि भी प्रत्याहार के लक्षण हैं। व्यक्ति प्रायः प्रत्याहार का औचित्यीकरण करने के लिए कहता है कि अमुक स्थिति, व्यक्ति अथवा समूह में उसकी कोई रुचि नहीं है। संकीर्णता (Narrowmindedness) भी प्रत्याहार का एक लक्षण है। व्यक्ति जब विरोधी विचारों को प्रकट नहीं करता है वह संकीर्ण बन जाता है।

वास्तविकता का खण्डन
(Denial of Reality)

आत्म सुरक्षात्मक यन्त्र के द्वारा व्यक्ति वास्तविकता से अपना सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है। वह अनिच्छित तथा क्लेशकर स्थितियों एवं भावनाओं को अस्वीकृत तथा उपेक्षित कर मानसिक चित्रपट से दूर कर देता है। प्रत्यक्षित यन्त्र (Perceptual mechanism) वास्तविकता के खण्डन का एक तरीका है। एक व्यक्ति दुखदायी स्थितियों से अपनी दृष्टि मोड़ लेता है या ऐसी बातें करने लगता है जैसे कुछ घटित ही न हुआ हो, अथवा दुखदायी विषय पर बातचीत करने से इन्कार कर देता है। आलोचना का खण्डन करता है या काम में इतना अधिक व्यस्त हो जाता है कि उसे व्यक्तिगत समस्याओं पर ध्यान आकृष्ट करने का समय ही नहीं मिल पाता है। जब वास्तविकता के खण्डन की विषम स्थिति होती है तो व्यक्ति अनुभव करता है कि वास्तव में उसे कुछ भी दुखदायी नहीं महसूस होता है अथवा उसके साथ कोई भी घटना नहीं घटित हुई है। यहाँ पर सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया अस्थायी रूप से प्रकट होती है जिसके द्वारा आघातजन्य स्थिति के पूर्णप्रभाव से रक्षा होती है।

मनोविदलता के रोगी में विषम अस्वीकृत यन्त्र के लक्षण देखने को मिलते हैं। वह चिकित्सालय के कोलाहल तथा व्यवधानात्मक वार्ड में भी अपने को बन्धनमुक्त समझता है तथा अपनी रुचि के अनुसार व्यवहार करता है।

पृथक्करण
(Isolation)

इस सुरक्षात्मक तरीके में सांवेगिक अलगाव तथा औचित्य स्थापन दोनों तरीके सम्मलित हैं। जिन परिस्थितियों अथवा घटनाओं से दूख, कष्ट अथवा हानि उत्पन्न होने की सम्भावना होती है औचित्य स्थापन द्वारा उस घटना या

क्रिया से दूर रहे। अर्थात व्यक्ति एक ओर तो सांवेगिक क्रिया नहीं करता है तथा दूसरी ओर ऐसा करने का कारण भी ढूंढ़ लेता है। उदाहरण के लिए जब माता–पिता की मृत्यु होती है तो व्यक्ति यह कहकर दुख कम कर लेता है कि उन्होंने अपना जीवन पूर्ण सफलता के साथ व्यतीत किया अथवा अब उनकी उम्र इस घटना के लायक थी। पृथक्करण तथा औचित्यीकरण का प्रयोग सामान्य तनावपूर्ण जीवन की स्थितियों से लेकर अतिशय तनावपूर्ण स्थितियों तक किया जाता है। ब्लूस्टोन[10] (Bluestone) तथा मैक गाही (Mac Gahee) के विचार से यह सुरक्षात्मक तरीका उन कैदियों में अधिक पाया जाता है जो सजा की प्रतिक्षा करते है।

सांवेगिक अलगाव
(Emotional Insulation)

व्यक्ति उन परिस्थितियों में सांवेगिक सम्मिलन (Emotional Involvement) कम कर देता है जिनसे किसी संभावित कष्ट, पीड़ा अथवा नुकसान की आशंका होती है। व्यक्ति के जीवन में अनेक ऐसे अवसर आते हैं जिनसे असंतोष उत्पन्न होता है। इस कारण उसे ऐसी स्थिति का पूर्वाभास भी होने लगता है। सांवेगिक अलगाव की स्थिति तभी उत्पन्न होती है जब व्यक्ति बार–बार असफल होता है तथा दुखद परिस्थितियाँ बार–बार आती हैं। इसलिए वे परिस्थितियाँ एसे व्यक्ति में संवेग उत्पन्न करने के योग्य नहीं रह जाती हैं जितनी कि सफल व्यक्ति को प्रभावित करती है। उदाहरण के लिए जो विद्यार्थी परीक्षा में बार–बार असफल हो जाता है उसके लिए परीक्षा देना एक साधारण बात हो जाती है। निरन्तर असफलता व निराशा की स्थिति व्यक्ति को उदासीन बना देती है जिसके कारण उसकी जीवन पद्धति प्रतिबंधित अथवा सीमित हो जाती है। ऐसे विश्रंखलित (Broken) व्यक्ति जीवन की घटनाओं में निष्क्रिय रूप से भागीकृत होकर अपनी भग्नाषा को कम करते हैं। स्थिर मनोविदलता का रोगी अतिशय सांवेगिक अलगाव का प्रयोग करता है जिससे उसे असहनीय दुखद परिस्थिति से छुटाकरा मिलता है।

---

10. ब्लूस्टोन, एच0 एण्ड मैक गाही, सी0एल0 : रियक्सन टु एक्स्ट्रीम स्ट्रेस, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1962, 119, पृ0 393.398

मनोसुरक्षात्मक यन्त्रों से सम्बन्धित सिद्धान्त

लेहनर तथा कूवे[11] ने सुरक्षात्मक तरीकों से संबंधित निम्नलिखित सिद्धान्तों का प्रतिपादन किया है :

(1) व्यक्ति सुरक्षात्मक यन्त्रों अथवा तरीकों का प्रयोग निराशा से निपटने के लिए करता है। यह निराशा उसे विकास के मध्य अनुभव होती है। सुरक्षात्मक यन्त्र व्यवहार के सीखे हुये तरीके हैं।

(2) सुरक्षात्मक यन्त्र असुरक्षा के भय से व्यक्ति की रक्षा करते हैं

(3) जीवन के किसी न किसी बिन्दु पर व्यक्ति निराशा अवश्य अनुभव करता है। सुरक्षात्मक यन्त्र समायोजनात्मक हैं अथवा असमायोजनात्मक, यह व्यक्ति के प्रयोग पर निर्भर होता है।

(4) जिस व्यक्ति में समस्या समाधान करने के लोचदार तरीके होते है वह निराशा तथा संघर्ष को उचित प्रकार से निपटाने में समर्थ होता है। परन्तु विपरीत स्थिति होने पर निराशा तथा संघर्ष से निपटने में असमर्थ रहता है।

(5) सुरक्षात्मक यन्त्र निम्न दशाओं में असमायोजनात्मक बन जाता है:–

(क) जब काल्पनिक दुनिया में वास्तविक दुनिया की अपेक्षा अधिक संतोष मिलता है।

(ख) जब वास्तविक समस्या की प्रकृति का संघर्ष के श्रोत को सुरक्षात्मक यन्त्र अस्पष्ट बना देते हैं।

(ग) जब वे प्रतिकूलन को संचित कर देते हैं जैसे जब एक व्यक्ति नौकरी प्राप्त करने में असफल हो जाता है तो कहने लगता है कि उसे नौकरी नहीं करनी है (अंगर खट्टे हैं तरीका) या अपनी असफलता का प्रक्षेपण करता है।

(6) उस अवस्था में भी सुरक्षात्मक यन्त्र असमायोजनात्मक हो जाते हैं जब वे व्यक्ति को समस्या के संदर्भ में अपनी संस्तुति प्रस्तुत करने से रोकते हैं तथा विकल्प (Alternative) को चुनने में दृष्टिहीन बना देते हैं।

---

11. लेहनर, जार्ज एफ.जे. ऐण्ड कूवे, इला : दि डायनमिक्स आफ पर्सनल एडजस्टमेंट, पेन्टिस हाल, इंक, न्यूयार्क, 1956 पृ0 136।

5

असामान्य व्यवहार के कारण

सामान्यतया चिकित्सकीय व्यवसाय का सम्बन्ध शारीरिक रोगों से समझा जाता है और आंगिक कारकों को इन रोगों के लिए उत्तरदायी ठहराया जाता है। इसी प्रकार मनोव्याधिकी का सम्बन्ध मानसिक रोगों से होता है और मनोवैज्ञानिक तथा सांवेगिक कारकों को इसके लिए उत्तरदायी समझा जाता है। आज यह अनुभव किया जाने लगा है कि दोनों ही दृष्टिकोण संकुचित हैं। किसी रोग का प्राथमिक कारण आंगिक अथवा मनोवैज्ञानिक तो हो सकता है लेकिन इसका सम्बन्ध व्यक्ति की सम्पूर्ण विकृति से होता है न कि उसके किसी एक अंग अथवा मन से। उदाहरण के लिए शारीरिक कष्ट व्यक्ति को मनोवैज्ञानिक दबावों को सहने की क्षमता में कमी कर देता है इसके विपरीत मनोवैज्ञानिक उथल--पुथल शारीरिक शक्ति में कमी उत्पन्न कर देती है। तथा शारीरिक रोगों की उत्पत्ति होती हैं। वह सदैव मनोवैज्ञानिक इकाई के रूप में कार्य करता है तथा इस कार्य पद्धति में पर्यावरण का विशेष महत्व होता है।

किसी भी असामान्य व्यववहार में कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं होता है बल्कि अनेक कारकों का पुंज प्रभावकारिता में भिन्नता रखते हुये सामान्य व्यवहार के लिए उत्तरदायी होते हैं। असामान्यता के प्रकार की भिन्नता के साथ साथ इसके कारणों में भी भिन्नता हो जाती है अतः किसी एक कारक का अन्य कारकों के पुंज से पृथक करके उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है। लक्षण के आधार पर भी रोग के कारण को निश्चित करना असम्भव होता है क्योंकि एक प्रकार का लक्षण अनेकों कारकों से उत्पन्न होता है।

मानसिक विकृतियां प्रायः दो प्रकार की होती हैं। पहले प्रकार की वे विकृतियाँ हैं जिनका विकास मस्तिष्क की गड़बड़ी से होता है। इन विकृतियों में मस्तिष्क के शारीरिक कार्यों में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। व्यक्ति का आन्तरिक संतुलन बिगड़ जाता है तथा विभ्रम, भ्रम तथा अन्य सांकेतिक व्यवधानात्मक लक्षण प्रकट होने लगते हैं। इस प्रकार के व्यवधानों के लिए किसी एक कारक को उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

दूसरे प्रकार की वे मानसिक विकृतियाँ है जिनमें शारीरिक कारकों का बहुत कम या नहीं के बराबर योगदान होता है। मनोवैज्ञानिक कारक विशेष रूप से इसके लिए उत्तरदायी होते हैं। इन कारकों के कारण व्यक्ति का सामाजिक व मानसिक संतुलन बिगड़ जाता है और वाह्य परिस्थितियों का सामना करने में असमर्थ हो जाता है। पर्यावरण सम्बन्धी कारक भी व्यक्ति के सम्मुख ऐसी दबाव पूर्ण स्थिति उत्पन्न कर देते हैं जिनसे व्यक्ति उनका सामना नहीं कर पाता है।

(1) असामान्य व्यवहार के कारण

जैसा कि ऊपर वर्णित किया जा चुका है असामान्य व्यवहार के लिए कोई एक कारक उत्तरदायी नहीं है। कारकों का समूह इसके लिए उत्तरदायी है। फिर भी हम सुविधा की दृष्टि से इन कारकों को पृथक पृथक वर्णित कर रहे हैं।

1 वंशानुक्रम संबंधी कारक

व्यक्तित्व के विकास में वंशानुक्रम का एक महत्वपूर्ण स्थान है। मनोशारीरिक रचना पर वंशानुक्रम संबंधी कारकों का विशेष प्रभाव होता है। मनोविकृतियों के विकास में वंशानुक्रम की क्या भूमिका है इसके संदर्भ में विद्वानों में काफी मतभेद है। वंशानुक्रम से बालक के शरीर का रंग, बालों का रंग, शारीरिक बनावट तथा शारीरिक विशेषतायें निर्धारित होती हैं। स्नायुमंडल पर भी इसका प्रभाव पड़ता है।

वंशानुक्रम के संदर्भ में उत्पत्तिमूलक कारकों को समझना यहाँ पर आवश्यक प्रतीत होता है।

उत्पत्ति मूलक अपूर्णता (Genetic Defects)— व्यक्ति का व्यवहार जैवकीय पैतृक से प्रभावित होता है। इसलिए मनोविकार के उत्पन्न करने में उत्पत्ति मूलक व्यवधान का विशेष महत्व होता है। माता–पिता के बीजकोष एक निश्चित मात्रा में मिलते हैं और वे ही बालक के विशिष्ट गुणों को निर्धारित करते हैं। एक निशिक्त अंड (Fertalised ovum) में वंश सूत्रों के चौबीस जोड़े उपस्थित रहते हैं। जिनमें से आधे माता तथा आधे पिता के होते हैं। प्रत्येक वंशसूत्र में चालीस से सौ तक पितृैक (Genes) होते हैं। जो बालक के विभिन्न गुणों के वास्तविक वाहक होते हैं। व्यक्ति के वंशानुक्रम में कुछ ऐसे विशेष गुण होते हैं जो एक पितृैक समूह द्वारा एक पीढ़ी से दूसरी पीढ़ी को हस्तांतरित हो जाते हैं। गर्भाधान के समय शुक्र और अंड के वंश सूत्रों के पितृैक आपस में जोड़े बनाते हैं और उत्पन्न होने वाले बालक की विशेषताओं को निर्धारित करते हैं।

विभिन्न अध्ययनों द्वारा यह सिद्ध हो चुका है कि वंश सूत्रों की संरचना अथवा उनकी संख्या में असामान्यता होने पर शारीरिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। परन्तु मानसिक विकृतियों के विकास में उत्पत्ति मूलक कारकों का क्या महत्व है, इस संदर्भ में दो प्रमुख अध्ययन हुये हैं। ये अध्ययन समान यमजी (Identical Twins) के हैं।

(अ) एक समान यमज (Identical Twins)–एक समान यमज की उत्पत्ति का आधार केवल एक ही डिम्ब (ovum) तथा शुक्र (sperm) होता है। इस प्रकार निषिक्त होकर जो एक कोष बनता है और जब वह दो भागों में विभाजित हो जाता है तो भ्रूण (Embrio) का निर्माण होता है और इसके विकसित हो जाने पर दो बालकों का जन्म होता है। इन बालकों का एक ही लिंग तथा समान शारीरिक व मानसिक गुण होते हैं।

(ब) भ्रात यमज (Fraternal Twins) भ्रात यमजों की उत्पत्ति का आधार दो डिम्ब व दो शुक्र को अलग अलग निषिक्त होना होता है। इसके कारण दो बालकों का जन्म होता है। वे समान तथा विषम लिंगी दोनों हो सकते हैं। इनके मानसिक व शारीरिक गुणों में पर्याप्त अन्तर होता है।

कालमैन (Kallman) ने वंशानुक्रम का मनोविदलता की उत्पत्ति पर उसके प्रभावों के संदर्भ में एक अध्ययन किया तथा निम्न निष्कर्ष पर पहुँचे[1]

मनोविदलन से संबंध की मात्रा	मनोविदलता ग्रस्त रोगियों का प्रतिशत
एक समान यमज Identical (one Egg) Twins	86.2
भ्रात यमज Fraternal (Two egg) Twins	14.5
भाई बहन (Siblings)	14.2
अर्धसहोदर (Half Siblings)	7.1
सामान्य जनसंख्या (General Population)	0.85

1. कालमैन, एफ0 जे0 — हेरीडिटी इन हेल्थ एण्ड मेन्टल डिसआर्डर, नारटन, न्यूयार्क 1953, एण्ड दि यूज आफ जेनिटिक्स, साइक्याट्रिक जरनल आफ मेन्टल साइंस, 1958, 104, पृ0 542–549.

कालमैन का यह परिणाम इस बात को सिद्ध करता है कि सामान्य जनसंख्या की अपेक्षा मनोविदलता रक्त संबंधों में अधिक घटित होती है। इसी संदर्भ में जैक्सन[2] (Jackson) ने भी अध्ययन किया कि उत्पत्ति मूलक (Genetic) कारकों के अभाव में भी अनेक रोग पीढ़ी दर पीढ़ी हस्तांतरित होते रहते हैं। इस प्रकार के पीढ़ी दर पीढ़ी रोग के चलने का मुख्य कारण यह होता है कि हम वंशानुक्रम पर पर्यावरण के प्रभाव को सम्मिलित नहीं करते हैं।

फ्रेन्सिस गाल्टन ने वंशानुक्रम के प्रभाव का अपनी पुस्तक 'हेरीडिटरी जीनियस' में दर्शाया है। उनके अनुसार योग्य व्यक्तियों के नाते–रिश्तेदार तक भी योग्य होते हैं। जब तक योग्य पुरूष योग्य स्त्री से विवाह करता रहेगा तब तक संतान बुद्धिमान उत्पन्न होगी। गाल्टन के मत है कि हमारी समस्त शारीरिक व मानसिक विशषतायें माता पिता से प्राप्त होती हैं।

सन् 1912 में गोडार्ड[3] (Goddard) ने कालिकाक (Kallikak) परिवार का अध्ययन प्रकाशित किया। कालिकाक नामक व्यक्ति अमरीका का रहने वाला था जिसने दो विवाह किये थे। एक विवाह क्रान्ति युद्ध में तथा दूसरा बाद में किया था। उन दोनों पत्नियों में एक मन्द बुद्धि की थी तथा दूसरी एक बुद्धिमान पादरी की लड़की थी। इन दोनों से जो संतानें उत्पन्न हुईं उनमें काफी असमानता देखने को मिली। मन्द बुद्धि की पत्नी से उत्पन्न संतानों की पीढ़ी में कुल 480 में से 143 मन्द बुद्धि के थे तथा 46 सामान्य पाये गये। शेष के विषय में कोई निर्णय न प्राप्त हो सका। उनमें 24 शराबी, 3 अपराधी, 3 मिर्गी के रोगी तथा 33 अनैतिक कार्य करने वाले थे। पादरी की लड़की से उत्पन्न कुल 496 में से अधिकांश वकील, जज तथा व्यापारी थे।

ज्यूक्स तथा एडवर्ड[4] (Jukes and Edward) परिवार के वंशजों का भी यही परिणाम प्राप्त हुआ। ज्यूक्स के 1200 वंशजों में से 440 शारीरिक बीमारियों से पीड़ित थे। 310 वंशज दरिद्र तथा 130 अपराधी एवं 7 हत्यारे थे। इनमें से आधे से अधिक स्त्रियाँ वैश्यायें थी। जबकि एडवर्ड परिवार के 1394 में से 295 स्नातक, 13 कालेज के प्रधानाचार्य तथा संयुक्त राज्य अमेरिका का उप–राष्ट्रपति था। कोई भी व्यक्ति अपराधी नहीं था।

2.	जैक्सन, डी0	इटियालोजी आफ सीजोफ्रीनिया, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, 1960
3.	गोडार्ड एच0 एच0	दि कालीकाक फेमिली, न्यूयार्क, 1908
4.	बिनांशिप, ए0 ई0	ज्यूक्स एडवार्डस्, हारिसबर्ग,, 1990

पिर्यसन[5] ने भी वंशानुक्र के प्रभाव पर अनेक प्रयोग किये। उन्होंने इस बात को प्रमाणित करने का प्रयत्न किया कि माता–पिता की (कद, आँखों का रंग, वर्ण, बालों की बनावट, स्वास्थ्य, आदि) शारीरिक विशेषताओं का प्रभाव बच्चों पर अवश्य ही पड़ता है। उनके अनुसार वंशानुक्रम का प्रभाव पर्यावरण से सात गुना अधिक होता है।

क्रेश्मर (Kretschmer) शारीरिक बनावट को मानसिक रोगों की उत्पत्ति का कारण मानते हैं। आपके अनुसार एक विशेष प्रकार की शारीरिक बनावट के व्यक्ति एक विशेष प्रकार के मानसिक रोग से ग्रस्त रहते हैं। आपने शरीर की बनावट के आधार पर चार प्रकार का व्यक्तित्व वर्णित किया है। वे मानसिक रोग भी विकसित कर लेते हैं।

प्रथम प्रकार के व्यक्तियों को पिकनिक प्रकार (Pyknic Types) के व्यक्ति कहते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति नाटे, छाती भरी, बलिष्ठ, कन्धे चौड़े, गर्दन छोटी व मोटी , चिकना तथा भरा चेहरा, आदि शारीरिक गुणों से युक्त होते हैं। इस प्रकार के व्यक्ति को उत्साह–विषाद मनोविकृति (Manic-Depressive Psychoses) से ग्रस्त होने की अधिक संभावना रहती है। दूसरे प्रकार में दुबले, चपटे, लम्बे, नाजुक तथा स्वस्थ व्यक्ति आते हैं। जिन्हें स्थेनिक प्रकार (Aesthenic Type) की संज्ञा दी है। इस प्रकार के व्यक्ति अधिकतर मनोविदलता (Schizo-phrenia) के रोगी होते हें। ये रोगी एकान्तप्रिय तथा चिड़चिड़े स्वभाव वाले होते हैं। तीसरी श्रेणी में डिसप्लास्टिक प्रकार (Dysplastic Type) के व्यक्ति आते हैं। इस प्रकार के लोगों का शारीरिक विकास बड़ा असामान्य होता है। चौथे प्रकार के लोग एथलेटिक प्रकार के होते हैं। इनका बलिष्ठ शरीर, स्वभाव में लचीलापन तथा व्यवहार कुशलता विद्यमान रहती है।

क्रेश्मर ने 260 मनोविकृत रोगियों का अध्ययन किया जिनमें से 43 पुरूष और 42 स्त्रियाँ उत्साह–विषाद (Manic-Depression) तथा 125 पुरूष एवं 50 स्त्रियाँ मनोविदलता (Sehizophrenia) रोग से ग्रस्त थीं। जब इन रोगियों का क्रेश्मर ने वर्गीकरण किया तो पाया कि उत्साह विषाद मनोविकृति तथा पिकनिक प्रकार के लोगों की शारीरिक रचना में स्पष्ट जैविकीय सम्बन्ध (Clear Biological affinity) है। इस प्रकार का सम्बन्ध मनोविदलता (Stahizophrenia) और एसथेनिक, एथलेटिक एवं डिसप्लास्टिक में भी पाया जाता है। इसको निम्न प्रकार से दर्शाया गया है।

---

5. पियर्सन, कार्ल   नेचर ऐण्ड नर्चर, लंदन, 1910

शरीर रचना प्रकार तथा दो प्रकार की मनोविकृतियाँ

रोगियो की संख्या

	उत्साह विषाद मनोविकृति	मनोविदलता
एस्थेनिक	4	81
एथेलेटिक	3	31
एस्थेनिक–एथलेटिक मिश्रित	2	11
पिकनिक	58	2
पिकनिक मिश्रण	14	3
डिस्प्लास्टिक		34
आकृतिहीन एवं अश्रेणी	4	13
(Deformed and Uncategorised)	....	....
	85	175

क्रेश्मर का यह दृढ़ विश्वास था कि मनोविकृति की दशा (State) सामान्य व्यवहार में भी निरन्तर पाई जाती है। उन्होंने सुझाव दिया कि मनोविदलता के संदर्भ में एक मनोविदलात्मक स्थिति (Schizoid State) होती है जो सामान्य सीमा के किनारे को स्थिति होती है। उसे मनोविदलता का रोगी नहीं कह सकते हैं। इसी प्रकार से एक सायक्लाएड व्यक्तित्व (Cycloid Personality) होता है जो मध्य उलझन (Middle distrubed) की स्थिति होती है। यह उत्साह विषाद मनोविकृति से सम्बन्धित होती हैं इसी प्रकार साइक्लोथाइमिक स्थिति (Cyclothymic state) जो सामान्य होती है पर मनोविकृति स्थिति से सम्बन्धित होती है। इस प्रकार क्रेश्मर ने शरीर रचना (Physique) और मनोविकृति (Psychoses) में सम्बन्ध तथा सामान्य एवं असामान्य में मात्रा का अन्तर बताया है जो सदैव चलता रहता है।

शेल्डन के अनुसार व्यवहार का प्रमुख निर्धारण शारीरिक संरचना के आधार पर होता है। शारीरिक बनावट के आधार पर तीन प्रकार के व्यक्तित्व हो सकते हैं :–

(1) गोलाकृतिक (Endomorphic) : इस प्रकार के व्यक्तियों की रूचि खाने में अधिक होती है। ये व्यक्ति मोटे व लम्बे होते हैं। शेल्डन ने इन्हें अन्तरंग प्रधान की संज्ञा दी है। इस प्रकार के व्यक्तियों में उत्साह विषाद मनोविकृति का विकास होता है।

(2) आयताकृतिक (Mesomorphic) : इसमें माँसपेशियों व हड्डियों का विकास अधिक होता है। ये दुर्बल नहीं होते हैं। ये दूसरों पर अधिपत्य जमाने

का प्रयास करते हैं। इनके मूल स्वभाव को कार्य प्रधान (Somatonic) की संज्ञा दी है। इनमें भी उत्साह विषाद मनोविकृति का ही विकास अधिकांशतः देखने में आता है।

(3) लम्बाकृतिक (Ectomorphic) : इस प्रकार के व्यक्तियों का शरीर कमजोर होता है। ये व्यक्ति एकान्तप्रिय होते हैं तथा सोचना अधिक पसन्द करते हैं। शेल्डन ने इन्हें प्रमस्तिष्क प्रधान (Cerebrotomic) कहा है। इनमें मनोविदलता मनोविकृति का विकास होता है।

(II) नलिका विहीन प्रमुख ग्रन्थियाँ (Ductless Glands)

ग्रन्थि रचना का व्यक्तित्व पर बहुत अधिक प्रभाव पड़ता है। जब ये ग्रन्थियाँ उचित प्रकार से कार्य नहीं करती हैं उस समय व्यक्ति असामान्य व्यवहार करता है। इन ग्रन्थियों से जो रस निकलता है वह रक्त मे मिश्रित हो जाता है और यदि वह उचित मात्रा में कम या अधिक होता है तो इसका प्रभाव व्यक्ति के व्यवहार पर पड़ता है। ये निम्न महत्वपूर्ण ग्रन्थियाँ हैं :

(1) **एड्रिनल ग्रन्थि** (Adrenal Gland) : यह ग्रन्थि कूल्हे के ऊपर छोटी सी होती है। इस ग्रन्थि से एड्रिनाइन (Adrenine) तथा कारटेक्स नामक स्राव निकलता है। इस रासायनिक पदार्थ द्वारा व्यक्ति को शक्ति प्राप्त होती है। हृदय को उत्तेजना मिलती है तथा शरीर को यह वेगमयी बनाता है। इससे जब स्राव निकलना बन्द हो जाता है तो मृत्यु हो जाती है। जब कम स्राव होता है तो व्यक्ति अपना संतुलन खो देता है।

(2) **गोनाड्स** (Gonads) : ये लिंग सम्बन्धी ग्रन्थियाँ हैं। लिंग उत्तेजना इन्ही ग्रन्थियों के कारण होती है। इनको प्रजनन ग्रंथियाँ भी कहते हैं। पुरुष की प्रजनन ग्रन्थियों को शुक्र ग्रन्थियाँ (Testes) तथा स्त्रियों की प्रजनन ग्रन्थियों को डिम्ब ग्रन्थियाँ कहते हैं। इन ग्रन्थियों की भिन्नता के कारण ही स्त्री व पुरुष भिन्न व्यवहार करते हैं तथा शारीरिक बनावट भिन्न–भिन्न होती है। इन ग्रन्थियों में गड़बड़ी होने पर व्यक्ति अपने व्यवहार को संतुलित नहीं रख पाता है।

(3) **थायराइड ग्रन्थि** (Thyroid Glands) : यह स्वांस नली के इधर–उधर दो छोटे गोल भागों में होती हैं। इस ग्रन्थि के स्राव मात्रा की अधिकता के कारण व्यक्ति का स्वभाव चिड़चिड़ा हो जाता है, उसको आकुलता अनुभव होती है तथा घबराहट अनुभव करता है। स्त्राव में कमी होने पर उसे आलस्य, सुस्ती तथा थकान महसूस होती है।

(4) **पिट्यूटरी ग्रन्थि** (Pitutary Gland) : यह ग्रन्थि मस्तिष्क में पाई जाती है। इसका प्रभाव सम्पूर्ण शरीर पर पड़ता है। इसके विकसित होने पर ही अन्य ग्रन्थियाँ विकसित होती हैं तथा उनमें रासायनिक अनुपात स्थिर होता है। इस ग्रन्थि से पिट्यूटरी नामक रस निकलता है। यदि इस स्राव में कम क्रियाशीलता होती है तो शरीर असामान्य विकसित होता है। बालक बौना, लूला, टेढा–मेढा होता है और यदि स्राव अधिक होता है तो व्यक्ति अधिक लम्बा होता है तथा त्वचा भी मोटी होती है। व्यक्ति का व्यवहार भी दोनों स्थितियों में प्रभावित होता है।

(5) **थाइमस तथा पीनियल ग्रन्थियाँ** (Thymus and Pineal) : इन ग्रन्थियों के सम्बन्ध में अभी विस्तृत ज्ञान नहीं हो पाया है परन्तु इनका भी सम्बन्ध व्यक्ति के शारीरिक व मानसिक विकास से होता है।

(III) जन्मजात तथा अर्जित शारीरिक विकृतियाँ

शारीरिक विकृतियाँ प्रायः दो कारणों से होती है (1) जन्म लेने के पूर्व या बाद की पर्यावरणीय दशायें। (2) शैशवावस्था में शारीरिक क्षति।

(1) जन्म से पूर्व व जन्म के समय कठिनाई

अमेरिका में 100 में से 7 बच्चे जो एक महीना जीवित रहते है उनमें जन्मजात व्याधियाँ होती हैं।[6] इनमें से 1/3 विकृतियाँ वंशानुक्रमण से होती हैं। 1/6 औषधि तथा रोग के कारण होती हैं तथा शेष अज्ञात कारणों से होती हें। गर्भावस्था की दशायें भ्रूण पर अपना प्रभाव डालती हैं। माता में पोषण की कमी, औषधि प्रभाव, रोग, सांवेगिक तनाव तथा मानसिक अस्त–व्यस्तता बालक में दोष उत्पन्न कर देती है। रोथ्सचाइल्ड (Rothschild) ने अपने अध्ययन में पाया कि जो बालक समय से पूर्व उत्पन्न हो जाते हैं उनकी अधिकांशतः मातायें सांवेगिक व्यवधान से पीड़ित होती हैं।[7] कैपूटो तथा मन्डेंल (Coputo and Mandell) भी

6.	डेविड, डी0 सी0	प्रेडिक्टिंग टुमारोज चिल्ड्रेन, टुडेज हेल्थ, 1968, 46(1) पृ0 32–37
7.	रोथ्सचाईल्ड, वी0 एफ0	इनक्यूवेटर आईसोलेसन ऐज ए–पासबुक कान्ट्रीब्यूटिंग फैक्ट टु दि हाई इन्सीडेन्स आफ इमोशनल डिसटरवेन्स एमांग प्रीमिच्योर बार्न परसन्स, जर्नल साईकोलाजी, 1967, 1.10 (2) पृ0 287–304

इसी निष्कर्ष पर पहुँचे कि जो मातायें गर्भवती होने की अवधि में चिंतित तथा सांवेगिक तनाव के कारण ग्रस्त रहती हैं वे अपरिपक्व बालक को जन्म देती है। इनमें शारीरिक व मानसिक कमियाँ पाई जाती हैं।[8] इसके अतिरिक्त जो बालक पूर्ण अवधि के उपरान्त उत्पन्न होते हैं उनमें भी दूध पीने की कठिनाई, सोने की समस्या तथा चिड़चिड़ापन पाया जाता है यदि उनकी माताओं को गर्भवती होने के समय सांवेगिक तनाव अधिक होता है।[9]

(2) शैशवावस्था तथा बाल्यावस्था में शारीरिक क्षति

विभिन्न अध्ययनों से यह ज्ञात हो चुका है कि शैशव अवस्था में पोषण की कमी के कारण न केवल शारीरिक विकास अवरूद्ध होता है तथा रोग से लड़ने की क्षमता में कमी आती है वरन् इसका प्रभाव मस्तिष्क विकास तथा बुद्धि लब्धि पर भी पड़ता है। डोबिग[10] (Dobbig-1967) ब्लेडसे ली[11] (Bladese lee-1967) विनिक[12] (Winick) ने उन शिशुओं जो पोषण की कमी के कारण पाँच वर्ष की आयु से पहले ही मर गये थे के पोस्टमार्टम का अध्ययन किया और पाया कि ऐसे बालकों मे 60% बालक ऐसे थे जिनका मस्तिष्क अविकसित था।

(IV) मनोसामाजिक कारण

सामान्यतया निम्न मनोसामाजिक कारण मानसिक रोगों के लिए उत्तरदायी माने गये हैं:–

(1) माता पिता के प्रेम का अभाव

माता पिता के स्नेह के अभाव में बालक दोषपूर्ण व्यवहारों का विकास

8.	कैपूटो, डी0 वी0 ऐण्ड मानडेल डब्ल्यू0	कान्सीक्वेन्सेज आफ लो बर्थ वेट, डेवलपमेन्ट साईकोलोजी, 1970 : 3 पृ0 363–383
9.	मैक डोनाल्ड आर0एल0 ग्राईथर एम0 एण्ड क्रिस्टा कोर, ए0	रिलेशनस् बिटवीन मैटरनल एन्जाइटी ऐण्ड अवस्टेट्रिक काम्प्लीकेशन्स, साइकोसीमेटिक मेडिसिन, 1963, 25, पृ0 357–373
10.	डोविग, जे0	ग्रोथ आफ दि ब्रेन, साइंस जर्नल, 1967, 3(5) पृ0 81–86
11.	ब्लेडेसेली ए0 एल0	न्यूट्रीशनल टाइम बाम्ब, टुडेज हेल्थ, 1967, 45
12.	विनिक, सी0	दि वेओइग्रे इपोच, अनल्स आफ ऐकाडमी, 1968, 376, पृ0 18–24

करता है। यह अवस्था दो प्रकार की स्थितियों में होती है : (1) माता पिता से बालक का अलगाव तथा किसी संस्था में बालक का पालन पोषण (2) घर में रहकर ही उचित एवं सामान्य प्रेम की कमी। प्रोवेन्स[13] (Provence) तथा लिप्टन ने संस्था में रहने वाले बालकों तथा माता पिता के साथ रहने वाले बालकों के व्यवहार के सम्बन्ध में अध्ययन किया और पाया कि संस्था में पले बालक किसी भी व्यक्ति से लगाव नहीं प्रदर्शित करते हैं, उनमें भाषा तथा वाक्‌शक्ति का समुचित विकास नहीं होता है, आवश्यकता पूर्ति की क्षमता कम होती है, सांवेगिकता की कमी होती है तथा अकेलापन महसूस करते हैं। इन बालकों का शारीरिक विकास सामान्य नहीं होता है। डेनिस[14] (Dennis) ने तेहरान के अनाथालय में पाया कि 2 वर्ष के 60 प्रतिशत बालक बैठ नहीं सकते थे तथा 4 वर्ष के 85 प्रतिशत बालक चलने में असमर्थ थे। बेरेस (Beres) तथा ओबेर्स (Obers) ने 38 किशोरों का अध्ययन किया जो अपने जीवन के प्रारम्भिक काल में 3 सप्ताह की अवस्था से 3 वर्ष की अवस्था के बीच संस्था में भर्ती रह चुके थे। अध्ययन के समय इनमें से 4 मनोविकृत (Psychotic), 21 चरित्र विकृत, 4 मानसिक मंदित तथा 2 स्नायु विकृत थे। केवल 7 ही ऐसे किशोर थे जिन्होंने सामान्य व्यवहार विकसित किया था।[15]

माता पिता के साथ बालक की उपस्थिति होने पर भी यदि माता पिता का उचित प्रेम नहीं मिलता है तो उसका प्रभाव बालक के व्यक्तित्व पर बहुत गम्भीर होता है। रिबल[16] (Ribble) ने अपने अध्ययन में पाया कि माता का तिरस्कारपूर्ण, विरोधी, घृणात्मक तथा दण्डात्मक दृष्टिकोण बालक में तनाव, असंतोष एवं नकारात्मक व्यवहार उत्पन्न कर देता है।

---

13. प्रोवेन्स, एस० ऐण्ड लिप्टन आर० सी० — इनफैन्ट्स इन इन्सटीट्यूशन, इण्टर नेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क, 1962
14. डेनिस, डब्ल्यू — काजेज आ॒ दि रिटार्डेशन एमंग इंस्टीट्यूशनल चिल्ड्रेन, इरान जर्नल आफ जेनेटिकल साइकोलोजी 96, 1960
15. बुलार्ड, डी० एम० ऐण्ड अदर्स — फेल्योर टु थ्राइव इन दि नेगलेक्टेड चाइल्ड, अमेरिकन जनरल आफ आर्थो, साइक्याट्री। 36, 1967
16. रिवल, एम० ए० — एन्जाइटी इन इन्फैन्ट्स ऐण्ड इट्स डिसआर्गनाईजिंग इफेक्ट्स, इन एम डीसी लेविस एण्ड बी० एल० प्रेकेला, मार्डन ट्रेन्ड्स इन चाइल्ड, साइक्याट्री, इन्टरनेशनल प्रेस, न्यूयार्क, 1945

(2) प्रारम्भिक मनोआघात

कभी–कभी जीवन के प्रारम्भिक वर्षों में ऐसा मनोवैज्ञानिक आघात पहुंचता है जो व्यक्तित्व का अंग बनकर चिरस्थायी हो जाता है। यही कारण है कि प्रत्येक व्यक्ति का समान समस्याओं के प्रति भिन्न–भिन्न दृष्टिकोण एवं भिन्न–भिन्न सामना करने की क्षमता होती है। एक व्यक्ति एक समस्या का समाधान नहीं कर पाता है जबकि दूसरा व्यक्ति आसानी से उसका समाधान कर लेता है।

(3) व्याधिकीय पारिवारिक तरीके

इस सम्बन्ध में परिवार की भूमिका का उल्लेख करना महत्वपूर्ण प्रतीत होता है। परिवार वह महत्वपूर्ण इकाई है जिस पर व्यक्तित्व का विकास निर्भर है। जिस प्रकार परिवार होता है बालक का व्यक्तित्व उसी प्रकार का विकसित होता है। बालक में दोषपूर्ण भावनाओं के विकास का प्रमुख कारण सम्बन्धों का दोषपूर्ण होना है। सम्बन्ध के निम्न तरीके विशेष रूप से मानसिक स्थिति को प्रभावित करते हैं।

1. **तिरस्कारः**– माता पिता द्वारा बालक का तिरस्कार कर देने पर बालक में सांवेगिक एवं मानसिक असमायोजन के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह तिरस्कार कई रूपों में हो सकता है। जैसे–बालक की इच्छाओं पर ध्यान न देना, छोटी–छोटी बात पर दण्ड देना, बालक के साथ बैठने तक का समय न निकालना, तथा उसके अधिकारों का हनन करना आदि। विभिन्न अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि माता पिता के प्रेम तथा स्वीकृति का आत्मशक्ति, आत्मविश्वास एवं चेतनता के विकास से अत्यधिक सम्बन्ध होता है। सियर्स[17] ने अपने एक अध्ययन में पाया कि तिरस्कृत बालक उग्र, लड़ाकू, आक्रामक तथा असामाजिक होता है। हर्ले[18] ने भी माता पिता द्वारा तिरस्कार तथा बौद्धिक अक्षमता में सम्बन्ध स्थापित किया।

2. **अति लाड़ प्यारः**– माता पिता अथवा अन्य किसी व्यक्ति द्वारा अधिक लाड़ प्यार करने पर भी बालक का समुचित विकास नहीं हो पाता है। बालक की

17.	सियर्स, आर0 आर0, माकोवाई	पैटर्न्स आफ चाइल्ड रियरिंग, इवान स्टोन इल, रो ई0 ई0 ऐण्ड लेविन, एच0 पीअर्सन, 1957
18.	हर्ले जे0 आर0	पैरेन्टल एक्सेप्टेन्स रिजेक्सन ऐण्ड चिल्ड्रेन्स इन्टेलीजेन्स, मेरिल पामर, क्वार्टरली, 11, 1965

अधिक देखभाल, मामूली खतरे से भी बचा लेना, सदैव शिक्षा देना, आवश्यकता से अधिक स्वास्थ्य का ध्यान रखना तथा बालक की योजनाओं को स्वयं बनाना, आदि कार्य मानसिक पंगु कर देते हैं। जैनकिन्स[19] ने अतिचिंतात्मक बालकों का अध्ययन करके सिद्ध कर दिया कि बालक का अति प्यार दुलार बालक में असामान्य गुणों को विकसित करता है।

3. अति प्रतिबन्धः— जिस प्रकार अधिक प्रेम तथा लाड़ प्यार बालक के लिए घातक होता है उसी प्रकार अति प्रतिबन्ध भी सामान्य विकास में बाधा उत्पन्न करता है। अति प्रतिबन्ध का दो प्रकार से प्रभाव पड़ता है। (1) बालक निर्णयशक्ति का विकास नहीं कर पाता है, उसमें तर्कशक्ति उत्पन्न नही होती तथा चेतनता का विकास अवरूद्ध हो जाता है। (2) बालक में विद्रोही भावनायें विकसित हो जाती हैं। वेकर[20] ने अपने अध्ययन से यह निष्कर्ष निकाला कि जहाँ एक ओर प्रतिबन्ध से सामाजिक व्यवहार, आदर एवं विनम्रता विकसित होती हे, वहीं दूसरी ओर भय, पराश्रिता तथा उग्रता के भाव विकसित होते हैं।

4. अवास्तविक आशयें:— कभी—कभी माता पिता बालक से ऐसे कार्य की आशा करते हैं जिनको वह किसी भी प्रकार पूरा नहीं कर सकता है। जब स्कूल तथा घर के कामों में वह उतनी सफलता एवं कुशलता नहीं प्राप्त कर पाता है जितनी सफलता एवं कुशलता माता पिता चाहते हैं तो उसके मन में ठेस पहुंचती है। उदाहरण के लिए 'सी' बालक के माता पिता चाहते हैं कि उसका पुत्र कक्षा में कम से कम 'बी' ग्रेड तो अवश्य लावे। परन्तु जब वह 'बी' ग्रेड लाता है तब भी उसकी प्रशंसा न करके 'ए' ग्रेड की बात करते हैं। तब 'ए' ग्रेड मिलने पर सर्वोच्चता की आशा रखते हें तथा बालक को प्रोत्साहित नहीं करते हैं। ऐसी स्थिति में बालक में हीनता की भावना विकसित हो जाती है। वह आत्म अवमूल्यन करने लगता है। इसके विपरीत भी जब माता पिता बालक से किसी प्रकार की आशायें नहीं रखते हें तब भी बालक सामान्य विकसित नहीं हो पाता

---

19. जेनकिन्स, आर0 एल0 — दि वेराइटीज आफ चिल्ड्रेन प्राबुलम्स ऐण्ड फैमिलीं डायनामिक्स, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्यार्ट्री, 124, 1968

20. बेकर, डब्लू0 सी0 — कान्सीक्वेन्सेज आफ डिफरेन्ट काइन्ड्स आफ पैरेन्टल डिसीप्लिन्स, इन एम0 एल0 होफमैन ऐण्ड एल0 डब्लू0 हाफमैन (इडिटेड), रिव्यू आफ चाइल्ड डेवलेपमेंट रिसर्च, बाल्म, रसेल सेज फाउन्डेशन, न्यूयार्क, 1964 पृ0 169—208

है। कूपरस्मिथ[21] ने अपने अध्ययन में पाया कि ऐसे माता पिता के बालक उपलब्धि तथा आत्मशक्ति में हीन होते हैं।

5. संचार प्रक्रिया में बाधाः— कोई–कोई माता पिता अपने कार्य में इतना व्यस्त रहते हैं कि वे बालक की इच्छाओं की बिलकुल चिन्ता नहीं करते तथा बहुत कम बातचीत करते हैं। वे बालक की परेशानियों तथा अन्तर्द्वन्द्वों को समझने की कोशिश नहीं करते हैं। वे बालक को आवश्यक सहायता एवं सहयोग देने में असफल रहते हैं। ऐसी स्थिति में बालक में आगे चलकर सांवेगिक तनाव उत्पन्न हो जाता है। वेटसन तथा करसन[22] ने किशोरों के अध्ययन में पाया कि सांवेगिक व्यवधान दोषपूर्ण संचार प्रक्रिया का कारण है।

6. भाई बहनों में प्रतिद्वन्दिताः— जब बालक यह सोचने लगता है कि उसके भाई अथवा बहन के प्रति माता पिता का लगाव तथा ध्यान अधिक है अथवा बालक अन्य बालक के उत्पन्न होने पर वह ध्यान का केन्द्र बन जाता है उस समय बालक को उसको अपनी प्रस्थिति के प्रति खतरा दिखाई देता है। परिणामस्वरूप में समायोजन सम्बन्धी कठिनाइयाँ उत्पन्न होने लगती हैं। बालक बिस्तर पर पेशाब करने लगता है, बातचीत कम करता, लड़ाई झगड़ा करता है, गुस्सा करता है तथा कभी–कभी माता पिता का ध्यान आकर्षित करने के लिए अपने व्यवहार को विशेष आकर्षक बनाने का प्रयत्न करता है।

7. अवांछनीय माता–पिताः— माता पिता के व्यवहार का प्रभाव बालक पर पड़ता है। वान्डुरा[23] ने अपने अध्ययन में पाया कि उग्र माता पिता की सन्तानें उग्र व्यवहार करती हैं। जेनकिन्स ने अतिचिन्तात्मक मनोस्नायु विकृत बालकों के अध्ययन में पाया कि आधे से अधिक बालकों की मातायें मनोस्नायु विकृत थीं। इसी प्रकार एन्थोनी[24] ने मनोविकृत माता पिता की सन्तानों में अधिक समायोजन एवं प्रतिकूलन के गुणों को पाया।

---

21. कूपर स्थिम, एस0 — एन्टीसिडन्ट्स आफ सेल्फ इस्टीम, फ्रीमैन, सेनफ्रानसिसको, 1957
22. कारसन आर0 सी0 — इंटरैक्शन कानसेप्ट आफ पर्सनाल्टी, आलडाइन, न्यूयार्क, 1969
23. वान्डुरा, ए0 — सोसेल लर्निंग थ्रू इमीटेशन, इन एम0 आर0 जोन्स इडिटेक बुक, नेब्रेस्का सम्पोजियम आफ मोटीवेशन, लन्दन, 1962
24. एन्थोनी, जे0 ई0 — दि क्लीनिकल इवैलुयेशन आफ चिल्ड्रेन विद साइकोटिक पैसेन्ट्स, अमेरिकन जर्नल आफ साईक्याट्री, 126, 1969

4 व्याधिकीय परिवार

कुछ ऐसे परिवार होते हैं जो स्वयं असामाजिक व्यवहार उत्पन्न करते हैं तथा व्यक्ति मानसिक रोगों का शिकार हो जाता है। निम्नलिखित परिवार इस प्रकार की श्रेणी में आते हैः—

1— अपूर्ण परिवार (Inadequate families) :— इस प्रकार के परिवार सामाजिक जीवन की सामान्य समस्याओं को भी हल करने में अयोग्य होते हैं। शारीरिक एवं मानसिक साधनों की कमी के कारण वे समस्याओं का सामना नहीं कर पाते हैं। अतः वे वाह्य्य सहायता तथा सहयोग पर निर्भर होते हैं। माता पिता की अपरिपक्वता, अशिक्षा, मानसिक मंदता या अन्य कमियों के कारण ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है। बालक भी इसी प्रकार के गुणों का विकास करता है।

2— व्यवधानयिक परिवार (Disturbed Families) :— कुछ माता पिता व्यक्तिगत अयोग्यता तथा अहमन्यता के कारण ध्वन्सात्मक सम्बन्ध स्थापित करने में विश्वास रखते हैं। अतः घर में सदैव कलह बनी रहती है। ऐसे परिवार में बालक पर कम ध्यान दिया जाता है। दोषपूर्ण पर्यावरण होने के कारण बालक स्वयं इस प्रकार की विशेषताओं का शिकार हो जाता है।

3— समाज विरोधी परिवार (Anti social Families) :— जब माता अथवा पिता अथवा दोनों ऐसे कार्यों में व्यस्त रहते हैं जो स्वयं समाज विरोधी हैं तो उसका प्रभाव बालक पर अवश्य पड़ता है। बालक में धोखा देने, बेइमानी करने, झूठ बोलने तथा अन्य अवांछनीय व्यावहारिक तरीकों की आदत विकसित होती है।

4— विश्रंखलित परिवार (Disrupted Families) :— ये वो परिवार हैं जिनमें मृत्यु, तलाक, पृथक्कीकरण या अन्य किसी दशा में माता पिता का अभाव हो जाता है। इस प्रकार के परिवार के सदस्यों पर मनोवैज्ञानिक तथा सांवेगिक दोनों प्रकार का कुप्रभाव पड़ता है। अनेक अध्ययनों से यह सिद्ध हो गया है कि चरित्र विकृति का मुख्य कारण विश्रंखलित परिवार हैं।

5 सामाजिक व्याधिकी

जब समुदाय अथवा विस्तृत समाज में ऐसी दशायें होती हैं जिनका लोगों के व्यवहार पर व्याधिकीय प्रभाव होता है तो यह स्थिति सामाजिक व्याधिकी की एक स्थिति होती है।[25] इस श्रेणी में अनेक दशायें आती हैं जैसे निर्धनता, अपराध, जातीय पूर्वाग्रह, असंगति (Anomie) विरक्ति (Alineation) तथा विभेदीकरण एवं सामाजिक विघटन।

---

25. कोलमैन, जेम्स0 सी0 पूर्वलिखित पृ0 361

6 गम्भीर दबाव

उपर्लिखित स्थितियों के अतिरिक्त कुछ ऐसी स्थितियाँ होती हैं जिनका व्यक्ति पर गम्भीर दबाव पड़ता है और जिनके कारण मनोविकार उत्पन्न हो जाते हैं। गम्भीर दबाव की निम्नलिखित मुख्य स्थितियाँ हैं :—

1— दुर्घटना तथा रोगः— हमारे समाज में दुर्घटनाओं तथा रोगों का प्रकोप दिनोदिन बढ़ता जा रहा है। अमरीका में प्रतिवर्ष 1 लाख व्यक्ति दुर्घटनाओं से तथा रोग से 80 हजार स्थायी तथा 10 लाख अस्थायी रूप से शारीरिक अयोग्य हो जाते हैं[26]। इससे यह विदित होता है कि दुर्घटना के आघात का आधुनिक सभ्यता में विशेष स्थान है। इसके अतिरिक्त अन्य रोग भी व्यक्ति को परेशान करते रहते हैं। इन दुर्घटनाओं तथा रोगों के कारण मानसिक अस्तव्यस्तता हो जाना स्वाभाविक है।

2— सांवेगिक गतिमानः— सांवेगिक प्रतिक्रियायें (भय, क्रोध तथा चिन्ता) आपातकालीन स्थिति को निपटने के लिए शारीरिक स्रोतों के गतिमान का प्रतिनिधित्व करती हैं। इससे सुरक्षा होती है क्योंकि या तो व्यक्ति संघर्ष करता है अथवा स्थिति से दूर भाग जाता है। आधुनिक जीवन में ऐसी बहुत ही कम स्थितियों होती हैं जिनमें व्यक्ति साधारण प्रयास से ही समायोजन स्थापित कर पाता हो। जब सांवेगिक गतिमान के साधन उपयुक्त नहीं होते हें तो साधारण भय, क्रोध तथा चिन्ता भी विपरीत प्रभाव डालती है।

3— अति भग्नाषाः— आज के युग में ऐसी अनेक स्थितियाँ हैं जिनसे भग्नाषा उत्पन्न होती है और व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से समायोजन नहीं कर पाता है। असफलता, हानियां, व्यक्तिगत सीमायें, साधनों की कमी तथा अन्य समान स्थितियों में भग्नाषा उत्पन्न होती है। भग्नाषा एक प्रकार की मानसिक अवस्था है जिसकी उत्पत्ति इच्छाओं तथा प्रेरणाओं की संतुष्टि के अभाव में होती है। जब व्यक्ति अपनी प्रेरणाओं के प्रभाव के कारण उन्हें संतुष्ट करने का प्रयास करता है परन्तु उसके मार्ग में ऐसी बाधायें उत्पन्न हो जाती है जिनके कारण वह अपनी इच्छाओं को संतुष्ट नहीं कर पाता है तो वह निराशा का अनुभव करता है।

कोलमैन के अनुसार प्रेरणा के कुंठित होने से उत्पन्न आघात (Thwarting) के परिणामस्वरूप भग्नाषा उत्पन्न होती है। भग्नाषा से मानसिक तनाव बढ़ जाता है, उत्साह भंग हो जाता है तथा व्यक्ति अत्यन्त व्याकुल एवं चिन्तित

---

26. साइंस जर्नल इडीटोरियल, 1967

दिखाई देता है। साधारणतया भग्नाषा की मानसिक स्थिति के निम्न चिन्ह हैं:—

1– हीन भावना

2– तनाव की अधिकता

3– विभिन्न प्रकार की मनोरचनायें

4– असन्तोष

हीन भावना प्रायः उसी व्यक्ति में विकसित होती है जो यह समझने लगता है कि उसमें किसी प्रकार का मानसिक दोष है जिसके कारण उसे उद्देश्य की प्राप्ति नहीं हो रही है। ऐसा व्यक्ति भविष्य में संदेही, चिन्तित तथा अंतर्मुखी हो जाता है। कभी–कभी नैराश्य के कारण व्यक्ति आक्रामक एवं ध्वंसात्मक व्यवहार का प्रदर्शन करने लगता है। यह व्यवहार दो रूपों में प्रकट होता है। (1) समाज के प्रति ध्वंसात्मक व्यवहार (2) अपने प्रति ध्वंसात्मक व्यवहार। ये दोनों स्थितियाँ समाज व व्यक्ति के लिए हानिकारक होती हैं।

7. नगरीय संस्कृति

वर्तमान नगरीय संस्कृति की विशेषतायें मनोस्नायु विकारों को उत्पन्न करने में बहुत अधिक सहायक सिद्ध हो रही हैं।

1– हमारी नगरीय संस्कृति प्रतिस्पर्धा के सिद्धान्त पर आधारित हैं प्रत्येक व्यक्ति अपने ही समूह के ब्यक्तियों से संघर्ष के लिए बाध्य है। उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए मानसिक तनाव उत्पन्न करते हैं। आपस में भाई–भाई कहकर भाई का ही गला घोटते हैं।

2– दूसरी महत्वपूर्ण विशेषता हमारी नगरीय संस्कृति में असाधारण भय का पाया जाना है। प्रत्येक व्यक्ति अपने ही प्रति भयभीत रहता है। वह अपनी क्षमताओं को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। ब्यक्ति को असफलता का भय पीड़ित किये हुए है तथा इसके अवसर भी बढ़ते जा रहे हैं। इससे न केवल आर्थिक असुरक्षा उत्पन्न होती है बल्कि सभी प्रकार का सांवेगिक अवसाद होता है।

3– हम अपनी आत्मशक्ति का मूल्यांकन अपनी सफलता से करते हैं। हमारा मूल्य सफलता की सीमा से निर्धारित किया जाता है। वर्तमान समाज में सबसे अधिक सामान्य ब्यक्ति भी कभी–कभी असफल होने पर अपने को ब्यर्थ समझता है।

4– आज व्यक्ति बहुत ही अकेलापन अनुभव करता है। यद्यपि अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए वह अनेकों से सम्बन्ध रखता है लेकिन वास्तविकता यह है कि वह अकेला है।

5– व्यक्तियों का निरन्तर तथा तीव्र शहरों की ओर गमन मानसिक दृष्टिकोण पर गहरा प्रभाव डाल रहा है। स्थायी सामाजिक विशेषतायें एवं प्राथमिक सामाजिक सम्बन्धों से व्यक्ति जब अस्थायी तथा अवैयक्तिगत सम्बन्धों को ग्रहण करने का प्रयास करता है तो उसका प्रभाव बहुत ही तीव्र होता है। जैसे–जैसे शहरी जीवन का प्रभाव ब्यक्ति पर बढता जाता है वैसे–वैसे ब्यक्ति अधिक असन्तोष का अनुभव करता है।

8. अपराध भावना
(Guilt Feeling)

अपराध भावना उस समय उत्पन्न होती है जब ब्यक्ति ऐसा कार्य करता है जो अनुचित होता है तथा वह उसका आभास भी करता है। यह भावना उस स्थिति में अधिक मानसिक तनाव उत्पन्न करती है जब ब्यक्ति अपने किये हुए अनुचित कार्यों को ठीक करने अथवा त्रुटियों को सुधारने का अवसर खो देता है।

प्रत्येक समाज में कुछ मूल्य तथा अवधारणायें उचित अनुचित के संदर्भ में होती हैं। व्यक्ति इन मूल्यों को ग्रहण करता है तथा वे मूल्य ही व्यवहार का विश्लेषण करते हैं। व्यक्ति यह भी सीखता है कि अनुचित कार्यों को करने से दण्ड प्राप्त होता है। व्यक्ति जब अनैतिक प्रकार का व्यवहार करता है तो न केवल उसमें आत्म अवमूल्यन होता है बल्कि उसमें चिन्ता तथा भय के लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हें। इसके कारण वह प्रतिक्रिया करता है। अपने प्रकार्यों को वर्णित कर पूर्व की स्थिति में वापस आना चाहता है क्योंकि उसकी उन अनैतिक क्रियाओं से ही वर्तमान कठिनाई उत्पन्न हुई हैं अतः स्पष्ट है कि इस प्रकार की मानसिक प्रतिक्रियायें अतिभग्नाशा उत्पन्न करती हैं।

9. अन्तर्द्वन्द
(Conflict)

अन्तर्द्वन्द के कारण ही दबावपूर्ण स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं तथा तनाव महसूस होता है। व्यक्ति में आंतरिक अस्तव्यवस्तता के लक्षण प्रकट होते हैं। अन्तर्द्वन्द के कारण ही समायोजन करने की क्षमता का ह्रास होता है। अन्तर्द्वन्द की स्थिति उस समय उत्पन्न होती है जब दो या दो से अधिक आवश्यकतायें उत्पन हो जाती हैं और वे एक दूसरे की पूर्ति में बाधक होती हैं। ब्राउन (Brown) के

अनुसार अन्तर्द्वन्द वह अवस्था है जब दो इच्छायें इतनी विरोधी हैं कि एक दूसरे की तृप्ति में बाधा उत्पन्न करती हैं[27]।

अन्तर्द्वन्द को एक उदाहरण द्वारा उचित प्रकार से समझाया जा सकता है। मान लीजिए एक लड़का एक ऐसी लड़की से विवाह करना चाहता है जो कि उसके परिवार वालों को मान्य नहीं हैं ऐसी स्थिति में वह स्वयं को अन्तर्द्वन्द की स्थिति में पाता है। वह परिवार से पृथक हो जाय या लड़की से विवाह न करे। परन्तु दोनों ही उसे महत्वपूर्ण लगते हैं। अतः वह इस अवस्था में हो जाता है कि क्या करे ? क्या न करें इसी स्थिति को अन्तर्द्वन्द कहते हैं। अन्तर्द्वन्द के निम्न रूप होते हैं।

1. अभिगम अभिगम–अन्तर्द्वन्द्व (Approach-Approach conflict) इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द में दोनों ही इच्छायें एवं आवश्यकतायें महत्वपूर्ण होती हैं तथा वह दोनों को प्राप्त करना चाहता है। दोनों उद्देश्य समान आकर्षण रखते हैं और व्यक्ति समझ नहीं पाता हैं कि दोनों उद्देश्यों को किस प्रकार एक साथ प्राप्त करे।

\+ – <———— व्यक्ति ————> + –

उदाहरण के लिए एक व्यक्ति समान आकर्षक दोनों ही लड़कियों से विवाह करना चाहता है परन्तु ऐसा नहीं कर सकता है अतः इसमें अन्तर्द्वन्द होने लगता है यह अन्तर्द्वन्द उतना महत्वपूर्ण नहीं होता और व्यक्ति अस्थायी व्याकुल होता है। इस संघर्ष से व्यक्ति को कभी–कभी नींद कम होने की शिकायत हो जाती है।

2– बचाव–बचाव अन्तर्द्वन्द्व (Avoidance-Avoidance Conflict) इस प्रकार के अन्तर्द्वन्द में दो अनाकर्षक लक्ष्य ब्यक्ति के सामने उपस्थिति होते हैं। दोनों ही लक्ष्य उसकी इच्छा के विपरीत होते हैं। परन्तु उनमें से एक को पूरा करना आवश्यक भी होता है। ब्यक्ति दोनों ही लक्ष्यों से दूर रहने का प्रयत्न करता है परन्तु ऐसा नहीं कर सकता। अतः उसमें अन्तर्द्वन्द होने लगता है।

– ————> व्यक्ति <———— –

उदाहरण के लिए युद्ध के समय एक सैनिक लड़ाई भी नहीं लड़ना चाहता है क्योंकि इससे मर जाने का भय होता है, दूसरी ओर वह लड़ाई में जाने से अस्वीकार भी नहीं करना चाहता क्योंकि इसमें सामाजिक अमान्यता होती है तथा सम्मान में कमी आती है।

27. ब्राउन, जे0 एफ0 — दि साइकोडायनमिक्स आफ अबनार्मल बिहैवियर, मैक ग्रा हिल बुक क0, न्यूयार्क, 1940, पृ0 162

3— अभिगम–बचाव अन्तर्द्वन्द्व (Approach-Avoidance conflict) कुछ स्थितियाँ व्यक्ति के लिए एक ही समय में सकारात्मक तथा नकारात्मक विशेषतायें रखती हैं। वह उस स्थिति में लक्ष्य का प्राप्त भी करना चाहता है तथा उससे दूर भी भागना चाहता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति काम

व्यक्ति—> +
<— –

संतुष्टि, सामजिक प्रतिष्ठा एवं सुरक्षा के लिए विवाह करना चाहता है परन्तु साथ ही साथ अपनी स्वतन्त्रता भी नहीं खोना चाहता है तो उसमें अन्तर्द्वन्द होने लगता है। यह बहुत ही खतरनाक अन्तर्द्वन्द होता है।

4— द्वै अभिगम–बचाव अन्तर्द्वन्द्व (Double Approach-Avoidance conflict) :— हमारे प्रतिदिन के जीवन में ऐसी अनेक स्थितियां आती हैं जिनमें दोनों ही इच्छित तथा अनिच्छित तत्व विद्यमान होते हैं।

+ <———— व्यक्ति ————> +
– ————> <———— –

उदाहरण के लिए एक व्यक्ति सोचता है कि वह सिनेमा देखने जाय अथवा टेलीविजन कार्यक्रम देखे। यदि वह टेलीविजन कार्यक्रम देखता है तो पिक्चर देख नहीं पायेगा तथा दुबारा नही लगेगी। दूसरी ओर इससे पैसे की बचत होगी।

अन्तर्द्वन्द्व का परिणाम यह होता है कि व्यक्ति या तो नवीन प्रकार से समायोजन कर लेता है अथवा वह पूर्व स्थिति में वापस आना चाहता है एवं वास्तविकता से दूर भागता है। पहले तो व्यक्ति हर प्रकार से अपने प्रयत्नों को सफलता की ओर अग्रसित करने का प्रयास करता है परन्तु जब चारों ओर से बाध ायें उसकों घेर लेती हैं तो वह अपने को असमर्थ, असहाय तथा निराश्रित समझने लगता है और अतिशय भग्नाषा का शिकार हो जाता है।

हमारे समाज में ऐसे बहुत से श्रोत हैं जिनके कारण अन्तर्द्वन्द्व की समस्या उत्पन्न होती है। इन स्रोतों में निम्न श्रोत मुख्य है:——

1— पराश्रित बनाम आत्म निर्देशन (Dependence Vs. Selfdirection) :— प्रत्येक व्यक्ति पराश्रिता के चंगुल से अलग होना चाहता है तथा अपनी नयी दुनिया के निर्माण की माँग करता है परन्तु सभी व्यक्ति स्वावलम्बी नहीं बन पाते हैं। कुछ बालकों में प्रतिगमन की प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। स्वतन्त्रता तथा परतन्त्रता का

संघर्ष किशोरावस्था तथा युवावस्था में प्रारम्भ होता है जब से उसे नवीन उत्तरदायित्वों का सामना करना होता हे। उदाहारण के लिए जब व्यक्ति को आर्थिक उत्तरदायित्व निभाने होते हैं वह इसके लिए प्रयत्न करता है परन्तु आज के समाज में प्रतिस्पर्धा इतनी अधिक हो गयी है कि वह कभी–कभी साधनों की खोज में असमर्थ हो जाता है। ऐसी स्थिति में वह परिवार पर आश्रित रहना अधिक पसन्द करता है और पूर्व स्थिति में प्रतिगमन करता है।

2– बचन बद्धता बनाम असंनिहतता (Committment Vs. NonInvolvement) :– व्यक्ति अपने जीवन में यह सीखता है कि उसे समाज के कल्याण के लिए अपने को सदैव तत्पर रखना चाहिए। परन्तु आगे चलकर इस बचन को पूरा नहीं कर पाता क्योंकि आज के समाज में व्यक्ति का व्यक्तित्व खो जाता है तथा सम्बन्ध अवास्तविक होते हैं। ऐसी स्थिति में अत्यन्त वचनबद्ध व्यक्ति भी अपने कर्तव्यों को पालन करने में कठिनाई अनुभव करता है। यही कारण है कि व्यक्ति अकेला रहने पर विवश हो जाता है। परन्तु वह ऐसा रहना भी नहीं चाहता है जिसके कारण अन्तर्द्वन्द होने लगता है।

3– वास्तविकता से बचाव बनाम वास्तविकता का सामना (Avoid-ance Vs. Facing reality) :– आज के समाज में व्यक्ति का महत्व उसकी सफलता से समझा जाता है। असफलता के समय उसका महत्व घट जाता है। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति आत्म अवमूल्यन करने लगता है। अतः वह इस स्थिति से दूर रहने का प्रयत्न करता है। ऐसी स्थिति में उसे वास्तविकता से दूर जाना होता है परन्तु दोनों स्थितियाँ उसके लिए कष्टकर होती हैं जिससे अन्तर्द्वन्द उत्पन्न होता है।

4– सच्चाई बनाम आत्म लाभ (Integrity Vs. Self-advantage) :– कभी–कभी व्यक्ति यह अनुभव करता है कि वह उसी अवस्था में अपने उद्देश्य की पूर्ति कर सकता है जब वह अपने मूल्यों के विपरीत कार्य करे। जब वह देखता है कि दूसरे ऐसा करके लाभ उठा रहे हैं तो वह भी इसके लिए प्रयत्न करता है तथा लाभ प्राप्त करता है परन्तु इससे उसमें अपराध भावना (Guilt Feeling) उत्पन्न हो जाती है फलतः अन्तर्द्वन्द होने लगता है।

5– भय बनाम सकारात्मक क्रिया (Fearfulness Vs. Positive action) :– यह प्रायः कहा जाता है कि इस युग मे जिस व्यक्ति को भय तथा चिन्ता नहीं है वह या तो मूर्ख, असंवेदनशील अथवा पशु है। व्यक्ति भय को दूर करने के लिए सकारात्मक प्रयत्न करता है परन्तु महत्व का केन्द्र यह है कि वह किस प्रकार भयभीत अवस्था में कार्य करता है। बहादुर व्यक्ति वह नहीं है जो

भय न महसूस करे बल्कि बहादुर वह है जो भय के उपस्थित होने पर भी हिम्मत और उत्साह से कार्य करे। परन्तु अधिकांश व्यक्ति इस अर्थ को समझ न पाने के कारण भय को छिपाने का प्रयत्न करते हैं। वे सकारात्मक तरीका सीखने की कोशिश नहीं करते। इसके परिणामस्वरूप व्यक्तिगत उन्नति रुक जाती है।

6– लैंगिक इच्छायें बनाम बन्धन (Sexual desire Vs. Restraints):– लैंगिक बन्धनों के कारण बहुत से ब्यक्ति अन्तर्द्वन्द अनुभव करते हैं। फैशन की दुनिया में तो हम पश्चिमी देशों की नकल करते हैं तथा रहन सहन व खान पान का तरीका अपनाते हैं परन्तु लैंगिक जीवन में हमारी पुरानी ही धारणायें बनी हुई हैं अतः दोनों विरोधाभास स्थितियों के होने से ब्यक्ति पूर्ण रूप से समायोजन नहीं कर पाता है।

उपर्लिखित वर्णन से यह स्पष्ट हो जाता है कि असामान्य ब्यवहार का कोई एक कारक न होकर कारकों का एक पुंज होता है। शारीरिक एवं वंशानुगत कारक अपने महत्व को दिखाते ही हैं साथ ही साथ मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारक विशेष भूमिका निभाते हैं।

6

असामान्य व्यवहार के लक्षण

वर्तमान समय में मानसिक विकारों के ज्ञान के सम्बन्ध में आमूल परिवर्तन हुआ है। पहले यह समझा जाता था कि मानसिक व्याधियों का कारण मानसिक प्रक्रियाओं में व्यवधान है परन्तु अब समझा जाने लगा है कि किसी रोग, चाहे वह शारीरिक हो अथवा मानसिक, का एक आधार नहीं होता है। मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। व्यवहार शारीरिक व मनोसामाजिक अन्तः क्रियाओं का प्रतिफल है। मानसिक विकार की अवस्था में अनेक व्यवहारिक, मानसिक, मनोवैज्ञानिक तथा शारीरिक परिवर्तन होते हैं। इन परिवर्तनों या लक्षणों को क्रमबद्ध करना स्वयं में एक समस्या है।

लक्षण का तात्पर्य

ब्राऊन[1] के अनुसार "लक्षण रोग आधार है। यह स्वयं असमायोजित व्यवहार है"।

(A symptom is a surface sickness. It is maladjusted behaviour itself).

पेट दर्द या अन्य किसी प्रकार का दर्द, स्नायुविक विकारों में किसी प्रकार की गड़बड़ी अथवा क्षति, गामक कार्यों (Motor functions) में व्यवधान आदि, लक्षण कहलाते हैं। इसी प्रकार शारीरिक तापक्रम, स्वांस प्रक्रिया, रक्त चाप में परिवर्तन भी शारीरिक रोगों के लक्षण होते हैं। मानसिक रोगों के लिए अतार्किक भय, विचित्र एवं असामान्य सांवेगिक प्रतिक्रियायें, आधारहीन विश्वास तथा मिथ्या स्मृति आदि लक्षण हैं।[2]

लक्षण शब्द का वास्तविक अर्थ चिन्ह से होता है। अर्थात जब रोग का एक चिन्ह अथवा अनेक चिन्ह प्रकट होते हैं तो उसे उस विशेष रोग का लक्षण

---

1. ब्राऊन, जे0 एफ0 — साइकोडायनमिक्स आफ अबनारमल बिहेवियर, मैंकग्राहिल बुक कं0, न्यूयार्क, 1940 पृ0 71।
2. उपर्लिखित — पृ0 71

कहते हैं। आधुनिक चिकित्सा प्रणाली में लिए लक्षण को रोगग्रस्त व्यक्तित्व का चिन्ह माना जाता है और जिसे दूर करने के विभिन्न औषधियों का उपयोग होता है। परन्तु मानसिक चिकित्सा के क्षेत्र में लक्षणों को केवल न दूर करने का बल्कि रोग के मूल कारण को दूर करना होता है।

लक्षणों के आधार पर ही किसी प्रकार के रोग का पता लगाया जा सकता है। रोगी को भी इन लक्षणों का ज्ञान होना उतना ही महत्वपूर्ण होता है क्योंकि इसके ज्ञात होने पर वह बचाव करने का प्रयत्न करने का प्रयास करता है। इसलिए मनोचिकित्सा में मनोचिकित्सक का प्रमुख उद्देश्य रोगी को उसके लक्षणों का ज्ञान कराना भी होता है। ब्राऊन[3] का मत है कि लक्षणों से रोगी को परिचय कराने से न केवल अनेक शारीरिक व्याधियों को दूर किया जा सकता है बल्कि मानसिक विकारों में भी बिना मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं को प्रभावित किये अतार्किक भयों, मिथ्या विश्वासों तथा अनुपयुक्त संवेगात्मक प्रतिक्रियाओं को गहन सुझाव एवं सम्मोहन (Hypnosis) के द्वारा दूर किया जा सकता है।

लक्षण प्रायः एक समूह में प्रकट होते हैं। उनमें एक प्रकार का संगठन होता है। लक्षणों की इस जटिलता को संलक्षण (Syndrome) कहते हैं। मानसिक विकारों का कोई एक लक्षण नहीं होता है बल्कि वे एक साथ संगठित एवं व्यवस्थित होकर व्यवहार में मिश्रित हो जाते हैं। अतः लक्षणों को बिना ज्ञात किये न तो विकार समझा जा सकता है और न ही रोगी के व्यवहार को संतुलित बनाया जा सकता है।

असामान्य व्यवहार के लक्षण

प्रायः निम्न प्रकार के लक्षण मानसिक विकार की दशा में उत्पन्न होते हैं।

(I) प्रत्यक्षीकरण की विकृतियाँ (Disorders of Perception)

मनुष्य के सामाजिक व्यवहार को प्रभावित करने की दृष्टि से प्रत्यक्षीकरण का एक विशेष महत्व है। संवेदना एक उद्दीपक का प्रत्युत्तर हैं और प्रत्यक्षीकरण एक व्यक्ति का संवेदन के पश्चात का द्वितीय प्रत्युत्तर है। संवेदना द्वारा हमें किसी उत्तेजना के गुणों का ज्ञान होता है लेकिन प्रत्यक्षीकरण द्वारा हमें वस्तु का ज्ञान हो जाता है। उदाहरण के लिए मेज पर कोई वस्तु रखी है परन्तु उसे

---

3. उपर्लिखित पृ0 72

देखकर हम बता देते हैं कि यह घड़ी है। जिस प्रक्रिया के द्वारा हमें वस्तु के विषय में ज्ञान प्राप्त होता है उसे प्रत्यक्षीकरण कहते हैं अतः प्रत्यक्षीकरण एक मानसिक प्रक्रिया है। इस प्रक्रिया में निम्न उपक्रियायें प्रभावकारी होती हैं।

(1) ग्राहक प्रक्रियायें (Receptor Processes) : सर्वप्रथम ज्ञानेन्द्रियाँ अपना कार्य प्रारम्भ करती है। अतः जिस ज्ञानेन्द्रिय का जो कार्य होता है उसी के अनुसार प्रत्यक्षीकरण सम्भव होता है। जैसे देखने, स्पर्श करने आदि से सम्बन्धित प्रत्यक्षीकरण। ज्ञानेन्द्रियों की उत्तेजना होने पर ही प्रत्यक्षीकरण सम्भव हो पाता है।

(2) प्रतीकात्मक प्रक्रियायें (Symbolic Processes) : इस प्रक्रिया द्वारा वस्तुस्थिति के साथ व्यक्ति के अनुभव तथा भावनायें जुड़ जाती हैं। उदाहरण के लिए गुलाब की सुगन्ध के साथ–साथ गुलाब की आकृति भी हमारे समक्ष प्रस्तुत हो जाती है।

(3) संवेगात्मक प्रक्रियायें (Affective Processes) : प्रत्यक्षीकरण में संवेगात्मक प्रक्रियाओं का भी समावेश होता है। प्रत्यक्षीकरण के साथ–साथ संवेगात्मक प्रक्रियायें भी अपना कार्य करती हैं।

(4) एकीकरण प्रक्रियायें (Integration Processes) : यद्यपि प्रत्यक्षीकरण अनेक ग्राहक प्रक्रियाओं द्वारा प्रभावित होता है परन्तु उसकी एक ही प्रक्रिया कार्य करती है। ज्ञानेन्द्रियों में एकीकरण बना रहता है।

प्रत्यक्षीकरण के निर्धारक

प्रत्यक्षीकरण के निम्न निर्धारक हैं :—

(1) ज्ञानेन्द्रियाँ (Sense organs) : ज्ञानेन्द्रियों द्वारा ही वाह्य जगत के प्रति उत्तेजना होती है। अर्थात व्यक्तित्व की शारीरिक प्रक्रिया प्रत्यक्षीकरण में सर्वप्रथम कार्य करती है।

(2) मस्तिष्क की क्रियाशीलता : मस्तिष्क के द्वारा व्यक्ति को वस्तु की स्थिति एवं भिन्नता का आभास होता है।

(3) पूर्व अनुभव : पूर्व अनुभव के द्वारा भी प्रत्यक्षीकृत वस्तु का अर्थ स्पष्ट होता है।

(4) मानसिक स्थिति : मानसिक स्थिति का भी प्रभाव प्रत्यक्षीकरण पर पड़ता है। उदाहरण के लिए भूखा व्यक्ति किसी अस्पष्ट वस्तु को भोजन की वस्तु बताता है। मानसिक रोगियों में प्रत्यक्षीकरण का पूर्ण विघटन बहुत कम

होता है। यह विभिन्न स्थिति में प्रकट होता है :-

(1) प्रत्यक्षीकरण की साधारण त्रुटियाँ

कभी-कभी व्यक्ति वस्तु को भली भाँति समझने में गलती करता है क्योंकि प्रत्यक्षीकरण व्यक्ति के पूर्व ज्ञान, उसकी मानसिक स्थिति, वस्तु के गुण आदि पर निर्भर होता है। यही कारण है कि व्यक्तियों के प्रत्यक्षीकरण में भिन्नता होती है तथा समयानुसार प्रत्यक्षीकरण भिन्न हो जाता हे।

(2) अपूर्ण प्रत्यक्षीकरण

प्रत्यक्षीकरण का पूर्ण विघटन केवल विषज संक्रामक मनोविकारों में होता है। प्रत्यक्षीकरण की अपूर्ण अवस्था में ज्ञानेन्द्रियाँ तो अपना कार्य करती हैं परन्तु संवेदना चेतन रूप में स्पष्ट नहीं हो पाती है। अर्थात प्रत्यक्षीकरण का शारीरिक (Physical) भाग तो कार्य करता है परन्तु संवेदनात्मक कार्य ठीक न होने के कारण घटनायें उसकी समझ में नहीं आती हैं। रोगी भ्रमित, आकुल तथा चिंतातुर रहता है। वह या तो प्रश्न समझता नहीं है अथवा समझने में असफल रहता है जब तक कि प्रश्न बारम्बार दुहराया नहीं जाता है।

(3) भ्रान्तियाँ
(Illusions)

प्रत्यक्षीकरण की अशुद्धि को भ्रान्ति कहते हैं। भ्रान्तियाँ दो कारणों से होती है-शारीरिक दोष एवं मानसिक स्थिति। व्यक्ति की सांवेगिक स्थिति, उसकी इच्छायें एवं मूल प्रवृत्तियाँ परिस्थिति को समझने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाती हैं। उदाहरण के लिए एक रोगी अर्थचेतन अपराध की भावना के कारण विषादी हो जाता है और उसे पत्तियों की आवाज उसकी निन्दा सी करती लगती है। इस प्रकार के त्रुटिपूर्ण, दोषयुक्त, प्रत्यक्षीकरण के विश्लेषण को भ्रान्ति कहते हैं। परन्तु भ्रान्ति अधिक समय तक प्रभावित नहीं करती है और रोगी को वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

(4) विभ्रम
(Hallucination)

भ्रान्ति तथा विभ्रम में अन्तर होता है। भ्रान्ति की स्थिति में वाह्य उद्दीपक अवश्य होता है और भ्रान्ति गलत संवेदना पर आश्रित होती है। उदाहरण के लिए रस्सी को साँप समझ लेना भ्रान्ति हैं, परन्तु किसी वस्तु की अनुपस्थिति

होने पर भी वस्तु का वोधन होना विभ्रम होता है। विभ्रम में वाह्य उद्दीपक का आभास होता है। रोगी को विभिन्न आवाजें सुनाई देने लगती हैं। वह अस्तित्वहीन गन्ध भी अनुभव करता है। अतः विभ्रम को काल्पनिक प्रत्यक्षीकरण के रूप में परिभाषित करते हैं।[4] रोगी चाहे जितना वास्तविकता के विषय में समझाया जाय परन्तु वह मानता नहीं हैं।

विभ्रम किसी भी ज्ञानेन्द्रिय से सम्बन्धित हो सकता है। जितने प्रकार की ज्ञानेन्द्रियाँ होती है उतने ही प्रकार का विभ्रम होता है विभ्रम प्रायः दमित इच्छाओं का प्रत्यक्षीकरण होता है। उदाहरण के लिए अपराध भावना (Feeling of guilt) के कारण निन्दनीय आवाजें सुनता है। वह अस्तित्वहीन दृश्यों को इसलिए देखता है क्योंकि उसके जीवन में उन दृश्यों ने पहले उथल–पुथल मचा दिया था। विभ्रम प्रायः मनोविकृति (Psychoses) में होता है। जब विचारों तथा संवेगों में तनाव बहुत अधिक होता है तथा दमन (Repression) मनोरचना असफल हो जाती है और व्यक्ति में समाधान से सम्बन्धित क्रिया अति सक्रिय रहती है तो विभ्रम उत्पन्न होता है। मानसिक अतुभवों में विभ्रम की भूमिका को निम्न उदाहरण द्वारा समझाया जा सकता है। एक महिला जो कि प्रेम में असफल हो गई इसके कारण उसमें अतिभग्नाषा के चिन्ह दिखाई देने लगे। एक दिन वह नदी के किनारे बैठी थी तथा दिवास्वप्नों के द्वारा अपनी दमित प्रेम इच्छाओं को पूर्ण कर रही थी। उसने अपनी प्रेमी की आवाज काल्पनिक रूप में सुनी। उसने सुना कि उसका प्रेमी नदी के अन्दर से बुला रहा है तथा उसने नदी में कूद जाने के लिए कहा है जिससे कि वह उसके महल तक पहुँच सके। उसको विश्वास हो गया कि उसे अवश्य जाना चाहिए अतः उसने नदी में छलाँग लगा दी।

अहम् द्वारा जब कोई इच्छा दमित होकर अचेतन में चली जाती है और अवसर पाकर सक्रिय होकर चेतन में आने का प्रयास करती है परन्तु वास्तविकता में वह पूर्ण नहीं की जा सकती है अतः छद्म वेश में प्रकट होती है। इसी कारण चेतना के समक्ष प्रकट होने के लिए वह दमित इच्छा विभ्रम प्रक्षेपण द्वारा प्रकट होती है। इस प्रकार की अवस्था में व्यक्ति अपनी इच्छा अन्तर्द्वन्द अपराध भावना तथा कष्टमयी मूल प्रवृतियों को अपने से बाहर वाह्य जगत पर प्रक्षेपित कर देता है। विभ्रम सदैव दमित इच्छाओं की पूर्ति के कारण ही नहीं उत्पन्न होते हैं। विषज अवस्थाओं, शारीरिक व्यवधानों तथा मस्तिष्क दोष के कारण भी उत्पन्न होते हैं।

---

4. नोयेस, आर्थर पी0 — ए टेक्सटबुक आफ साइक्याट्री, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1936, पृ0 83

विभ्रम के प्रकार

भिन्न 2 ज्ञानेन्द्रियों के त्रुटिपूर्ण प्रत्यक्षीकरण से भिन्न भिन्न विभ्रम उत्पन्न होते हैं। मुख्य विभ्रम निम्न हैं––

1. **श्रवण संबंधी विभ्रम** (Auditory hallucination) : श्रवण संबंधी विभ्रम में रोगी को अनेक अवास्तविक आवाजें सुनाई देती हैं। वह सुनता है कि उसे कोई आदेश दे रहा है, कार्य करने के लिए उत्तेजित कर रहा है, उसकी निंदा कर रहा है, धमकी दे रहा है, मार डालने के लिए कह रहा है। इस प्रकार के भ्रम में वह अपने व्यवहार को तद्नरूप परिवर्तित कर लेता है।

2. **दृष्टि संबंधी विभ्रम** (Visual Hallucination) : इस प्रकार के विभ्रम में रोगी देखने से संबंधित अवास्तविक प्रत्यक्षीकरण करता है। वह देखता है कि कोई व्यक्ति उसे मार डालने को आ रहा है। वह देखता है कि पानी बरस रहा है तथा बन्द कमरे में भी खुले आकाश का अनुभव करता है।

3. **गंध विभ्रम** (Olfactroy Hallucination) : इस प्रकार के रोगी को किसी प्रकार की गंध न होने पर अनेकों प्रकार की गंध का अनुभव होता है। उदाहरण के लिए रोगी को ऐसा लगता है कि उसके कमरे में विषैली गैस भरी है जिसको उसके दुश्मनों ने उसके कमरे में भर दिया है।

4. **स्वाद संबंधी विभ्रम** (Guestatory Hallucination) : इस प्रकार के विभ्रम में रोगी विभिन्न प्रकार के स्वादों का अनुभव करता है। कड़ुवी चीज न खाने पर भी कड़ुवाहट का अनुभव करता है। गम्भीर अवस्था में रोगी भोजन में विष का स्वाद चखता है।

5. **स्पर्शीय भ्रम** (Tactual Hallucination) : इस प्रकार के विभ्रम में रोगी को लगता है कि उसके शरीर पर अनेकों कीड़े मकोड़े रेंग रहे हैं। वह अनुभव करता है कि उसके शरीर में कोई चीज चुभोई जा रही है। उसे वेदना का भी अनुभव करता है।

(II) चिंतन प्रक्रिया में विकृति
(Disorders of Thinking)

चिंतन प्रक्रिया द्वारा व्यक्ति विचारों को क्रमबद्ध करके अर्थ प्राप्त करता है। चिंतन का तात्पर्य कल्पना, तार्किक, अनुमान तथा अन्य प्रक्रियाओं द्वारा विचारों का क्रमवद्ध करना तथा नये विचारों को उत्पन्न करना होता है। चिंतन प्रत्यक्षीकरण तथा स्मृति पर आधारित होता है। व्यक्ति चिंतन द्वारा ही समस्या का

हल निकालता है और यदि उसमें किसी प्रकार का व्यवधान उत्पन्न होता है तो उसका व्यवहार असंतुलित हो जाता है। चिंतन प्रक्रिया के क्षेत्र में तीन प्रकार की विकृति होती है–

1. विचार उत्पत्ति में विकृति (Disorders in Production of Thought)

विचारों की उत्पत्ति में भी अनेकों कारक होते हैं जो जटिलता में कार्य करते हैं। मानसिक स्वास्थ्य में विचारों के मुख्य उत्तेजक पर्यावरणीय एवं सांवेगिक कारक होते हैं। यदि आवश्यकता होती है तो सामान्य विचारों को वास्तविकता के अनुसार बदल लिया जाता है। इस प्रकार के विचार को वास्तविक अथवा तार्किक विचार कहते हैं। कभी–कभी तथा मुख्य रूप से कुछ निश्चित मानसिक विकारों में रोगी बिना किसी चेतन निर्देशन के स्वतंत्र विचारों का अनुभव करता है। लेकिन कोई न कोई शक्ति अवश्य ही इनका निर्देशन करती हैं। यह शक्ति अचेतन स्तर की इच्छाओं, प्रेरणाओं तथा मूल प्रवृतियों की होती हैं जिसके कारण विचारों में तारतम्यता नहीं हो पाती है। यह शक्ति विचारों को वास्तविकता की ओर निर्देशित नहीं करती है। व्यवहारिक तत्वों एवं अचेतन की इच्छाओं, आवश्यकताओं एवं प्रेरणाओं से विचारों को सुधारा नहीं जाता है। इस प्रकार के विचार को आटुइस्टिक चिंतन (Autistic Thinking) कहते हैं।

2. विचारों की प्रगति में विकृति (Disorders in Progression of Thought)

हमारे विचारो में एक तारतम्यता होती है। प्रत्येक प्रकट होने वाले विचारों का संबंध पूर्व प्रकट होने वाले विचार से होता है। विचारों की श्रंखला को सहचर्य (Association) कहते हैं। हमारे विचारों में तार्किक क्रमबद्धता (Logical sequence) भी होती है तथा विचार उद्देश्य की ओर अग्रसर होते हैं। उदाहरण के लिए यदि किसी विद्यार्थी से प्रश्न किया जाय कि वह अपने पूरे दिन के कार्यकलापों का वर्णन करे तो वह सुबह की घटनाओं से लेकर एक–एक करके सभी घटनाओं एवं कार्यों का क्रमानुसार वर्णन करेगा। इस विचार प्रगति को विचारों की धारा (Stream of thought) कहते हैं।

कुछ मानसिक रोगों में विचारों की प्रगति में बाधा उत्पन्न हो जाती है जिसके कारण रोगी में निम्न लक्षण प्रकट होते हैं––

1–विचारों की उड़ान (Flight of Ideas) रोगी जल्दी–जल्दी एक

विचार से दूसरे विचार पर पहुंचता है तथा उन विचारों के अर्थ में कोई तारतम्यता नहीं होती है। रोगी का मस्तिष्क बहुत तेज कार्य करता है।

2–विचारों की मंदता (Retardation in Ideas) इस अवस्था में रोगी के विचार धीरे–धीरे व्यक्त होते हैं। रोगी प्रायः कहता है कि उसे सोचने में कठिनाई हो रही है तथा विचार धीरे–धीरे उत्पन्न हो रहे हैं। वह धीरे–धीरे बोलता है तथा उसकी वाणी कमजोर होती है। यह अवस्था प्रायः सांवेगिक विषादी रोगियों में पाई जाती है।

3–परिस्थिति विशेष्य (Circumstantiality) इस प्रकार के विचारों के प्रवाह में व्यक्ति उद्देशीय विचार पर पहुंच तो जाता है परन्तु उसे अनेकों अनावश्यक विचारों से गुजरना पड़ता है जिससे उसे मानसिक थकान महसूस होने लगती है। इस प्रकार के विचारों का प्रभाव उन व्यक्तियों में पाया जाता है जो आवश्यक तथा अनावश्यक में भेद नहीं कर पाते हैं तथा विचारों को शीघ्र परिभाषित करने में असमर्थ होते हैं।

4–अतारतम्यता (Incoherence) कभी–कभी रोगी एक विचार से दूसरे विचार पर बिना किसी तार्किक क्रमबद्धता के पहुंचता है। इसका परिणाम यह होता है कि उन विचारों का कोई अर्थ नहीं होता है, केवल अर्थहीन वाक्यों की श्रृंखला होती है।

5–अवरोध (Blocking) कभी–कभी रोगी में विचार प्रवाह बिलकुल समाप्त हो जाता है और काफी समयोपरान्त पुनः विचार प्रवाह उत्पन्न होता है। विचारों की प्रगति में यह अवरोध जटिल संवेगों तथा मानसिक अंतर्द्वन्द के कारण होता है।

(III) विचारों की विषय वस्तु में विकृति (Disorders in Content of Thought)

इसमें निम्न विकृतियाँ प्रमुख हैं––

(1) प्रवृत्ति विचार

यह सबसे साधारण प्रकार का व्यवधान है। इस अवस्था में व्यक्ति किसी एक विचार पर बार–बार आता है। अर्थात कोई विशेष विचार अकेला केन्द्रबिन्दु बन जाता है क्योंकि इसके साथ व्यक्ति की दृढ भावनायें किसी अज्ञात कारण से उसके साथ जुड़ी होती हैं।

(2) अतिनिश्चयात्मक अथवा अतिमूल्यात्मक विचार

जब किसी विचार के साथ व्यक्ति का कोई पूर्व निश्चित मूल्य जुड़ जाता है जिसके कारण विश्वास की आंतरिक आवश्यकता को संतोष प्राप्त होता है तो उसे अतिनिश्चयात्मक अथवा अतिमूल्यात्मक विचार कहते हैं। जब अतिमूल्यात्मक विचार व्यक्ति में कार्य करता है तो वह उसे दूसरे विचारों से बिल्कुल अंधा कर देता है और वे ही अवलोकन तथा स्मृतियां मानस पटल पर आती हैं जो इस विचार के उद्देश्य की पूर्ति करती हैं। जो विचार इस विचार से संघर्ष करने का प्रयत्न करते हैं उन्हें चेतनावस्था में आने से रोक दिया जाता है। अतः पूर्ण व्यक्तित्व विचार तथा भावनायें एक ही विचार के द्वारा निर्देशित होते हैं तथा क्रियाओं का श्रोत भी मूल्यात्मक विचार ही होता है।

(3) व्यामोह
(Delusion)

एक व्यामोह को मिथ्या विश्वास के रूप में परिभाषित किया जा सकता है।[5] व्यक्ति में ऐसे विश्वास उत्पन्न हो जाते हैं जो अर्थहीन, असत्य तथा अतार्किक होते हैं। इस परिभाषा तथा इसके अर्थ को जब हम रोगी के जीवन के उद्देश्यों एवं मूल्यों के सन्दर्भ में देखते हैं तो ऐसा लगता है कि उपर्लिखित परिभाषा अपूर्ण हैं। यह प्रायः कहा जाता है कि वही असत्य विश्वास व्यामोह है जिसको कि शिक्षा और अनुभव वाला व्यक्ति असम्भव समझता है और तर्क के माध्यम से उस विश्वास को दूर नहीं किया जा सकता है।

यह भी परिभाषा अपूर्ण लगती है क्योंकि इसमें सांवेगिक आवश्यकताओं के महत्व को उपेक्षित कर दिया है। ह्वाइट (White)[6] ने व्यामोह की तीन विशेषतायें बताई हैं :–

1–व्यामोह ऐसे विश्वास हैं जो अवास्तविक एवं असत्य हैं।

2–इनका प्रारम्भ वास्तविक अनुभवों से नहीं होता है तथा तर्क, औचित्य, विवेक, तथा तथ्य के आधार पर इन्हें ठीक नहीं किया जा सकता है।

3–इनका व्यक्ति की शिक्षा एवं वातावरण के साथ किसी प्रकार का सम्बन्ध नहीं होता है।

---

5. नोइस, पी0 — उल्लिखित पृ0 90
6. ह्वाइट, डब्ल्यू0 ए0 — दि लैंग्वेज आफ सिज्योफ्रीनियाँ, आरकाई आफ न्यूरोलाजी, शिकागो 1926, पृ0 295–313

इस प्रकार व्यामोह का निर्धारण विषयगत होता है जिसके कारण व्यक्ति तर्क के माध्यम से इन्हें दूर नहीं कर पाता है। व्यामोह व्यक्ति की विशेष समस्याओं को सुलझाने का प्रयत्न करते हैं। इन समस्याओं का सम्बन्ध दमित इच्छाओं एवं चालकों, आशाओं, हीनता की भावनाओं, शारीरिक अक्षमताओं, अपराध की भावनाओं तथा अन्य संवेगात्मक विशेषताओं से होता है। अधिकांशतः व्यामोह ऐसे व्यक्तियों का होता है जो विषादी एवं शक्की प्रकृति के होते हैं।

व्यामोह के प्रकार

व्यामोहों को निम्नलिखित सात प्रकारों में वर्गीकृत कर सकते हैं :

(1) महानता का व्यामोह (Delusion of Grandeur) : महानता के व्यामोह में व्यक्ति अपनी अपूर्ण इच्छाओं एवं असुरक्षा की भावना को महान बनकर पूर्ण करता है। वह स्वयं को विश्व का स्वामी, सम्राट, करोड़पति, महापुरूष,महान नेता तथा वक्ता समझने लगता है। महानता का व्यामोह अनपयुक्त भावनाओं, हीन भावनाओं तथा असुरक्षा की भावनाओं के कारण उत्पन्न होता है।

(2) दण्डात्मक व्यामोह (Delusion of Persecution) : इस प्रकार के व्यामोह में व्यक्ति को विश्वास हो जाता है कि उसके चारों ओर दुश्मन हैं, उसके साथ षड़यंत्र किया जा रहा है, उसके मारने की चारों ओर तैयारियाँ हो रही हैं। वह समझता है कि उसके खाने–पीने की चीजों में जहर देने का प्रबन्ध किया जा रहा है। वह समझता है कि उसके विरूद्ध प्रचार किया जा रहा है। यह व्यामोह किसी सन्दर्भ स्थिति में ही प्रकट होता है। अर्थात व्यक्ति किसी भी आकस्मिक घटना या प्रसंग में रहस्य का आभास करता है तभी यह व्यामोह उत्पन्न होता है। जैसे दो व्यक्ति उससे पृथक होकर यदि बात करते हैं तो वह यही समझता है इसमें कोई रहस्य छिपा है और उसके खिलाफ साजिश कर रहे हैं।

(3) आत्म निन्दनात्मक व्यामोह (Delusion of Self Condemnation) : इस प्रकार के व्यामोह में रोगी समझता है कि उसने ऐसा अपराध किया है जो कि अक्षम्य है। वह अपने जीवन को अर्थहीन समझता है तथा सोचता है कि उसे उसके पाप के लिए दण्ड अवश्य ही मिलना चाहिए। रोगी इस व्यामोह के कारण आत्महत्या का प्रयास करता है।

(4) रोगभ्रम व्यामोह (Hypochondrial Delusion) : इस प्रकार के व्यामोह में रोगी किसी विशेष रोग से पीड़ित अपने को समझने लगता है। वह सोचता है कि उसे कोई ऐसा रोग हो गया है जिसे ठीक नहीं किया जा सकता

है। वह कभी–कभी यह भी सोचता है कि उसका शरीर गलता जा रहा है, रक्त बनना बन्द हो रहा है शरीर से पेट गायब हो गया है तथा उसकी आकृति बिगड़ रही है। रोगी को चाहे जितने प्रमाण प्रस्तुत किये जाँय वह उन पर विश्वास नहीं करता है।

(5) सन्दर्भ का व्यामोह (Delusion of Reference) : रोगी समझता है कि उसी के विषय में ही चारों ओर चर्चा हो रही है, उसका ही सन्दर्भ दिया जा रहा है। कार्य क्रियायें उसके सन्दर्भ में हो रही हैं। उसकी ही जीवन पद्धति का प्रचार किया जा रहा है।

(6) प्रभाव का व्यामोह (Delusion of Influence) : रोगी समझता है कि उसको विभिन्न तरीकों द्वारा प्रभावित करने का प्रयत्न किया जा रहा है। दुश्मन उसको प्रभावित करने के लिए वैज्ञानिक तरीकों का प्रयोग कर रहे हैं।

(7) अर्थहीनता का व्यामोह (Nihalistic Delusion) : रोगी समझता है किसी चीज का कोई अस्तित्व नहीं है। व्यक्ति छाया के रूप में विचरण कर रहे हैं तथा संसार में आत्माएं भटक रही हैं।

(IV) चेतनता की विकृतियाँ

मानसिक रोगी में चेतनता सम्बन्धी अनेक विकृतियाँ आ जाती हैं।

(1) उलझन (Confusion) : उलझन में रोगी को अचेतात्मक व्यवहार अनुभव होते हैं। उसको परिस्थिति की व्याख्या करने तथा प्रत्यक्षीकरण करने में कठिनाई होती है। उसके विचारों के सहचर्य में कठिनाई होती है। उद्देश्य केवल आंशिक रूप में ही प्रत्यक्षीकृत होते हैं। उलझन के कारण रोगी दुखी परेशान तथा व्याकुल रहता है।

(2) चेतनता में घिराव (Clouding of Consciousness) : इस विकृति में मस्तिष्क के कार्यों में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण विचारों में सहचर्य नहीं हो पाता है। मस्तिष्क कोषों में विकार होने के कारण प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया सुचारू रूप से कार्य नहीं करती है। मनोवैज्ञानिक प्रक्रियाओं में मन्दता आ जाती है। रोगी को प्रश्न समझाने के लिए बार–बार कहना पड़ता है। अर्थ समझाने के लिए रोगी को बार–बार हिलाना भी पड़ता है। वह पर्यावरण का अपूर्ण तथा गलत प्रत्यक्षीकरण करता है। इस अवस्था में स्मृति में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है।

(3) विमूढ़ (Stupor) : विमूढ़ता की अवस्था में रोगी अपने जीवन के प्रति पूर्ण उदासीन हो जाता है। उसकी मनोदशा में शैशवकालीन अवस्था के लक्षण दृष्टिगोचर होने लगते हैं। वह पूर्णतया एकांगी हो जाता है। उसको समय, स्थान, घटना, व्यक्ति आदि के विषय में ज्ञान नहीं रहता है। उसके हाथ–पैर अत्यन्त शिथिल हो जाते हैं। उसका स्वास्थ्य गिर जाता है।

(4) विक्षेप (Delirium) : विक्षेप में अनेक चेतना सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी व्याकुल, आतुर,, विचारशून्य, भ्रमित, विभ्रमित, विमूढ़, बैचेन तथा भयभीत दिखाई पड़ता है।

(5) स्वप्नावस्था (Dream State) : यह स्थिति उस समय प्रगट होती है जब रोगी के व्यक्तित्व का विघटन हो जाता है। रोगी इतना चेतना–शून्य हो जाता है कि उसे वाह्य परिस्थिति के विषय में ज्ञान नहीं रहता है। सुनने तथा देखने में विभ्रम होने लगता है। इन विभ्रमों के कारण वह घर से भाग जाता है तथा हिंसात्मक कार्य भी करता है। रोगी की यह स्वप्नावस्था कुछ क्षणों से लेकर महीनों तक हो सकताी है।

(V) स्मृति सम्बन्धी विकृतियाँ (Memory Disorders)

स्मृति सम्बन्धी विकृतियाँ प्रमुख रूप से तीन प्रकार की होती हैं :—

1— स्मृति ह्रास (Amnesia)

मानसिक रोगी में साधारण से विषम स्मृति ह्रास होता है। यह स्मृति ह्रास दो प्रकार का होता है :–(अ) मनोजन्य (Psychogenic) (ब) आंगिक (Organic)।

(अ) मनोजन्य स्मृति ह्रास तीव्र संवेगात्मक आधातों के परिणामस्वरूप होता है। रोगी के जीवन में कोई ऐसी घटना घटित होती है जिससे संवेगात्मक अति आघात पहुँचता है और स्मृति लुप्त हो जाती है। घनिष्ठ सम्बन्धी की मृत्यु, आर्थिक हानि, भयानक घटना आदि इसके उदाहरण हैं। इस प्रकार की स्मृति का उद्देश्य उस कष्टकर घटना को चेतना से हटा देना होता है।

(ब) जब सिर में चोट लगने अथवा विषम अवस्थाओं के फलस्वरूप अथवा वृद्धावस्था से मस्तिष्क में कोई अंग विकृत हो जाता है तो आंगिक स्मृति ह्रास होता है। स्मृति ह्रास के अन्य दो रूप भी होते हैं:–

1– पश्चात्मक स्मृति ह्रास (Anterograde Amnesia) : इस प्रकार के स्मृति ह्रास में रोगी पे किसी मानसिक आघात की घटना के पश्चात की बातों का पुनर्स्मरण नहीं होता है।

2– अधोगामी स्मृति ह्रास (Retrograde Amnesia) : इस प्रकार की स्मृति ह्रास में रोगी को अतीत के विषय में कुछ भी याद नहीं रहता है।

2– मिथ्या स्मृति
(Para Amnesia)

रोगी को कभी–कभी मिथ्या स्मृति होती है। उनको ऐसी बातें याद आने लगती हैं जो कभी घटित नहीं हुई हैं। मिथ्या स्मृति दो प्रकार की होती है :–

1. मिथ्या रचना (Confabulation) :– रोगी न घटित होने वाली घटनाओं को अपनी स्मृति में स्थान प्रदान करता है।

2. अनुनिरीक्षणात्मक अयथार्थीकरण (Retrospective Falsification) :– रोगी विगत बातों का अयथार्थ रूप में प्रस्तुत करता है।

3– अति स्मृति
(Hyper Amnesia)

रोगी की स्मृति तीव्र हो जाती है। वह शैशवकालीन बातों को भी याद करने लगता है।

(VI) व्यवहार के गामक पक्षों में विकृतियाँ
(Disorder in Motors)

व्यवहार के गामक पक्षों में निम्नलिखित विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं–

1– मनोगत्यात्मक सक्रियता
(Psycho motor Actvity)

यद्यपि इस प्रकार की क्रियायें उद्‌देश्यपूर्ण होती है लेकिन उद्देश्यों में परिवर्तन होने से कार्यों में तारतम्यता नहीं रह पाती है। रोगी कुछ न कुछ कार्य हर समय करता रहता है परन्तु उसके कार्य बदलते रहते हैं। उनमें विचारों की काल्पनिक उड़ान होती है। एक विचार से दूसरे विचार पर तीव्रता से पहुंचता है। प्रश्न पूछने पर उत्तरों की झड़ी लगा देता है।

2– मनोगत्यात्मक निष्क्रियता

(Psycho-motor inactivity)

इस अवस्था में रोगी का किसी काम में मन नहीं लगता है उसमें स्फूर्ति, उत्साह, साहस, निर्णय आदि शक्तियों का ह्रास हो जाता है वह हर समय थकान अनुभव करता है।

3– रूढ़िबद्धता

(Stereotype)

कभी–कभी जब मानसिक रोगी कोई कार्य प्रारम्भ करता है। तो उसको अनिश्चित समय तक दोहराता जाता है। इस प्रकार की प्रवृति विचारों तथा वाणी में पाई जाती है। रोगी कभी–कभी एक ही स्थिति में खड़ा रहता है, एक ही वाक्य दोहराता रहता है तथा एक ही प्रकार की मुखाकृति काफी समय तक बनाये रखता है।

4– नकारात्मकता

(Negativism)

रोगी कभी–कभी वह कार्य नहीं करता है जो उससे कहा जाता है अथवा इच्छित व्यवहार के विपरीत व्यवहार करता है। यह नकारात्मकता चुप रहने, खाना न खाने तथा क्रोध के रूप में प्रगट होती है। उदाहरण के लिए यदि रोगी से कहा जाय कि वह अपनी जीभ दिखाये तो रोगी अधिक कस कर मुँह बन्द कर लेता है।

(VII) संवेगात्मक विकृतियाँ

(Emotional Disorders)

मानसिक रोगी में संवेगात्मक विकृति असफल समायोजन के फलस्वरूप प्रगट होती है। इन रोगियों में निम्न संवेगात्मक विकृतियों से सम्बन्धित लक्षण पाये जाते हैं:–

1– क्रोध (Anger):–मानसिक रोगी जरा–जरा सी बात पर क्रुद्ध हो जाता है। उसमें क्रोध की सीमा और अधिक हो जाती है जब उसके कार्यों में रुकावट डाली जाती है।

2– झुंझलाहट (Annoyance):– मानसिक रोगी जरा–जरा सी बात पर खीझ जाता है। वह जरा सा भी विरोधात्मक व्यवहार सहन नहीं कर पाता। उसको न केवल बाह्य जगत से झुंझलाहट लगती है वरन अपने आप से भी उत्पन्न होती है।

3– चिंता (Anxiety):– चिन्ता की अवस्था में रोगी सशंकित तथा घबराया हुआ दिखता है। इस अवस्था में उसके दिल की धड़कन की गति तीव्र हो जाती है तथा मानसिक तनाव बढ़ जाता है। रोगी परेशान दिखता है। चिन्ता का विषय स्वयं व्यक्ति होता है। उसकी व्याकुलता उसकी मानसिक स्थितिजन्य होती है। इसका वाह्य कारकों से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। वरन् यह ह्रदयगत छिपी हुई परेशानी के प्रति मस्तिष्क की प्रतिक्रिया है।

4– भय (Fear):– आने वाली भीषण स्थिति की आशंका से भय उत्पन्न होता है। भय के कारण रोगी दूर भागना चाहता है क्योंकि उसमें परिस्थिति का सामना करने की सामर्थ्य नहीं होती है। वह उससे बचना चाहता है। जब रोगी को बिना किसी कारण भय उत्पन्न होता है तो उसे असंगत भय (Phobia) कहते हैं। यह कई प्रकार का होता है जैसे खुले स्थान का भय, बन्द स्थान का भय, ऊँचे स्थान का भय, भीड़ का भय, रोग का भय आदि।

5– विषाद (Depression):– साधारण प्रकार के विषाद में रोगी दुःखी, निराश तथा चिंतित रहता है। उसको सामान्य क्रियाओं में कोई लगाव नहीं रहता है। उसमें ध्यान केन्द्रित करने की कमी हो जाती है तथा अनिद्रा एवं सिर दर्द की शिकायत बनी रहती है। तीव्र विषाद की अवस्था में रोगी बहुत सी बातों को भूल जाता है, उसके विचारों का सम्बन्ध केवल कुछ ही विषयों से होता है। वह अपने को दोषी ठहराने लगता है। उसमें निर्णय करने की क्षमता का ह्रास हो जाता है। उसकी सभी क्रियायें शिथिल हो जाती हैं तथा हर कार्य में परेशानी महसूस करता है।

6– विरक्ति (Apathy):– जब सुख–दुःख से सम्बन्धित वेदना में व्यवधान उत्पन्न होता है तो इस अवस्था को विरक्ति कहते है। रोगी को सुख–दुःख का बिल्कुल आभास नहीं होता है। रोगी पर किसी प्रकार की घटना का कोई असर नहीं होता है। उसको अत्यन्त सगे व्यक्ति की मृत्यु भी प्रभावित नहीं करती है।

7– उल्लासोन्माद (Euphoria):– कभी–कभी रोगी अति प्रसन्नता के लक्षण प्रगट करता है। ये लक्षण बिना किसी कारण के प्रगट होते हैं। वह अत्यधिक सक्रिय तथा प्रफुल्ल दिखाई पड़ता है।

(VIII) व्यवहारिक विकृतियाँ (Behavioural Disorders)

मानसिक रोगों में निम्न व्यवहारिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

1– प्रतिगमन

(Regression)

सामान्य व्यक्ति भी कठिनाई एवं तनाव पूर्ण स्थिति में अपने बीते हुये आनन्दमयी समय की बात करते हैं तथा उसको अच्छा कहते हैं। परन्तु वर्तमान समय की कठिनाइयों से लड़ने की क्षमता भी साथ ही साथ अर्जित करते हैं। परन्तु मानसिक रोगी कभी–कभी अपनी विगत अवस्था में चले जाते हैं तथा उसी प्रकार का व्यवहार करने लगते हैं। प्रतिगमन की अवस्था में रोगी अपने उत्तरदायित्वों से छुटकारा पाता है तथा अतीत के सुखद दिनों की कल्पना में शान्ति एवं सुख अनुभव करता है।

2– आत्मकेन्द्रित

(Egocentric)

मानसिक विकृत व्यक्तियों में आत्मकेन्द्रीकरण के लक्षण पाये जाते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि वह स्वार्थी हो जाता है और अपने लक्ष्य की पूर्ति के लिए दूसरों की बिल्कुल चिन्ता नहीं करता है। वह दूसरों की मान–मर्यादा तथा सम्मान का घ्यान नहीं रखता। वह सामाजिक अन्तर्क्रिया को अपने पक्ष में मोड़ने का सदैव प्रयत्न करता है। वह जरा से स्वार्थ के कारण दूसरों को धोखा दे सकता है।

3– अस्थिरता

(Fluctuation)

मानसिक रूप से विकृत व्यक्तियों की क्रियायें एवं रूचियाँ स्थिर नहीं होती हैं, उनके व्यवहार में भी अस्थिरता पाई जाती हैं। ऐसे व्यक्ति अपने कार्यों एवं व्यवसायों को सदैव बदलते रहते हैं। इसी प्रकार उनके साथी तथा दोस्त भी बदलते रहते हैं।

4– बहुव्यक्तित्व

(Multiple Personality)

मनोविकृति व्यक्ति में विविध प्रकार के व्यक्तित्व पाये जाते हैं तथा उनमें किसी भी प्रकार की समानता नहीं होती है। यह व्यक्तित्व परिवर्तन जल्दी–जल्दी अथवा कुछ समयोपरान्त होता रहता है। प्रायः विभिन्न व्यक्तियों में विरोधाभास ही होता है। उदाहरण के लिए कभी वह एकान्तवासी, धर्म उपदेशक तथा ज्ञानी हो जाता है और कभी झगड़ालू, क्रोधी, आक्रामक तथा बेइमान हो जाता है।

5– अन्तर्दृष्टि का अभाव

(Lack of Insight)

प्रायः सभी मनोविकृत रोगियों में अन्तर्दृष्टि का अभाव होता है। वे अपनी स्थिति को समझ नहीं पाते हैं। जिसके कारण परिस्थिति के अनुसार व्यवहार नहीं कर पाते हैं अन्तर्दृष्टि की कमी के कारण रोगी अपने अनुभवों से लाभ नहीं उठा पाते तथा साधारण कार्यों को भी ठीक प्रकार से नहीं कर पाते हैं।

6– निद्रा भ्रमण

(Somnabulism)

कभी–कभी मानसिक रोगी निद्रा की अवस्था में विचरण करता है और इस प्रकार के निद्रा भ्रमण से अपनी अचेतन इच्छाओं की पूर्ति करता है। इस अवस्था में वह अनेकों कार्य करता है जिनका बाद में उसे एकदम ज्ञान नहीं रहता है, इस प्रकार का रोगी रात्रि में सोत–सोते चलकर ऐसे जटिल तथा कठिन कार्य करता है जिनको वह चेतन अवस्था में नहीं कर सकता है।

7– व्यवहार के प्रति अज्ञानता

मानसिक रोगी प्रायः यह समझता है कि दूसरे लोग व्यर्थ में ही उसके लिए परेशान हो रहे हैं तथा उसके व्यवहार की भर्त्सना करते हैं। उसको ज्ञात नहीं होता है कि उसका व्यवहार असामान्य है।

(IX) शारीरिक विकृतियाँ

(Physical Disorders)

शारीरिक व्याधियों में सिर दर्द, पेट की गड़बड़ी, बदहजमी, अनिद्रा, खून की कमी, लैंगिक व्याधियाँ, पैरों तथा जोडों में दर्द, चिड़चिड़ापन, दिल की धड़कन की अधिकता, बार–बार पेशाब आना, दुर्बलता, थकान, शारीरिक कष्ट, मांस पेशियों की अनियंत्रिता तथा अंग शून्यता मुख्य हैं।

उपर्लिखित विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मानसिक विकृति का कोई एक लक्षण न होकर लक्षणों का एक पुन्ज होता है तथा मानसिक विकृति की विविधता के साथ–साथ लक्षणों में भी विविधता आती है।

7

असामान्यता का वर्गीकरण

शारीरिक रोगों के वर्गीकरण के सिद्धान्त के समान मानसिक विकृतियों के संबंध में कोई ऐसा सिद्धान्त नहीं है जिसके आधार पर असामान्यता का वर्गीकरण किया जा सके। शारीरिक रोगों को व्याधिकीय कारणों, शारीरिक विच्छेदन रचना व्यवस्थाओं तथा विकृत प्रक्रियाओं के आधार पर वर्गीकृत करते हैं परन्तु व्यक्तित्व व्यवधानों को इन आधारों पर वर्गीकृत नहीं कर सकते हैं। व्यक्तित्व विकृतियाँ जो निश्चित रचनात्मक परिवर्तनों के द्वारा उत्पन्न होती हैं, जैसे जरामनोविदलता (Senile ementia), इनको मस्तिष्क में विध्नात्मक परिवर्तनों के आधार पर वर्गीकृत कर सकते हैं। परन्तु ऐसा भी संभव नहीं है क्योंकि आंगिक कारकों के महत्वपूर्ण होने पर भी ऐसे बहुत से कारक हैं जिनको इस आधार पर वर्णित नहीं किया जा सकता है। इसके लिए व्यक्ति के पूर्ण व्यक्तित्व एवं आंतरिक मानसिक जीवन के विषय में ज्ञान भी होना आवश्यक होता है। यही कारण है कि आज मानसिक विकृतियों के वर्गीकरण की अपेक्षा व्यक्ति की समस्या एवं उसके आंतरिक एवं बाह्य प्रभावों तथा व्यक्ति द्वारा प्रयोग में लाये गये समस्या समाधान के तरीकों पर अधिक महत्व दिया जाने लगा है तथा उन उपायों की खोज की जा रही है जिनसे सामाजिक समायोजन एवं जीवन में संतोष प्राप्त हो सके।

वर्गीकरण

विवरण की दृष्टि से मानसिक विकृतियों का वर्गीकरण आवश्यक प्रतीत होता है। लेकिन निश्चित वर्गीकरण करना मनमानी होगी, क्योंकि उपचार कार्य रोगी का किया जाता है न कि रोग का। उपचार की दृष्टि से मानसिक रोगों को दो वर्गों में विभाजित किया जा सकता है: (1) वे मानसिक विकृतियाँ जिनमें विषज या संरचनात्मक (Structural) परिवर्तन हो जाते हैं। (2) वे विकृतियाँ जिनमें ये लक्षण नहीं होते हैं और उनकी उत्पत्ति व्यक्तित्व विशेषता के आधार पर होती है। इसमें कोई स्नायुविक अथवा शारीरिक व्यवधान नहीं उत्पन्न होता है। इस प्रकार की विकृतियों को मनोजन्य (Psychogenic) विकृतियाँ कहते हैं। यह

एक प्रकार का व्यवहार होता है जो व्यक्तित्व की आंतरिक आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए सीखा जाता है। लेकिन ऐसा व्यवहार अवांछनीय, असमायोजित तथा अव्यवहारिक होता है। इस प्रकार आंगिक एवं मनोजन्य दो प्रकार की मनोविकृतियाँ होती हैं परन्तु यह नहीं भूलना चाहिए कि व्यक्ति एक पूर्ण इकाई है। उसका शरीर व मन पृथक न होकर एक इकाई के रूप में कार्य करता है।

अमेरिकन मनोविकार चिकित्सा शास्त्र के अनुसार

अमेरिकन मनोविकार चिकित्सा शास्त्र के अनुसार असामान्य व्यवहार निम्न प्रकार के होते हैं–

1– **मानसिक मंदता** (Mental retardation) :

सीमावर्ती मानसिक मंदता (Border line)
मंद मानसिक मंदता (Mild)
सम मानसिक मंदता (Moderate)
गंभीर मानसिक मंदता (Severe)
अति मानसिक मंदता (Profound)

2– **आंगिक मस्तिष्क संलक्षण** (Syndrome) :

वृद्धावस्था (Senile) अथवा
पूर्ण वृद्धावस्था की मनोविदलता
मद्यपान संबंधी मनोविकृति (Alcoholic Psychosis)
मस्तिष्क संक्रमण संबंधी मनोविदलता
(Psychosis associated with Intracranial infection)
अन्य मस्तिष्क दशाओं की मनोविकृति
(Psychosis associated with other cerebral conditions)
अन्य शारीरिक दशाओं संबंधी मनोविकृति
(Psychosis associated with other physical conditions)

3– **पूर्व अंकित शारीरिक दशाओं के अतिरिक्त कारणों से उत्पन्न मनोविकृतियाँ मनोविदलता** (Schizophrenia)

1–सामान्य प्रकार (Simple)
2–मनोकुंठात्मक (Hebephrenic)
3–समन्वय ह्रासात्मक (Catatonic)
4–स्थिर भ्रमात्मक (Paranoid)
5–अतिमनोविदलनात्मक उपाख्यान (Acute Schizophrenic episode)

प्रमुख भावात्मक विकृतियाँ (प्रभावात्मक मनोविकृतियाँ) (Major affective disordrs, Affective Psychosis)

1– अन्तर्मुखी विषाद (Involutional Melancholia)

2– उन्मत विषादात्मक रोग (उन्मत्त प्रकार) (Manic Depressive Illness)

3– उन्मत्त विषादात्मक रोग (विषादात्मक प्रकार) (Depressive type)

4– उन्मत्त विषादात्मक रोग (चक्रीय प्रकार) (Circular type)

5– अन्य प्रमुख भावात्मक विकृतियाँ

स्थित व्यामोहात्मक स्थिति (Paranoid state)

स्थिर व्यामोह (Paranoia)

अन्तर्मुखी स्थिर व्यामोहात्मक स्थिति (Involutional Paranoid State)

अन्य स्थिर व्यामोहात्मक स्थितियां (Other Paranoid States)

अन्य मनोविकृतियाँ (Other Psychoses)

मनोजन्य विषादात्मक प्रतिक्रिया (Psychotic Depressive reactions)

प्रतिक्रियात्मक भ्रम (Reactive Confusion)

तीव्र स्थिर व्यामोहात्मक प्रतिक्रिया (Acute paranoid reaction)

अविशेषीकृत प्रतिक्रियात्मक मनोविकृति (Unspacified reactive psychosis)

4– **मनोस्नायु विकृतियाँ** (Psychoneuroses)

चिंता मनोस्नायु विकृति (Anxiety neurosis)

उन्मादात्मक मनोस्नायुविकृति (Hysterical neurosis)

विघटानात्मक प्रकार (Dissociative)

अकारण भय (Phobia)

वाह्य विचार वाह्य क्रियात्मक स्नायु विकृति (Obsessive-compulsive neurosis)

विषादात्मक मनोस्नायुविकृति
(Depressive Neurosis)
मनोदौर्बल्यता (Neurasthenia)
अव्यक्तिकरण मनोस्नायुविकृति
(Depersonalization neurosis)
रोग भय मनोस्नायु विकृति
(Hypochondrial Neurosis)
अन्य मनोस्नायु विकृतियाँ
(Other Neuroses)

5– व्यक्तित्व विकृतियाँ तथा अन्य अमनोविकारात्मक मानसिक विकृतियाँ
(Personality Disorders & certain other Non-psychotic mental disorders)

व्यक्तित्व विकृतियां
स्थिर व्यामोहात्मक व्यक्तित्व
(Paranoid personality)
साइक्लोथमिक व्यक्तित्व
(Cyclothymic Personality)
मनोविदलनात्मक व्यक्तित्व
(Schizoid Personality)
विस्फोटात्मक व्यक्तित्व
(Explosive Personality)
वाध्य विचार वाध्य क्रियात्मक व्यक्तित्व
उन्मादात्मक व्यक्तित्व, दुर्बल्यात्मक व्यक्तित्व,
असामाजिक व्यक्तित्व, निष्क्रियात्मक–उग्रात्मक
व्यक्तित्व तथा अपूर्ण व्यक्तित्व
लैंगिक विचलन
(Sexual deviations)
समलैंगिकता
फैटेशिज्म
पेडोफीलिया
प्रतिजातीय वस्त्राधारण आसक्ति
(Transvestitism)
प्रदर्शन वृत्ति (Exhibitionism)

वोयेरिजम (Voyeurism)
परपीड़न रति (Sadism)
स्वपीड़न रति (Mesochism)
अन्य विचलन
मध्यमान (Alcoholism)
घटना विशेष पर अत्यधिक मद्यपान
अत्यधिक मद्यपान का आदी
मद्यपान का आदी
अन्य (अविशेषीकृत) मद्यपान
औषधि निर्भरता (Drug dependence)
अफीम (अलकालाइड)
तत्संबधित विचलन
सेनथेटिक एनेलजेसिक्सक विद मारफइन प्रकार का प्रभाव
बारविट्रेट्स
अन्य सम्मोहक तथा पीड़ानिवारण औषधि ?
कोकीन
हशीश, मेरीहुना
मनो–उत्तेजक
विभ्रमात्मक
अन्य औषधि निर्भरता

6– मनोदैहिक विकृतियाँ

(Psychophysiological disorders)

मनोदैहिक त्वचा विकृति (Skin disorders)
मनोदैहिक पेशी का क्लीय विकृति
(Musculo skeletal Reaction)
मनोदैहिक स्वशन विकृति
(Respiratory Disorder)
मनोदैहिक ह्रदय वाहिका विकृति
(Cardio Vascular disorder)
मनोदैहिक रूधिर एवं लसीका विकृति
(Hemicard & Lymphatic Disorder)
मनोदैहिक जनन भ्रूण संबंधी विकृति
(Genito-Urinary disorder)

मनोदैहिक अन्तःस्रावी विकृति
(Endocrine Disorder)
विशेष ज्ञानेन्द्रियों से संबंधित मनोदैहिक विकृति
(Disorder of Organ of special sense)
अन्य मनोदैहिक विकृतियाँ

7– विशेष लक्षण (Special symptoms)

वाणी व्यवधान (Speech disturbance)
विशेष सीखने में व्यवधान
(Specific Learning disturbance)
स्पंदन (Tic)
अन्य मनोगत्यात्म विकृतियाँ
(Other psychomotor disorder)
निद्रा व्यवधान
भोजन संबंधी व्यवधान
विस्तर पर मूत्र त्याग करना (Enurosis)

8– परिस्थिति जन्य अस्थायी व्यवधान

(Transient Situational Disturbances)

शैशव कालीन समायोजन संबंधी प्रतिक्रियायें
वाल्यावस्था समायोजन संबंधी प्रतिक्रियायें
किशोरावस्था की समायोजन संबंधी प्रतिक्रियायें
प्रौढ़ावस्था की समायोजन संबंधी प्रतिक्रियायें
वृद्धावस्था की समायोजन संबंधी प्रतिक्रियायें

9– वाल्यावस्था एवं किशोरावस्था की व्यवहारिक विकृतियाँ

(Behaviour disorders of childhood & adolescents)

अतिसक्रियात्मक प्रतिक्रियायें (Hyper Kinetic Reaction)
प्रत्याहार प्रतिक्रियायें (Withdrawing Reaction)
अतिचिंतात्मक प्रतिक्रिया (Over anxious reaction)
भागने की प्रतिक्रिया (Runaway Reaction)
असामाजीकृत उग्रात्मक प्रतिक्रिया (Unsocialized Reaction)
सामूहिक बाल अपराधी प्रतिक्रिया (Group delinquent reaction)
अन्य प्रतिक्रियायें।

10– **मनोविकृतियाँ असंबंधित एवं अविशेषकृत दशायें**

(Conditions without manifest psychiatric disorder & nonspecific conditions)[1]

वैवाहिक कुसमायोजन, सामाजिक कुसमायोजन,

व्यवसायिक कुसमायोजन, असामाजिक व्यवहार

अन्य कुसमायोजन

कैमरन (Cameron) ने मानसिक विकृतियों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया है:–

(अ) मनोस्नायुविकृतियाँ (Neurosis)

1–चिंता प्रतिक्रियायें (Anxiety reaction)

2–असंगत भय प्रतिक्रियायें (Phobic reaction)

3–रूपान्तरित प्रतिक्रियायें (Conversion reaction)

4–मनोविच्छेदित प्रतिक्रियायें (Dissociative reaction)

5–वाह्य विचार वाह्य क्रिया प्रतिक्रियायें (obsessive compulsive reaction)

6–मनोस्नायुविक विषादात्मक प्रतिक्रियायें (Neurotic-depressive reaction)

(ब) मनोविकृतियाँ (Psychoses)

1–स्थिर व्यामोहात्मक प्रतिक्रियायें (Paranoid reaction)

2–मनोविकृत्यात्मक विषाद प्रतिक्रियायें (Psychotic-Depressive reaction)

3–उत्साह विषाद प्रतिक्रियायें (Manic depressive reaction)

4–मनोविदलनात्मक प्रतिक्रियायें (Schizophrenic reaction)

5–अन्तर्मुखी मनोविकृत्यात्मक प्रतिक्रियायें (Involutional Psychotic Reacton)

(स) अन्य मुख्य विकृतियाँ (Other Major Disorders)

1–व्यक्तित्व विकृतियाँ (Personality disorder)

2–मनोदैहिक विकृतियाँ (Psychosomatic disorder)

3–चारित्रिक विकृतियाँ (Character disorder)

---

1. कैमरन, नारमन — पर्सनालिटी डेवलपमेंट एण्ड साइको पैथालोजी ए डायनमिक एप्रोच 1967, पृ0 17

असामान्यता के प्रकार

(1) मनोविकृतियाँ

(2) मनोस्नायुविकृतियाँ

कार्यात्मक (मानसिक क्रियाओं की गड़बड़ी) | संरचनात्मक (आंगिक परिवर्तन) | चिंतात्मक स्थिति | क्षोभोन्माद | मनादौर्बल्यता | वाघ्यविचार वाध्य क्रिया | अकारण भय

आंगिक विषज विकृतियाँ | उपदंषजन्य तथा मद्यपान संबंधी विकृतियाँ | जरामनोभ्रम

साधारण | रूपान्तरित | स्थिरीकृत

मनोविदलता | उत्साह विषाद | अन्तर्मुखी विषाद | स्थिर व्यामोह

सरल | मनोकुंठात्मक | समन्वय ह्रासात्मक | स्थिर व्यामो–हात्मक

उत्साह | विषाद | दण्ड के व्यामोह | ईर्ष्या का व्यामोह | रोग का व्यामोह | मुकदमेबाजी

मंद उत्साह | तीव्र उत्साह | उन्मत उत्साह | सरल | तीव्र | विमूढ़ता

(क्रमशः)

(3)
मनोदैहिक विकृतियाँ

1—मनोदैहिक त्वचा विकृति
2—मनोदैहिक पेशीकांकलीय विकृति
3—मनोदैहिक हृदयवाहिक विकृति
4—मनोदैहिक आमाशयान्त्र विकृति
5—मनोदैहिक श्वसन् विकार
6—मनोदैहिक रुधिर व लसीका विकृति
7—मनोदैहिक जननमूत्र सम्बन्धी विकृति
8—मनोदैहिक अन्तःस्रावी विकृति
9—मनोदैहिक स्नायुमण्डल विकार
10—विशेष ज्ञानेन्द्रियों से सम्बन्धित विकृतियाँ

(4)
लैंगिक विकृतियाँ

1—हस्तमैथुन
2—समलैंगिता
3—मुखालिंग सेवन
4—गुदालिंग सेवन
5—परपीड़न रति
6—स्वपीड़न रति
7—स्पर्श आसक्ति
8—नग्नता दर्शन आसक्ति
9—प्रदर्शन प्रवृत्ति
10—प्रतिजातीय वस्त्राधारण आसक्ति
11—शिशु कामुकता
12—पशु कामुकता
13—आक्रामता एवं अतिकामुकता

(5)
व्यक्तित्व विघटन

आक्रामक   अपर्याप्त   रचनात्मक

1—चोरी उन्माद (Kleptomania)
2—मिथ्या भाषी
3—ठगी
4—झगड़ालू
5—नैतिक अपराधी
6—ज्ञानहीन

(6)
मानसिक मंदता

जड़   मूढ़   मूर्ख

(II) मनोविकृतियाँ
(Psychoses)

1—मनोविकृति का प्रत्यय

मनोविकृति मानसिक विकार की गंभीर अवस्था है जिसमें व्यक्ति अपने भी सामाजिक सम्बन्धों को तिरस्कृत कर देता है। उसका जीवन बिल्कुल अस्त—व्यस्त एवं विघटित हो जाता है। उसको वाह्य एवं आंतरिक दोनों प्रकार के पर्यावरण के प्रति ज्ञान नहीं रहता है। अतः मनोविकृत व्यक्ति उसे कहते हैं जो पागल होता है। ऐसे व्यक्ति को अपने कार्यों के प्रति उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है क्योंकि उसमें इतनी मानसिक विकृति हो जाती है कि उसे किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है। उसको चिकित्सालय में भर्ती करने की अत्यन्त आवश्यकता होती है। रोगी का व्यवहार अत्यन्त असंगत एवं हास्याप्रद होता है। वह न तो अपनी भावनाओं पर नियन्त्रण रख पाता है और न ही अपने आंगिक क्रियाओं पर। उसको अपने शारीरिक कष्टों के प्रति भी कोई ज्ञान नहीं होता है। उसका व्यवहार इतना विचित्र होता है, उसके विश्वास इतने व्यामोहित होते हैं तथा उसके संवेग इतने विघटित होते हैं कि एक सामान्य व्यक्ति भी जिसको मनोविकार का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है, उसको देखकर मनोरोगी घोषित कर देता है।

मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त द्वारा मनोविकृत व्यक्ति को सामान्य एवं अन्य व्यवहारिक विकृतियों से पृथक कर सकते हैं। इन रोगियों में इदम्, अंह तथा पराहं (Id Ego and Superego) में संतुलन नहीं होता हैं। इदम् जो पूर्व दमित कर दिया गया होता है वह अपने बंधनों को तोड़कर प्रत्यक्ष रूप में अपनी संतुष्टि का प्रयत्न करता है। मनोविकृतात्मक संधर्ष में अहम् भी इदम् से समझौता करने उसकी सहायता करने लगता है। इस प्रकार इदम् अत्यन्त सरल होकर वास्तविकता का खण्डन कर देता है। यद्यपि इदम् अप्रत्यक्ष रूप से कार्य करता है परन्तु वे तरीके सामाजिक रूप से अस्वीकृत होते हैं। पराहं भी प्रवाहित हो जाता है। उसमें प्रतिगमन होता है जिससे व्यवहार विचित्र लगता है।

सामान्य तथा मनोविकृति में निम्न चार्ट द्वारा अन्तर स्पष्ट कर सकते हैः—

	आंतरिक संघर्ष की प्रकृति	प्रदर्शित व्यवहार की सामाजिक प्रकृति	प्रतिगमन का अंश	मूल आवश्यकताओं एवं प्रेम मे सबन्ध	संघर्ष का समा–धान एवं परिणाम
	1	2	3	4	5
मनोविकृति	इदम्, अहं तथा पराहं व वास्तविकता में अत्यन्त असम्बन्ध एवं असहयोग एवं असंतुलन इदम् की अपेक्षा यह अत्यन्त शक्तिहीन तथा कमजोर होता है उसका वास्त–विकता से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है, पराहम् प्रक्षेपित होता है एवं उसका	ज्ञानात्मक तथा गत्यात्मक दोनों प्रकार के क्षेत्रों में सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहार प्रदर्शित होता है इदम् मूल प्रवृतियाँ छिपे रूप में शक्तिशाली होकर कार्य करती हैं।	प्रतिगमन की कोई सीमा नहीं होती है वह साधारण प्रतिगमन से लेकर शैशवावस्था के प्रकार का व्यवहार करता है।	उद्देश्यहीन तथा अत्यन्त उभयामुखी	ज्ञानात्मक तथा गत्यात्मक क्षेत्रों में विषम लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

	कार्य अहं ग्रहण कर लेता है।				
सामान्य	इदम्, अहं पराहम् तथा वास्तविकता में सहयोगिक संतुलन	सभी क्षेत्रों में व्यवहार रचनात्मक एवं सामाजिक रूप से स्वीकृत होता है।	प्रतिगमन नहीं होता है।	पूर्व उभयामुखी, कुछ आवश्यकतायें संतुष्ट कर दी जाती हैं तथा अन्य आवश्यकताओं का परिशोधन कर दिया जाता है।	संघर्ष नहीं होता है।

सामान्य तथा मनोविकृत व्यक्तित्व संरचना का रेखाचित्र द्वारा प्रदर्शन[2]

सामान्य तथा मनोविकृत व्यक्तित्व में निम्न प्रकार से अन्तर्भेद कर सकते हैं:–

(चिह्नों का स्थायी स्पष्टीकरण)

—><— सहयोगिक संतुलन

—> <— असहयोगिक संतुलन

बड़ा तीर समग्र रूप से पर्यावरण के साथ सापेक्षित संतुलित व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है।

छोटा तीर व्यक्तित्व के अन्तर्गत ही सापेक्षित संतुलन सम्बोधित करता है।

....—> सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार

– + – + – + – + – + —> अस्वीकृत लेकिन छदम्वेष

एस0 ई0	=	सुपर इगो (पराहम्)
सी0	=	कागनेटिव (ज्ञानात्मक)
एम0	=	मोटर (गत्यात्मक)
	=	अहं का ज्ञानात्मक एवं गत्यात्मक पक्ष

(चित्र बनेगा)

साधारण व्यक्तित्व

(चित्र बनेगा)

मनोविकृत व्यक्तित्व

2. ब्राऊन, जे0 एफ0 — दि साइकोडायनमिक्स आफ एबनार्मल बिहैवियर, मैकग्राहिल बुक कं0 न्यूयार्क, 1940, पृ0 302

2—मनोविकृति के लक्षण
(Symptoms of Psychoses)

मनोविकृत रोगी का व्यवहार अत्यन्त अंसगत तथा अवास्तविक होता है। उसका वास्तविकता से कोई सम्बन्ध नहीं होता है। रोगी अपनी क्रियाओं एवं संवेगों पर नियन्त्रण न रख पाने के कारण विचित्र दिखाई देता है। सामान्यतः मनोविकृत रोगी के लक्षण स्पष्ट होते है परन्तु यह आवश्यक नहीं है कि निम्न सभी लक्षण अवश्य ही प्रकट हों।

(1) व्यामोह (Delusions) : मनोविकृत रोगी व्यामोह से पीड़ित है। उसमें अनेकों तथ्यों एवं कारको के प्रति मिथ्या विश्वास होता है। चाहे जितना तर्क एवं कारण मिथ्या विश्वास के विरोध में प्रस्तुत किया जाय परन्तु यह तर्कों को अस्वीकृत कर देता है। तभी तो वह अपने को महान दार्शनिक, वैज्ञानिक, समाज सुधारक ईश्वर का अवतार आदि समझता है, और कभी यह समझने लगता है कि उसके विरोध में दुश्मन जाल बिछा रहे हैं, तथा धोखा देने का प्रबन्ध कर रहे हैं। वह कभी--कभी अपने को अनेक बीमारियों से पीड़ित समझता है। कभी वह समझता है कि उसने अनेक पाप किये हैं, जिनको किसी भी प्रकार क्षमा नहीं किया जा सकता है।

(2) विभ्रम (Hallucination) : गम्भीर मनोविकृति में रोगी को विभ्रम होने लगते हैं। बिना किसी वस्तु अथवा पदार्थ के होने पर भी उसको प्रत्यक्षीकरण होता है, आवाज न होने पर भी आवाज सुनाई देती है, गन्ध न होने पर भी गन्ध ा का अनुभव होता है।

(3) असंगत व्यवहार : रोगी को अपने व्यवहार के प्रति कोई ज्ञान नहीं होता है। वह वास्तविकता नहीं समझता। इदम् शक्तिशाली होने के कारण असामाजिक एवं अस्वीकृत व्यवहार करता है।

(4) असंगत भाषा : रोगी के वाक्यों का कोई अर्थ नहीं होता है। उसके वाक्यों में कोई तारतम्यता नहीं होतीं है। शब्द भी स्पष्ट नहीं होते हैं।

(5) विचारों की अस्पष्टता : रोगी अपने विचार स्पष्ट करने में असमर्थ होता है। उसको ज्ञान नहीं होता है कि वह क्या कहना चाहता है तथा क्या कह रहा है।

(6) आत्म नियन्त्रण का अभाव : रोगी में आत्म नियन्त्रण की क्षमता का ह्रास हो जाता है। किसी भी प्रकार का कार्य वह कर सकता है। अतः उसे किसी कार्य के लिए दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

(7) उत्साह–विषाद : कभी–कभी रोगी अत्यन्त उत्साही हो जाता है। वह किसी न किसी कार्य में व्यस्त रहता है। परन्तु उसके कार्यों में कोई तारतम्यता नहीं होती है। वह अपने में ही अत्यन्त प्रसन्न एवं आनन्दित दिखता है। कभी–कभी इसके विपरीत अवस्था होती है। उसमे गत्यात्मक निष्क्रियता होती है। उसका किसी कार्य मे मन नहीं लगता है। वह मूर्खों के समान पड़ा रहता है।

(8) चिड़चिड़ापन : मनोविकृत रोगी के स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। उसके कार्यों में यदि कोई व्यवधान उत्पन्न होता है तो वह विरोधात्मक व्यवहार प्रदर्शित करता है।

(9) सन्देही : वह किसी भी व्यक्ति में विश्वास नहीं रखता है। हर स्थिति को वह संदेह की दृष्टि से देखता है।

(10) आत्म–हत्या की प्रवृत्ति : मनोविकृत रोगी में आत्महत्या की प्रवृत्ति पायी जाती है। अतः उसकी देख–रेख की अत्यन्त आवश्यकता होती है।

(11) अपने कार्य स्वयं हानिकारक : रोगी को अपने कार्यों का कोई ज्ञान नहीं होता है। वह क्या करता है, क्यों करता है, इत्यादि बातों का कोई ज्ञान नहीं होता है। उसके कार्य उसको स्वयं हानि पहुचाते है।

(12) आक्रामक प्रवृत्ति : रोगी मे हमला करने की प्रवृत्ति होती है। कभी–कभी रोगी जब व्यवधान अनुभव करता है तो आक्रमण कर देता है। बिना किसी कारण के भी यह स्थिति उत्पन्न हो जाती है।

(13) विनाशकारी प्रवृत्ति : मनोविकृत रोगी तोड़फोड़ करने लगता है। वह ध्वंसात्मक क्रिया को अपने व्यवहार का अंग बना लेता है।

(14) स्मृति ह्रास : रोगी मे अनेक प्रकार की स्मृति सम्बन्धी व्यवधान उत्पन्न हो जाते हैं। उसको संवेदना का अभाव भी हो जाता है।

2–मनोविकृति सम्बन्धी कुछ तथ्य
(Symptoms of Psychoses)

मनोविकृति के सम्बन्ध में निम्न बातें महत्वपूर्ण हैं :

1–उम्र

मनोविकृति प्रायः अधेड़ उम्र में घटित होती है। मनोविकृति के प्रकारो की विभिन्नता के साथ–साथ उम्र की भी भिन्नता होती है। मनोविदलता किशोरों तथा

युवकों में प्रायः पायी जाती है। उत्साह, विषाद मध्य आयु के व्यक्तियों में होता है। ये व्यक्ति प्रायः 40–45 वर्ष के मध्य के होते हैं। अन्तर्मुखी विषाद तथा स्थिर व्यामोह बुढापे में होता है। परन्तु यह उम्र का विभाजन पूर्ण सत्य नहीं है। इसके अपवाद भी होते हैं।

2—बुद्धि

मनोविकृति तथा बुद्धि का कोई विशेष सम्बन्ध नहीं है। परन्तु ऐसा पाया गया है कि मनोविदलता कम बुद्धि वाले व्यक्तियों में पायी जाती है जबकि उत्साह, विषाद तथा स्थिर व्यामोह अधिक बुद्धि वाले व्यक्तियों में होता है।

3—आर्थिक स्थिति

साधारण मनोविकृतियाँ सभी आर्थिक वर्गों के व्यक्तियों में पायी जाती हैं परन्तु जो व्यक्ति आर्थिक रूप से कमजोर होते हैं उनमें अधिक घटित होने की सम्भावना होती है।

4—सांस्कृतिक वातावरण

मनोविकृतियाँ प्रायः सभी संस्कृतियों में घटित होती है परन्तु कुछ संस्कृतियाँ जिनमें तनाव एवं संघर्ष अधिक पाया जाता है वहाँ पर अधिक घटित होती है।

5—वैवाहिक जीवन

वैवाहिक जीवन तथा मनोविकृतियों में अधिक सीमा तक अन्तर्सम्बन्ध होता है। विवाहितों में बहुत कम मनोविकृतियाँ पायी जाती हैं। विधुरों में इसका अनुपात अधिक होता है। कुवारों में विधुरों की अपेक्षा अधिक मनोविकृतियाँ होती हैं। तलाकशुदा व्यक्तियों में सबसे अधिक मनोविकृतयाँ पायी जाती हैं।

6—मनोविकृतियों का वर्गीकरण
(Classification of Psychoses)

मनोविकृतियाँ प्रायः दो प्रकार की होती हैः—

(1) कार्यात्मक (Functional)

(2) संरचनात्मक (Structural)

कार्यात्मक मनोविकृतियाँ वे होती हैं जिनमें मानसिक क्रियाओं में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। जिसके कारण उसका व्यवहार असामान्य हो जाता है। इन रोगियों में कोई शारीरिक रोग या आंगिक परिवर्तन नहीं होता है और रोगी में शारीरिक रोग स्पष्ट हो जाता है।

मनोविकृतियों का वर्गीकरण

कार्यात्मक संरचनात्मक

मनोविदलता स्थिरव्यामोह उत्साह–विषाद अन्तर्मुखी विषाद

आंगिक या विषज विकृतियाँ उपदंश तथा मद्यपान मनोविकृतियाँ जरामनोभ्रम

मनोविदलता
(Schizophrenia)

कार्यात्मक मनोविकृतियों में मनोविदलता एक व्यापक रोग है जिसमें रोगी का वास्तविकता से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है। उसको किसी भी प्रकार की घटनायें प्रभावित नहीं करती है। वह न तो किसी की मृत्यु पर दुःख प्रकट करता है न हीं सुख में आनन्दित होता है। उसमें सांवेगिक अनियंत्रण एवं विघटन होता है। उसको भ्रम, विभ्रम तथा व्यामोह होते हैं। उसकी विचार प्रक्रिया का विघटन हो जाता है, वाणी सम्बन्धी विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक तथा व्यवहारिक परिवर्तन होते है।

मनोविदलता भी कई प्रकार की होती है। सरल प्रकार की मनोविदलता में रोगी उदासीन एवं एकान्तवासी होता है। वह चिड़चिड़ा एवं चिंताशील हो जाता है। वह सामाजिक सम्पर्क नहीं रखता तथा अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह नहीं कर पाता है। विचार असंग, अस्त–व्यस्त तथा अनिश्चित एवं उद्देश्य रहित होते हैं। ये रोगी अधिक गम्भीर एवं खतरनाक नहीं होते हैं। मनोकुंठात्मक प्रकार की मनोविदलता में रोगी बेवफूकों की तरह हँसता तथा रोता है। उसकी प्रवृतियाँ बच्चों की सी हो जाती हैं। रोगी को महानता का व्यामोह तथा विभ्रम होने लगते हैं। वह कभी उत्तेजित हो जाता है और कभी विषादयुक्त। वह अपने पर नियंत्रण नहीं रखता है तथा कपडों की भी परवाह नहीं करता है। स्थिर व्यामोहात्मक प्रकार में रोगी की पहले आक्रामक प्रवृति होती है परन्तु बाद में वह उदासीन हो जाता है। उसको मिथ्या विश्वास हो जाता है। उसको व्यामोह, भ्रम तथा विभ्रम भी होते हैं। सामन्जस्य ह्रासात्मक (Catatonic) अवस्था में रोगी दो प्रकार का व्यवहार करता है। कभी वह जड़ (Stuporous) ऐसा व्यवहार करता

है और कभी उत्तेजित (Excited) हो जाता है। वह जड़ की स्थिति मे काफी समय तक एक ही मुद्रा एवं भाव बनाये रखता है। उत्तेजित अवस्था मे उत्तेजनापूर्वक बोलता है, आक्रमण करता है तथा लैंगिक क्रियाओं में बन्धन नहीं मानता।

स्थिर व्यामोह
(Paranoia)

स्थिर व्यामोह में रोगी को संदेह तथा मिथ्या विश्वास हो जाता है। इसमें रोगी का व्यक्तित्व उतना विघटित नहीं होता जितना कि मनोविदलता की स्थिति में विघटित होता है। रोगी का वास्तविकता से सम्बन्ध बना रहता है तथा बौद्धिक क्षमता का ह्रास नहीं होता है। रोगी मे कई प्रकार के व्यामोह होते हैं। महानता के व्यामोह में रोगी अपने को महापुरूष समाज सुधारक, वैज्ञानिक, राष्ट्रनिर्माता, महान पैगम्बर आदि समझता है। दण्ड के व्यामोह में रोगी समझता है कि लोग उसे हानि पहुंचाना चाहते हैं। उसके चारों ओर जाल बिछाया जा रहा है। अतः वह पुलिस सहायता का प्रबन्ध करता है। रोग के व्यामोह मे रोगी अपने को किसी विषम रोग से ग्रसित समझता है। वह अपने स्वास्थ्य के प्रति चिंतित रहता है। ईष्या के व्यामोह में लोगों से ईष्या करता है। किसी की मंत्रणा पर विश्वास नहीं करता है। वह साधारण सी बात का गूढ़ अर्थ लगाता है।

उत्साह विषाद
(Manic Depression)

उत्साह—विषाद की स्थिति में रोगी कभी उत्साही तथा कभी विषादी हो जाता है। उत्साह की अवस्था में उसमें विचारों की उड़ान (Flight of Ideas) पाई जाती है। वह अत्यधिक कार्यशील (Exeessive psychomotor activity) हो जाता है तथा उत्तेजना आदि लक्षण प्रकट हो जाते हैं। जब वह विषादी होता है उस समय मनोगत्यात्मक निष्क्रियता (Psychomotor inactivity) विचार विरोध (Thought inhibition) तथा विचार दुर्बलता पाई जाती है। रोगी मे दोनों अवस्थायें क्रमानुसार उत्पन्न होती हैं परन्तु समय का कोई निश्चयीकरण नहीं होता है। वह कुछ क्षणों से लेकर महीनों तक एक ही स्थिति में रह सकता है।

अन्तर्मुखी विषाद
(Involutional Melancholia)

अन्तर्मुखी विषाद मध्योत्तर अवस्था में उत्पन्न होता है इसमें वही लक्षण होते हैं जो उत्साह विषाद की विषादात्मक स्थिति में होते हैं। व्यक्ति अपने अतीत के अच्छे–बुरे कामों का लेखाजोखा करता है और जीवन से उदासीन हाकर विषादी हो जाता है। रोगी को लगता है कि उसने महान अपराध किये हैं, संसार के कष्टों व दु:खों के लिए वह उत्तरदायी है। उसको नींद नहीं आती है, सिर दर्द करता है तथा भूख नहीं लगती है। इस विकृति में बौद्धिक क्षमता में कमी नहीं आती है।

आंगिक या विषज विकृतियाँ
(Organic or Toxic Psychoses)

इस प्रकार की मनोविकृतियाँ शारीरिक अथवा विषज कारणों से उत्पन्न होती है। जब किसी शरीर के अंग में आघात पहुंचता है तो उससे मस्तिष्क की क्रियायें प्रभावित होती हैं और मनोविकृति की उत्पत्ति होती है।

सामान्य उपदंशज मनोविकृतियाँ
(General Paresis Psychoses)

ये यौन रोग (Veneral diseases) हैं जिसमें उपदंश (Syphilis) के प्रभाव के कारण मस्तिष्क में विकार आ जाता है। उपदंश के रोगाणु मस्तिष्क में प्रवेश कर जाते हैं जिससे मानसिक क्रियायें अस्त–व्यस्त हो जाती है।

जरा मनोभ्रम
(Senile Dementia)

जरावस्था में व्यक्ति पर विगत जीवन की विभिन्न घटनाओं का प्रभाव पड़ता है। उसमें स्मृति क्षीणता, संवेदनशीलता रूचिसंकीर्णता, स्वार्थपरता, चिंता, भय, आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। उसमें मानसिक व्यक्तित्व संबंधी व्यवधान बढ़ जाते हैं। कभी–कभी उसे नींद नहीं आती है तथा बेचैन रहता है। वह अश्लील बातें करता है।

मद्यसारिक मनोविकृतियाँ
(Alcoholic psychoses)

व्यक्ति में शराब के सेवन से कुछ ऐसे लक्षण उत्पन्न हो जाते है जो मनोविकृतियों में होते हैं। इनमें विकृत मादक अवस्था (Pathological intoxication), डिलिरियम ट्रैमन्स (Delirium Tremens), कार्साकोफ मनोविकृतियाँ

(Korsakofft Psychoses), तीव्र विभ्रम (Acute hallucination) व मद्‌यज विघटन (Alcoholic deterioration) आदि मनोविकृतियाँ आती हैं।

नशीली वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न मनोविकृतियाँ
(Psychoses due to drugs)

नशीली वस्तुओं के सेवन से कभी–कभी मनोविकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। इन नशीली वस्तुओं में अफीम (Morphine), कोकीन (Cocaine) संखिया आदि आती हैं। इन पदार्थों के सेवन से आत्म–संयम बिगड़ जाता है। वह चोरी, बेइमानी, दगावाजी करने लगता है। शरीर की त्वचा शुष्क हो जाती है भूख नहीं लगती, तथा नपुंसकता बढ़ती है।

3–मनोस्नायु विकृतियाँ
(Psychoneuroses)

जब हम असामान्य व्यवहार की बात करते हैं तो प्रायः हमारा तात्पर्य रोगी के अत्यन्त विषम, अद्‌भुत तथा विचित्र व्यवहार से होता है। परन्तु असामान्य का यह प्रत्यय वास्तविक अर्थ का बोध नहीं कराता क्योंकि ऐसे व्यक्तियों की संख्या बहुत अधिक है जो असामान्य तो हैं परन्तु उसमें विषम सामाजिक व मानसिक विघटन के तत्व प्रदर्शित नहीं होते। ऐसे व्यक्तियों में केवल असमायोजन की समस्या होती है जिसके कारण उनमें अत्यन्त चिन्ता के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह अवस्था मनोस्नायुविकृति की अवस्था होती है। मनोस्नायुविकृति के रोगी को चिकित्सालय में भर्ती करने की विशेष आवश्यकता नहीं होती है क्योंकि यह कोई रोग नहीं है बल्कि यह कुसमायोजन की समस्या का बोध कराता है जिसके कारण सामान्य जीवन यापन करने तथा सम्बन्धों को सफलता पूर्वक चलाने में कठिनाई होती है। इस समस्या के उत्पन्न होने पर व्यक्ति वास्तविकता का गलत मूल्यांकन करता है तथा समस्या का सामना करने के स्थान पर उससे बचने का प्रयत्न करता है। मनोस्नायुविकृति सम्बन्धी समस्यायें रोगी के लिए यद्यपि अत्यन्त कष्टकारी तथा दुखद होती हैं परन्तु इसका आभास उन्हीं व्यक्तियों को होता है जो उसके समीप के होते हैं। यही कारण है कि प्राचीन समय में मनोस्नायुविकृति पर उतना ध्यान नहीं दिया गया जितना कि मनोविकृतियों पर दिया गया। जहाँ भी कहीं इस सम्बन्ध में उल्लेख मिलता है उससे कोई तात्पर्य नहीं निकलता। नवीं शताब्दी में अरब चिकित्सक नजाबउद्दीन अनहैमद ने जनून (Janoon) शब्द का उपयोग किया था जो कि आज के विषादात्मक मनोस्नायुविकृति से मिलता हैं उन्होंने मुरेई साउडा (Murrae Souda) का

भी वर्णन किया जिसमें बाध्य विचार बाध्य क्रिया मनोस्नायुविकृति की विशेषतायें पायी जाती हैं।[3] मनोस्नयुविकृति पर 18वीं शताब्दी तक कोई ध्यान नहीं दिया गया तथा अपेक्षित ज्ञान का विकास नहीं हो पाया। लेकिन उन्माद (Hysteria) के सम्बन्ध में हजारों वर्ष का पुराना इतिहास है। ग्रीक ग्रन्थों में इसका विवरण मिलताा है। हिपोक्रेट्स का विचार था कि यह रोग केवल स्त्रियों से सम्बन्धित होता है। जब गर्भाशय शरीर में इधर उधर घूमता है तो रोग की उत्पत्ति होती है। उन्होंने विवाह को इसके दूर करने का उपचार बताया।

उन्माद तथा अन्य मनोस्नायुविक विकृतियों के इतिहास का सम्मोहन (Hypnosis) के इतिहास में अत्यधिक घनिष्ठ सम्बन्ध है। सम्मोहन को वैज्ञानिक क्षेत्र में लाने का श्रेय एनटन मेस्मर (Anton Mesmer) को है। जिन्होंने 18वीं शताब्दी में यह साहसिक परन्तु विवादास्पद कार्य किया। उन्होंने सम्मोहन करने वाली मशीन वेक्वेट (Baquet) का आविष्कार किया जिसमें आकर्षण होता था। सन् 1784 ई0 में विज्ञान से सम्बन्धित फ्रांस अकादमी ने एक 3 सदस्यों (बेन्जामिन फ्रेकलिन, लावोजियर तथा गुइलोटिन) की एक कमेटी नियुक्त की जिसका उद्देश्य इस मशीन से पशु आकर्षकता (Animal Magnatic) के तत्व की खोज करना था। इस कमेटी ने यह निष्कर्ष दिया कि सम्मोहन उपचार से शरीर को हानि पहुचती है। इससे इस उपचार प्रक्रिया को काफी आघात लगा। लेकिन अन्य वैज्ञानिकों के प्रयोगों ने इसकी ख्याति में सहायता की । सन् 1880 ई0 से पुनः दो रूप में इसका उपयोग शारीरिक व्याधियों के लिए किया जाने लगा।

सम्मोहन के पुनः उत्थान में दो वैज्ञानिकों का कार्य विशेष महत्वपपूर्ण रहा। जीन मारटिन चारकोट (Jean Martin Charcot) जिन्होंने सालपेटियरे स्कूल आफ हाईप्नोसिस की नींव डाली। इसके उपरान्त विरोधी समूह के हिपालाइटे वर्नहीन जिन्होंने नैन्सी स्कूल की आधार शिला रखी। चारकोट प्रसिद्ध मनोस्नायु चिकित्सक ने यह निष्कर्ष निकाला कि सम्मोहनात्मक कारक (Hypnotic pheomena) जैसे उन्माद की उत्पत्ति स्नायु संस्थान में परिवर्तन के परिणाम स्वरूप होती है। उनका विश्वास था कि उन्माद तथा सम्मोहन की सम्भावना स्नायुसंस्थान के विघटन से होती है। अतः दोनों असामान्यता को प्रदर्शित करते हैं। वर्नहीन ने तर्क प्रस्तुत किया कि सम्मोहन (Hypnosis) तथा उन्माद की उत्पत्ति कल्पना (Imagination) से होती है। उसमें कोई शारीरिक विकृति नहीं होती है। इस विरोधात्मक दृष्टिकोण का परिणाम यह हुआ कि

---

3. जिलवोर्ग, जी0 ऐण्ड हेनरी, जी0 — ए हिस्ट्री आफ मेडिकल साइकोलोजी, नार्टन, न्यूयार्क, 1941

विकृतियों में इसका स्थान समझा जाने लगा जिसको कि बाद में मनोस्नायुविकृति कहकर पुकारा गया। दूसरा महत्वपूर्ण परिणाम निकला कि मनोस्नायुविकृतियाँ शारीरिक कारको से नहीं बल्कि मनोवैज्ञानिक कारकों से उत्पन्न होती है।

सिगमॅड फ्रायड ने इस सन्दर्भ में विशेष महत्व का कार्य किया। उन्होंने उन्माद का उपचार प्रक्रिया में सम्मोहन का उपयोग किया किन्तु जब उन्हें विशेष सफलता नहीं मिली तो नवीन चिकित्सा प्रणाली का विकास किया जिसको मनोविश्लेषण कहकर पुकारा। व्यवहारवादी मनोवैज्ञानिकों का योगदान भी महत्वपूर्ण रहा। 17वीं तथा 18वीं शताब्दी में लाक, हाटले, तथा वेन्थम व्यवहारवादी दृष्टिकोण के प्रमुख समर्थक थे। 19वीं शताब्दी तथा 20वीं शताब्दी में डारविन, डेवी, वेखटखे ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। पावलो ने प्रयोगों द्वारा मनोस्नायुविकृति का व्यवहारवादी दृष्टिकोण की पुष्टि की । जे0 वी0 वाट्सन ने असंगत भय (Phobia) पर अनेकों प्रयोग किये जिन्होंने प्रत्यावर्तन (Conditioning) द्वारा यह सिद्ध किया कि त्रुटिपूर्ण सीखने की प्रक्रिया के कारण मनोस्नायुविकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। जोन्स ने बाद में यह प्रदर्शित किया कि असंगत भय को व्यवहार संसोधन उपागम के द्वारा दूर किया जा सकता है। नकारात्मक प्रत्यावर्तन की प्रक्रिया का उपयोग करके भय को दूर किया जा सकता है।

1– मनोस्नायुविकृति की परिभाषा

मनोस्नायुविक व्यवहार में वास्तविकता से सम्बन्ध विच्छेद नहीं होता है। व्यक्ति में आंतरिक संघर्ष के परिणामस्वरूप दुखदायी स्थिति उत्पन्न हो जाती है। रोगी चाहे जितना विषादी तथा चिन्तित हो, उसमें ज्ञानात्मक ह्रास नहीं होता है। मनोस्नायुविकृत व्यक्ति अत्यन्त तनावपूर्ण स्थिति में सामान्य व्यक्ति के समान ही व्यवहारिक लक्षण प्रदर्शित करता है।[4]

मनोस्नायुविकृति एक चक्रीय प्रक्रिया है जिसमें व्यक्ति (1) हीन भावना विकसित करता है जिसके कारण उसकी दिन प्रतिदिन की समस्यायें विषम रूप धारण करके चुनौती देने वाली लगती हैं। (2) वह कष्टमयी तथा तनावपूर्ण परिस्थिति को विभिन्न सुरक्षात्मक प्रयत्नों से दूर करने का प्रयत्न करता है परन्तु वे सुरक्षात्मक यन्त्र वास्तविकता को विकृत कर देते हैं। वह प्रत्यक्ष रूप से सामना करने का प्रयास नहीं करता है। (3) वह अन्तर्दृष्टि की कमी प्रदर्शित करता है। उसका व्यवहार कठोर होता है। उसमें आत्म अवमूल्यन पाया जाता है। वह कोई

---

4. नाथान पीटर, ई0 तथा सन्ड्रा एल0 हेरिस — साइकोपैथालोजी ऐण्ड सोसाइटी, मैकग्राहिल बुक कं0, न्यूयार्क, 1975, पृ0 259

वैकल्पिक व्यवहार प्रदर्शित नहीं कर सकता। (4) उसमें अहमन्यता (Egocentric) के लक्षण होते हैं। जिसके कारण संतोषप्रद अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध स्थापित करने तथा बनाये रखने में कठिनाई होती है। (5) समस्याओं का सामना न करने की सामर्थ्य के कारण उसमें ग्लानि की भावना उत्पन्न हो जाती है तथा असंतोष व अप्रसन्नता के लक्षण विकसित हो जाते हैं।[5] मनोस्नायुविकृति व्यवहार में वास्तविकता से सम्बद्ध रहता है। रोगी को केवल आंतरिक कठिनाइयाँ महसूस होती है।

प्रारम्भ मे मनोस्नायुविकृति का कारण शारीरिक दोष समझा जाता था। विलियम कुलेन (William Cullen) ने जब मनोस्नायुविकृति शब्द का उपयोग 18वीं शताब्दी में किया उस समय उनका विचार था कि शारीरिक गतिरोध के कारण यह रोग उत्पन्न हो जाता है।[6]

ब्राउन के अनुसार मनोस्नायुविकृति से हमारा तात्पर्य असामान्य, ज्ञानात्मक, सांवेगिक तथा गत्यात्मक प्रक्रियाओं से है जो व्यक्ति को केवल आंशिक रूप से असमर्थ बनाते हैं और मूल लक्षण चिन्ता से सम्बन्धित होते हैं।[7]

हार्नी के अनुसार व्यक्ति की बहुत सी प्रतिक्रियायें जिनको हम मनोस्नायु के लक्षण कहते हैं वे दूसरी संस्कृति अथवा संस्कृतियों में सामान्य मानी जाती है तथा जिस व्यवहार को हम सामान्य कहते हैं वह व्यवहार दूसरे समाज में मनोंस्नायुविकृत समझा जाता है। अतः मनोस्नायुविकृत व्यक्ति वह जो अपनी संस्कृति के स्वीकृत प्रतिमानों की चिन्ता के कारण विचलित हो जाता है तथा इस विचलन के कारण एकाकी व हीन अनुभव करता है।[8]

क्रो लेस्टर डी0 के अनुसार मनोस्नायुविकृति कोई रोग नहीं है बल्कि असमायोजन की एक सीमा को प्रदर्शित करता है जो व्यक्ति के व्यवहार को

---

5. कोलेमैन, जेम्स सी — उल्लिखित, पृ0 218
6. सारासन, इरविन जी0 — अबनार्मल साइकोलोजी; दि प्राबलम आफ माल एड्डाप्टिव बिहैवियर, एप्लेटन सेंचुरी क्रेफ्टस्, न्यूयार्क, 1972 प्र0 255
7. ब्राउन, जे0 एफ0 — दि साइकोडायनामिक्स आफ अवनार्मल विहैवियर मैकग्राहिल बुक कं0, न्यूयार्क, 1940, पृ0 351
8. हार्नी, कैसेस — दि न्यूरोटिक पर्सनाल्टी आफ अवर टाइम, 1937 कोटेड वाई ब्राउन जे0 एफ0, उपर्लिखित पृ0 35

प्रभावित कर सकता है तथा उसको सामान्य जीवन यापन तथा अपने साथियों के साथ सम्बन्धों को सफलता पूर्वक निभाने में कठिनाई उत्पन्न कर देता है।[9]

कैटेल ऐण्ड स्क्रीयर के अनुसार मनोस्नायुविकृत एक ऐसा व्यक्ति है जिसमें आंतरिक तथा वाह्य कठिनाइयों एवं क्षमताओं की अधिकता होती है। इससे प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी सीमा तक पीड़ित होता है।[10]

फ्रायड के विचार से मनोस्नायुविकृति में इदम् (Id) तथा पराहम् (Super ego) में संघर्ष होता है।[11]

फेनियल के अनुसार मनोस्नायुविकृति एक मनोस्नायुविक अन्तर्द्वन्द है जिसमें विचार अभिव्यक्ति की इच्छा की प्रवृत्ति तथा अभिव्यक्ति को रोकने की इच्छा की प्रवृत्ति समान रूप से होती है।[12]

उपर्लिखित परिभाषाओं के विश्लेषण से ज्ञात होता है कि मनोस्नायुविकृति कोई विषम रोग नहीं है जिसमें रोगी को चिकित्सालय में भर्ती किया जाय बल्कि यह एक असमायोजन की समस्या है जिसमें व्यक्ति अत्यन्त असंतोष की भावना से ग्रसित होता है और चिन्ता व भग्नाशा के लक्षण अधिक मात्रा में प्रदर्शित होने लगते हैं।

2—घटनाक्रम

मनोस्नायुविकृति एक सामान्य मानसिक विकृति है जिसमें पीड़ित व्यक्ति को चिकित्सालय में भर्ती की बहुत कम आवश्यकता होती है। इसके अतिरिक्त इस विकृति के सम्बन्ध में अधिकांश व्यक्ति परिचित नहीं हैं। अतः यह कहना कि कितने व्यक्ति इस विकृति से पीड़ित हैं बहुत कठिन है। परन्तु ऐसा अनुमान लगाया गया है कि ग्रामीण क्षेत्रों में 5.2 % व्यक्ति इस विकृति से पीड़ित हैं जबकि शहरों में 27.1 % पीड़ित हैं।[13] इससे यह निष्कर्ष निकलता है कि नगरीकरण के साथ—साथ मनोस्नायुविकृति में भी बृद्धि होती है।

9.	क्रो, लेस्टर, डी0	साइकोलोजी आफ ह्यूमन एडजेस्टमेंट, आलफ्रेड ए नाफ, न्यूयार्क, 1967 पृ0 361
10.	कैटेल, आर0 वी0 तथा स्कीयर, आई0 एच0	दि मीनिग ऐण्ड मेजरमेंट आफ न्यूरोटिसिज्म ऐण्ड एक्जाइटी, रोनाल्ड, न्यूयार्क, 1961 पृ0 392
11.	हैटमैक्स एल0 तथा राबर्टसन गिवी	पैटनर्स आफ अवनार्मल बिहैवियर, आलमैन ऐण्ड वेकन, इंक, वास्टन, 1957 पृ0 198
12.	फेनियल, ओ0	साइकोएनालटिक थियरी आफ न्यूरोसिस, नार्टन, न्यूयार्क, 1945, पृ0 129
13.	नरोत्तम लाल	इक्सटेन्ट आफ दि प्राबुलम, स्पेशल इशू आन दि इनागरेशन आफ दि न्यू साईक्याट्रिक हास्पिटल, लखनऊ 1976

3—मनोस्नायुविकृति के लक्षण

मनोस्नायुविकृति का अर्थ प्रतिकूलित (Maladaptive) व्यवहार से होता है जिसमें चिंता तथा बचाव (Avoidance) की प्रवृति होती है। इस प्रकार की जीवन शैली (Life style) की दो विशेषतायें होती हैं।

(1) वास्तविकता का त्रुटिपूर्ण मूल्यांकन तथा समस्या का सामना करने के स्थान पर उससे बचाव का प्रयत्न। इसे मनोस्नायुविकृति केन्द्र (Neurotic Nucleus) कहते हैं।

(2) आत्म अवमूल्यन की प्रवृति को बनाये रखना। इसे मनोस्नायुविकृति विरोधाभास (Neurotic Paradox) कहते हैं।[14]

मनोस्नायुविकृति के निम्न प्रमुख लक्षण है :—

1—अयथेष्ठता तथा चिंता की भावनायें
(Feeling of inadequacies and anxiety)

मानसिक रोगों के निदानात्मक तथा सांख्कीय मैनुअल के अनुसार मनोस्नायुविकृति की चिंता प्रमुख विशेषता है। वह प्रत्यक्ष रूप से भी अनुभव एवं अभिव्यक्ति होती है तथा अचेतन रूप में रूपान्तरित स्थानापन्न (Displacement) तथा अन्य मनोवैज्ञानिक तरीकों से भी अभिव्यक्ति होती है। सामान्यतया इन रचनाओं से व्यक्तिगत कष्टकारी अनुभव के लक्षण प्रकट होते हैं जिनसे रोगी छुटकारा पाना चाहता है।[15] मनोस्नायुविकृत व्यक्ति अपने में कमियाँ अनुभव करता है। जिसके कारण उसको बहुत सी स्थितियाँ चुनौती देने वाली लगती हैं। इस धमकी के कारण वह दूसरों का सहारा चाहता है तथा प्रतिस्पर्धात्मक स्थिति से दूर भागता है फलतः चिन्ता उत्पन्न होती है। कभी—कभी यह चिन्ता विषम रूप ग्रहण कर लेती है परन्तु अधिकांशतः रोगी चिन्ता को कम करने के लिए मानसिक सुरक्षात्मक रचनाओं (Mental Defense Mechanism) का उपयोग करता है। मनोस्नायुविकृत चिन्ता कम नहीं हो पाती है क्योंकि रोगी को अपने व्यवहार की अतार्किकता का ज्ञान रहता हैं इसके साथ ही साथ भय तथा अन्तर्द्वन्द समय—समय पर शक्तिशाली प्रदर्शन करता है और वे सुरक्षात्मक यंत्रों की संरचना को तोड़ने की संभावना उत्पन्न कर देते हैं।

---

14. कोल मैन — जेम्स सी0 उल्लिखित, पृ0 218
15. अमेरिकन साइक्याट्रिक एसोसियेशन — डाइग्नोस्टिक ऐण्ड स्टैटिस्टिकल मैनुअल आफ मेंटल डिसआर्डर्स, वाशिंगटन डी0सी0, 1968, पृ0 20

2—कठिनाइयों का सामना करने के स्थान पर बचाव की प्रवृत्ति (Tendency to avoid instead of coping with the behavior)

उल्पे (Wolpe) के विचार से सभी मनोस्नायुविकृतियाँ सांवेगिक आदतों जो अकारण भय (Phobia) की प्रकृति की होती है, से उत्पन्न होती है। इसका तात्पर्य यह है कि मनोस्नायुविकृत व्यक्ति की जीवनशैली में दिन प्रतिदिन की समस्याओं को सुलझाने एवं सामना करने के स्थान पर बचाव (Avoidance) की आदत उत्पन्न हो जाती है।[16] इस प्रकार वह उपलब्धि में असफलता के कारण शारीरिक रोगों का सहारा लेता है। अकारण भय के कारण वह तनावपूर्ण स्थिति से दूर भागता हैं। इसके साथ ही साथ उसके विचार भी बचाव (Avoidance) की ओर अग्रसित एवं चालित हो जाते हें। वह यद्यपि परिस्थिति का सामना करना चाहता है परन्तु उसकी आंतरिक स्थिति परिवर्तित होने के कारण दूर भागने के लिए प्रेरित करती है। अक्षमता एवं चिन्ता से बचने के लिए वह बचाव पक्ष का तरीका अपनाता है। लेकिन इसका परिणाम यह होता है कि उसके अन्य समायोजित करने के तरीकों पर भी कुप्रभाव पड़ता है जिससे उसका सम्पूर्ण जीवन कष्टमय हो जाता है।

3—व्यवहार में कठोरता तथा अन्तर्दृष्टि की कमी (Rigidity and Lack of insight)

असहनीय वाह्य धमकी के कारण व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण तथा अन्य सूचनाओं का कार्यक्षेत्र संकुचित एवं संकीर्ण हो जाता है। उसको वास्तविकता का पूरा—पूरा ज्ञान नहीं हो पाता है। उसको न तो अपने व्यवहार का सुस्पष्ट अर्थ प्रकट हो पाता है और न ही दूसरे के व्यवहार को निष्पक्ष होकर समझने की क्षमता रखता है। यद्यपि वह अपनी कठिनाइयों को व्यक्त करता है परन्तु वह उनकी प्रकृति तथा कारणों के प्रति बहुत ही कम अन्तर्दृष्टि रखता है जिसके कारण आत्म अवमूल्यन की शैली बनाये रखता है। वह सोचता है कि सामाजिक समूहों में भाग लेने का भय एक अकारण भय है उसे इससे भयभीत नहीं होना चाहिए। परन्तु वह इस भय को दूर नहीं कर पाता है। उन परिस्थितियों में जहाँ वह चिन्ता दूर कर सकता है वहाँ पर भी ऐसा करने में असमर्थ होता है।

---

16. उल्पे, जे0, फार फोबिया ए हेयर आफ दि हाउन्ड, साइक्याट्रिकी टुडे, 1965, पृ0 37

4—अहमन्यता तथा विग्रहित अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध

(Egocentricity and disturbed interpersonal relations)

वाह्य दबाव का प्रभाव भी व्यक्ति के आत्म पर पड़ता है। वह अपने ही विचारों, भावनाओं में खोया रहता है जिसके कारण जीवन के संघर्षों का सामना एक सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक कठिनाई से कर पाता है। उसका मुख्य सम्बन्ध अपनी ही भावनाओं, आशाओं तथा समस्याओं से रहता है। उसको असुरक्षा की भावना इतना व्यथित करती है कि वह आत्म केन्द्रित हो जाता है तथा अहमन्यता की प्रवृति विकसित हो जाती है। वह आत्मकेन्द्रित होने के कारण दूसरे व्यक्तियों के प्रति उदासीन हो जाता है। वह सदैव यह चाहता है कि दूसरे उसकी सहायता करें तथा उसकी चिन्ता में भाग लें। वह अवास्तविक माँगों को भी प्रस्तुत करता है जिसके कारण दूसरे लोग उससे दूर भागने का प्रयास करते हैं।

5—अपराधी भावना तथा अप्रसन्नता

(Guilt and unhappiness)

प्रायः मनोस्नायुविकृत व्यक्ति में यह भावना होती है कि वह अपने उत्तरदायित्वों का निर्वाह न तो अपने प्रति उचित प्रकार से कर रहा है और न ही दूसरों के प्रति अपनी जिम्मेदारी को पूरा कर रहा है। समय–समय पर वह अपने अहमन्यता के परिणामों तथा स्वार्थी मागों का प्रत्यक्षीकरण करता है जिसके कारण अपराध की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह सोचता है कि उसने उत्तरदायित्वों का पूरा न करके अपने तथा दूसरों के प्रति अपराध किया है। अक्षमता, अयथेष्ठता, चिन्ता तथा आत्म अवमूल्सित जीवनशैली के कारण मनोस्नायुविक व्यक्ति प्रायः अप्रसन्न एवं दुखी रहता है।

6—शंका की भावना

(Feeling of suspicion)

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति अपने तथा दूसरों को शंका की दृष्टि से देखता है। वह साधारण सी बात का गूढ़ अर्थ लेता है तथा सामान्य क्रियाओं का अनेकानेक अर्थ लगाता है। उदाहरण के लिए वह देखता है कि दूसरे लोग उसके मकान के सामने बात कर रहे हैं तो वह अर्थ लगाता है कि वे उसको हानि पहुंचाने का प्रयन्त कर रहे हैं।

7—क्षमता और उपलब्धियों में अन्तर

(Difference in capacity and achievement)

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति में क्षमता तथा उपलब्धि में विरोधाभास होता है।

विकास के लिए परिस्थितियाँ अनुकूल होने पर भी व्यक्ति अनुत्पादक रहता है। प्रसन्न होने की सभी परिस्थितियों पर भी व्यक्ति प्रसन्नचित दिखाई नहीं देता है। एक महिला सुन्दर होने पर वह सोचती है कि वह पुरूषों को आकर्षित नहीं कर सकती है दूसरे शब्दों में मनोस्नायुविकृत व्यक्ति स्वयं अपने मार्ग में रोड़ा बन जाता है।

8—तनाव, अतिसंवदेनशीलता, थकान तथा अन्य शारीरिक कष्ट (Tension, extreme sensitivity, fatigue and other Physical pain)

मनोस्नायुविकृत व्यक्ति सदैव व्यर्थ की चिन्ताओं तथा असुरक्षा की भावनाओं के कारण तनावपूर्ण स्थिति में रहता है। उसमें संवेदनशीलता सामान्य व्यक्ति की अपेक्षा अधिक होती है तथा वह चिड़िचिड़ा हो जाता है। ऐसा व्यक्ति थका—थका लगता है। उसको स्वयं शारीरिक एवं मानसिक थकान का अनुभव होता है। उसको पेट दर्द, अपच, सिर दर्द तथा अन्य कष्ट सताते रहते हैं।

(3) मनोस्नायुविकृत विरोधाभास (Neurotic Paradox)

व्यक्ति सीखने तथा व्यवहार को परिवर्तन करने की क्षमता एवं शक्ति रखता है। परन्तु मनोस्नायुविकृत व्यक्ति अपनी दोषपूर्ण व्यवहारिक पद्धति को जानते हुये भी परिवर्तित नहीं कर पाता है। अतः प्रश्न उठता है कि वह क्यों आत्म अवमूल्यित जीवनशैली बनाये रखता है। इस प्रश्न को दो मूल प्रत्ययों के आधार पर समझा जा सकता है।

(1) आत्म अवमूल्यित जीवनशैली (बचाव) से तात्कालिक मुक्ति मिलती है। अर्थात व्यक्ति तनावपूर्ण स्थिति से बचकर तुरन्त आराम पाता है।

(2) अयथेष्ठ धमकी बनी रहती है। उदाहरण के लिए एक युवा व्यक्ति एक लड़की से प्यार करता है तथा दोनों आपस में विवाह करने की योजना बनाते है। परन्तु लड़की इसी बीच दूसरे व्यक्ति से प्यार करने लगती है तथा उसके साथ सम्बन्ध को तोड़ देती है। इस घटना के कारण उस युवा व्यक्ति में आत्म अवमूल्यन होता है। चिन्ता बढ़ती है तथा भग्नाषा उत्पन्न होती है। उसके व्यवहार में परिवर्तन आ जाता है। अब जब भी विरोधी लिंग के साथ सम्बन्ध होने लगता है तो उसमें चिन्ता एवं भग्नाषा उत्पन्न होने लगती है। उसमें अकारण भय उत्पन्न हो जाता है। इसको दुभीर्ति (Phobia) कहते है। क्योंकि ऐसे व्यक्ति में किसी प्रकार की अक्षमता उत्पन्न नहीं होती है परन्तु उसको इसका भय उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण अपने व्यवहार में परिवर्तन नहीं कर पाता है।

(4) मनोस्नायुविकृत व्यवहार के लक्षण

मनोस्नायुविक विकृति में चिन्ता एक प्रमुख लक्षण है। व्यक्ति सदैव चिंतित, शंकाकुल तथा भयग्रस्त रहता है। शीरीरिक व्याधियों में सरदर्द, पेट की गड़बड़ी, कब्ज, अनिद्रा, चकराहट, अवसाद, खून की कमी, लैंगिक व्याधि, बार–बार पेशाब आना, पावों तथा जोड़ों में दर्द, चिड़चिड़ापन, दिल धड़कने की अधितकता, आदि प्रमुख है। मनोस्नायुविकृत विकार के लक्षणों को निम्न चार्ट द्वारा स्पष्ट कर सकते है :–

मनोस्नायु विकार के प्रकार तथा उनके लक्षण

प्रतिक्रियायें	मुख्य लक्षण	मौलिक गत्यात्मकता
1–चिन्ता	अकारण चिन्ता, विचारों में चिंता की स्पष्टता, तीव्र चिंतित संवेग	दमन द्वारा आंतरिक व वाह्य चिंता का निराकारण, चिंता आत्मसुरक्षात्मक यंत्रों द्वारा नियंत्रित होती है।
2–मनोस्नायु दौबैल्य	दुर्बलता की भावना, थकान, उत्साह की कमी, शारीरिक कष्ट की शिकायत।	वह हतोत्साहित हो जाता है, असंतोषप्रद स्थिति से थकान महसूस करता है, उत्पन्न चिंता से आत्मरक्षा करता है।
3–उन्माद (हिस्टीरिया)	संवेदनात्मक व्यक्तिक्रम, गत्या–त्मक विकृतियाँ, अवयवीय प्रति–क्रियायें, मांसपेशियाँ की अनि–यंत्रित लयात्मक गति, अंग शून्यता	दबाव एवं तनावपूर्ण स्थिति से उत्पन्न चिंता से बीमार होने का बहाना करके बचना
4–अकारण भय (फोबिया)	अतार्किक भय जिसको कि रोगी अतार्किक समझता है परन्तु यदि वह ध्यान नहीं देता है तो चिंता उत्पन्न हो जाती है।	अकारण भय से अहं की रक्षा होती है क्योंकि ऐसा न करने से पूर्व निहित घटना के कारण ० में मानसिक संघर्ष होने लगता है। अतः संधर्ष को दूर करने के लिए भय उत्पन्न करने वाली स्थिति से पलायन करता है।

5—वाध्य विचार वाध्य क्रिया	बाध्यता मूलक विचार अथवा क्रियायें जिनको कि रोगी अता–र्किक समझता है परन्तु दूर नहीं कर सकता है।	सुरक्षात्मक प्रतिक्रियायें जो आंतरिक व वाह्य धमकियों से रक्षा करती हैं। वाध्यता मूलक विचार तथा क्रियायें सुरक्षात्मक रूप से कार्य करती हैं।
6—मनोस्ना–युविक अवसाद	निरुत्साह की भावना, हतोत्साह, आत्म अवमूल्यन, निराशा।	वाध्य व्यवधान के कारण अत्यन्त हतोत्साह, आत्मदंडित करने की भावना।

(5) मनोस्नायु विकार के कारण

इरिच फ्रोम का विचार है कि वर्तमान व्यक्ति अवसर, इच्छा तथा संघ की स्वतन्त्रता का लाभ उठाने के लिए सक्षम नहीं रह गया है जिसके कारण मनोस्नायु विकार उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे–जैसे वह सोचता है कि वर्तमान समाज में वह कितना अधिक दूसरों से पृथक है उतना ही और अधिक एकान्तवादी होता जाता है तथा अकेलापन महसूस करता है। परिणाम यह होता है कि वह एकता की मूल पूर्ण स्थिति में लौटना चाहता है लेकिन उसके लिए ऐसा कोई विकल्प नहीं रह जाता है। फलस्वरूप वह वर्तमान समाज में सम्मिलित होने के लिए अतार्किक तथा अवास्तविक तरीकों का सहारा लेता है।

थामस साज पहले विचारक हैं जिन्होंने मानसिक रोगों के चिकित्सकीय प्रारूप पर कुठाराघात किया। उनका विचार है कि मानसिक रोगों का कोई शारीरिक कारण नहीं है बल्कि वर्तमान जीवन की समस्याओं एवं परिस्थितियों से समायोजन न स्थापित होने के कारण ये विकार उत्पन्न हो जाते हैं। मनोस्नायुविक व्यवहार, नैतिक, वैधानिक तथा सामाजिक प्रतिमानों से विचलन है।

सामाजिक विघटन सांस्कृतिक संघर्ष तथा आर्थिक उतार–चढ़ाव तथा समान अन्य अवांछनीय तत्व मानसिक विकार उत्पन्न करते हैं। जीवन की सामान्य क्रियाओं में भी अनावश्यक गतिरोध, कार्य करने के सीमित अवसरों के कारण भविष्य की चिन्ता, आदि ऐसी परिस्थितियों से जीवन गुजारना पड़ रहा है जिससे कठोर मानसिक तनावों का सृजन होता है और व्यक्ति के मानसिक उत्पीड़न मे वृद्धि हो रही है।

आज का व्यक्ति परम्परागत मूल्यों एवं विश्वासों को संदिग्ध दृष्टि से देखता है। वह प्राचीनतम् स्वीकृत मान्यताओं को मानने के लिए तैयार नहीं है।

उसका वह तर्क वितर्क करता है। परन्तु मानव से संबंधित ज्ञान के क्षेत्र में वह उतनी उन्नति नहीं कर पाया है जितनी कि भैतिक क्षेत्र में। व्यक्ति के लिए प्रेम, मानवीय मूल्यों तथा नैतिकता की कितनी आवश्यकता है, वह नहीं जान सका है। साराशं में, मनुष्य की प्रकृति के संबंध में ज्ञान हमारा बहुत सीमित है जिसके परिणाम स्वरूप हम चारों ओर चिंतित, अप्रसन्न, आकुल तवा भयातुर (मानसिक अस्वस्थ) व्यक्तियों को पातें हैं।

मनोस्नायुविकृति के लिए मुख्यतः 3 कारक उत्तरदायी समझे जातें है–

1–जैविक कारक (Biological Factors)

2–मनोवैज्ञानिक कारक (Psychological Factors)

3–सामाजिक सांस्कृतिक कारक (Social and cultural Factors)

1 जैविक कारक

विभिन्न अध्ययनों से यह सिद्ध हो गया है कि जिन परिवारों में मनोस्नायुविकृति का इतिहास होता है उनमें यह अधिक पाया जाता है। परन्तु इसका यह भी कारण होता है कि बालक में उचित सांवेगिकता एवं समस्या सुलझाने की शक्ति का विकास इन परिवारों में नहीं हो पाता है जिससे इसकी घटना अधिक होती है।

2 मनोवैज्ञानिक कारक

प्रतिकूलित सीखना, चिंता, सुरक्षा, व्यक्तिगत विकास में रुकावट, व्याधिकीय अन्तर्वैयत्तिक संबंध आदि कारक मनोस्नायुविकृति के लिए उत्तरदायी है।

1 प्रतिकूलित सीखना (Maladaptive Learning) दोषपूर्ण सीखने की प्रक्रिया के कारण व्यक्ति आवश्यक क्षमताओं एवं व्यवहारों का विकास नहीं कर पाता है। जिसका परिणाम यह होता है कि वह दिन प्रतिदिन की समस्याओं का सामना करने में अत्यधिक कठिनाई अनुभव करता है जिससे चिंता उत्पन्न हो जाना स्वाभाविक हो जाता है। वह भय के प्रति सम्बद्ध प्रतिक्रिया करता है। प्रतिकूलित जीवन शैली से चिंता कम होती है। अतः वह आत्म को पुष्टीकृत करता है।

2 चिंता सुरक्षा (Anxiety defence) जब व्यक्ति को अत्यधिक चिंता उत्पन्न हो जाती है तो वह इस चिंता को दूर करने के लिए कुछ रचनाओं का सहारा लेता है। इन रचनाओं में दमन, प्रतिगमन, प्रत्याहार, कल्पनातरंग, अस्वीकृति, आदि प्रमुख है। इनसे व्यक्ति की चिंता कम होती है परन्तु वे

वास्तविकता का विघटन करते हैं लेकिन जब वे एक बार उपयोग में आ जाते हैं तो व्यक्ति बार बार उनका उपयोग संतोष के लिए करता है।

3 व्यक्तिगत विकास में गतिरोध : **(Disturbed personality growth)** व्यक्तिगत विकास में गतिरोध के कारण भी मनोस्नायुविकृति उत्पन्न हो जाती है। विभिन्न अन्तर्संबंधित स्रोत इसके लिए उत्तरदायी है। (1) जब व्यक्ति योग्यता एवं क्षमता से अधिक स्तर की आकांक्षा रखता है। (2) मूल्यों को उचित अर्थ में ग्रहण नहीं कर पाता है। (3) दोषपूर्ण समाजीकरण होता है। इन कारको के कारण व्यक्ति अन्तर्द्वन्द से ग्रसित हो जाता है।

4 व्याधिकीय अन्तर्वैयत्तिक सम्बन्द्ध तरीके (Pathological Interpersonal patterns) कारसन (Carson) ने दो प्रकार के व्याधिकी संबंधों का वर्णन किया है : (1) छलपूर्ण (Fraudulent) अन्तर्वैयक्तिक संबंध जिसमें इमानदारी, पारस्परिक सहयोग आदि से संबंधित नियम जिनसे सामान्य अन्तर्वैयक्तिक संबंध पनपते हैं उनका एकदम उलंघन करता है, (2) अनियमित अन्तर्वैयक्तिक संबंध जिनमें परिवार का प्रत्येक व्यक्ति प्रतिकूलित तथा आत्मअवमूल्यनात्मक व्यवहार को स्वीकृति देता है। इन दोनों स्थितियों में मनोस्नायु विकृत व्यवहार प्रदर्शित होता है।

5 तनाव तथा अक्षतिपूर्ति (Stress and decompensation) तनावपूर्ण स्थितियाँ, जिनकी आज के जटिल एवं प्रतिस्पर्धात्मक समाज में अधिकता है, के कारण व्यक्ति अपनी योग्यताओं तथा समस्यों एवं वाह्य परिस्थितियों का उचित मूल्यांकन नहीं कर पाता है जिसके कारण हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। इसके साथ क्षतिपूर्ति भी नहीं कर पाता है जिससे भग्नाशा उत्पन्न होती है।

3–सामाजिक सांस्कृतिक कारक

प्रायः यह देखा जाता है कि उन्माद प्राचीन समाजों में पाया जाता है तथा चिंता, वाध्य विचार, वाध्यक्रिया तथा अस्तित्वात्मक मनोस्नायुविकृतियां प्रोद्यौगिक रूप से विकसित समाजों में अधिक होती हैं। यद्यपि मनोस्नायुविकृति सभी आर्थिक वर्गों में पायी जाती है परन्तु उन्माद आर्थिक रूप से पिछड़े वर्गों में अधिक होता है। मध्यम तथा उच्च वर्ग में चिंता मनोस्नायुविकृति तथा वाध्य विचार वाध्य क्रियात्मक मनोस्नायुविकृति अधिक होती है।

विभिन्न लेखकों, प्रमुख रूप से कूले तथा मीड ने स्पष्ट किया है कि व्यक्ति की मनोवृतियां समाज के अन्य व्यक्तियों की प्रतिक्रियाओं का परिणाम हैं। कूले का ''देखने वाला शीशा'' तथा मीड का मुझको (Me) का प्रत्यय स्पष्ट करता है कि आत्म का विकास समूह की प्रतिक्रियाओं पर निर्भर है। यदि दूसरों की

प्रतिक्रिया में सामान्यतः नकारात्मता होती है तथा व्यक्ति नकारात्मक मूल्यॉंकन का उचित प्रत्यक्षीकरण करता है एवं उसको स्वीकार करता है तो मनोस्नायु विकृति का उत्पन्न होना स्वाभाविक हो जाता है। सांस्कृतिक मिश्रण, स्थान परिवर्तन, तीव्र सामाजिक परिवर्तन आदि के कारण भी मनोस्नायुविकृति उत्पन्न होती है।

4–मनोस्नायुविकृति तथा मनोविकृति में अंतर

(Difference between Psychoneuroses and psychoses)

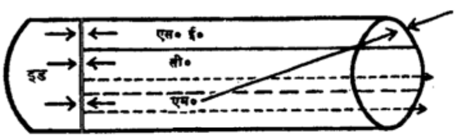
मनोस्नायुविकृति एक समायोजन की समस्या है जबकि मनोविकृति मन की जटिल विकृति है। इसमें व्यक्ति का सम्पूर्ण व्यवहार अस्त व्यस्त एवं विघटित हो जाता है। मनोस्नायुविकृति में व्यक्ति का वास्तविकता से सम्पर्क रहता है केवल चिंता प्रधान होती है। ब्राऊन[17] ने निम्न प्रकार से दोनों में अन्तर स्पष्ट किया है–

	आंतरिक संघर्ष की प्रकृति	परिणामात्मकव्यवहार की सामाजिक प्रकृति	प्रतिगमन की श्रेणी	प्रेम से मूल भूत उत्तेजनाओं से संबंध	संघर्ष का समाधान परिणाम
मनोस्नायुविकृति	इदम् अहं तथा पराहं और वास्तविकता में असमान्यजस्य पूर्ण संतुलन, अहं या इदम मूल तथा पराहं पर से संघर्ष परन्तु का अहं वास्तविकता से संबंध	केवल आंशिक व्यवहार स्वीकृत योग्य ज्ञानात्मक तथा गत्यात्मक दोनों दृष्टि से ध्वंसात्मक व्यवहार लेकिन इदम मूल प्रवृतियों पर नियंत्रण	गुदा या लैंगिक अवस्था में प्रतिगमन लेकिन वास्तविकता समझने से परे नहीं	उभयवृत्ति	उग्र लक्षण विशेष चिंता
सामान्य	इदम अहं तथा पराहं और वास्तविकता में सामंजस्यपूर्ण संतुलन	सभी क्षेत्रों में व्यवहार रचनात्मक तथा सामाजिक रूप से स्वीकृत	कोई नहीं	उभयवृत्ति कुछ उत्तेजनाओं को स्पष्ट कर दिया जाता है तथा	अन्तर्द्वन्द नहीं

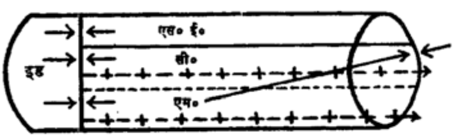
17. ब्राऊन जे0 साइकोडायनमिकस आफ अवनार्मल विहैवियर, मैकग्राहिल बुक कं0 न्यूयार्क, 1940, प्र0 335

				कुछ को परिष्कृत किया जाता है	
मनोविकृत	इदं अहं पराहं तथा वास्तवि– कता में अत्यन्त असामांजस्य पूर्ण संतुलन। अहं शक्तिहीन तथा कमजोर इदम के समक्ष अहं का वास्तविकता से संबंध विच्छेद पराहं प्रक्षेपित होता है।	ज्ञानात्मक तथा गत्यात्मक दो क्षेत्रों में सामाजिक रूप से अस्वीकृत व्यवहार इदम् का छद्म वेष में प्रकट होना	प्रारम्भिक गुदा अवस्था में प्रति– गमन अतः वास्तविकता समझने से परे	उद्देश्यहीन अथवा अधिकतम उभयावृत्ति	ज्ञानात्मक तथा गत्यात्मक क्षेत्र में तीव्र एवं विषम लक्षण

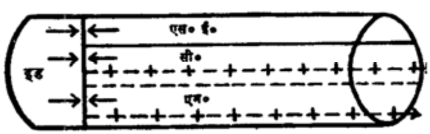
ब्राउन ने सामान्य मनोस्नायुविकृत तथा मनोविकृत में अन्तर को रेखाचित्र द्वारा भी स्पष्ट किया है:–[18]



सामान्य व्यक्तित्व



मनोस्नायुविकृति व्यक्तित्व



मनोविकृति व्यक्तित्व

18. ब्राउन जे0 उपर्लिखित, पृ0 354

—> <— सामन्जस्य संतुलन

—> <— असामन्जस्य संतुलन

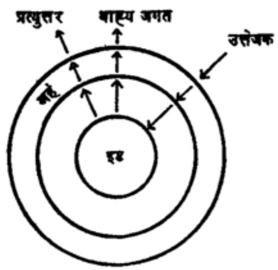
बड़ा तीर समग्र रूप से पर्यावरण के साथ सापेक्षित संतुलित व्यक्तित्व को प्रदर्शित करता है।

छोटा तीर व्यक्तित्व के अन्तर्गत ही सापेक्षित संतलन सम्बोधित करता है।

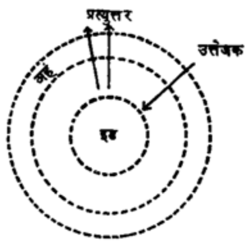
....——> सामाजिक रूप से स्वीकृत व्यवहार

— + = + — + — + ——> अस्वीकृत लेकिन छदम् वेष में

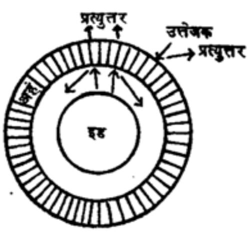
...— +...— +...— + ——> छदम् वेष में परन्तु आंशिक रूप से स्वीकृत।



(अ) मनोस्नायुविकृत व्यक्तित्व



(ब) मनोविकृत व्यक्तित्व



चरित्र मनोस्नायु विकृत व्यक्तित्व

सामान्य व्यक्ति में इदम्, अहं तथा पराहं में सन्तुलन बना रहता है उसका पर्यावरण से अर्थपूर्ण सम्बन्ध होता है। उसका व्यवहार सामाजिक रूप से स्वीकृत होता है जबकि मनोविकृति में इदम्, अहं तथा पराहं में कोई संतुलन नहीं होता है उसका व्यवहार पूर्ण विघटित होता है।

मैक्स तथा गिवी[19] ने पिछले पृष्ठ पर बने चार्ट के अनुसार अंतर स्पष्ट करने का प्रयत्न किया है।

'अ' चित्र में अहं का इदम् व पराहं दोनों की सीमाओं से स्पष्ट सम्बन्ध रहता है। उसमें आंतरिक तथा वाह्‌य पर्यावरण में अन्तर स्पष्ट करने की क्षमता रहती है। इसमें अधिकांश आन्तरिक चालक चेतन जगत में प्रवेश करते हैं परन्तु दूसरों को दमित कर दिया जाता है लेकिन वह इस दमन को वाह्‌य प्रभाव के कारण समझता है। मनोस्नायु विकृत प्रतिक्रियाओं में जब चालक अहं की सीमा को पार करता है तो वह मानसिक सुरक्षात्मक यन्त्रों का उपयोग करने लगता है।

मनोविकृत अवस्था में जैसा कि 'ब' चित्र में प्रदर्शित किया गया है इदम् की मूल प्रवृत्तियाँ बिना अहं से समझौता किये अथवा उसकी न परवाह करके स्वतन्त्र रूप से कार्य करती हैं। अहं शक्तिहीन होता है तथा उसका इदं पर नियन्त्रण समाप्त हो जाता है। इसके कारण मनोविकृत व्यक्ति में अन्तर्द्वन्द नहीं होता है और न ही वह मूल प्रवृत्तियों पर नियन्त्रण रख पाता है।

'स' चित्र से प्रतीत होता है कि अहं तथा इदं का सम्बन्ध घनिष्ठ नहीं होता है। अहं की सीमा इतनी कठोर होती है कि उसको आंतरिक मूल प्रवृत्तियों का वास्तविक रूप से अनुभव नहीं हो पाता है। वह अपने सम्पूर्ण को इसका अंग मानता है। वह किसी विशेष चालक के प्रति कार्य न करके अपने सम्पूर्ण चरित्र के प्रति कार्य करता है। वाह्‌य उत्तेजक भी उसके व्यक्तित्व में प्रवेश नहीं कर पाते हैं। चरित्र विकृत व्यक्ति को कोई विशेष तनाव या चिन्ता नहीं होती है। वह सोचता है कि अन्य लोगों को भी उसी प्रकार का व्यवहार करना चाहिए।

फ्रायड के विचार से मनोविकृति में अहं तथा वास्तविकता में संघर्ष होता है। अहं वाह्‌ परिस्थिति से इतना भयभीत हो जाता है कि परिपक्व तथा एकीकृत रूप में कार्य करना बन्द कर देता है। मनोस्नायुविकृति मे भी विघटन होता है परन्तु कुछ ही दिशाओं में होता है और व्यक्ति अधिकांश क्षेत्रों में समायोजनात्मक व्यवहार करता है।

मनोस्नायुविकृति तथा मनोविकृति मे निम्न प्रकार से अन्तर स्पष्ट कर सकते हैं।

---

19. हट मैक्स एल0 एण्ड राबर्ट ग्वयन गिवी — पैटर्नस आफ अबनार्मल बिहैवियर, एलयन एण्ड बेकन कं0, वास्टन, 1957, पृ0 20।

आधार	मनोस्नायुविकृति	मनोविकृति
लक्षण	चिन्ता, विषाद, अन्तर्द्वन्द, पलायन, तिरस्कार, अस्वीकार, हीनता, थकान, नींद की कमी, उलझन, उत्साह की कमी	व्यामोह, विभ्रम, असंगत व्यवहार, असंगत भाषा, विचारों की अस्पष्टता, आत्म नियन्त्रण का अभाव, चिड़चिड़ापन, आक्रामकता, स्मृतिह्रास, विनाशकारी प्रवृत्ति
कारण	सामाजिक मनोवैज्ञानिक कारक महत्वपूर्ण; स्नायुविक, दैहिक तथा अनुवांशिक कारक अमहत्वपूर्ण	स्नायुविक, दैहिक तथा रासा-यनिक कारक महत्वपूर्ण; अनुवांशिकता का भी प्रमुख स्थान
व्यक्तित्व	सामान्य व्यक्ति से थोड़ा अंतर, हीनभावना, वास्तविकता से संपर्क, व्यक्ति का कोई एक अंगप्रभावित, अहं, पराहं, इदम् में कम असंतुलन, अहं तथा पराहं में संघर्ष	सामान्य व्यक्ति से बिल्कुल भिन्न, वास्तविकता से कोई संपर्क नहीं, सम्पूर्ण व्यक्तित्व प्रभावित, इदम तथा पराहं में संघर्ष तथा इदम अहं तथा पराहं में अत्यन्त असंतुलन
व्यवहार	व्यवहार में तार्किकता, स्वीकृत व्यवहार, केवल कुछ अंश अस्वीकृत, भाषा व विचार में संगति, समाज से असमायोजन केवल कुछ ही स्थिति में	व्यवहार में अतार्किकता, अस्वीकृत व्यवहार, भाषा तथा विचार में पूर्ण अंसंगति समाज से अत्यधिक असमा-योजन, व्यवहार में व्यामोह, विभ्रम तथा मानसिक अस्थिरता सामाजिकता का पूर्ण अभाव
आत्म-नियंत्रण	आत्मनियंत्रण की क्षमता होती है कुछ ही परिस्थितियों में आत्मनियंत्रण कमजोर हो जाता है। समझ होती है, भला बुरा समझता है	आत्मनियंत्रण का पूर्ण ह्रास होता है, आत्म हत्या की प्रवृत्ति होती है, है, समझ बिल्कुल नहीं होती है, भले बुरे का ज्ञान नहीं होता है।

चिकित्सा व्यवस्था	इन रोगियों का उपचार घर में सम्भव होता है।	चिकित्सालय में भर्ती करना अत्यन्त आवश्यक होता है।
अवधि	लक्षण अस्थायी तथा उपचार कार्य, सरल, सामान्य होने के अधिक अवसर दशा चिंताजनक नहीं होती, मृत्यु दर कम	लक्षण अपेक्षाकृत स्थायी उपचार कार्य जटिल, दशा चिन्ताजनक, मृत्यु दर की अधिकता
उपचार पद्धति	निर्देशन, सलाह, परामर्श पुनर्शिक्षण, मनोचिकित्सा महत्वपूर्ण	रासायनिक तथा शरीर विज्ञानात्मक विधियों महत्त्व– पूर्ण विद्युत आघात चिकित्सा, प्रभावकारी

उपर्लिखित विवरण से यह स्पष्ट हो जाता है कि मनोस्नायु विकृति तथा मनोविकृति में काफी अन्तर है। मनोस्नायुविकृत व्यवहार में सामान्यता का अधिकांश प्रभाव बना रहता है जबकि मनोविकृति व्यवहार में पूर्ण असामान्यता होती है। मनोविकृति इस प्रकार एक साधारण मानसिक विकृति है जबकि मनोविकृति गम्भीर प्रकार की विकृति है। मनोविकृत रोगी का पूर्ण व्यक्तित्व विघटित हो जाता है।

8

चिन्ता प्रतिक्रिया

चिंता प्रतिक्रिया मनोस्नायु विकृति की सामान्य परन्तु महत्वपूर्ण विकृति है। इसमें रोगी को अति चिंता हो जाती है और वह किसी वस्तु पर ध्यान नहीं केन्द्रित कर पाता है। उससे निर्णय की प्रक्रिया भी स्वाभाविक रूप से कार्य करती है। वह अपनी चिंता का कारण नहीं खोज पाता है जिसके कारण चिंता की सीमा बढ़ जाती है। साधारण रूप से चिंता सभी व्यक्तियों को अनुभव होती है और प्रत्येक व्यक्ति किसी न किसी समय इससे अवश्य ही पीड़ित होता है लेकिन उसके कारण को दूर कर वह अपनी चिंता कम कर लेता है। चिंता प्रतिक्रिया मनोस्नायु विकृति की अवस्था में रोगी बिना कारण जाने अतिशय चिंता से पीड़ित होता है। उसको अपनी चिंता के स्रोत का पता नहीं होता है।

(I)–परिभाषा

जब व्यक्ति को चिंता हो जाती है तो वह व्याकुल एवं भयग्रस्त रहता है, असुरक्षा अनुभव करता है। भविष्य अंधकारमय दिखने लगता है एवं सांवेगिक अस्थिरता उत्पन्न हो जाती है। रोगी प्रायः आत्म केन्द्री (Self Centred) तथा असहिष्णु (Intolerant) बन जाता है। उसमें आत्महत्या की भी प्रवृति कभी कभी विकसित हो जाती है। वोल्पे[1] (Wolpe) के अनुसार चिंता प्रतिक्रिया का उत्तेजक स्रोत गूढ़, अज्ञात, अस्थिर, जटिल तथा अत्यन्त व्यापक होता है जिसके कारण रोगी का प्रत्यक्षीकरण उस सीमा तक वस्तुस्थिति का बोध नहीं करा पाता है।

फिशर के अनुसार[2]–चिंता मनोस्नायुविकृति उन आंतरिक व्यक्तिगत अप्रवेश योग्य कठिनाइयों की प्रक्रिया है जिनका ज्ञान व्यक्ति को नहीं होता है।

---

1. वोल्पे, जे0 फार फोबिया — ए हेयर आफ दि हाउन्ड, साइक्याट्री टुडे, 1969, 3–पृ0 34–37
2. फिशर — ऐन इन्ट्रोडक्शन टु एवनार्मल साइकालोजी पृ0

हट एण्ड गिवी के अनुसार[3]–मनोस्नायु चिंतात्मक वे प्रतिक्रियायें हैं जिसमें व्यक्ति अत्यधिक चिंतात्मक स्थिति का अनुभव करता है। ये चिंतात्मक स्थितियाँ अत्यधिक विषम होती हैं तथा किसी विशेष स्थिति से सम्बन्धित नहीं होती हैं।

नाथन तथा हेरिस के अनुसार[4]–मनोस्नायु चिंता स्वतंत्र वहाब चिंता के रूप में जानी जाती है जिसके रोगी में चिंता के स्रोत ढूढने की असमर्थता होती है।

(II) लक्षण

चिंता प्रतिक्रिया का रोगी निम्नलिखित लक्षण प्रदर्शित करता है :

1. ध्यान केन्द्रित करने में कठिनाई–रोगी किसी विषय पर अपना ध्यान लम्बे समय तक केन्द्रित नहीं कर पाता है क्योंकि अन्य विचार उसके मस्तिष्क को प्रभावित करते रहते हैं। ध्याान केन्द्रीकरण में व्यवधान उपस्थिति हो जाता है। यदि वह ध्यान आकर्षित करने का प्रयत्न भी करता है तो उसे सर दर्द होने लगता है तथा बैचेनी बढ़ जाती है।

2 निर्णय प्रतिक्रिया में बाधा– चिंता प्रतिक्रिया की अवस्था में व्यक्ति को उचित अनुचित का ज्ञान समझ में कम आता है। वस्तु तथा मूल्य में अंतर उसको कम ज्ञात होता है जिसके कारण वास्तविक मूल्याकन नहीं कर पाता है। वह किसी निर्णय को अंतिम निर्णय नहीं मानता है क्योंकि किसी स्थिति के प्रति उसको सुस्पष्ट अन्तर समझ में नहीं आता है।

3 अतिसंवेदनशीलता–रोगी में संवदेनशीलता बढ़ जाती है। वह प्रत्येक स्थिति का गंभीरता से अर्थ लगाता है तथा प्रत्येक बात का गूढ़ अर्थ निकालने का प्रयत्न करता है। व्यवहारिक बातों का भी वह तोड़ मरोड़कर अर्थ समझता है जिसके कारण उसमें निरन्तर चिंता को वृद्धि होती जाती है।

4 हतोत्साह–चिंता मनोस्नायु विकृति का रोगी हतोत्साही हो जाता है। वह किसी कार्य को करना पंसद नहीं करता है। उसमें मनोगत्यात्मक निष्क्रियता उत्पन्न हो जाती है। उसको अपना जीवन अंधकारमय लगता है। जिसके कारण किसी कार्य को करने में मन नहीं लगता है।

---

3. हट, मैक्स एल, एण्ड गिवी, रावर्टन्वाइन — पैटर्न्स आफ अवनार्मल बिहैवियर, एलयन एण्ड बेकन, इंक वास्टन, 1957, पृ. 234
4. नाथन पीटर ई0 एण्ड सन्ड्रा हेरिस — पैथालोजी एण्ड सोसाइटी मैक ग्राहिल बुक कं0 न्यूयार्क, 1975, पृ0 260

5 निद्रा व्यवधान—रोगी को इतनी चिंता हो जाती है कि वह प्रत्येक क्षण मानसिक रूप से अस्थिर रहता है। जब वह सोने का प्रयत्न करता है तो उसके मस्तिष्क में कुलषित तथा कष्टप्रद विचार बार—बार आने लगते हैं जिसके कारण वह सो नहीं पाता है।

6 शारीरिक व्याधियाँ—रोगी को सर दर्द रहता है, भूख नहीं लगती है, दिल बैठता मालूम होता है तथा दम घुटने लगता है, दिल धड़कता है, अधिकाधिक पसीना आता है। उसको बदहजमी हो जाती है जिसके कारण भूख नहीं लगती है, खट्टी डकारें आती हैं तथा कै भी हो जाती है। रोगी को बार बार मूत्र आने लगता है। उसको थकान की अधिक शिकायत होती है।

उपर्लिखित लक्षण केवल चिंता प्रक्रिया के रोगी में ही नहीं पाये जाते है बल्कि प्रत्येक व्यक्ति जब चिंता की अवस्था में होता है तो उसे ये लक्षण महसूस होते हैं।

चिंता मनोस्नायु विकृति का रोगी तनाव, व्याकुलता तथा बैचेनी की दशाओं से घिरा रहता है। उसको अपनी स्थिति के प्रति असंतोष हो जाता है जिसके कारण निराशा उत्पन्न हो जाती है। रोगी अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में अति संवेदनशील तथा सजग रहता है। इन संबंधों को वह निपटाने में अपने को असमर्थ पाता है जिससे अवसाद उत्पन्न होता है उसमें चिंता की सीमा इतनी अधिक हो जाती है कि वह अपने को प्रत्येक कार्य करने के अयोग्य पाता है। वह कोई भी उत्तेजक प्रतिक्रिया नहीं करता है उससे स्नायुविक निष्क्रयता उत्पन्न हो जाती है। उसको शारीरिक कष्ट भी होने लगता है। प्रायः उसमें गर्दन तथा हाथ पांव में दर्द होने लगता है।

चिंता मनोस्नायु विकृति तीव्र चिंता के लक्षणों से प्रारम्भ होती है और धीरे—धीरे उग्र रूप धारण कर लेती है। इस प्रकार चिंता मनोस्नायु विकृतियों को दो वर्गों में श्रेणी बद्ध कर सकते हैं—

1—तीव्र चिंता (Acute Anxiety)

2—स्थाई चिंता (Chronic Anxiety)

तीव्र चिंता

जब चिंता मनोस्नायु विकृति का प्रभाव व्यक्ति पर पड़ता है तो उसको तीव्र चिंता अनुभव होती है। प्रारम्भ में इसका प्रभाव बहुत तेज तथा भयानक होता है। रोगी में इस प्रकार के लक्षण एकाएक प्रकट होते हैं तथा कुछ समय उपरान्त

धीरे–धीरे कम होने लगते हैं। चिंता के लक्षण प्रत्येक व्यक्ति में भिन्न होते हैं। तीव्र चिंता की अवस्था में रोगी के दिल की धड़कन बढ़ती है, साँस लेने में कठिनाई होती है, पसीना निरन्तर बहता है, चक्कर आने लगतें हैं, सर भारी लगने लगता है, पेट गड़बड़ हो जाता है तथा मृत्यु संबंधी विचार आने लगते हैं।

साधारणतया तीव्र चिंता के लक्षण कुछ क्षणों के पश्चात् शान्त (Subside) हो जाते हैं। यदि ये लक्षण काफी समय तक बने रहते हैं तो रोगी को चिकित्सक की तुरन्त आवश्यकता महसूस होती है और चिकित्सा के उपरान्त उसकी दशा सामान्य हो जाती है। इस प्रकार के लक्षण रोगी में दिन में कई बार तथा भिन्न भिन्न बारम्बारता (Frequency) के साथ उत्पन्न होते हैं। कभी कभी ये लक्षण महीने में एक दो बार भी प्रकट हो सकते हैं। ये लक्षण प्रायः दिन में प्रकट होते हैं या व्यक्ति में गहन निद्रा (Sound Sleep) से जगकर प्रकट होते हैं।

2. स्थायी चिंता

रोगी में एक बार चिंता के लक्षण प्रकट हो जाते हैं तो वे पूर्ण रूप से बहुत ही कम समाप्त होते है। उसको लक्षणो के पुनः प्रकट होने का भय निरन्तर बना रहता है। जिसके कारण अवसाद उत्पन्न हो जाता है। वह प्रत्येक घटना का विशेष प्रकार से अर्थ लगाता है। उसमें संवेदनशीलता तथा भय की भावना बढ़ जाती है जिसके कारण वह व्याकुल, उद्विग्न, अस्थिर, तथा हतोत्साही हो जाता है उसको न केवल निर्णय लेने में कठिनाई होती है बल्कि जो निर्णय लेता है वे त्रुटिपूर्ण लगते हैं। वह सोचने लगता है कि उसने जो भी निर्णय लिया है वह उद्देश्य के अनुकूल नहीं है तथा हानि होने की काफी संभावना है।

इस रोग से पीड़ित व्यक्तियों में चिंता के उत्तेजक इतने अधिक होते हैं कि वे कभी भी समाप्त नहीं होते। जब एक वस्तु के प्रति चिंता समाप्त हो जाती है तो पुनः दूसरी के प्रति चिंता उत्पन्न हो जाती है अर्थात उसकी परेशानी एवं चिंता का एक कारण नहीं होता है। पूरा पर्यावरण उसे दुखप्रद लगने लगता है। वह अपने भय तथा कष्ट का अतिशय वर्णन करता है और तब तक करता रहता है जब तक कि उसके सगे संबंधी अपना धैर्य नहीं खो देते हैं। रोगी के सोने में भी बाधा होती है क्योंकि उसकी चिंता आराम करने से भी नहीं समाप्त होती है। वह जितनी चिंता दूर करने को प्रयत्न करता है उतना ही वह उससे बंधता जाता है। उसमें वाध्यता मूलक विचार आने लगते हैं तथा अपनी गलती पर बार बार विचार करता है। यह त्रुटि या गल्ती वास्तविक तथा काल्पनिक दोनों प्रकार की हो सकती हैं।

(III) कारण

विभिन्न अध्ययनों से ज्ञात होता है कि जिस व्यक्ति की भावनाओं का विकास सामान्य नहीं होता है उसमें चिंता के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। वह आंतरिक तथा बाह्य दबाव एवं तनाव का सामना ठीक से नहीं कर पाता है जिसके कारण वह दबाव को धमकी (Threatening) समझता है। उसमें चिंता के लक्षण के अतिरिक्त सभी लक्षण सामान्य होते हैं। दबाव एवं तनाव (Stress and Strains) की मात्रा इतनी अधिक होती है कि वह स्थिति का मूल्यांकन सामान्य रूप से नहीं कर पाता है। वह भावी दुर्भाग्य की सम्भावनाओं से त्रस्त रहता है। चिंता का मुख्य कारण विषम परिस्थितियों में असफलता होती है। जब व्यक्ति किसी स्थिति के प्रतिक्रिया करने में असमर्थ होता है तो उसे चिंता हो जाती है। लैंगिक संबंधों में निराशा, विच्छंखल परिवारिक जीवन, आर्थिक विफलता, व्यापार में हानि, रोजगार का खोना, आदि कारकों के कारण चिंता उत्पन्न हो जाती है। परन्तु चिंता का होना ही मनोस्नायु विकृति के लक्षणों को नहीं स्पष्ट करता है, मुख्य रूप से सामान्य अथवा असामान्य होने के लक्षणों को प्रायः निर्धारित करता है। चिंता मनोस्नायु विकृति के उत्पन्न होने के प्रायः निम्न कारण हैं–

(1) माता पिता का त्रुटिपूर्ण व्यक्तित्व

माता–पिता के व्यक्तित्व का प्रभाव बालक के विकास एवं मनोलक्षणों को निर्धारित करता है। यदि उसका व्यक्तित्व असामान्य होता है तो वे लक्षण बालक में उत्पन्न हो जाते हैं। माता की तनावपूर्ण तथा चिन्तात्मक स्थिति बालक को प्रभावित करती है जिसके कारण ये लक्षण शिशुपन में ही अन्तःक्रिया के द्वारा उत्पन्न हो सकते हैं। जेनकिन्स[5] (Jenkins) ने बालको के व्यवहार विकृति के अध्ययन में पाया कि चिन्ताग्रस्त माता–पिता से उत्पन्न होने वाले बच्चे सामान्य व्यवहार उत्पन्न नहीं कर पाते हैं। इसके अतिरिक्त चिंता मनोस्नायु विकृति उन परिवार के व्यक्तियों को अधिक प्रभावित करती है जिनमें माता–पिता बालक से उच्च आशायें रखते हैं तथा प्रेम एवं सहयोग का सम्बन्ध भूमिका से जोड़ देते हैं जो बालक माता–पिता की इच्छा की पूर्ति नहीं कर पाता है उसको प्रेम के स्थान पर तिरस्कार प्राप्त होता है जिससे द्वेषपूर्ण भावनायें तथा त्रुटिपूर्ण अहं विकसित होता है। वह अधिक आत्म केन्द्रित हो जाता है तथा अपने योग्यता एवं

---

5. जेनकिन्स, आर0 एल0 — साईक्याटिक सिन्डोम्स इन चिल्ड्रेन इन रिलेशन टु फेमिली बैंक ग्राउण्ड, अमरीकन जर्नल आफ आर्थोसाईक्याट्री 1966, 36, पृ0 455

क्षमता का अवमूल्यन करता है तथा आत्म आलोचक बन जाता है। उसमें सांवेगिक असुरक्षा की भावना विकसित हो जाती है जिसके कारण थोड़ी सी असफलता होने पर भी वह व्याकुल हो जाता है तथा बेचैनी अनुभव करता है।

(2) आवश्यक निपुणता सीखने की असफलता

व्यक्ति में चिन्ता प्रायः तभी उत्पन्न होती है जब वह आवश्यक निपुणताओं का विकास नहीं कर पाता है। इसका कारण प्रायः उसका त्रुटिपूर्ण विकास होता है। अधिक लाड़–प्यार या तिरस्कार दोनों ही अवस्थायें बालक के लिए दुखदायी होती हैं। उसको भावी जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन करना कठिन हो जाता है। उसमें आवश्यक दक्षता के न होने से वह दबाव पूर्ण एवं तनावपूर्ण स्थितियों का सामना सामान्य रूप से नहीं कर पाता है और थोड़ी सी भी विषम परिस्थिति में उसे अति चिन्ता हो जाती हो जाती है। आवश्यक निपुणता के न उत्पन्न होने से दो प्रभाव होते है। एक ओर वह अपना सामान्य समायोजन स्थापित नहीं कर पाता है दूसरी ओर उसमें कार्य क्षमता का ह्रास होता है। जब वह देखता है कि अमुक कार्य करने में असमर्थ है तो उसको पूरा करने का प्रयाय ही नहीं करता है। इस प्रकार वह निरंतर कठिनाइयों से घिरा रहता है और चिन्ता व्याप्त रहती है। स्थिर चिन्ता का प्रभाव विषम एवं कठिन परिस्थिति में बढ़ जाता है जिसके कारण दूसरों से सम्बन्ध कम हो जाते हैं एवं शारीरिक व्याधियों का विकास होता है। उसको निर्रथक भय उत्पन्न हो जाता है।

(3) विषम तथा गम्भीर आवेगों से निपटने की अक्षमता

जो व्यक्ति विषम एवं गम्भीर आवेगों का उचित प्रकार से निपटारा नहीं कर पाता है या उस परिस्थिति में अपने को अयोग्य मानता है तथा धैर्य को खो देता है। उसे चिन्ता के गम्भीर लक्षण शीघ्र घेर लेते हैं। मनोस्नायु विकृति व्यक्तित्व का व्यक्ति विषम भावनाओं को उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में अधिकाधिक चिन्ता अनुभव करता है क्योंकि उससे आत्म का अवमूल्यन होता है तथा सम्बन्धों में भी तनाव उत्पन्न होता है। ऐसा व्यक्ति उग्रता (Hostility) की स्थिति का उचित प्रकार से समाधान नहीं कर पाता है जिसके कारण उसमें असुरक्षा की भावना विकसित हो जाती है। वह विनम्र (Compliant) हो जाता है और वह अपने को दूसरों के अधीन (Subservient) समझने लगता है। यद्यपि जब उसमें इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं तो वह एक बार अवश्य ही प्रतिक्रिया करता है। उसमें उग्र एवं आक्रामक प्रवृति विकसित होती है क्योंकि उसे डर रहता है कि यदि उसने इस प्रकार का व्यवहार किया तो दूसरे लोग

उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेंगे। अतः अपने को सामान्य बनाये रखने में अपनी भावनाओं का दमन (Repression) करता है परन्तु ये भावनायें अवसर पाकर गम्भीर रूप धारण कर लेती हैं जिससे व्यक्ति दूसरों पर निर्भर हो जाता है। वह दूसरों की स्वीकृति तथा सुरक्षा के लिए सदैव कल्पना करता रहता है।

लैंगिक भावनाओं का दमन भी चिन्ता की सीमा को बढ़ा देते हैं। उदाहरण के लिए जो व्यक्ति नैतिकता से प्रभावित होता है वह लैंगिक संतुष्टि को अनैतिक समझता है। परन्तु यह इच्छा पूर्ण रूप से दमित नहीं हो पाती है अवसर पाकर उसको अवसादी बना देती है। उसको बिना कारण ज्ञात हुये व्याकुलता, आकुलता, विह्वलता, बेचैनी होने लगती है। उसको कल्पना में आनन्द का अनुभव होता है जिससे वह आत्मकेन्द्री बन जाता है।

(4) चिन्ता उत्पन्न करने वाले निर्णय

मनोस्नायु विकृति का रोगी लेने में घबराता है इससे वह कोई ऐसा उत्तरदायित्व नहीं ग्रहण करना चाहता जिसमें उसे थोड़ी सी भी कठिनाई उत्पन्न होती हो। नैतिक मूल्यों तथा परिस्थिति से सम्बन्धित संघर्ष व्यक्ति को अनिर्णित बना देते हैं तथा उसे ऐसी स्थिति में लाकर खड़ा कर देते हैं जहाँ पर उसे अति भय लगने लगता है। एक लड़की तथा एक लड़के में प्रेम हो जाता है। लड़की इस कोशिश में है कि किसी प्रकार उस लड़के से प्रेम प्रदर्शित करके उसको विवाह करने के लिए तैयार कर ले। लड़का विवाह करने के लिए तैयार तो हो जाता है परन्तु वह लैंगिक सम्बन्धों को विवाह से पूर्व ही स्थापित करना चाहता है जिससे उसको विश्वास हो जाये कि दोनों लैंगिक विषय में समान हैं। परन्तु लड़की के लिए ऐसा करना सम्भव नहीं है। क्योंकि उसके नैतिक तथा धार्मिक मूल्य पूर्व लैंगिक सम्बन्ध को अनैतिक तथा अपराधपूर्ण समझते हैं। दूसरी ओर वह उस लड़के से इतनी आकर्षित है कि इसके लिए अस्वीकार नहीं कर सकती है। परिणामस्वरूप दोनों के विचारों में संघर्ष होता है। वह निर्णय लेने में अपने को असमर्थ पाती है। धीरे–धीरे उसमें चिन्ता के लक्षण प्रकट होने लगते हैं। उसका अन्य कार्यों में ध्यान केन्द्रित नहीं हो पाता है साथ ही साथ अनिद्रा (Insomnia) की शिकायत हो जाती है। उसको शिकायत हो जाती है कि वह अब आकर्षक नहीं रही है तथा स्त्री की भूमिका अदा करने के योग्य नहीं है। उसमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह अपने निर्णय करने की स्थिति में नहीं पाती है। जब सोचती है कि उसे लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करना चाहिए तो धर्म, नैतिकता तथा गर्भवती होने का भय उत्पन्न हो जाता है और जब सोचती है कि ऐसा नहीं करना चाहिए तो प्रेमी के वियोग का दुख प्रकट होता है।

(5) पूर्व आघातो ंकी पुनर्सक्रियता

पूर्व आघातजन्य स्थितियाँ वर्तमान समय में भी असुरक्षित व्यक्ति को भयभीत करती है। वर्तमान समय में जब समान स्थितियाँ उत्पन्न होती हैं तो वह उनका सामना करने के स्थान पर पूर्व स्थिति के समान तनाव एवं कष्ट महसूस करता है। उदाहरण के लिए एक कर्मचारी अपने नये सुपरवाइजर से सामन्जस्य नहीं कर पाता है क्योंकि उसका व्यवहार उस कर्मचारी के प्रति उसके पिता के समान दिखता है। वह पिता के समान ही उसकी आलोचना करता है तथा अवसर पड़ने पर ताड़ना भी देता है। समान व्यवहार होने से यह सुपरवाइजर की उपिस्थित सहन नहीं कर पाता है। क्योंकि बचपन में पिता ने उसे अपार कष्ट दिया था तथा आपत्तियों में फँसा दिया था। उसको उसी प्रकार का आधार सुपरवाइजर के वर्तमान व्यवहार से प्राप्त होता है जिसके कारण उसमें चिंतात्मक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार नये सुपरवाइजर के व्यवहार से कर्मचारी में पूर्व आघातों की पुनर्सक्रियता होती है क्योंकि उससे निर्बल बिन्दु (Weak point) को प्रोत्साहन मिलता है।

यद्यपि मनोस्नायु विकृति के रोगी में अति संवेदनशीलता, असहिष्णुता तथा असुरक्षा की भावनायें पाई जाती हैं परन्तु वह संघर्ष अवश्य करता है। संघर्ष में असफल होने पर वह 'दमन' सुरक्षात्मक तरीके के अतिरिक्त किसी अन्य तरीकों को उपयोग में नहीं लाता है। कैटेल तथा सेईयर [6] (Cattel and Scheier) के विचार से कुछ मनोस्नायुविक तीव्र खतरनाक स्थिति में अति सक्रियता से कार्य करते हैं।

(6) व्यक्तिगत इतिहास : चिन्ता मनोस्नायु विकृति

एक विवाहित स्त्री जिसकी आयु 22 वर्ष की थी, चिकित्सालय में आयी। यद्यपि वह अति चिन्ता से व्याकुल थी, परन्तु अपनी समस्याओं के समाधान के लिए वह पूर्णरूप से सजग थी उसको अपनी परेशानी सांवेगिक लगती थी। उसको भय था कि वह धीरे–धीरे पागल होती जा रही है क्योंकि वह जरा–जरा सी बात पर व्याकुल तथा विघ्न महसूस करती थी। 6 महीने से उसको ऐसा अनुभव होने लगा था कि वह निर्णय लेने के योग्य नहीं रहीं है। चिकित्सालय में आने से पूर्व वह चिंता के लक्षणों से इतनी ग्रस्त हो गई थी कि उसका प्रभाव 4–5 दिन तक निरन्तर बना रहा था। इसके कारण उसे कार्य से

---

6. कैटेल, आर0 बी0 ऐण्ड सोईमर आई0 एच0 — दि मीनिंग ऐण्ड मेजरमेंट आफ न्यरोटिसिज्म एण्ड एंजाइटी, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क, 1961

मुक्ति दे दी गई थी। उसे प्रत्येक वस्तु से भय उत्पन्न हो गया था। साधारण से साधारण घटना पर सशंकित (Apprehensive) हो जाती थी तथा घर से बाहर जाने, लोगों से मिलने, पति से मिलने तथा दरवाजे की घण्टी का उत्तर देने में उसे भय लगता था।

रोगी को इतनी अधिक चिन्ता व्याप्त हो गई थी कि वह अपने को सदैव असुरक्षित महसूस करती थी। जब वह अपने पति के समीप बैठती थी तभी शान्त रह पाती थी। वह पति को रात के समय अपनी अनिद्रा के कारण जगाये रहती थी तथा भय की शिकायत करती थी।

रोगी का विवाह दो वर्ष पूर्व हुआ था। उसके वैवाहिक सम्बन्ध सामान्य तथा उत्साहवर्धक थे। उसकी आर्थिक स्थिति अच्छी थी तथा पति का उसके प्रति अच्छा व्यवहार था। रोगी विवाह से पूर्व लेबोरेटरी टेक्नीशियन थी। उसका कार्य उत्तम था। वह अपनी भूमिकाओं को सामान्य रूप से पूर्ण करने में सदैव सफल रही थी। इस कार्य को 'चिंता' उत्पन्न होने के कारण ही छोड़ने पर मजबूर हो गई थी। उसके परिवार में अन्य किसी को इस रोग के लक्षण नहीं थे। उसके माता–पिता सामाजिक तथा मानसिक रूप से स्वस्थ थे।

रोगी सामाजिक सम्बन्धों के स्थापित्व में सदैव गतिहीन थी। वह मित्रों के साथ कम उठती थी। परन्तु यदि कोई वास्तविक मित्र बन जाता था जैसा कि बहुत कम होता था तो वह उससे बहुत ही अच्छे सम्बन्ध बना लेती थी। वह लोगों से प्रारम्भ में सम्बन्ध स्थापित करने में भय महसूस करती थी। उसको प्रतिरोध का भय बना रहता था। यद्यपि वह कहने में असमर्थ थी कि दूसरे लोग बिना कारण के क्यों उसे अस्वीकार करेंगे परन्तु वह भयभीत रहती थी कि दूसरे लोग उसे स्वीकृति नहीं देंगे।

बचपन तथा शैशवकालीन इतिहास से ज्ञात होता है कि कनिष्ठ बच्चा होने कारण रोगी पिता को अधिक प्यारी थी। उसको अनेकों पुरस्कार पिता से मिले थे। तथा उसकी किसी भी स्थिति में अवहेलना नहीं की गई थी। उसका लालन–पालन तथा इच्छाओं की पूर्ति अन्य बच्चों के समान ही हुई थी। माता का व्यवहार अधिनायकतंत्री था। उससे रोगी का सम्बन्ध अधिक लगावपूर्ण न था। उसकी इच्छाओं की पूर्ति माता की अपेक्षा पिता से अधिक होती थी। अतः जब उसे माता की ओर से निराशा प्राप्त होती थी तो वह पिता की ओर उन्मुख होती थी।

चिंता के पूर्व लक्षणों के सम्बन्ध में रोगी ने बताया कि विवाह के कुछ ही समय बाद उसमें यह भावना उत्पन्न होने लगी थी। उसकी बातों से ज्ञात हुआ

कि अपने पति को विवाह से पूर्व जैसा समझती थी, वैसा विवाह के बाद नहीं पाया। उसको यह भी अनुभव होने लगा था कि यद्यपि उसकी अर्थिक स्थिति अच्छी थी जिसका हिसाब रखा जाता था, खर्च करने के लिए एक सीमित धनराशि ही प्राप्त हो पाती थी। उसकी अनेक आवश्यकताओं को पूरा नहीं किया गया था क्योंकि उसकी स्थिति अन्य व्यक्तियों की अपेक्षा ससुराल में निम्न मानी जाती थी। उसने इस प्रकार का व्यवहार अपने पूर्व जीवन में कभी नहीं देखा था। रोगी महसूस करने लगी थी कि उसके ऊपर ऐसे अनेक उत्तरदायित्व आ गये हैं जिनकी विवाह से पूर्व उसने कल्पना भी न की थी। जिसके कारण वह अपने पति से नाराज भी हो जाया करती थी। परन्तु उसको शीघ्र ही अनुभव होने लगा कि उसका पति उसके व्यवहार के प्रति प्रत्युत्तर नहीं करता है, उसकी परवाह भी नहीं करता है जितनी कि उसके माता–पिता करते थे।

उसके व्यक्तित्व के बारे में अध्ययन से पता चला कि वह आत्मप्रेमी (Narcissistic), तथा स्वार्थी (Selfish) तथा अपरिपक्व (Immature) महिला थी उसको उत्तरदायित्व ग्रहण करने तथा उसे सफलापूर्वक निभाने का कभी प्रशिक्षण ही नहीं दिया गया था। बचपन से लेकर विवाह पूर्व तक पिता का उसे असीम प्यार मिलता रहा जिसके कारण वह सामाजिक उत्तरदायित्व ग्रहण करना सीख न पाई। अब उसे कोई कठिनाई होती थी तो पिता उसे समाधान कर देता था। परन्तु विवाह के उपरान्त यह स्थिति नहीं रही। रोगी अपने पति से भी पिता के समान व्यवहार की आशा रखती थी परन्तु जब उस प्रकार का प्रत्युत्तर पति से न मिला तो वह उससे क्रुद्ध होने लगी तथा अपने को कोसने लगी कि उसने किस प्रकार का पति चुना है। उसने सोचा था कि उसका पति सदैव उसकी इच्छाओं को पूरा करेगा, अपना सर्वस्व न्योछावर कर देगा तथा कभी भी किसी उत्तरदायित्व ग्रहण करने के लिए नहीं कहेगा। ऐसा इसलिए सोचती थी क्योंकि वह अपने को अति सुन्दर समझती थी।

जब उसको वास्तविक स्थिति का पता चला तथा पति का रूख अनुमान के विपरीत देखने को मिला तो उसे क्रोध आने लगा। परन्तु वह अधिक क्रोध को व्यक्त न कर सकती थी क्योंकि उसका पति भी बहुत क्रोधी था। परिणामस्वरूप उसकी उग्र भावनाओं का दमन हुआ। वे उग्र भावनायें अचेतन स्थिति में दबती चली गई। इसके कारण मानसिक द्वन्द एवं संघर्ष होने लगा। उसको अनुभव होने लगा कि उसका चुनाव ठीक नहीं रहा। अतः अपराधी भावनाओं का विकास हुआ।

6—उपचार
(Treatment)

(1) शारीरिक व्याधियों की खोज तथा उपचार

मनोस्नायु विकृति के रोगी को अनके शारीरिक कष्ट होते हैं। कभी वह सर दर्द की शिकायत करता है तो कभी पेट दर्द की। अतः सबसे पहले रोगी का शारीरिक परीक्षण होना अनिवार्य होता है जिससे रोगी को विश्वास हो सके कि उसमें कोई शारीरिक व्याधि नहीं है। यदि किसी प्रकार की शारीरिक गड़बड़ी हैं तो उसका निदान होना आवश्यक होता है अन्यथा रोगी किसी भी प्रकार से मानसिक चिकित्सा के प्रति प्रत्युत्तर नही करेगा। परन्तु रोगी को इस रोग के विषय में उचित तथा सामान्य ढंग से सूचना देने की आवश्यकता होती है क्योंकि वह राई का पहाड़ बना कर समस्या का निरूपण करता है। कार्यकर्ता की रोगी से वार्तालाप के मध्य इस प्रकार का व्यवहार करना चाहिए जिससे वह किसी प्रकार का संदेह न उत्पन्न करे। सर्वप्रथम संदेह का समाधान करने का प्रयास करे। इस प्रकार रोगी प्रायः सशंकित, दुखी, निराशावादी तथ भयभीत रहते हैं। वे दूसरों से सम्बन्ध स्थापित करने में खतरा महसूस करते हैं। एक बार जो विश्वास हो जाता है उसका खण्डन बहुत कठिनाई से होता है। जिस रोगी में धड़कन (Palpitation) की शिकायत है और किसी चिकित्सक ने उसे हृदय रोगी घोषित कर दिया तो उसका उपचार मनोचिकित्सा द्वारा बहुत ही कठिन, यदि असम्भव नहीं, हो जाता है।

(2) पुनर्आश्वासन

गम्भीर मनोस्नायु विकृति का रोगी अपनी दशा को बहुत अधिक दयनीय समझता है। अतः उसमें विश्वास उत्पन्न करने की महत्वपूर्ण आवश्यकता होती है जिससे चिकित्सा में वह सहयोग करे ओर अपना वास्तविक मूल्य पहचाने। पुनर्आश्वासन के द्वारा रोगी को अधिकाधिक लाभ पहुंचाया जा सकता है क्योंकि उसका अहं कमजोर हो जाता है अपनी स्थिति बड़ी ही शोचनीय लगती है। उसका जीवन अंधकरपूर्ण तथा नीरस लगता है। कार्यकर्ता को सबसे पहले रोगी में विश्वास उत्पन्न करना चाहिए कि वह सांवेगिक समस्याओं के अतिरिक्त किसी भी शारीरिक रोग से पीड़ित नहीं है। उसको किसी भी प्रकार का न तो स्थायी और न ही अस्थायी मानसिक तथा शारीरिक क्षति हुई है। उसका जीवन सामाजिक तथा सांवेगिक कारकों के कारण कष्टप्रद हो गया है और यदि वह स्वयं प्रयास करे तो उन कारकों को दूर करके जीवन को दूसरों से अधिक

सुखदायक बना सकता है। यद्यपि इस प्रकार का पुनर्आश्वासन रोगी को किसी प्रकार का उपचार नहीं करता है परन्तु भविष्य के उपचार में असीम सहायता करता है। रोगी का उपचार में सहयोग करना आवश्यक होता है और यह सहयोग आश्वासन तथा प्रोत्साहन के द्वारा ही प्राप्त किया जा सकता है।

रोगी को पूर्णतया ज्ञात होना चाहिए कि उसकी कठिनाइयों का समाधान उसकी जीवन की समस्त समस्याओं को समझ कर ही किया जा सकता है। उसको विश्वास होना चाहिए कि कार्यकर्ता जो भी जानना चाहता है उसका सम्बन्ध उपचार से ही है। जब तक उसमें यह विश्वास नहीं उत्पन्न होता है तब तक वह वास्तविक समस्या नहीं स्पष्ट करता है। कार्यकर्ता का यह कार्य होता है कि वह रोगी में विश्वास उत्पन्न करे कि उसको औषधि का उपयोग किसी भी दशा में लाभदायक नहीं हो सकता है क्योंकि उसकी कठिनाई का कारण शारीरिक कारण नहीं है। रोगी को अपने वास्तविक तथा अवास्तविक वातावरण का ज्ञान होना चाहिए। उसको अपनी भूमिकाओं तथा अधिकारों का उचित ज्ञान कराना चाहिए जिससे उसको मालूम हो सके कि उसमें कहाँ पर अपने कर्तव्यों का पालन ठीक प्रकार से नहीं किया है जिससे कठिनाई उत्पन्न हो गयी तथा उसका समायोजन बिगड़ता चला गया।

(3) भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति

रोगी को जब विश्वास हो जाये कि उसकी व्याधि का कारण शारीरिक न होकर सांवेगिक है तो भावनाओं की स्वतंत्र अभिव्यक्ति में उसकी सहायता करनी चाहिए। रोगी अपने प्रारम्भिक जीवन से लेकर आज तक की समस्त घटनाओं का वास्तविक चित्रण करें। वह स्पष्ट करे कि उसका बचपन, विद्यार्थी जीवन, वैवाहिक जीवन तथा कार्य समायोजन किस प्रकार का रहा है। उसको किस प्रकार की समस्याओं का सामना करना पड़ा है तथा उनका किस प्रकार निराकरण किया है। उसकी स्वतंत्र अभिव्यक्ति से यह स्पष्ट हो जायेगा कि उसका समायोजन बचपन से ही दुर्बल रहा है। उसको विद्यार्थियों तथा अध्यपकों से सामान्य संबंध स्थापित करने में कठिनाई हुई है, मित्रों से कभी अधिक निभी नहीं है तथा माता–पिता व भाई–बहनों से समायोजन बड़ा ही अप्रत्याशित रहा है। इन सभी क्षेत्रों में उसे सदैव अनावश्यक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा है। उसके वर्तमान संबंध भी अवास्तविक तथा विश्रंखलित हैं क्योंकि वह दूसरों से न तो संबंध बनाये रख सकता है और न उन पर विश्वास कायम रख पाता है। उसकी मित्रों की संख्या बहुत ही कम है। खेलकूद के प्रति उसको बिलकुल रुचि नहीं है।

साधारणतया जब रोगी अपनी भावनाओं तथा अनुभवों की अभिव्यक्ति करता है तो उसे अपनी कठिनाइयों की वास्तविक स्थिति का बोध नहीं होता है। कार्यकर्ता को भी अपने अनुभव से पता चल जाता है। रोगी को उस बिन्दु का ज्ञान धीरे–धीरे होता है क्योंकि कार्यकर्ता वार्तालाप के बीच–बीच में वास्तविक अभिव्यक्ति के लिए सहायता एवं प्रोत्साहन देता है। रोगी कभी–कभी अपनी भूमिका निभाने में अपने को असमर्थ पाता है। ऐसी अवस्था में कार्यकर्ता रोगी की सहायता करता है। उसको समझाता है कि किस प्रकार वह अपनी भूमिका अदा करे जिससे समस्याओं का सामना न करना पड़े।

(4) उत्साह प्रेरक सहायता

रोगी को न केवल मौखिक सहायता की आवश्यकता होती है बल्कि उसे ऐसे प्रयत्नों की भी माँग होती है जो उसकी समस्याओं को समाधान करने में महत्वपूर्ण सिद्ध हो सके। कार्यकर्ता का उद्देश्य होता है कि वह पहले तो रोगी को समस्या समझने का अवसर दे तदोपरान्त उसे भूमिका निभाने के लिए कहे तथा आवश्यक निर्देशन, सुझाव तथा सहायता दें। यह पाया गया है कि अधिकांश मनोस्नायु विकृति के रोगी क्रियाओं का स्थगन असफलता एवं चिंता के भय से कर देते हैं। परन्तु जब उन्हें कार्यकर्ता की योग्यता एवं क्षमता में विश्वास हो जाता है एवं उसे वे अपना हितकर समझते हैं तो उसकी इच्छा को पूरा करने के लिए उत्तरदायी कार्य को करना प्रारम्भ कर देते हैं। रोगी को धीरे–धीरे अपनी स्थिति का ज्ञान होने लगता है। उसको आभास होने लगता है कि उसे बालकों से ऐसा व्यवहार नहीं करना चाहिए, अपने ऊपर नियंत्रण रखना चाहिए तथा परिपक्व तरीकों का उपयोग समस्या समाधान में करना चाहिए। रोगी कार्यकर्ता की सहायता से यह अनुभव करने लगता है कि यदि वह अपनी बुद्धि, क्षमता, ज्ञान, कौशल आदि का उचित उपयोग करे तो समस्या का समाधान हो सकता है तथा मानसिक सुरक्षा प्राप्त की जा सकती है। कार्यकर्ता रोगी को जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में समायोजन स्थापित करने में सहायता करता है जिससे वह अपने अहं को सुदृढ करके सामान्य स्थिति में ले आता है।

(5) रचनात्मक सहायता एवं उसकी पुनरावृत्ति

चिंता मनोस्नायु विकृति के रोगी को अधिक समय तक सहायता की आवश्यकता होती है क्योंकि यह एक ऐसा रोग है जो जल्दी ठीक नहीं होता है। रोगी सामान्य स्थिति में आने में काफी समय लेता है। अतः रोगी तथा कार्यकर्ता दोनों के लिए अधिक धैर्य, समय तथा प्रयत्नों की आवश्यकता होती है। वह जब

अपनी कठिनाइयों को सुलझाने में कष्ट अनुभव करता है तो कार्यकर्ता का उत्तरदायित्व होता है कि वह ऐसी अवस्था में रोगी की सहायता करे। अतः उसे ऐसे संबंध बनाने पड़ते है जिससे समर्थी कर्ता का विश्वास करें और आवश्यकता पड़ने पर सहायता की माँग करे।

(6) भावनाओं का हस्तातंरण

जब कार्यकर्ता रोगी से संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करता है तो रोगी सबसे पहले अपनी मानसिक विशेषता के कारण संबंध स्थापित करने के बजाय अपनी कठिनाइयों को उसके ऊपर थोपता है। जिन भावनाओं से उसको कष्ट मिलता है उनको कार्यकर्ता के प्रति प्रकट करता है। उदाहरण के लिए जिस व्यक्ति का आफिस में उचित सामन्जस्य न होने के कारण चिंता व्याप्त हो जाती है वह उस उग्र भावना का हस्तातंरण करता है। परन्तु कार्यकर्ता की स्थिति पूर्ववत् रहती है। इससे रोगी को आभास होने लगता है कि कार्यकर्ता का व्यवहार उसके आफिसर ऐसा नहीं है अतः उसे ऐसी भावनायें नहीं प्रकट करनी चाहिए थीं। धीरे–धीरे उसको वास्तविकता का ज्ञान हो जाता है।

मनोस्नायु विकृति के उपचार में प्रायः वे ही तरीके उपयोग में लाये जाते हैं जो अन्य मनोवैज्ञानिक दशाओं में प्रयोग किये जाते हैं। परन्तु यहाँ पर कुछ विशेष प्रकार के व्यवहार की आवश्यकता होती है–

1. कार्यकर्ता तथा रोगी में संबंध इस प्रकर से स्थापित हो जिससे रोगी कार्यकर्ता पर पूरा विश्वास करे तथा उसके सुझावों को माने।

2. वार्तालाप का विषय वहीं हो जो रोगी चाहता है।

3. अचेतन कारकों का उपयोग वार्तालाप में नहीं होना चाहिए। वार्तालाप का रूख रोग के अनुकूल हो।

4. रोगी अपनी समस्याओं को भलीभाँति समझ ले तथा उपचार में सहायता करें।

9

वातोन्माद सम्बन्धी मनोस्नायुविकृति

वातोन्माद (Hysteria) शब्द ग्रीक भाषा के हस्टरा (Hystera) से निकला है जिसका तात्पर्य गर्भाशय से है। हिपोक्रेटस तथा अन्य ग्रीक विचारकों में यह धारणा थी कि यह रोग महिलाओं में पाया जाता है। इस रोग की उत्पत्ति लैंगिक व्यवधान विशेषकर निराशाजन्य गर्भाशय के इधर उधर घूमने से होता है। गर्भाशय में यह व्यवधान स्त्री की लैंगिक सम्बन्ध स्थापन की इच्छा बच्चे उत्पन्न करने की लालसा की असुरक्षा एवं निराशा के कारण उत्पन्न होता है। हिपोक्रेटस ने रोग को दूर करने के लिए विवाह को एक उत्तम तरीका बताया है।

फ्रायड ने वातोन्माद सम्बन्धी सिद्धान्त को प्रगतिशील बनाया तथा लैंगिक कठिनाई सम्बन्धी विचारों को एक नया रूप दिया। फ्रायड ने वातोन्माद को रूपान्तिरित वातोन्माद कहकर इसके लक्षणों को स्पष्ट किया। उनके विचार से उन्माद का कारण लैंगिक शक्ति दमन है। इसके कारण मनोलैंगिक संघर्ष होता है और वह संघर्ष शारीरिक व्यवधान अथवा रोग के रूप में प्रकट हो जाता है। उदाहरण के लिए हस्थ मैथुन (Masturbation) से सम्बन्धित लैंगिक संघर्ष की समस्या हाथ के पक्षाघात (Paralysis) होने से समाधान हो जाता है। यह रूपान्तर चेतन रूप में ही नहीं होता है जिसके कारण रोगी को इन लक्षणों के अर्थ का ज्ञान नहीं रहता है।

वातोन्माद दो प्रकार का होता है : (1) रूपान्तरित (2) विघटित।

रूपान्तरित वातोन्माद

समयकालीन मनोव्याधिकीय शास्त्र में रूपान्तरित वातोन्माद की व्याख्या फ्रायड के लैंगिक संघर्ष या अन्य मनोवैज्ञानिक समस्याओं का शारीरिक लक्षणों में 'रूपान्तर' शब्द के आधार पर नहीं की जाती है। व्यक्ति इसके द्वारा तनावपूर्ण स्थिति (Stressful situation) को दूर करता है तथा अपना बचाव करता है।

प्रथम विश्व युद्ध में रूपान्तरित वातोन्माद की प्रतिक्रियायें सामान्य रूप से सैनिकों में उत्पन्न हो गयी थी क्योंकि स्वीकार तिरस्कार संघर्ष (Approach-

avoidance conflict) अत्यन्त कठिन तथा विषम हो गया था। युद्ध में भाग लेने से सैनिक आदेशों का उलंघन परिणाम स्वरूप कोर्ट मार्शल होना भी उतना ही सत्य था। अतः अधिकांश सैनिकों में रूपान्तरित वातोन्माद के लक्षण उत्पन्न हो गये थे। उनमें या तो हाथ में पक्षाधात हो गया था या रीड ही हड्डी में अत्यधिक पीडा उत्पन्न हो गयी थी। इस प्रकार ये सैनिक कायर की उपाधि से बच गये थे तथा कोर्ट मार्शल का भय दूर हो गया था।

1–रूपान्तरित वातोन्माद की परिभाषा

रूपान्तरित वातोन्माद में शारीरिक कार्यों में अचेतन तथा विकृत रूप में लक्षणात्मक परिवर्तन हो जाता है जिससे पूर्वदमित अन्तर्मूल प्रवृतियों की अभिव्यक्ति होती है।[1] इस अवस्था में रोगी में बिना किसी शारीरिक व्याधिकी के शारीरिक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। इसमें मानसिक संघर्ष शारीरिक लक्षणों में रूपान्तरित हो जाते हैं। शारीरिक एवं मानसिक दोनों प्रकार के लक्षण यद्यपि साथ साथ प्रकट होते हैं परन्तु कुछ तो विलीन हो जाते हैं परन्तु कुछ बराबर बने रहते हैं। शरीर के किसी अंग में लकवा मार जाता है जिसके कारण वह अंग कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। परन्तु इसका कोई शारीरिक व्यवधानात्मक कारण नहीं होता है। रूपान्तरण में रोगी अंधा हो सकता है, बहरा हो सकता है, चेतना शून्य हो सकती है, पीड़ा एवं संवेदना लुप्त हो सकती है अथवा अन्य शारीरिक विकृतियाँ प्रकट हो सकती हैं। लकवा की स्थिति में वह चलने फिरने में असमर्थ हो जाता है। कभी कभी मूर्च्छा भी आती है।

एलेक्जन्डर के मतानुसार रूपान्तरित वातोन्माद में शारीरिक संरचना में जो व्यवधान उत्पन्न हो जाते हैं वे ऐच्छिक स्नायु संस्थान द्वारा नियंत्रित होते हैं तथा सांवेगिक समाधान के रूप में प्रतिनिधित्व करते हैं।[2]

फेयर बाइरन[3] (Fairbairn) के विचार से यह एक सुरक्षात्मक प्रविधि है जिसके द्वारा सांवेगिक संघर्ष के चेतनात्मक अनुभवों को रोका जाता है।

---

1. फैनिचल, ओटो — दि साइकोएनालिटिक थियरी आफ न्यूरोसिस, केगल पाल एण्ड कं0 लण्डन, 1946, पृ0 216
2. एलेक्जेण्डर, एफ0 — साइकोसोमेटिक मेडिसिन, नार्टन, न्यूयार्क, 1950, पृ0 42–43
3. फेयर वाइरन, डब्लू0 आर0 डी0 — आबजरवेशन्स आव दि नेचर आफ हिस्टीरिक स्टेन्स, ब्रिटिश जर्नल आफ मैडिकल साइकालाजी 1954, 27, पृ0 105–125

रूपान्तरित वातोन्माद तथा छल परिवर्तन (Malingering) में अन्तर होता है क्योंकि छल परिवर्तन में जानबूझ कर लक्षणों को प्रकट किया जाता है। वास्तविकता वाह्य अभिव्यक्ति में नहीं होती है परन्तु रूपान्तरित वातोन्माद में दमित भावनायें एवं इच्छायें अचेतन रूप से परिवर्तित दशा में प्रकट होती हैं। मनोलैंगिक शक्ति लक्षण निर्माण में परिवर्तित हो जाती है। चोडोफ[4] (Chodoff) के अनुसार छल परिवर्तन एवं रूपान्तरित वातोन्माद एक दूसरे लाभ के लिए की जाती है, दमन बहुत कम होता है। दूसरे प्रकार में द्वितीयक लाभ बहुत कम होता है तथा दमन अधिक होता है।

2—लक्षण

रूपान्तरित वातोन्माद के प्रायः 3 लक्षण होते हैं।

(I) संवेदनात्मक लक्षण

वातोन्माद रोग में जब संवेदनात्मक लक्षण प्रकट होते हैं तो किसी न किसी इन्द्रिय (Senses) में व्यतिक्रम (Disorder) उत्पन्न हो जाता है। इस प्रकार की प्रतिक्रियायें निम्नलिखित प्रकार की होती है :–

(1) संवेदन शून्यता (Anesthesia) : संवेदना का अभाव।

(2) सूक्ष्म संवेदन शून्यता (Aypesthesia) संवेदना का आंशिक अभाव

(3) अति संवेदनशीलता (Hypersthesia) संवेदना का अत्यधिक होना।

(4) दुख संवेदन (Analgesia) पीड़ा की संवेदना का अभाव।

(5) असाधारण संवेदन शून्यता (Paresthesia) विलक्षण संवेदनायें जैसे रोमाँच (Tingling)।

संवेदन शून्यता की अवस्था में किसी भी प्रकार की संवेदनाओं जैसे वेदना, स्पर्श, त्वचा, दृष्टि, श्रवण, इत्यादि में सक्रियता नहीं होती है यद्यपि संवेदनाओं का कार्य बन्द हो जाता है परन्तु किसी प्रकार की गड़बड़ी नहीं उत्पन्न होती है उदाहरण के लिए आँख ठीक होने पर दिखायी नहीं देता है अथवा कान ठीक होने पर सुनायी नहीं देता है। सूक्ष्म संवेदन शून्यता में इन्द्रियों में कुछ व्यवधान अथवा विकार उत्पन्न हो जाता है जैसे कम सुनाई देना, कम दिखाई देना, ऊँचा

---

4. चोडोफ, पी0 — ए रिइक्जामिनेशन आफ सम एसपेक्ट्स आफ कनवर्जन हिस्टीरिया, साइक्याट्री, 1954, 17 पृ0 75—81

सुनना इत्यादि। अति संवेदनशीलता में रोगी को अत्यधिक संवेदना होने लगती है। उसकी इन्द्रियाँ सामान्य से अधिक कार्य करने लगती है। कभी–कभी रोगी को शारीरिक पीड़ा होने पर भी उसे अनुभव नहीं होता है जिसे दुख संवेदन शून्यता (Analgesia) कहते हैं। आसाधारण संवेदनशून्यता की अवस्था में कभी–कभी इंद्रियों में विकृति उत्पन्न होती है और व्यक्ति विलक्षण संवेदनायें करता है।

(II) गामक लक्षण

वातोन्मादिक गत्यात्मक विकृति में आंगिक विकार न होने पर भी आंगिक व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। इस श्रेणी में अनेक आंगिक व्यवधान आते हैं परन्तु उनमें से निम्नलिखित विशेष रूप से उल्लेखनीय हैं:–

(1) पक्षाघात (Paralysis) : इसमें रोगी के किसी अंग को पक्षाघात या लकवा मार जाता है। इस कारण वह अपने उस भाग को हिलाने–डुलाने में असमर्थ हो जाता है। प्रायः यह पक्षाघात शरीर के किसी एक अंग में होता है परन्तु किस अंग में होगा वह परिस्थिति पर निर्भर होता है। उदाहरण के लिए लेखक की ऐठन, (Writer's Cramp) में व्यक्ति हाथ से लिख तो नहीं सकता है परन्तु ताश खोलने तथा बाजा बजाने में उसका उपयोग कर सकता है।

पक्षाघात में कम्पन (Tremors) तथा स्पन्दन के लक्षण विशेष रूप से प्रकट हो जाते हैं रोगी के शरीर में कम्पन्न होने लगता है। वह कभी आँखे नचाता है, कभी मुंह सिकोड़ता है, कभी सर हिलाता है, कभी होठ काटता है, और कभी पाँव हिलाता है। परन्तु इन क्रियाओं के विषय में अनिभिज्ञ रहता है। कभी–कभी जोड़ों में ऐंठन हो जाती है जिसके कारण वह अंग जकड़ जाता है। अंग सिकुड़ भी जाते हैं। इस प्रकार रोगी पक्षाघात तथा सिकुड़न (Contractures) से चलने में असमर्थ हो जाता है। कभी–कभी रोगी चलने–फिरने में असमर्थ होता है या जब चलता है तो लंगड़ा कर या विचित्र आकृति बनाकर चलता है परन्तु बैठने अथवा लेटने पर वह अपने पाँवों पर पूरा नियंत्रण रखता है (Astasia-Abasia)।

(2) वाक्य शून्यता (Aphoria) तथा गूंगापन (Mutiasm) : वाक्यशून्यता की स्थिति में रोगी केवल फुसफुसाकर (Whispering) बात करने में समर्थ होता है परन्तु गूँगा हो जाने पर वह कुछ भी नहीं बोल पाता है। परंतु जो व्यक्ति फुसफुसाकर बात करने के योग्य रहता है उसको सामान्य तरीके से खाँसी आती है। रूपान्तरित वातोन्माद में वाक्यशून्यता के लक्षण सामान्य रूप से रोगी में प्रकट हो जाते हैं। गूँगापन बहुत ही कम इन रोगियों में देखने को मिलता है।

(III) विसरल लक्षण

इन लक्षणों में अनेक विकृतियाँ आती हैं जैसे सर दर्द, गले में सूजन (Lump in Throat) गला घुटने की अनुभूति (Choking sensation), गले में सरसराहट, साँस लेने में कठिनाई, अति ठंढक की अनुभूति, डकारना (Belching) जुकाम, कै होना (Vomitting) आदि। कभी–कभी हिचकी तथा छीकें (Hiccoughing and Sneeczing) भी आने लगती है।

रूपान्तरित प्रतिक्रियायें अविश्वसनीय सीमा तक वास्तविक रोग के लक्षणों को उत्पन्न कर सकते हैं। वातोन्माद तीव्र ऐपेन्डीसाइटिस में रोगी न केवल पेट के निचले भाग में दर्द अनुभव करता है तथा दूसरे सम्बन्धित लक्षण प्रकट होते हैं बल्कि उसका बुखार भी सामान्य से अधिक बढ़ जाता है। इसी प्रकार मलेरिया तथा क्षयरोग के बिना भी वास्तविक शारारिक कारण हुये लक्षण प्रकट हो जाते हैं। इन सभी शारीरिक विकारों का मनोवैज्ञानिक कारण होता है। ये लक्षण या विकार विषम मनोवैज्ञानिक परिस्थिति में उत्पन्न हो जाते हैं जिससे रोगी की रक्षा होती है।

3– वातोन्मादिक व्यवधान (Hysterical disturbances) तथा शारीरिक व्यवधान में अन्तर

निम्नलिखित आधारों पर यह अन्तर स्पष्ट किया जा सकता है कि कौन सी अवस्था वातोन्मादिक है और कौन सी नहीं है :–

(1) वातोन्मादिक रोगी अपनी चिन्ता अथवा निराशा को उस विषमता के साथ नहीं प्रकट करता है जितना कि वास्तविक रोगी। उदाहरण के लिए पक्षाघात वास्तविक होने पर रोगी बहुत चिन्तित तथा व्याकुल हो जाता है।

(2) यदि रोग के लक्षण स्थायी रूप से कार्य में व्यवधान उत्पन्न करते हैं तो वास्तविक लक्षण होते हैं।

(3) लक्षणों से कार्य व्यवधान की प्रकृति चयनात्मक होती है। उदाहरण के लिए वातोन्मादिक व्यवधान में एक पक्षाघात अंग किसी एक कार्य में ठीक कार्य करता है तथा दूसरा कार्य करने में असमर्थ हो जाता है। वातोन्माद ऐंठन रात में सोने पर समाप्त हो जाती है।

(4) सम्मोहन विधि (Hyponosis) अथवा निद्रा चिकित्सा द्वारा वातोन्मादिक लक्षणों को प्रायः दूर कर दिया जाता है तो वह बोलने मे अथवा पक्षाघात अंग को प्रयोग करने में समर्थ होता है।

4– कारण

कोलमैन के विचार से वातोन्माद निम्न घटनाक्रम से प्रकट होता है :–

(1) दुखद स्थितियों से दूर जाने की इच्छा।

(A desire to escape from some unpleasant situation)

(2) स्थिति सें बचने के लिए बीमार होने की शीघ्रगामी इच्छा।

(A fleeting wish to be sick in order to avoid the situation)

(3) अतिरिक्त अथवा निरन्तर दबाव के कारण शारीरिक व्याधि के लक्षणों का प्रकट हो जाना।

(Under additional or continued stress, the appearance of the symptoms of some physical ailment.)

व्यक्ति में जो शारीरिक रोग के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं उनका संबंध किसी न किसी पूर्व घटित रोग से रहता है। अर्थात रोगी उस रोग के विषय में जानता अवश्य है चाहे रोगी होने के कारण जानता हो या कहीं से सुन रख हो। शारीरिक लक्षणों तथा मनोवैज्ञानिक दबाव एवं तनाव के पारस्पिरिक सम्बन्ध क विषय में अधिक जानकारी यद्यपि नहीं प्राप्त हो सकी है परन्तु विभिन्न अध्ययनों से यह पता चला है कि अनेक शारीरिक क्रियाओं को व्यक्ति नियंत्रित में मनोवैज्ञानिक विधि का प्रयोग करके कर सकता है। लेसी[5], लांग[6], लेसिग और मिलर ने अपने अध्ययन में पाया कि रक्त चाप (Blood pressure) ह्रदयगति (Hear rate) गुर्दा का कार्य (Kidney function) तथा रक्त बहाव (Blood flow) को पुष्टीकरण तरीकों (Reinforcement procedures) द्वारा बदला जा सकता है।

निम्नलिखित कारक वातोन्माद (रूपान्तरित) को उत्पन्न करने में सहायता देते हैं :

---

5. लेसी (Lacey) जे0 आई0 — सोमैटिक रिसपान्स पैटरिनिंग ऐण्ड स्ट्रेंस, इन एम0एच0 आपले आर ढमबल (35) साइकोलोजिकल स्ट्रेस इसूज इन रिसर्च, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्ट्स न्यूयार्क, 1967, पृ0 14–37

6. लांग, पी0जे0 एण्ड अदर्स — इफेक्ट्श आफ फीडिक ऐण्ड इन्सट्रक्शनल सेट आन दि कन्ट्रोल आफ कारडिक रेट वेरियो–विलिटी, जर्नल आफ एक्पेरिमेंटल साइका–लोजी, 1967, 75, पृ0 425–431

(1) व्यक्तित्व तथा भूमिका

हम में से सभी किसी न किसी समय अवश्य ही समस्या के समाधान करने अथवा परिस्थिति से दूर रहने के लिए बीमारी का बहाना बना लेते है। प्रायः यह कहते सुना जाता है कि यह कार्य करने का मेरा मन नहीं चाह रहा है। यह एक प्रकार का बहाना है। रूपान्तरित वातोन्मादिक व्यक्ति अपनी दिन प्रति–दिन की समस्याओं को समाधान करने के लिए यही तरीके अपना लेता है और शारीरिक कष्ट की शिकायत करता है। परन्तु जो व्यक्ति रोगी की भूमिका (Sick role) अपनाता है वह अपनी सामाजिक भूमिका अदा करने में तथा जीवन पद्धति में विषम कठिनाइयों का सामना करता है। जार्डन (Jordan) तथा केम्पलर (Kempler)[7] ने महिलाओं में वातोन्माद के कारणों का अध्ययन किया और पाया कि इन रोगियों में लैंगिक भूमिका मुख्य एवं प्रभावकारी कारक होता है। रोगी यद्यपि लैंगिक सम्बन्धों की भूखी होती है परन्तु वास्तविक सम्बन्ध स्थापन स्थिति में उसमें उत्तेजना नहीं उत्पन्न होती है। रूपान्तरित वातोन्माद का रोगी अति–निर्देशनशील तथा नाटकीय होता है। वह जिस परिस्थिति को नहीं पसन्द करता है, उसको नहीं समझता है। वह दूसरों की मदद तथा सहानुभूति चाहता रहता है।

यहाँ पर एक विवाहित 32 वर्षीय वातोन्मादिक महिला से वार्तालाप का कुछ अंश पस्तुत कर रहे हैं जिससे रूपान्तरित वातोन्माद के रोगी के व्यक्तित्व की झलक मिलती है। यह महिला मानसिक शक्तिहीनता, विषाद, सर दर्द, मासिक धर्म की विषम रूकावट के कारण चिकित्सालय में भर्ती की गई थी।

रोगी : (कार्यकर्ता से) क्या आप जानते हैं कि मैं किस कारण परेशान हूं?

कार्यकर्ता : (शान्त रहता है)

रोगी : मैं नहीं जानती हूं कि मैं यहाँ क्यों आयी हूं? मैं यहाँ निरंतर कई महीनों से आ रही हूं और हमारी दशा निरन्तर खराब होती जा रही है। मेरा सर दर्द निरन्तर बढ़ता जा रहा है (सर पकड़ लेती है) तथा निराशा बढ़ गई है।

(वास्तव में रोगी ने कुछ ही महीनों से चिकित्सालय में उपचार हेतु आना प्रारम्भ किया था)

कार्यकर्ता : चुपचाप सुनता है।

---

7. जार्डन, वी0 एण्ड केम्पलर, वी0 — हिस्ट्रीरिकल पर्सनाल्टी, जर्नल आफ अवनारमल साइकोलोजी, 1970, 75 पृ0 172–176

रोगी : मैं सोचती हूं कि अब जीना बिलकुल बेकार है जब आप सभी लोग मुझसे बात तक करना नहीं पसन्द करते हैं।

कार्यकर्ता : मैं यह सोचता हूं कि जब मैं कोई प्रत्युत्तर नहीं करता हूं तो आप अधिक बीमार अनुभव करती हैं।

रोगी : (गुस्से में) क्या मैं इतनी पागल हूं। आप लोग कुछ भी नहीं जानते हैं। मैं अपनी परिस्थितयों के कारण ऐसा व्यवहार कर रही हूं।

कार्यकर्ता : आपको कुछ भी परेशानी नहीं है और जीवन में विषम स्थितियाँ भी नहीं आयी हैं।

रोगी : आपको क्या पता ? मेरा पति मुझसे प्रेम नहीं करता है। वह लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने में असमर्थ है। अतः सदैव दूर रहने का प्रयत्न करता है और उपेक्षा भी करता है।

प्रायः व्यक्ति का जब सामाजिक संतुलन विषम रूप से बिगड़ जाता है, तीव्र असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है, अपराध की भावना जाग्रत हो जाती है तथा लैंगिक विकृति हो जाती है तो वातोन्माद के रोग का विकास होता है।

(2) अनुपयुक्त पारिवारिक शासन व्यवस्था

जब परिवार का नियंत्रण अत्यन्त दबावपूर्ण होता है तो कभी–कभी व्यक्ति विषम परिस्थितियों से बचने के लिए अचेतन रूप में इस प्रकार की प्रतिक्रियायें करता है। निम्नलिखित उदाहरण से यह कथन स्पष्ट हो जाता है। एक 27 वर्षीय महिला चिकित्सालय में वाक्यशून्यता (Aphoria) के कारण कान, आँख तथा गले के विभाग से मानसिक चिकित्सालय को संदर्भित की गई थी। क्योंकि वहाँ पर विभिन्न परीक्षणों से भी कोई शारीरिक कारण नहीं प्राप्त हुये थे। यहाँ पर जब इसका पारिवारिक इतिहास ज्ञात किया गया तो पता चला कि इसका लालन–पालन कठोर तथा नियंत्रित परिवार में हुआ था। वह अकेली संतान थी और माता–पिता का उस पर कठोर नियंत्रण था। रोगी को वे बहुत प्यार करते थे परन्तु उसको स्वतंत्र कार्य करने की जरा सी भी छूट नहीं थी। वे उसका घर से बाहर जाना बिल्कुल नहीं पसंद करते थे। रोगी अधिकांशतः अपने बचपन तथा शैशव काल में माता–पिता के साथ ही रही थी। वह पढ़ने में दक्ष एवं तेज थी जिसके कारण उसने स्नातक की उपाधि प्रथम श्रेणी में प्राप्त की थी। कुछ समय बाद माता–पिता की इच्छा से एक फर्म में काम मिल गया था। वहाँ पर वह अपनी कुशलता तथा ईमानदारी से कार्य करने लगी थी। परन्तु इसी बीच फर्म के किसी व्यक्ति से उसका प्रेमालाप चलने लगा था। फर्म मैनेजर को जब यह मालूम हुआ तो उसने मना किया और नैतिकता की शिक्षा

दी। रोगी की इच्छा हुई कि वह इस विषय में अपने विचार स्पष्ट करे तथा प्रतिवाद करे। परन्तु उसमें इतना साहस न हो पाया क्योंकि मैनेजर को वह पिता के समान मानती थी। अतः उसने न बोलना ही अति उत्तम समझा। इस प्रकार संघर्ष की अभिव्यक्ति वाक्यशून्यता के रूप में हो गई थी।

(3) दबावपूर्ण परिस्थितियों से दूर जाने अथवा सुरक्षात्मक यंत्रों के उपयोग की प्रवृति

रूपान्तरित वातोन्माद का रोगी दबावपूर्ण स्थितियों से या तो दूर भागने का प्रयत्न करता है या फिर सुरक्षात्मक तरीके अपनाता है जिससे उस स्थिति से बचा जा सकता है। विश्व युद्ध के समय अनेक सैनिकों ने इस सुरक्षात्मक यंत्र का उपयोग किया था। युद्ध की विभीषिका से बचने के लिए काफी संख्या में सैनिक अंधे, बहरे, लंगडे आदि हो गये थे। इससे उनके आत्म शक्ति भी बनी रही थी और विषम परिस्थिति भी दूर हो गयी थी। आर्थर पी0 नोईस[8] एक नर्तकी (dancer) का उदाहरण इस संदर्भ में बहुत ही उपयुक्त दिया है। यह नर्तकी सेना में जाने पूर्व किसी सरकस में नृत्य करती थी परन्तु बाद में सेना में ले ली गई। यहाँ पर उसे अनुशासन बहुत ही कठोर लगा। कार्य करने के तरीके कष्टप्रद महसूस हुये तथा बहुत ही नीरस अनुभव होने लगा। उसने अपनी पूरी कोशिश की कि किसी प्रकार से पूर्ववत् कला का प्रदर्शन करती रहे परन्तु दिनोदिन उसके लिए ऐसा करना अतिदुष्कर होता चला गया। सेना से जाना इसलिए नहीं चाहती थी क्योंकि आत्मअवमूल्यन का भय था और रहना इसलिए नहीं चाहती थी क्योंकि उसे यहाँ नीरसता लगती थी। इस प्रकार उसमें दो विराधो संप्रेरणायें संघर्ष करने लगीं। दुःखदायी सांवेगिक संघर्ष कुछ समय उपरान्त वातोन्मादित यंत्र (Hysterical Mechanism) में परिवर्तित हो गया तथा वह पक्षाघात की शिकार हो गई।

विषम इच्छाओं तथा प्रवृतियों की सुरक्षा के लिए भी रूपान्तरित प्रक्रियायें उत्पन्न हो जाती हैं। अब्से[9] (Abse) ने एक मघ्यम आयु के एक पुरूष का उदाहरण दिया है जो पूर्णरूप से पावों में पक्षाघात का शिकार हो गया था। यह अवस्था उस समय हुई थी जब उसकी पत्नी उसको छोड़कर किसी अन्य व्यक्ति

8.	नाइस, आर्थर पी0	ए टेक्सटबुक आफ साईक्याट्री, दि मैकमिलन कं0 न्यूयार्क, 1936 पृ0 188
9.	आब्से, डी0 डब्ल्यू0	हिस्टीरिया, इन एस अरीटी (इड) अमेरिकन हैण्डबुक आफ साईक्याट्री वालूमर, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, 1959, पृ0 272—292

के साथ चली गई थी। उसमें पत्नी तथा उसके प्रेमी को मार डालने की तीव्र इच्छा थी।

(4) आत्मदण्ड तथा अपराधी भावनायें

अपराधी भावनायें तथा आत्मदण्ड की आवश्यकता के कारण भी रूपान्तरित लक्षण व्यक्ति में उत्पन्न हो जाते हैं। उदाहरण के लिए एक 24 वर्षीय युवक को दाहिने हाथ का पक्षाघात, अपने पिता को दाहिने हाथ से मारने तथा कपड़े फाड़ने की घटना के बाद से हो गया था। वह युवक पिता का यद्यपि आज्ञाकारी था परन्तु संवेग में आकर उसने ऐसा काम किया जिसके कारण उसमें अपराध की इतनी प्रबल भावना विकसित हो गई कि उसने आत्मदण्ड देना ही उचित समझा।

(5) वास्तविक रोग अथवा आघात से द्वितीयक लाभ

कभी–कभी द्वितीयक लाभ होने की अवस्था में भी रूपान्तरित लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और शारीरिक रोग के लक्षण दिखलाई देने लगते हैं। उदाहरण के लिए यदि निमोनिया के रोगी को रोग की अवस्था में अत्यन्त दुखद व्यवसायिक उत्तरदायित्वो से छुटकारा मिलता है तथा दूसरों की सहानुभूति तथा प्रेम भी प्राप्त होता है, तो अचेतन रूप से वह काफी समय तक कार्य करने में असमर्थ रहता है। जब व्यक्ति को आर्थिक क्षतिपूर्ति की आशा रहती है तो किसी दुर्घटना अथवा आघात होने की अधिक संभावना रहती हैं। यह प्रतिक्रियायें वास्तविक साधारण घटना के बाद प्रायः होती है। जब वह सोचता है कि यदि उसको विषम आधात लगता तो आर्थिक क्षतिपूर्ति होने की अधिक संभावना थी। परिणामस्वरूप उसकी स्थिति विषम हो जाती है।

रूपान्तरित वातोन्माद की उत्पत्ति का कोई भी कारण क्यों न रहा हो परन्तु रूपान्तर की अवस्था चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थिति से दूर भागने अथवा चिंता को कम करने के लिए उत्पन्न होती है। इस प्रकार असहनीय सांवेगिक समस्यायें शारीरिक रोग में परिवर्तित हो जाती हैं।

वातोन्मादिक मनोस्नायु विकृति : विघटन प्रकार (Dissociative Type)

रूपान्तरित वातोन्माद की भाँति ही विघटन प्रकार में भी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए पलायन की अवस्था होती है। वह इस प्रकार का व्यवहार करता है जिससे उसे व्यक्तिगत उत्तरदायित्व से मुक्ति मिलती है। विघटन (Dissociative) प्रकार के वातोन्माद में स्मृति ह्रास (Amnesia) आत्मविस्मृति (Fuge state) निद्रा भ्रमण (Somnambulism) मूर्छा (Fits) आदि के लक्षण प्रकट होते हैं।

स्मृति लोप तथा आत्मस्मृति
(Amnesia and Fuge State)

स्मृति लोप का तात्पर्य पूर्व अनुभवों का आंशिक अथवा पूर्णरूप से भूल जाना है। रोगी अपने पूर्व अनुभवों को आंशिक या पूर्ण रूप से याद नहीं कर पाता है। यह स्थिति मनोस्नायुविकृति, मनोविकृति, मस्तिष्क आघात आदि अनेक विकारों में उत्पन्न हो जाती है। जब मस्तिष्क आघात के कारण स्मृतिलोप होता है तो वास्तव में ध्यान (Retention) शक्ति असफल हो जाती है। इस अवस्था में स्मृति भंडार में कोई सूचना पहुँचती ही नहीं है। मनोजैवकीय स्मृतिलोप में सूचना स्मृति भंडार तक पहुंचती अवश्य है परन्तु उसे याद करने में असफलता होती है। अचेतन स्तर से चेतन स्तर में आने में बाधा उत्पन्न होती है क्योंकि सम्मोहन (Hypnosis) की अवस्था में रोगी की स्मृति वापस आ जाती है।

आत्म पलायन की अवस्था स्मृतिलोप की अवस्था की विषम स्थिति होती है। इस स्थिति में वास्तविक पलायन होता है। रोगी घर छोड़कर घंटों, दिनों, सप्ताहों अथवा महीनों बाहर घूमता रहता है। उसको पता नहीं रहता है कि वह किस समय कैसे तथा क्यों घर से बाहर रहा है। यद्यपि उसका कोई उद्देश्य बाहर जाने का नहीं होता है परन्तु वह सभी कार्य सावधानी से करता है।

आत्मविस्मृति की अवस्था में वह सिनेमा देखने से लेकर अन्य स्थानों के भ्रमण तक भी कर लेता है। वह अपना व्यवसाय भी इसी स्थिति में बदल लेता है। इसके अतिरिक्त अनेकों अप्रत्याशित कार्य करता रहता है।

स्मृतित्रास की अवस्था में रूपान्तरित वातोन्माद की अवस्था की भाँति दुखद स्थितियों से दूर जाने अथवा पलायन होने की व्यक्ति की प्रवृति होती है। परन्तु दोनों अवस्थाओं में अन्तर इतना होता है कि रूपान्तरित अवस्था में व्यक्ति बीमार होकर दुखद परिस्थिति से निपटता है जबकि स्मृति ह्रास में व्यक्ति दुखद विचारों को स्मृति में आने से ही रोक लेता है। ऐसा व्यक्ति प्रायः आत्मकेन्द्रित, अपरिपक्व तथा अतिशय निर्देशनशील होता है। उसको ऐसी दुखद परिस्थितियों का सामना करना पड़ता है जिनको समाधान करने का कोई रास्ता नहीं होता है। इसीलिए ओनील तथ केम्पलर[10] का विचार है स्मृति ह्रास से संबंधित होता है जो आत्मा (Self) के लिए असहनीय तथा भयावह होता है।

---

10. ओनील (O, Neill) एम0 एण्ड केम्पलर वी0 — एप्रोच एण्ड एवाइडेन्स रिसपान्सेस दि हिस्टीरीकल पर्सनाल्टी टु सेक्सुअल स्टीमुली, जर्नल आफ एबनारमल साइकोलोजी, 1969, 74, पृ0 300–305

इस अवस्था में व्यक्ति सामान्य व्यवहार करता है तथा अपनी इच्छाओं की पूर्ति के लिए जटिल क्रियायें करता हुआ दिखाई देता है।

बहुभेद व्यक्ति
(Multiple Personality)

वातोन्माद के रोगी में द्वै (Duel) अथवा दो से अधिक व्यक्तित्व प्रकट होते हैं। प्रत्येक प्रकार के व्यक्तित्व में भिन्न–भिन्न संवेग, विचार, व्यवहार तथा व्यक्तिगत गुण होते हैं। व्यक्ति को एक व्यक्तित्व से दूसरे व्यक्तित्व को ग्रहण करने में कभी थोड़ा समय लगता है और कभी अधिक। यह भी संभव है कि वह मिनटों में अपना व्यक्तित्व बदल लेता है और यह भी संभव है कि कई वर्षों में ऐसा करता है। कभी वह चिंताहीन प्रसन्न तथा अतिसामाजिक दिखाई देता है, और कभी शान्त, खिन्न तथा अप्रसन्न दिखाई देता है। व्यक्तित्व बदलने से संबंध का रूप भी बदल जाता है। वह उसी के अनुसार संबंध स्थापित करता है जिस प्रकार का व्यक्तित्व होता है। उसको बिल्कुल याद नहीं रहता है कि पूर्व व्यक्तित्व मे उसकी क्या विशेषतायें थीं। साधारणतया दोनों व्यक्तित्व व्यक्ति में कार्य करते हैं। एक समय में एक व्यक्तित्व शक्तिशाली होता है। वह प्रमुख एवं प्रभावकारी होता है अतः वह चेतन रूप में कार्य करता है। दूसरा अचेतन रूप में कार्य करता है जिसको कि सहचेतन व्यक्तित्व (Co-conscious personality)[11] कहते हैं। द्वैत अथवा बहुव्यक्तित्व का मुख्य कारण संघर्ष स्थिति का अतिशय वर्णन होता है अर्थात् संघर्ष को न दूर करने की अवस्था में दोनों संप्रेरणायें अलग–अलग एक ही समय में व्यक्ति में कार्य करती हैं। जो संप्रेरणा अधिक शक्तिशाली हो जाती है व्यक्ति का तदनुरूप व्यक्तित्व परिवर्तित हो जाता है।

मर्टन प्रिंस[12] (Morton Prince) ने बहु व्यक्तित्व का सबसे अच्छा उदाहरण अपनी पुस्तक दि डिसोसियेशन आफ पर्सनाल्टी में एक युवा महिला का दिया है जिसके 5 व्यक्तित्व थे। वह इन पाँचों अवस्थाओं में अलग–अलग व्यवहार करती थी तथा वैयक्तिक गुण बदल जाते थे।

निद्राचार
(Somnambulism)

विघटन प्रतिक्रिया का निद्राचार एक लक्षण है। यद्यपि नींद में चलने के

11.	कोलमैन, जेम्स सी0	उल्लिखित, पृ0 245
12.	मर्टन प्रिंस	दि डिसोसियेशन आफ पर्सनाल्टी, लागमैन्स, ग्रीन एण्ड कं0, लंदन, 1925

लक्षण बच्चों में विशेषकर पाये जाते हैं परन्तु ये लक्षण किसी भी उम्र में उत्पन्न हो सकते हैं। निद्राचार की अवस्था में व्यक्ति सोते–सोते अपने बिस्तर से उठकर सामान्य कार्य करता है। उसे वाह्य पर्यावरण का ज्ञान रहता है। परन्तु यदि वह जग जाता है तो उसे कुछ भी याद नहीं रहता है। वह अपनी पूर्व स्थिति में भी ऐच्छिक रूप में नहीं आ पाता है। ऐसा व्यक्ति अपने लिए तथा दूसरों के लिए भी बहुत ही खतरनाक होता है। उदाहरण के लिए वह ऊँचे से ऊँचे पेड़ पर बिना खतरा समझे चढ़ जाता है। यदि उस अवस्था में कोई जगा देता है तो वह नियंत्रण तथा संतुलन खो सकता है और नीचे गिर सकता है।

मूढ़
(Stupor)

रोगी पर्यावरण से अपना संबंध कभी–कभी खत्म कर देता है। वह अपने चारों ओर होने वाले कार्यों के प्रति प्रतिक्रिया नहीं करता है। उसकी वाणी में विकार तथा शब्दों के उच्चारण में गड़बड़ी होती है। ऐसा व्यक्ति देखने में अजीबोगरीब लगता है। वह न तो कुछ सुनता है और न ही कोई प्रतिक्रिया करता है।

10

मनोस्नायु दौर्बल्य

मनोस्नायु दौर्बल्य की अवस्था में व्यक्ति को मानसिक व शारीरिक रूप से स्थिर (Chronic) थकान अनुभव होती है। वह अनुभव करता है कि शरीर में शक्ति नहीं है अतः वह किसी कार्य को करने में पूर्णतया असमर्थ है। उसे अनेकों प्रकार की शारीरिक उत्पीड़न तथा पीड़ा (Aches and Pain) अनुभव होती है। मनोवैज्ञानिकों में इस रोग के कारणों तथा लक्षणों के बारे में मतभेद है। ऐतिहासिक दृष्टिकोण के अनुसार मनोस्नायु दौर्बल्य में स्नायु शक्ति क्षीण हो जाती है। अमरीकन मनोवैज्ञानिक वियर्ड[1] (Beard) ने 1905 में इस शब्द का प्रयोग मानसिक थकान के रूप में किया था। उनके विचार से निरन्तर अतिश्रम तथा संघर्ष के कारण स्नायुविक कोष्ठों पर प्रभाव पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप जैवरासायनिक परिवर्तन होते हैं परन्तु इस रोग की उत्पत्ति न तो अतिश्रम करने से होती है और न ही थकान का परिणाम है। इसलिए इसे शारीरिक थकान के बजाय मानसिक थकान के रूप में स्वीकार किया जाता है। विद्वानों का मत है कि यह रोग अतिश्रम के कारण नहीं उत्पन्न होता है बल्कि निरंतर निराशा हतोत्साह तथा कुंठा के कारण सम्प्रेरणा शक्ति में ह्रास होता है जिससे थकान (Listlessness) तथा थकावट उत्पन्न होती है। गिलफोर्ड[2] (Guilford) ने इन कारणों के अतिरिक्त सांवेगिक तनाव पर भी बल दिया है। यह रोग प्रायः युवकों को, मुख्य रूप से युवक महिलाओं को हो जाता है।

1 मनोस्नायु दौर्बल्य की परिभाषा

मनोस्नायु दोर्बल्य मनोस्नायुविकृति का वह प्रकार है जिसमें थकावट का अनुभव, पीड़ा एवं दर्द की प्रबलता होती है। रोगी अत्यधिक थकावट एवं दुर्वलता अनुभव करता है। वातोन्माद की भाँति इसमें अयोग्यताओं का व्यावहारिक

---

1. बियर्ड, जी0 एम0 — ए प्रेक्टिकल ट्रीटाइज आन नर्वस इवजाशन (न्यूरेस्थीनिया) इटस् नेचर सिमटम्स, सीक्वेन्स, ट्रीटमेंट (5th Ed) ई0 वी0 टुरी न्यूयार्क, 1905
2. गिलफोर्ड, जे0 पी0 — पर्सनाल्टी, मौकग्राहिल बुक कं0 न्यूयार्क 1959

प्रदर्शन नहीं होता है। वह द्वितीयक लाभ भी ऐसा व्यवहार करने से नहीं प्राप्त करता है। वह प्रत्यक्षीकृत थकान एवं शारीरिक कष्ट की दशा मे रहता है। उसमें विषादात्मक लक्षण कभी–कभी प्रकट हो जाते हैं। यह रोग प्रायः विषादात्मक गृहपत्नियों की मनोस्नायुविकृति (Neurosis of the frustrated house wives) के नाम से भी जाना जाता है।[3]

मनोस्नायु दौर्बल्य व्यक्ति सदैव शारीरिक व मानसिक थकान से ग्रसित रहता है। वह आत्मकेन्द्रित तथा विषादी होता है। वह सदैव अपने स्वास्थ्य के प्रति चिंतित रहता है चाहे अस्वस्थता के कोई लक्षण प्रकट हों अथवा प्रकट न हों। शरीर के कुछ अंग कष्ट एवं दुःख के लिए विशेष संवेदनशील होते हैं। उसमें सामान्य विचारों की कमी होती है। वह किसी न किसी शारीरिक रोग–अपच, पेटदर्द, सरदर्द, आँखों के सामने झिलमिलाहट, साँस फूलने की शिकायत एवं अति दिल धड़कन आदि की शिकायत होती है।

वास्तविक अर्थ में मनोस्नायुदौर्बल्य कोई रोग नहीं है और न हीं कोई चिकित्सीय लक्षण प्रकट होते हैं। बल्कि रोग के प्रति अथवा रोग की धमकी के विपरीत प्रतिक्रिया करने का एक तरीका है। मनोस्नायु दुर्बलता में कोई भी रोग अथवा किसी रोग के होने का भय होता है।[4]

2 लक्षण

मनोस्नायु दौर्बल्य के रोगी की मुख्य शिकायत अति थकान की होती है। वह आवश्यकता से अत्यधिक थकान महसूस करता है। जिसके कारण वह कोई भी कार्य करने के लिए तैयार नहीं होता है। शरीर के किसी न किसी अंग में वेदना होती रहती है। मानसिक अस्थिरिता हो जाती है। मानसिक थकान तथा भारीपन लगता है। उसको किसी कार्य में रूचि नहीं रह जाती है। उसकी चालक शक्ति क्षीण हो जाती है जिसके कारण व्यक्ति कार्य पूरा करने तक का साहस खो देता है। छोटा कार्य भी उसे अत्यन्त विशाल (Herculean) लगता है। वह सोचता है कि इस कार्य को पूरा करने के लिए बहुत बड़े साहस तथा प्रयत्न की आवश्यकता है। वह अधिकांशतः अपनी थकान को दूर करने के लिए सोने का प्रयत्न करता है तथा अधिकांश समय सोता है परन्तु जगने पर उसे उतनी ही थकान अनुभव होती है।

---

3. नथान, पीटर ई0 तथा — साइकोपैथालोजी एण्ड सोसाइटी, मैकग्राहिल बुक कं0 न्यूयार्क, 1975, पृ0 266
4. क्लीन, डी0 वी0 — (इड) मेंटल हाइजीन, हेनरी होल्ट एण्ड कं0 न्यूयार्क 1956, पृ0 127

रोगी को नींद में भी शांति नहीं मिलती है, क्योंकि गहन निद्रा का उसमें अभाव हो जाता है। जब वह बिस्तर से बाहर निकलता है तो उसे शरीर शक्तिविहीन लगता है। उसे ताजगी बहुत ही कम अनुभव होती है। वह प्रायः सांवेगिक तनाव के कारण अस्थिर रहता है। उसे अनुभव होता है कि उसके व्यवहार की निंदा होती है क्योंकि उसमें किसी कमी के न होने के बावजूद भी अत्यन्त थकान महसूस होती है। उसको महसूस होता है कि उसका सर जकड़कर बाँध दिया गया है। संकल्पशक्ति का ह्रास हो जाता है जिसके कारण अपनी दशा पर रोने के अतिरिक्त वह किसी अन्य विषय पर बात नहीं करना चाहता है। उसके अनकूल परिस्थितियों के होने पर भी उसकी थकान में कमी नहीं होती है।

मनोस्नायु दुर्बलता के रोगी में पाचन शक्ति की गड़बड़ी हो जाती है। उसे भूख नहीं लगती, भोजन अच्छा नहीं लगता है, कुछ हजम नहीं होता तथा खट्टी–खट्टी डकार आती रहती है। भूख बढ़ने के लिए दवाई लेता है, डाक्टर से सलाह लेता है तथा तरह–तरह की जड़ी बूटियों का सेवन करता है।

इन रोगियों को अनेक प्रकार के शारीरिक दर्द रहते हैं। आँखे भारी–भारी रहती हैं, सर चकाराया करता है, जोड़ों में दर्द होता रहता है। पीठ गर्दन तथा पैरों में ऐठन रहती है। ये रोगी कष्ट के विषय में बहुत सतर्क रहते हैं और प्रत्येक मिलने वाले से उसका विस्तार से वर्णन करते हैं। ऐसा करने में उन्हें सांत्वना प्राप्त होती है।

मनोस्नायु दुर्बल व्यक्ति स्वार्थी तथा आत्मलीन होते हैं। वह अपने ही विषय में चर्चा करते है। उसका स्वभाव चिड़िचिड़ा होता है। वे बात–बात में बिगडते हैं, झक्की होते हैं तथा असहयोग की मात्रा दिनोंदिन बढ़ती जाती है। वह इतना आत्मस्वार्थी होता है कि दूसरे व्यक्ति उससे दूर हो जाने का प्रयत्न करते हैं। उनकी संगति से नैराश्य एवं उदासीनता प्रकट होती है

ऐसे व्यक्ति अति संवेदनशील होते हैं साधारण सी बात पर वे बिगड़ जाते हैं। उसे शारीरिक कष्ट भी बात–बात पर होने लगता हैं जरा सी मिर्च की अधिकता होने पर पेट मे जलन होने लगती है, मामूली सी ठंडक से जुकाम हो जाता है, धूप मे निकलने पर सरदर्द होता है। भोजन में मीन–मेख करना उनके लिए साधारण बात होती है।

मनोस्नायु दौर्बल्य की चयनात्मक प्रकृति प्रायः होती है। वह किसी स्थिति में अधिक थकान महसूस करता है और किसी स्थिति में कम। जो कार्य उसे अत्यधिक रुचिकर होता है उसको पूरा करने में उसे थकान का अनुभव

कम होता है। रुचिकर खेलों में उसे थोड़ा बहुत आनन्द प्राप्त अवश्य होता है। परन्तु पारिवारिक तथा व्यवसायिक कार्यों में वह अनमना रहता है। उसे थकान महसूस होती है तथा वह निरुत्साहित प्रतीत होता है।

मनोस्नायु दौर्बल्य प्रायः उन विवाहित महिलाओं को अधिक होता है जिनके पति परवाह कम करते हैं और प्रायः उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। ऐसी स्त्रियाँ प्रायः महसूस करती है कि उनको पारिवारिक झंझटों में जानबूझ कर फंसा दिया गया है। वे सोचती हैं कि दूसरे लोग उनका नाजायज फायदा उठा रहे हैं और वे आनन्द करते हैं जबकि उन्हें स्वतंत्रतापूर्वक किसी भी कार्य को करने स्वीकृति नहीं हैं। परन्तु जिन विवाहित महिलाओं में इस प्रकार के विचार विकसित होते हैं वे प्रायः अपरिपक्व होती हैं उनका बचपन सामान्य नहीं होता है। उन्हें अपने माता–पिता से असीम प्यार प्राप्त होता है जिसके कारण मानसिक विकास में बाधा उत्पन्न हो जाती है। वे युवा अवस्था में पति पर पूर्ण आश्रित हो जाती हैं जिसके कारण उनको अपना जीवन निर्रथक प्रतीत होता है। वे अनेकों मनोसामाजिक कठिनाइयों को महसूस करने लगती हैं। दिल धड़कता है, सर भारी होने लगता है, अपच खट्टी डकारें तथा अन्य शिकायतें शुरू हो जाती हैं। उनको प्रायः थकान एवं शक्तिहीनता की अधिक शिकायत रहती है।

3 कारण

मनोस्नायु दौर्बल्य का शाब्दिक अर्थ स्नायुविक क्षीणता से है। पहले यह विचार था कि अधिक काम करने से स्नायुविक शक्तियों में ह्रास हो जाता है जिसके कारण रोगी को थकान का अनुभव होता है। परन्तु यह मत अधिकांश समय तक नहीं माना गया। इसके पश्चात यह माना जाने लगा कि जिस कार्य को करने में रुचि उत्पन्न नहीं होती है और व्यक्ति को उसे निरंतर करना पड़ता है इससे उसमें स्थिर थकान अनुभव होने लगती है। प्रायः हम देखते तथा अनुभव करते हैं कि यदि कोई अरुचिकर कार्य करने पर मजबूर किया जाता हे तो हम शीघ्र ही थक जाते हैं तथा ऊबन (Boredom) महसूस होती है।

मनोस्नायुदौर्बल्य के रोगी में यह थकान तथा ऊबन स्थायी हो जाती है जैसा कि तीव्र असमायोजन की स्थिति में उत्पन्न होता है। अतः स्थायी चिंता, अनिद्रा तथा अतिकार्य परायणता जैव रासायनिक परिवर्तन उत्पन्न कर देती है। इस प्रकार मनोस्नायु दौर्बल्य का शारीरिक न होकर मानसिक कारण होता है। ह्वाइट ने मनोस्नायु दौर्वल्य का कारण काम कम करना बताया है। जिन व्यक्तियों को प्रारम्भ में काम कम करना पड़ता है तथा समस्याओं के समाधान में किसी प्रकार की मानसिक शक्ति का उपयोग नहीं होता है ऐसे व्यक्तियों को जब भविष्य में जिम्मेदारी का कार्य सौंपा जाता

है तो वे शीघ्र ही उस कार्य से ऊबने लगते हैं एवं थकान का अनुभव करते हैं। वीयर मिचाल (Weir Mitchel) के विचार से संघर्ष तथा अति कार्य के कारण व्यक्ति थकान अनुभव करता है अतः उसे अधिक विश्राम की आवश्यकता होती है।

फ्रायड (Freud) का विचार था कि मनोस्नायुविक दौर्बल्य का कारण लैंगिक संघर्ष है। जब व्यक्ति की लैंगिक समस्यायें समाधान नहीं हो पाती है तो व्यक्ति हस्तमैथुन (Masturbation) का सहारा लेता है जिसके कारण उसका वीर्य स्खलित होता रहता है। जब वह अतिशय हस्तमैथुन करने लगता है तो शरीर की शक्ति क्षीण होने लगती है, मुख की क्रांति गायब हो जाती है, नैराश्य उत्पन्न हो जाता है, घ्यान केन्द्रित न हो पाता है तथा अत्यधिक थकान महसूस होती है। आजकल मनोवैज्ञानिक इस आधार को मनोस्नायु दौर्बल्य का कारण नहीं मानते हैं। असमायोजन तथा जीवन की दुखद एवं नैराश्यपूर्ण परिस्थितियाँ व्यक्ति में थकान का लक्षण उत्पन्न कर देती है।

मनोस्नायु दौर्बल्य का रोगी दूसरों की अधिकाधिक सहानुभुति की आशा रखता है। इसके लिए वह उन सभी तरीकों का उपयोग करता है जिनसे दूसरों का ध्यान उसकी ओर आकृष्ट होता है। उदाहरण के लिए रोगी महिला अपने पति का रुख प्राप्त करने लिए अत्यधिक पीड़ा एवं कष्ट का प्रदर्शन करती है जिससे वह अपने कार्य पर न जाकर उसकी सेवा करता है या उसके प्रति चिंता प्रकट करता है परन्तु इससे सामाजिक सम्बन्धों में दृढ़ता नहीं आती है। कभी–कभी तो ऐसे रोगी परिवार के सदस्यों की सहानुभूति खो देते हैं और वे उसकी बिना परवाह किये अपना–अपना कार्य करते है जिससे रोगी और भी व्यथा महसूस करता है। उसकी अकर्मण्यता, विकृति दृष्टिकोण आत्मकेन्द्रित मनोवृत्ति तथा निरन्तर शिकायत की प्रवृत्ति सम्बन्धों को निर्बल बना देती हैं। उसकी दमित विरोधी भावनाओं जिनका वह उपयोग अपनी इच्छाओं को पूरा करने के प्रयोग में लाता है, वे उनके सम्बन्धों को और भी विघटित कर देते हें।

आधुनिक समाज में विभिन्न परिस्थितियों के साथ सामंजस्य स्थापित करना सभी व्यक्तियों के लिए कष्टप्रद होता है। किसी न किसी स्तर पर सभी व्यक्ति असफल होते है तथा सामंजस्य स्थापित करने में कठिनाई होती है। परन्तु एक सामान्य व्यक्ति प्रयत्नों के द्वारा सन्तोषपूर्ण सामन्जस्य स्थापित कर लेता है। मनोस्नायु दुर्बल व्यक्ति में आत्मविश्वास की कमी होती है, पराश्रित रहने की प्रवृत्ति होती है। इसके कारण वह आशाहीन हो जाता है। तनावपूर्ण स्थितियाँ ऐसे व्यक्ति में भग्नाशा उत्पन्न कर देती हैं। इसके व्यक्तिगत गुण वास्तविक स्थिति से बचने के लिए उत्साहित करते हैं।

मनोदौर्बल्य के रोगी सदैव प्रयत्न करते हैं कि चिकित्सक उसे कोई न कोई शारीरिक व्याधि अवश्य बतायें। उसको उस समय सन्तोष प्राप्त होता है जब चिकित्सीय परीक्षण से शारीरिक रोग स्पष्ट होता है। ऐसे रोगियों को यह समझाना कठिन हो जाता है कि वे शारीरिक रोग के स्थान पर मानसिक रोग से पीड़ित हैं। क्योंकि ऐसा समझने से पुनः कष्टों का सामना करना पड़ता है। चूंकि उसे अपनी थकान का कोई औचित्य समझ में नहीं आता है अतः वह शारीरिक रोग की खोज इसके लिए करता रहता है जिससे एक तो उत्तरदायी कारण स्पष्ट होता है तथा दूसरी ओर अप्रत्यक्ष रूप से अपने उत्तरदयित्वों से पीछा छुड़ाता है।

यहाँ पर मनोस्नायुदौर्बल्य से इतिहास का कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे उसके कारणों तथा भावनाओं का पता चलता है।

एक 26 वर्षीय महिला को विश्वास हो गया था कि उसका पति उसमें रुचि नहीं लेता है क्योकि वह न तो सुन्दर है और न किसी कार्य के योग्य। उसका पति प्रायः कई दिनों तक व्यापार के मामले में बाहर रहता था और जब वापस आता था उस समय भी कोई विशेष रूचि पत्नी की ओर नहीं दिखाता था। रोगी यद्यपि हाईस्कूल तक पढ़ी थी परन्तु उसे किसी प्रकार का तकनीकी ज्ञान न था जिसके कारण वह अपने भरण–पोषण तथा सुरक्षा के लिए पति पर पूर्णतया निर्भर थी। रोगी को घर के अधिकांश ऐसे कार्य भी करने पड़ते थे जिनको उसने कभी भी नहीं किया था। परिणाम यह हुआ कि धीरे–धीरे उसको घर के कामों से अरुचि हो गयी। क्योंकि उसका बचपन बहुत अनुत्तरदायी बीता था। उसको थकान अनुभव होने लगी तथा प्रत्येक कार्य बहुत बड़ा कार्य लगने लगा। इस अवस्था में रोगी का पति कुछ अधिक प्रेम प्रदर्शित करने लगा। अतः रोगी का रोग बढ़ता गया और उसे अपने पति को निकट पाने पर लाभ महसूस होने लगा। पति के निकट होने से एक ओर तो उसे शांति मिलती थी परन्तु रोग के लक्षण कम न होते थे क्योंकि उसे डर था कि यदि वह ठीक हो गयी तो उसका पति पुनः घर से बाहर रहने लगेगा। अतः उसका अचेतन पक्ष दृढ़ होता गया और समस्या गम्भीर होती गयी।

4 उपचार

मनोस्नायुदौर्बल्य के व्यक्ति में सबसे अधिक इच्छा प्रेम एवं सुरक्षा की होती है। आंतरिक द्वन्द एवं असमायोजन की समस्या के कारण रोगी इस प्रकार की प्रतिक्रियायें करता है। अतः दुर्बलता के लक्षणों को दूर करने के लिए प्रेम

एवं स्नेह की अत्यन्त आवश्यकता होती है। इसको सांवेगिक सुरक्षा प्रदान करने के उपाय अधिक लाभप्रद होते हैं। स्थिति परिवर्तन से भी रोगी के विचारों में परिवर्तन आता है। आत्मविश्वास एवं आत्म सम्मान वृद्धि के तरीकों द्वारा रोगी को आराम पहुंचाया जा सकता है। मनोचिकित्सा द्वारा ही इस प्रकार के रोगियों का उपचार सम्भव हो सकता है।

11

रोग चिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति

(1) अर्थ

रोग चिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति में रोगी अपने स्वास्थ्य के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हो जाता है। उसको भय हो जाता है कि वह ऐसी बीमारी से पीड़ित है जिसका कोई उपचार नहीं है। उसको अपने शरीर तथा स्वास्थ्य के प्रति चिन्ता हो जाती है। यद्यपि अति चिंता के लक्षण अन्य मनोविकारों मे भी उत्पन्न होते हैं परन्तु वास्तविक रोग चिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति बहुत कम पायी जाती है। इस प्रकार की प्रतिक्रिया प्रायः युवावस्था के उपरान्त होती है तथा पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक पायी जाती है।

रोग चिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति का रोगी सनकी एवं वहमी हो जाता है। वह अनेक प्रयत्नों के बावजूद भी रोग होने के भ्रम को दूर नहीं कर पाता है। वह अपने रोग के लिए अनेक प्रकार की दवाइयाँ लेता है, डाक्टरी जाँच करवाता है तथा संबंधित विभिन्न पुस्तकें पढ़ता रहता है। यदि कोई व्यक्ति उससे कहता है कि उसमें कोई रोग नहीं है तो वह बहस करने लगता है। इस प्रकार काल्पनिक रोग को वास्तविकता में वर्णन करता है।

रोग चिन्ता प्रायः दो प्रकार की होती है। एक प्रकार में चिन्ता प्रधान होती है तथा दूसरे प्रकार में शारीरिक क्रियाओं में अत्यधिक रूचित रहती है। ऐसा रोगी कम मिलनसार, आत्मस्वार्थी, तथा आत्मकेन्द्रित हो जाता है। वह किसी से लगाव नहीं प्रदर्शित करता है। ऐसे रोगी खाने–पीने की बड़ी चिंता रखते हैं तथा उनका भोजन चयनात्मक होता है।

इस प्रकार मनोस्नायु विकृति में रोगी अपने स्वास्थ्य तथा शरीर के प्रति अति–चिंतात्मक एवं संवदेनशील होता है। यद्यपि उसमें व्यामोह के लक्षण नहीं होते हैं फिर भी वह स्वीकार नहीं कर पाता है कि वह रोगयुक्त है। उसमें वातोन्माद की भांति किसी शरीर के अंग की पूर्ण अकार्यात्मकता नहीं होती है। पिलोस्की[1] (Pilowsky) ने रोग चिंता में 3 कारक महत्वपूर्ण बतायें हैं :–

---

1. पिलोस्की, आई — डाइमेन्शन्स आफ हाईपोचोन्डियासिस ब्रिटिश जर्नल आफ साइक्याट्री, 1967, 113, 89–93

(1) शरीर से अति सम्बन्ध एवं चिन्ता।

(2) रोग दुर्भीति (Phobia)

(3) स्वास्थ्य के सम्बन्ध में किसी प्रकार के आश्वासन का न मानना।

रोग चिन्तात्मक व्यक्ति को चिकित्सीय दुनिया की खबरों का पूरा–पूरा ज्ञान होता है। उसको कैन्सर, टी0वी0, मस्तिष्क ट्यूमर, कोढ़ तथा अन्य रोगों के लक्षणों के सम्बन्ध में विस्तृत जानकारी होती है तथा अपने शरीर में प्रकट होने की सम्भावना बनाये रखता है। कफ आने पर कैन्सर हो जाने का भय प्रदर्शित करता है।

रोग चिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति का निदान कार्य अत्यधिक कठिन होता है क्योंकि रोगी में कोई सम्बन्धित लक्षण नहीं होते हैं। वह सामान्य व्यक्ति के समान ही स्वास्थ्य के प्रति प्रतिक्रिया करता है। दूसरे मनोस्नायु दौर्बल्य तथा रोगचिंता में अंतर करना कठिन होता है क्योंकि दोनों के लगभग समान लक्षण होते हैं। यही कारण है कि कभी–कभी दोनों प्रकारों को एक ही समझा जाता है।

(2) लक्षण

इस रोग के रोगी को शरीर से सम्बन्धित अनेक शिकायतें हो जाती हैं जिनका न तो कोई शारीरिक अथवा जैव रासायनिक कारण होता है। शारीरिक परीक्षण में कोई भी लक्षण रोग के नहीं दिखते हैं परन्तु रोगी को अमुक रोग के प्रति चिंता उत्पन्न हो जाती है। रोगी के पेटदर्द, सरदर्द, सीने में दर्द या शरीर के किसी अन्य भाग में दर्द की शिकायत करता है। उसको अप्रत्याशित शारीरिक कठिनाई महसूस होती है। उदाहरण के लिए रोगी महसूस करता है कि उसके पेट में आग उत्पन्न हो गयी है, सर में चक्की चलती है, पेट में खालीपन महसूस होता है। रोगी नये रोग के प्रति भी सजग रहता है। उसको वे सभी बीमारियाँ अपने में मालूम होती हैं जिनको वह जानता है। टी0वी0, कैन्सर, ट्यूमर तथा अनेकों बीमारियाँ रोगी अपने में अनुभव करता है।

रोग चिन्तात्मक मनोस्नायु विकृति के रोगी को विश्वास हो जाता है कि उसे ऐसा कोई रोग हो गया है जो कभी ठीक नहीं हो सकता है।

परन्तु ऐसे रोगी में रोग के प्रति चिन्ता अथवा भय के उतने गम्भीर लक्षण नहीं पाये जाते हैं जितने कि उस व्यक्ति में जो उस रोग से पीड़ित है।

(3) कारण

साधारणतया सभी व्यक्ति अपने स्वास्थ्य के प्रति चिंतित रहते हें क्योंकि

स्वास्थ्य व्यक्ति की सबसे अमूल्य निधि है जिस पर उसकी सम्पूर्ण खुशी निर्भर होती है। रोग चिन्तात्मक रोगी विकृत रूप से चिंता प्रकट करता है क्योंकि इससे उसकी दबाव एवं तनाव पूर्ण स्थितियों से छुटकारा मिलता है तथा अन्तर्पारस्परिक सम्बन्ध बनते हैं।

(1) माता–पिता का व्यक्तित्व तथा अन्य उत्तरदायी कारक

व्यक्ति के प्रारम्भिक अनुभव, अतिचिंतात्मक प्रतिक्रियाओं के विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं। माता–पिता का जब व्यक्तित्व सामान्य नहीं होता है तो उसका प्रभाव बालक पर पड़ता है। जिन बालकों के माता–पिता के व्यक्तित्व में अतिचिंतात्मक लक्षण पाये जाते हैं उनका प्रभाव बालक पर पड़ता है। वह अपने स्वास्थ्य के प्रति अतिसंवेदनशील हो जाता है तथा शारीरिक क्रियाओं के प्रति उसे सदैव चिंता बनी रहती है। इसके अलावा उस स्थिति में भी बालक पर विपरीत प्रभाव पड़ता है जब माता–पिता बालक के शारीरिक रोग के प्रति अतिचिंता व्यक्त करते हैं। उदाहरण के लिए सर्दी जुकाम होने अथवा साधारण पेट की गड़बड़ी होने पर अच्छे चिकित्सक की सलाह लेते हैं तथा चिंता प्रकट करते हैं। इसका परिणाम यह होता है कि बालक भी मामूली कष्ट के प्रति अति चिन्तित हो जाता है और उसको आवश्यकता से अधिक महत्व देता है।

वास्तविक रोग अथवा आघात (Injury) होने पर भी रोग चिंतात्मक लक्षण भविष्य में उत्पन्न हो जाते हैं। क्योंकि रोग के लक्षण प्रकट़ होने से बालक का अत्यधिक ध्यान रखा जाता है। माता–पिता रोगी बालक की इच्छाओं को पूरा करने की पूरी कोशिश करते हैं। उसका वास्तविकता से अधिक लाड़–प्यार किया जाता है। परन्तु जब वह ठीक हो जाता है तो उसका उतना महत्व नहीं रहता है। अतः वह उसी स्थिति में रहना अधिक पसन्द करता है।

(2) नैराश्य जीवन स्थिति

रोग चिन्तात्मक लक्षण प्रायः 40 व 50 वर्ष के बीच में उत्पन्न होते हैं क्योंकि अधिकांश रचनात्मक जिन्दगी समाप्त हो चुकी होती है तथा दिनोंदिन उसकी शक्ति क्षीण होती जाती है। वह अपने पूर्व कार्यों का मूल्यांकन करता हे और यदि जीवन परिस्थितियों के प्रतिकूल निकलता है तो वह यह अनुभव करता है कि वह अपनी आशाओं एवं उद्देश्यों को पूरा करने में असफल रहा है, उसके स्वप्न साकार नहीं हो पाये हैं, व्यवसायिक स्थिति उसके अनुकूल नहीं रही है तथा वैवाहिक सम्बन्ध असन्तोषजनक रहे हैं। उसमें अति चिन्तात्मक लक्षण प्रकट हो जाते हैं।

(3) पुष्टीकरण

रोग चिन्तात्मक लक्षणों के प्रदर्शित करने से व्यक्ति दुखदायी जीवन स्थितियों से छुटकारा पाता है। इन लक्षणों के कारण उसे तनाव एवं दबाव–पूर्ण स्थितियों का सामना नहीं करना पड़ता है क्योंकि उसको चिन्ता होने लगती है।

रोगी सद्भावना तथा सहायता प्राप्त करता है तथा कुछ सीमा तक अपने व्यवहार पर नियन्त्रण प्राप्त करता है। साधारणतया रोगी से वैसा व्यवहार करने की आशा नहीं की जाती है जैसा कि सामान्य व्यक्ति करता है अर्थात रोगी को कुछ सीमा तक व्यवहार करने की छूट मिल जाती है। इस प्रकार रोगी अतिचिंतात्मक लक्षणों के द्वारा अपनी भावनाओं की पुष्टि करता है तथा दूसरों का सहयोग भी प्राप्त करता है। उसको कष्टपूर्ण तथा विषम उपलब्धियों को प्राप्त करने का प्रयत्न नहीं करना पड़ता है। इस प्रकार तनाव एवं दबावपूर्ण जीवन परिस्थितियों से उत्पन्न चिंता को जिसमें असफलता मुख्य कारण होती है शारीरिक क्रियाओं से सम्बन्धित कर देते हैं। अर्थात उद्देश्य प्राप्त करने में असफलता से उत्पन्न चिन्ता का सम्बन्ध शरीर के रोग से कर देते हैं। इस प्रकार वह वास्तविक चिंता के स्रोत से स्वतंत्र हो जाता है।

रोग की अवस्था में रोगी का तथा अन्य सम्बन्धियों का ध्यान उस पर सामान्य से अधिक रहता है। उसको अपना महत्व अधिक मालूम होने लगता है। इस प्रकार उसको अपने स्वास्थ्य के प्रति आवश्यकता से अधिक महत्व दिखने लगता है क्योंकि दूसरों की अपेक्षा उस पर अधिक ध्याान आकृष्ट किया जाता है। उदाहरण के लिए कोई कार्य करने की योजना बनाई जाती है परंतु उस कार्य में रोगी भाग नहीं लेना चाहता है उसको कष्ट महसूस होता है या अन्य लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं तो दूसरे लोग भी उस कार्य को करना छोड़ देते हैं या विचार परिवर्तित कर लेते हैं और उसके विचारों के अनुसार कार्य करते हैं।

रोग चिंतात्मक मनोस्नायु विकृति एक आंगिक मनोस्नायु विकृति है जिसके शारीरिक कारण अब तक भी ज्ञात नहीं हो पाये हें। साधारणतया यह अनुमान लगाया जाता है कि इस प्रकार का व्यवहार शैशविक स्वतः प्रेमी प्रत्याहार का व्यवहार होता है। प्रत्याहार व्यवहार की पुनरावृत्ति के कारण आंगिक परिवर्तन हो जाते हैं। इस दशा में दो स्थितियाँ ध्यान योग्य होती हैं परन्तु वे दोनों अन्तर्मिश्रित होती हैं :

(1) किसी अंग में उचित संवेदनशीलता के अभाव में आंगिक प्रक्रियायें– इसमें शारीरिक तनाव अनुभव होती हैं।

(2) उद्देश्य प्रतिरक्षण (Cathexes) को प्रत्याहार से मानसिक आर्थिक रूप में परिवर्तन जिसके कारण लिविडो जो उस उद्देश्य से सम्बन्धित था उसका पूरा शरीर के अंशों के विचारों में विस्तार।

उद्देश्य प्रतिरक्षण (Catheses) का तात्पर्य एक व्यक्ति के दूसरे व्यक्ति के प्रति उन समस्त विचारों तथा भावनाओं से होता है जो अन्तर्मनोवैज्ञानिक उद्देश्य का प्रतिनिधित्व करते हैं। साधारण शब्दों में व्यक्ति का शरीर तथा उसके अंग अन्तर्मनोवैज्ञानिक रूप से सम्पूर्ण सम्वेदना की स्मृतियों तथा उनके अन्त–सम्बन्धों के माध्यम से प्रतिनिधित्व करते हैं। इस प्रकार शरीर प्रतिमा (Body image) अहं निर्माण के लिए आवश्यक होती है। यह शरीर प्रतिमा वास्तविक शरीर के समान नहीं होती है। इसमें उसके वस्त्र, रहने का स्थान, यात्रा करने के निजी वाहन इत्यादि को भी सम्मिलित कर लिया जाता है।

स्वतः प्रेमी (Narcissistic) प्रत्याहार का तात्पर्य लिविडो को उद्देश्य प्रतिनिधित्व से हटकर आंगिक प्रतिनिधित्व से होता है।

शरीर में रासायनिक एवं स्नायुविक परिवर्तन कठोर स्थिति के परिणाम स्वरूप हो जाता है। इसमें दोनों स्थितियाँ साथ–साथ प्रकट होती है। शैशविक स्वतः प्रेम प्रत्याहार (Infantile Narcissistic withdrawl) तथा शारीरिक अंगों के कार्यों में व्यवधान।

रोगचिन्ता बहुत कम स्वतंत्र मनोस्नायु विकृति के रूप में प्रकट होती है। अधिकांशतः अन्य मनोव्याधिकीय दशाओं के साथ कार्य करती है। इसका वाध्य क्रिया अथवा चिंता मनोस्नायु विकृति से काफी सम्बन्ध होता है। उद्देश्य (Object) से सम्बन्धित मूल प्रवृत्तियाँ जिनका प्रत्याहार होता है और शारीरिक कष्ट के रूप में प्रकटन होता है, वे प्रायः मूल उग्र एवं आत्म संस्तुष्टि संबंधी प्रवृत्तियाँ है। विषयक के प्रति मूल उग्र मनोवृत्ति अहं के प्रति कार्य करने लगती है जिससे शारीरिक अंगों के प्रति चिंता हो जाती है, अहं कमजोर हो जाता है और अपराध ा भावना विकसित हो जाती है।

कष्टप्रद संवेदना तथा शारीरिक रोग होने का भय रूपान्तरित एवं चिंता वातोन्माद में भी होता है और यह निर्णय करना कठिन होता है कि यह स्थिति वातोन्माद की है अथवा रोग चिंता भ्रम की। इस अन्तर को समझने के लिए व्यक्तित्व की भिन्नता समझना आवश्यक होता है। रोगभ्रमित व्यक्ति एकान्तप्रेमी, स्वतःप्रेमी तथा निरुत्साही होता है। इस प्रकार रोगचिन्ता भ्रम वातोन्माद प्रकार की प्रतिक्रियाओं तथा मनोविकृति के व्यामोहों के बीच की संक्रमण (Transitional) स्थिति होती है।

(4) उपचार

इस प्रकार के रोगियों के उपचार कार्य में मनोचिकित्सकीय तरीकों का उपयोग अधिक सतर्कता एवं सावधानी से करना आवश्यक होता है क्योंकि वे दूसरे की बातों पर बहुत कम ध्यान देते हैं, बहुत कम विश्वास करते हैं, तथा असहयोग की मात्रा उनमें अधिक होती है।

वे प्रायः नये–नये चिकित्सकों से उपचार करवाना अधिक पमन्द करते हैं अतः प्रमुख आवश्यकता चिकित्सक को अपने प्रति विश्वास उत्पन्न करने की होती है। इसके उपरान्त अहं को दृढ़ करना वास्तविकता का सामना करने की क्षमता का विकास करना प्रमुख कार्य होता है। रोगी के साथ स्नेहपूर्ण व्यवहार करना चिकित्सा के लिए परम आवश्यक होता है।

12

विषादात्मक प्रतिक्रियायें

1–अर्थ

विषादात्मक प्रतिक्रिया मनोस्नायुविकृति का एक प्रकार है जिसमें रोगी स्थायी अवसाद निरुत्साह (Dejection) तथा कष्ट महसूस करता है। इस प्रकार की प्रतिक्रिया यद्यपि वाह्य पर्यावरण के प्रति होती है परन्तु इससे इतनी अधिक तनावपूर्ण तथा विषम स्थिति नहीं उत्पन्न होती है जितना कि रोगी महसूस करते हैं। साधारण रूप से व्यक्ति तनावपूर्ण एवं कष्टप्रद स्थिति में विषादी हो जाता है परन्तु उसका व्यवहार तथा प्रतिक्रिया सामान्य अवस्था से अधिक विचलित नहीं होती है। उदाहरण के लिए किसी प्रियजन की मृत्यु होने पर सभी व्यक्ति शोक प्रकट करते हैं और निरुत्साही हो जाते हैं। परन्तु यह अवस्था कुछ समय के लिए रहती है। विषादात्मक प्रतिक्रिया के रोगी में ऐसे लक्षण स्थायी हो जाते हैं। इस प्रकार विषम परिस्थितियाँ जैसे घनिष्ठ सम्बन्धी की मृत्यु,, आर्थिक विफलता, या अन्य कोई इसी प्रकार की स्थिति विषादात्मक प्रतिक्रिया के लक्षणों को उत्पन्न कर देती है।

विषादात्मक प्रतिक्रिया तथा उन्माद अवसाद के लक्षणों में अन्तर होता है। उन्माद–अवसाद की स्थिति में रोगी में गम्भीर लक्षण प्रकट होते हैं तथा शारीरक परिवर्तन भी होता है अर्थात शारीरिक कष्ट भी रोगी को महसूस होते हैं। व्यक्तित्व का विघटन विषादात्मक प्रतिक्रिया की अपेक्षा अवसाद मनोविकृति में अधिक होता है। विषादात्मक प्रतिक्रिया के रोगी उपचार के प्रति अधिक लगाव प्रकट करते हैं और जल्दी ठीक हो जाते हैं। आत्महत्या की प्रवृत्ति इस प्रतिक्रिया में नहीं पाई जाती है और नहीं ही अतिचिंतात्मक प्रतिक्रिया के लक्षण होते हैं। मनोस्नायु विकृति विषाद का रोगी प्रायः दुखी, खिन्न तथा अप्रसन्न रहता है। वह अपने सम्बन्धों को सीमित कर लेता है। परन्तु सम्बन्ध स्थापित करने में उसे कठिनाई होती है। उसमें किसी प्रकार का स्मृति दोष नहीं होता है और न हीं प्रत्यक्षीकरण प्रतिक्रिया विश्रृंखलित होती है। इससे मनोविकृत (Psychotic) रोगी की अपेक्षा अधिक व्यवधान (Disturbance) नहीं उत्पन्न होता है। वह

अपनी दैनिकचर्या आसानी से पूरी कर लेता है। वह अपने पारिवारिक उत्तरदायित्वों को निभाता है। परन्तु उसे ऐसा करने मे न तो कोई उत्साह होता है और न ही खुशी प्राप्त होती है। सारांश में विषादात्मक प्रतिक्रिया का रोगी मशीन की भाँति काम करता रहता है।

2—लक्षण

रोगी की मनोवृत्ति खिन्न तथा दुखी अवस्था में स्थिर हो जाती है। वह अपने जीवन को अर्थहीन, निर्रथक तथा बेकार समझता है। उसको किसी वस्तु या कार्य से खुशी नहीं होती है। वह अपनी परेशानियों एवं कठिनाइयों को इस सीमा तक बढा—चढ़ा कर वर्णन करता है कि उसके लिए प्रत्येक कार्य कठिन लगते हैं। उसको जो भी कार्य करने को कहा जाता है वह पूरा तो कर लेता है परन्तु उससे उसे किसी प्रकार का सन्तोष नहीं प्राप्त होता है। रोगी सोचता रहता है कि जो उसने कार्य करने का तरीका अपनाया है वह गलत है इससे उसे कभी भी सफलता नहीं मिल सकती है।

रोगी की हालत में कभी—कभी दूसरों का उसकी ओर अधिक आकृष्ट होने से अथवा परिवार के सदस्यों की उसके प्रति चिंता होने से, सुधार आता है परन्तु यह दशा स्थायी नहीं रह पाती है। ऐसा रोगी अपनी बात को अधिक कहना पसंद करता है और उसके वार्तालाप का मुख्य विषय उनकी अनेक कठिनाइयाँ एवं परेशानियाँ होती हैं। वह अपनी परेशानियों को वर्णन इस सींमा तक करता है कि सुनने वाला भी परेशानी महसूस करने लगता है। उसको इस बात का पूरा ज्ञान रहता है कि उसे अपने कर्तव्यों का पालन करना चाहिए परन्तु कार्यों एवं उत्तरदायित्वों को पूरा करने में उसे किसी प्रकार की खुशी नहीं होती है।

वाह्य रूप से इस रोग का व्यक्ति दुखी निरुत्साही, खिन्न तथा विषादी लगता है। उसमें चिंता के लक्षण प्रकट होते हैं और किसी कार्य में उसका मन नहीं लगता हें रोगी में आत्म—विश्वास कम हो जाता है तथा संप्रेरणा व आकांक्षा का स्तर निम्न हो जाता है। यद्यपि उसकी विचार प्रक्रिया में किसी प्रकार का व्यवधान नहीं होता है परन्तु रोगी प्रायः ध्यान न केन्द्रित होने की शिकायत करता है। रोगी को नींद कम आती है रात में एक बार जागने पर काफी समय तक जागता रहता है। कुछ अवस्थाओं में शारीरिक कष्ट भी होते हैं जिससे बेचैनी तथा तनाव बना रहता है।

यद्यपि मनोस्नायु विषाद के लक्षण मनोस्नायु दौर्बल्य के समान हैं परन्तु

मनोस्नायु विषाद की अवस्था में अवसाद (Depression) अधिक होता है। क्रियाओं में अधिक वाधा उत्पन्न हो जाती है तथा उत्साह में कमी आ जाती है। विषाद का अधिक गम्भीर रोगी कार्य करने के योग्य नहीं रहता है अर्थात वह कोई कार्य नहीं कर सकता है। आशाहीनता इतनी अधिक हो जाती है कि वह सदैव जीवन के अन्धकार पक्ष पर ध्यान केन्द्रित रखता है।

रोगी अपने भाग्य को कोसता है, अपने जीवन को निर्रथक बताता है तथा अपने को समाज का भार समझता है। उसका प्रत्येक सम्बन्ध सामान्य रहते हुये भी विघटित सा लगता है क्योंकि उसे न तो अपने सम्बन्धी से अथवा मित्र से मिलने में खुशी होती है और न ही सम्बन्धी की अधिक चिंता करता है। अपनी निन्दा विभिन्न तरीकों से करता है जिसमें केवल वास्तविकता का कुछ अंश होता है। वह अपने अहं (Ego) के अनुसार व्यवहार नहीं करता है और शिकायत करता है कि उसकी कार्य करने की क्षमता का ह्रास हो रहा है। रोगी को कभी–कभी चक्कर आने लगते हैं परन्तु इसका कोई शारीरिक (Physiological) कारण नहीं होता है।

3—कारण

जिन व्यक्तियों में सहिष्णुता की कमी होती है, चेतनता का विकास कठोर नियमों के अन्तर्गत होता है, तथा अपराधपूर्ण भावनाओं का विकास किसी कारण हो जाता है उनमें यह रोग अधिक उत्पन्न होता है कैटेल तथा सेइयर[1] ने अपने अध्ययन में यह सिद्ध कर दिया है कि विषाद मनोस्नायु विकृति के रोगी में सहिष्णुता की कमी होती है, अपने विचारों के पक्के होते है तथा अपराधपूर्ण भावनाओं का विकास होता है। प्रायः असुरक्षा की भावना व्यक्ति में विषाद की स्थिति उत्पन्न कर देती है। उग्र भावना का दमन भी विषाद का एक कारण होता है। उभयाभाव की स्थिति (Ambivalence) विषाद का मुख्य कारण होती है। इसमें प्रेम तथा घृणा की मिश्रित प्रतिक्रिया होती है।[2]

इसका तात्पर्य यह है कि रोगी किसी को तब तक प्रेम नहीं कर सकता है जब तक कि उसके प्रति कहीं न कहीं से घृणा के भाव नहीं विकसित कर लेता है। यही घृणा की भावना तथा उसके प्रति विरोध (Hostility) रोगी के लिए परेशानी उत्पन्न कर देता है तथा अधिक समय तक इस प्रकार की स्थिति रहने

---

1. कैटेल तथा सेइयर — उल्लिखित
2. इंगलिश, ओ0 एस0 ऐण्ड फिन्च, एस0 एम0 — इन्ट्रोडक्शन टु साइकयाट्री, डब्लू डब्लू नार्टन ऐण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1954, पृ0 222

पर वह स्थायी रूप से दुखी रहने लगता है। उभयाभाव के कारण चेतन (Conscience) का विकास एक विशेष प्रकार से होता है जिसमें विरोध की भावनाओं का कठोरता से दमन कर दिया जाता है परन्तु उसमें विरोधात्मक भावनायें पूरी तौर से समाप्त नहीं हो पाती हैं। अतः वह शत्रुतापूर्ण व्यवहार करता है उसमें असुरक्षा की भावना उत्पन्न हो जाती है। वह प्रत्येक सम्बन्ध में अस्वीकार (Rejection) करने के लिए साक्ष्यों (Evidences) को ढूंढ़ा करता है। वह सोचता है जब वह स्वयं दूसरों को प्रेम नहीं करता है तो दूसरे भी उसे प्रेम नहीं करते हें। परन्तु वह अपनी पूरी मानसिक शक्ति को अस्वीकार के विरोध में लगा देता है और प्रमाणित भी करता है कि दूसरों को वह प्रेम करता है। इस परिस्थिति में वाह्य रूप से वह सामान्य लगता है परन्तु उसमें असुरक्षा की भावना पनपती है।

इस प्रकार का रोगी प्रायः बचकाने व्यवहार करता है। उसको बच्चे ऐसा व्यवहार करने में आनन्द प्राप्त होता है। वह इसके लिए अनेक रक्षणात्मक प्रयत्नों का सहारा लेता है उनका व्यक्तित्व अति संवेदनशील होता है। जिसके कारण परिस्थितियाँ बहुत ही जल्दी प्रभावित कर लेती हैं अन्तर्मुखी विशेषतायें होने के कारण व्यक्ति विषम परिस्थितियों में अतिचिंतनशील हो जाता है जिसके परिणामस्वरूप वह दुखी, खिन्न, निराश, हतोत्साही तथा अकर्मण्य हो जाता है क्योंकि वाह्य जगत से उसका कम सम्बन्ध रहता है।

उदाहरण

एक 35 वर्षीय विवाहित महिला अपनी कठिनाइयों के कारण चिकित्सालय में उपचार हेतु भर्ती हुई। यद्यपि लक्षण कई सालों से उसमें उपस्थिति थे परन्तु उनसे उसे कार्य में कोई व्यवधान नहीं होता था। परन्तु 5 महीने से उसके लक्षण गम्भीर हो गये थे तथा सामान्य जीवन निर्वाह करना कठिन हो गया था। ये लक्षण उसकी माँ के मरने के बाद गम्भीर हो गये थे। उसमें दुख मनाने की अवधि बहुत अधिक हो गयी थी और अपने बच्चों से और न ही पति से लगाव रह गया था। उसको इन लोगों के किसी भी व्यवहार से खुशी नहीं होती थी। उसको शिकायत थी कि वह अपने बच्चों से किसी प्रकार खुश न थी। परिवार के अन्य सदस्यों से प्रायः कहा सुनी भी हो जाती थी। उसको प्रत्येक घर का कार्य भारी लगने लगा था। वह प्रायः दुखी तथा विषादी अवस्था में रहती थी तथा दुखपूर्ण आहें भरती रहती थी। अनिद्रा की भी शिकायत हो गयी तथा पेट प्रायः गड़बड़ रहने लगा था। इन लक्षणों में से अधिकांश लक्षण रोगी की माँ की मृत्यु के पश्चात ही उत्पन्न हुये थे।

रोगी के पारिवारिक इतिहास से ज्ञात हुआ कि उसका पालन पोषण एसे परिवाार में हुआ था जिसमें पिता का एकछत्र कठोर शासन था। उसका अपने सभी बच्चों पर इतना कड़ा बंधन था कि वे उससे बातचीत नहीं कर सकते थे। उनमें यह भावना उत्पन्न हो गयी थी कि वे पिता से बातचीत करने के अयोग्य हैं। यदि कोई बालक पिता से बातचीत तथा अपनत्व प्रदर्शित करने का प्रयत्न भी करता था तो उसे हतोत्साहित किया जाता था। वह बच्चों से यदा कदा ही कुछ बोलता था। वह न तो उनके पढ़ने के बारे में पूछता था और न ही उनकी इच्छाओं को समझने का प्रयत्न करता था वह समझता था कि उसका कार्य केवल खाने की वस्तुओं को जुटाना तथा बच्चों की शिक्षा का प्रबन्ध करना है। उनका विचार था कि बच्चों को स्वयं व्यवहार के नियमों को सीखना तथा समझना चाहिए। बच्चों को जो भी प्रेम वात्सल्य अथवा सुख सुविधा प्राप्त होती थी वह केवल पिता की अनुपस्थिति में माता से प्राप्त होती थी। परन्तु माता को भी कार्य की अधिकता से बच्चों से प्रेम प्रदर्शित करने का अवसर नहीं मिलता था। उसके अतिरिक्त वह स्वयं वैवाहिक जीवन से ऊब चुकी थी।

रोगी का विवाह यद्यपि ऐसे व्यक्ति से हुआ था जो उसके पिता से बिल्कुल विपरीत था परन्तु यह (स्त्री) विवाह के व्यवहारों का पूरी तरह सांवेगिक रूप से निभाने में असमर्थ थी। उसे अकेलापन लगता था। तथा भय की भावना बढ़ गयी थी। यद्यपि उसके दो संताने थीं परन्तु वह महसूस करती थी कि उसका कोई मूल्य नहीं हैं। उसने अपनी आत्मशक्ति कभी भी सामान्य मूल्यांकित नहीं की थी जिसके कारण वैवाहिक जीवन उसे नीरस लगता था।

इसी बीच रोगी की माता की मुत्यु हो गयी। रोगी यदि किसी से प्रेम करती थी तथा अपनापन महसूस करती थी वह थी उसकी माँ जिसका स्वर्गवास हो गया। अतः रोगी बहुत बेचैन तथा दुखी रहने लगी। वह अपने पति की सरलता का अपनी बेचैनी को दूर करने के लिए उपयोग करने लगी परन्तु इससे उसे संतोष न प्राप्त हुआ।

मनोचिकित्सा के दौरान यह मालूम हुआ कि रोगी में न केवल पिता के प्रति विरोधात्मक भावनायें थी बल्कि माता के प्रति भी वह शुत्रतापूर्ण भावनायें रखती थी। उसकी भी अपने प्रति किये गये अन्याय का जिम्मेदार समझती थी। परन्तु वह किसी प्रकार का विरोध प्रदर्शित नहीं करती थी। उसमें यदि अपने से संबंधित व्यक्तियों के प्रति विरोधात्मक प्रवृति थी परन्तु किसी भी प्रकार से प्रकट करने में वह सक्षभ न थी जिसके कारण उसकी समस्याओं में निरन्तर वृद्धि होती थी। काफी लम्बी अवधि की मनोचिकित्सा के उपरान्त रोगी में यह शक्ति विकसित हुई और चिकित्सा के प्रति अनुकूल प्रतिक्रिया करना प्रारम्भ किया।

4—उपचार

विषादात्मक प्रतिक्रिया की अवस्था में रोगी से तादात्म्य स्थापित करना अत्यन्त कठिन होता है क्योंकि वह संबंधों के प्रति अरूचि प्रदर्शित करता है। उसमें दूसरे व्यक्तियों के प्रति अरुचि उत्पन्न हो जाने के कारण उपचार कार्य को अधिक समय तक करने की आवश्यकता होती है। रोगी को कार्यकर्ता के प्रति विश्वास अधिक समय बाद ही उत्पन्न होता है। वह न तो सुझाव मानता हे और न ही कही गई बातों पर विश्वास करता है। उसका मनोवैज्ञानिक चक्र अपने तक ही सीमित रहता है। वह अपने में ही जलता भुनता रहता है। उसकी अपनी भावनायें ही दुख का कारण होती हैं अतः वह अपने को कष्ट तथा दण्ड देने की सोचा करता है। अतः तब तक किसी भी उपचार का लाभ नहीं हो सकता है जब तक रोगी की इस प्रकार की भावनाओं को नहीं समाप्त किया जाता है और पुनर्संबन्ध स्थापित करने की प्रवृत्ति का विकास होता है। जब रोगी में लगाव एवं तादात्म्य स्थापित करने की प्रेरणा उत्पन्न हो जाती है तो वह स्वतः सामान्य लक्षण प्रदर्शित करने लगता है। अतः कार्यकर्ता का मुख्य कार्य रोगी में आत्म विश्वास जाग्रत करना तथा जीवन के प्रति लगाव उत्पन्न करना है।

13

बाध्य विचार-बाध्य क्रिया मनोस्नायुविकृति

बाध्यता–मूलक मनोस्नायुविकृति की अवस्था में व्यक्ति के मन में ऐसे विचार बार–बार आते हैं जिनको वह पसंद नहीं करता है अथवा यह ऐसे विचारों की स्मृति के लिए अचेतन रूप से बाध्य किया जाता है जो दुखदायी हें और उनको वह किसी भी स्थिति में सोचना नहीं चाहता है। बाध्य क्रिया मनोस्नायुविकृति की दशा में व्यक्ति ऐसी क्रियायें करता है जिनको वह करना नहीं चाहता है पर अचेतन ऐसी असंगत क्रियायें करने के लिए विवश होता है। बाध्य विचार–बाध्य क्रिया मनोस्नायुविकृति कई प्रकार की होती हैं और प्रायः अन्य मनोविकृतियों के साथ प्रकट होती हैं। कोलमैन[1], रबिन्स[2] आदि के अनुसार मनोस्नायु विकृति जनसंख्या में 4 से लेकर 20 प्रतिशत तक रोगी बाध्य विचार व बाध्य क्रिया से पीड़ित होते हें।

बाध्यता मूलक तथा बाध्य क्रियात्मक व्यवहार का क्षेत्र अत्यन्त विस्तृत होता है। नेमियाह[3] (Nemiah) के अनुसार इनका सम्बन्ध कभी शारीरिक तथा व्यवहारिक कार्यों से होता है, कभी विचारों तथा मूल प्रवृतियों (Impulses) से सम्बन्धित होता है। कभी भूत की घटनाओं का भविष्य में असम्भावी घटनाओं से सम्बन्धित, कभी इच्छाओं से सम्बन्धित अथवा इच्छा के सुरक्षात्मक तरीकों से सम्बन्धित तथा कभी साधारण या विषम कार्यों आदि से सम्बन्धित होता है।

---

1. कोलमैन, जेम्स, सी0 — अवनार्मल साइकालोजी एण्ड मार्डन लाइफ, ग्लनव्यू, इल, स्काट, फार्समैन, 1964
2. राबिन्स, ई0, गुडविन, डी0 डब्लू एण्ड गुजे, एस0वी0 — फालो अप स्टडीज इन आवसेशनल न्यूरोसिस आर्काइव आफ जनरल साइक्याट्री, 1969, 209 पृ0 182–18
3. नेमियाह, जे0सी0 — आवसेसिव कम्पेलसिव रिएक्शन, इन फीडमैन एण्ड कप्लान (33) : कम्प्रेहेण्सि टैक्सट बुक आफ साइक्याट्री,, विलियम्स एण्ड विकिन्स वाल्टीमोर, 1967, पृ0 912

1. परिभाषा

हट एण्ड गिवी–बाध्य विचारात्मक बाध्य क्रियात्मक मनोस्नायुविक वे व्यक्ति होते हैं जो अपनी चेतन इच्छाओं के विपरीत, कुछ बातों को सोचने के लिए बाध्य होत हैं या कुछ विचारों को बिना इच्छा स्थायित्व प्रदान करते हैं या कुछ गत्यात्मक क्रियाओं को करते हैं।[4] जो विचार निंरन्तर मस्तिष्क में घूमते रहते हैं उसे वाध्यविचार (Obsession) कहते हैं। गत्यात्मक व्यवहार की जब अनैच्छिक पुनरावृत्ति होती है तब उसे वाध्यक्रिया (Compulsion) कहते हैं।[5] इस प्रकार के विचार एवं क्रियाये स्वतः होती हैं, व्यक्ति उन पर नियंत्रण नहीं रख पाता है। यद्यपि वह चाहता है कि इस प्रकार के विचार को मस्तिष्क से निकाल दे परन्तु वह ऐसा करने में समर्थ नहीं होता है।

लेस्टर, डी क्रो0–वाध्यात्मक विचार प्रायः विकृत होते हैं, ये विचार व्यक्ति की इच्छा के विपरीत बने रहते हैं। वाध्यविचार के कारण वाध्य क्रिया व्यवहार की उत्पत्ति होती है। वाध्य क्रिया वह क्रिया होती है जो अर्थ हीन एवं अतार्किक गत्यात्मक होती है। वाध्यता मूलक व्यवहार पर व्यक्ति का नियंत्रण नहीं होता है। वाध्यविचार वाध्य क्रिया मनोस्नायुविकृति चिंतात्मक दशा (Axiety) की मूल सुरक्षात्मक विशेषताओं के प्रतिगमित एवं विकृत तरीकों का प्रतिनिधित्व करती है।[6]

2. लक्षण

वाध्य–विचार–वाध्य क्रिया मनोस्नायु विकृत व्यक्ति अति सावधान एव सशंकित व्यक्ति होता है। उनमें अपूर्णता की भावना प्रबल होती है। वे दूसरों से संबंध बनाने तथा स्थायी रखने में असुरक्षा अनुभव करते है। वे साधारण स्थिति के प्रति भी चिंतातुर हो जाते है। वे अपने नियम के पक्के तथा हठधर्मी होते हैं। यदि पूर्व निर्धारित शर्तो एवं नियमों से साधारण विपरीत भी कोई कार्य हो जाता है तो उनमें सहने की शक्ति नहीं होती है। वे किसी कार्य को करने का एक ही तरीका निर्धारित करते हैं और उस पर चलने के लिए दृढ़ प्रतिज्ञ होते है।

---

4. हट, मैक्स एल0 एण्ड गिवी, रार्बट गुवयन — पैटर्न्स आफ अवनार्मल विहैवियर एलमान एण्ड बेकन कं0, वास्ट 1957, पृ0 216
5. उपर्लिखित, — पृ0 216
6. क्रो लेस्टर डी0 — साइकालोजी आफ ह्यूमन एडजस्टमेंट, एलफ्रेड स नाफ, न्यूयार्क 1974, पृ0 367

वास्तविक अर्थ में वाध्य विचार साधारण एव सामान्य विचार होता है लेकिन विचार स्थिरता के कारण इसमें विषमता उत्पन्न हो जाती है। इस विषमता के कारण व्यक्ति चेतन स्तर से इस विचार को दूर करना चाहता है परन्तु वह ऐसा करने में सफल नहीं होता हैं। लेविन (Lewin)[7] ने दो प्रकार के वाध्य विचार वाध्य क्रिया का वर्णन किया है। पहले प्रकार के अन्तर्गत व्यक्ति कलुषित विचारों को दोहराता है। जैसे दूसरे व्यक्ति को जान से मार देना, अशोभनीय शब्दों का प्रयोग तथा पशुओं के साथ लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने का विचार। दूसरे प्रकार के निश्चित, नैतिक तथा धार्मिक विचार होते है जो अतिसावधानी रखने के लिए वाध्य करते हैं। उदाहरण के लिए दिन में कई बार हाथ–पैर धोना, कपड़े बदलना आदि। वाध्य क्रियात्मक एवं वाध्य–विचारात्मक मनोस्नायुविकृत व्यक्ति के विचार वातोन्माद के विचारों के तथा सामान्य व्यक्ति के स्वप्नों के समान ही होते हैं। अतः उनको अचेतन शैशवकालीन इच्छाओं का प्रतिनिधि कहा जा सकता है। वाध्यतामूलक विचार एवं क्रिया की दशा में व्यक्ति अतार्किक भयों (Phobias) को उत्पन्न करता है जैसे धूल से भय, बैक्टीरिया से भय, लैंगिक रोग होने का भय, बन्द स्थान का भय, आग का भय, ऊँचे स्थान का भय, इत्यादि।

इच्छा दमन की प्रतिक्रिया वातोन्माद के समान होती है। वातोन्माद में मूल दमन (Id) की प्रवृतियों को दमित कर छद्म एवं सांकेतिक रूप में प्रकट कर व्यक्ति संतुष्टि प्राप्त करता है। इस विकृति में व्यक्ति इस प्रकार अपनी समस्या का समाधान अति सशक्त आंतरिक संघर्ष की दमित शक्तियों को अधिक शक्ति प्रदान करके, जिसमें मूल प्रवृतियों को कोई खतरा नहीं होता है, करता है। वाध्य विचार वाध्य क्रिया के लक्षण आंतरिक वातोन्माद के समान नहीं होते हैं। इसमें अस्वीकृत मूल प्रवृतियों के प्रति दमित शक्ति को अतिरिक्त शक्ति प्रदान करने के लिए अन्य रचनाओं का प्रयोग किया जाता है। वाध्य विचार वाध्य क्रिया मनोस्नायु विकृति की उत्पत्ति जटिल होती है। मूल रूप में–व्यक्ति उन मूल इदम् इच्छाओं को रखता है जो स्वीकार करने योग्य नहीं होती हैं। अतः वह दमन मनोरचना का प्रयोग इन मूल प्रवृतियों के प्रति करता है। दमन को स्थायित्व प्रदान करने के लिए प्रतिक्रिया निर्माण (Reaction formation) की शक्ति जब शिथिल होती है दमित इच्छायें चेतन में आने के लिए प्रयत्न करने लगती है। जब प्रकटन (Emergence) सांकेतिक रूप में नहीं होता है। बल्कि दमित संवेग

---

7. लेविन, बी0डी0 — आबसेशनल न्यूरोसिस इन साइको एनालिसिस टुडे (एस0लोरेन्ड, इड) इण्टरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क 1944 पृ0 199–206

व्यवस्थापित (Displaced) होकर स्वीकृत विचार के रूप में प्रकट होता है। यह चेतनात्मक विचार व्यक्ति के प्रति किसी प्रकार का खतरा नहीं प्रस्तुत करता है और अधिकांश दमित विचार इसी तरह प्रकट होते हैं।

दिन प्रति–दिन के जीवन में ऐसे विचार व घटनायें मस्तिष्क में बार–बार आते हैं जिनको व्यक्ति यद्यपि दूर करना चाहता है परन्तु दूर नहीं कर पाता है। उदाहरण के लिए विवाह की तिथि, प्रेमिका से मिलने का समय, यात्रा का दिन या कोई महत्वपूर्ण ह्रदयस्पर्शी घटना बार–बार मस्तिष्क में आती है। वाध यता मूलक प्रतिक्रिया अथवा रोग की अवस्था में व्यक्ति में विचार अधिक स्थायी, औचित्यहीन होते हैं तथा दिन प्रतिदिन के व्यवहार में हस्तक्षेप करने लगते हैं। रोगी अपने सामान्य कार्यो में व्यवधान उत्पन्न करता है। वाध्यविचारों का क्षेत्र विस्तृत होता है। शारीरिक क्रियायें, अनैतिक कार्य, आत्महत्या की भावना, तथा अन्य सम्बन्धित विचार मस्तिष्क में आते हैं। कलुषित विचार, लैंगिक क्रियाओं से सम्बन्धित गन्दे विचार आक्रामक भावनायें विशेष रूप से वाध्यतामूलक व्यक्तित्व में उल्लेखनीय है। प्रारम्भिक अवस्था में बाध्यता मूलक विचार कम स्थायी होते हैं तथा मानसिक पटल से शीघ्र ही विलीन हो जाते हैं। परन्तु यहाँ पर भी उसे चिन्ता अवश्य उत्पन्न होती है वह अनैतिक या सामाजिक विचारों को दूर करने का प्रयत्न करता है। परन्तु धीरे–धीरे व्यक्ति में ये विचार स्थायी हो जाते हैं। वह जितना ही अधिक विचारों को दूर करने का प्रयत्न करता है, विचार उतने ही दृढ़ होते जाते है। यद्यपि कलुषित विचार व्यक्ति में प्रभावपूर्ण एवं दृढ होते है परन्तु उन विचारों को व्यक्ति व्यवहारिक रूप नहीं देता है। वे केवल व्यक्ति को परेशान दुखी तथा चिन्तित करते रहते हैं। कोल मैन ने एक लड़की का उदाहरण दिया जिसको निम्न विचार बार बार आते थे। जब वह अपने प्रेमी के विषय में सोचती थी तो उसके मर जाने का विचार बार–बार आता था। जब उसकी माँ सीड़ियों से नीचे उतरती थी तो वह सोचती थी कि वह गिर गयी तथा उसकी गर्दन टूट गयी। जब उसकी बहन बच्चे को स्नान कराती थी तो वह सोचती थी कि वे दोनों पानी में डूब गये हैं। रोगी को शिकायत थी कि उसमें ऐसे विचार क्यों आते हैं जबकि वह इन सभी से प्रेम करती है।

वाध्यक्रियात्मक प्रतिक्रियाओं में व्यक्ति ऐसे कार्य करने के लिए वाध्य होता है जिनको वह न तो करना चाहता है और न ही उसका कोई औचित्य ढूढ़ पाता है। उसको स्वयं ऐसी क्रियायें निर्रथक तथा उद्देश्यहीन लगती हैं– जैसे तिनके तोड़ना, कालर पर बार–बार हाथ फेरना, टाई बार–बार खोलकर बाँधना, बार–बार हाथ धोना तथा बाल काढ़ना आदि । इस प्रकार वाध्य क्रियात्मक व्यवहार व्यक्ति के दिन प्रति–दिन की जीवनचर्या को विश्रृंखलित (Disrupt) कर

देता है परन्तु इससे व्यक्ति को संतोष प्राप्त होता है। यदि वह क्रिया अथवा व्यवहार को रोकने का प्रयत्न करता है तो चिंता बढ़ जाती है।

3. कारण

वाध्यतामूलक विचार तथा बाध्यक्रियायें पारस्परिक संबंधित तथा एक ही प्रतिक्रिया के दो अंग हैं। रोगी में दोनों प्रकार की प्रतिक्रियायें प्रायः साथ ही साथ होती हैं। वाध्य विचारों तथा वाध्यक्रियाओं से निम्न उद्देश्यों की संतुष्टि होती है।

1—स्थानापन्न विचार एवं क्रियायें
(Substitute Thought and activities)

वाह्यविचारों तथा क्रियाओं से व्यक्ति अन्य किसी कारण से उत्पन्न चिंता को दूर करता है। उदाहरण के लिए रात में कोई बाहर अकेला घूमता है तो भय की भावना उत्पन्न होती है परन्तु इससे बचने के लिए वह बार—बार कहता है कि उसको कोई डर नहीं है। व्यक्ति यही औचित्य वाध्यक्रिया मे भी लगाता है। वह कोई ऐसा कार्य करता रहता है जिससे कलुषित विचार तथा दुखद समस्यायें उससे दूर रहती हैं। इस प्रकार व्यक्ति इन विचारों तथा क्रियाओं से वैवाहिक, लैंगिक, वैयक्तिक तथा अन्य समस्याओं से छुटकारा पाता है। कलुषित विचारों तथा कार्यों के लिए वह मानसिक सुरक्षात्मक यन्त्रों का उपयोग करता है। वह कभी—कभी प्रतिक्रिया निर्माण कर विरोध की भावना का प्रेम भावना से उत्तर देने का प्रयत्न करता है या लैंगिक इच्छा की स्पष्ट अभिव्यक्ति विरोधात्मक रूप में करता है।

2—दण्ड का भय तथा अपराध भावना
(Fear of punishment and guilt)

वाह्य विचार एवं क्रियात्मक व्यवहार प्रायः अपराध भावना तथा आत्मनिन्दा के भय से उत्पन्न होता है। इस संदर्भ में लेडी मैकबेथ (Lady Macbeth) का उदाहरण अति उत्तम प्रतीत होता है। उसने किंग डनहम की हत्या अपने हाथो की थी परन्तु इस अनैतिक कार्य के कारण उत्पन्न अपराध की भावना तथा दण्ड के भय से बार—बार हाथ धोती थी क्योंकि उसको महसूस होता था कि उसके हाथ में राजा का खून लगा हुआ है।

3—असुरक्षा की भावना
(Feeling of insecurity)

मनोस्नायुविक रोगी को सभी वाह्य तथा आंतरिक परिस्थितियाँ दुखद

तथा नीरस प्रतीत होती है। वह इन पर विजय प्राप्त करने के लिए एक तरीका अपनाना चाहता है जिससे स्थिरता को प्रोत्साहन मिलता है। वह क्रियाओं एवं विचारों की अचेतन रूप में पुनरावृत्ति इसीलिए करता है जिससे एक स्थायी व्यवस्था उत्पन्न हो तथा सुरक्षा की भावना का विकास हो। परन्तु यदि उसमें थोड़ा सा व्यवधान उत्पन्न हो जाता है तो वह चिन्तित हो जाता है।

4—चिकित्सा

वाध्य विचार वाध्य क्रिया मनोस्नायु विकृति के उपचार कार्य में 3 प्रकार की योजनायें को व्यवहार में लाया जा सकता है :—

(1) व्यक्ति की विचार तथा क्रिया में अन्तर समझने में सहायता करना,अस्वीकृत इच्छाओं को सामान्य व्यक्ति की इच्छाओं के समान स्वीकार करना तथा आत्म संरचना में विलयन करना।

(2) वास्तविक तथा कल्पित खतरों में विभेदीकरण करने में सहायता करना तथा भिन्न—भिन्न उत्तेजको के साथ भिन्न—भिन्न प्रत्युत्तर करना।

(3) वाध्य विचार क्रिया को सकारात्मक पुष्टीकरण द्वारा रोकना तथा विरोधात्मक उत्तेजकों को उपस्थित करना।

इन तीनो प्रकार की सहायता का मुख्य उद्देश्य मनोस्नायु विकृति मनोरचनाओं को दूर करना तथा व्यक्ति की सहायता करना होता है। यदि वह वाध्य विचारों तथा क्रियाओं की पुनरावृत्ति नहीं करेगा तो कोई घटना नहीं घटित होगी। निम्नलिखित केस आशय की पुष्टि करता है।

एक प्रौढ़ महिला को अपने तथा अपने बच्चों के कपड़ों को हिलाने की वाध्यता हो गयी थी। वह प्रत्येक दिन प्रातः प्रत्येक कपड़े को तीन बार, तीन विषम दिशाओं में हिलाती थी। वह जब कपड़ों की धुलाई करती थी तो तीन बार साबुन लगाती थी तथा 3 वार कपड़े को साफ करती थी । धीरे—धीरे वह अपने हाथों को भी 3 बार साफ करने लगी थी। साक्षात्कार से ज्ञात हुआ कि उसको रोग तथा कीटाणु का अत्यधिक भय था। उपर्लिखित उपचार के तरीकों द्वारा इस वाध्यतामूलक व्यवहार को दूर किया जा सका था।

14

असंगत भय

जब किसी वस्तु या परिस्थिति से बिना वास्तविक खतरें के व्यक्ति में भय उत्पन्न हो जाता है और यह भय स्थायी हो जाता है तो उसे असंगत भय (Phobia) कहते हैं। वह जब असंगत भय की स्थिति या स्थान पर पहुंचता है तो उसमें अत्यधिक चिंता एवं डर की भावना उत्पन्न हो जाती है।

1. परिभाषा

ईगलिस तथा प्रिंस के अनुसार– असंगत भय मनोस्नायु विकृति का एक प्रकार है जिसमें एक या अधिक अवर्णित, विषम एवं अवास्तविक भय की उपस्थिति रोगी में पायी जाती है।[1]

कोलमैन के अनुसार– किसी वस्तु या स्थिति के प्रति स्थायी भय जो कि रोगी के सामने किसी भी प्रकार का वास्तविक खतरा उपस्थित नहीं करता है या खतरा वास्तविक विषमता से बिलकुल पृथक होता है, को असंगत भय कहते हैं।[2]

केविले के अनुसार– असंगत भय किसी विषय, व्यकित, काय्र या स्थिति से उत्पन्न होने वाला अतार्किक भय है।[3]

असंगत भय अन्य असामान्य लक्षणों की अपेक्षा अधिकांश व्यकितयों में पाया जाता है। ऊँचे स्थान से भय, पानी से भय, जानवरों से भय, बंद स्थान से भय, भीड़ से भय, खुले स्थान से भय आदि अनेक ऐसे भय हैं जो किसी न किसी रूप में अपना प्रभाव व्यक्ति पर बनाये रखते है। परन्तु सभी व्यक्ति न तो असामान्य होने क लक्षण व्यक्त करते है और न ही चिकित्सक की सलाह लेते है क्योंकि अपने भय को रखते हुये वे कार्य करना एवं रहना सीख लेते हैं।

---

1. इंगलिश, ओ0 स्पुरजन एण्ड फिंच स्टुआर्ड, एम0 — इन्ट्रोडक्सन टु साइक्याट्री, डब्लू–डब्लू नार्टन एण्ड कं0, न्यूयार्क, 1954, पृ0 191
2. कोलमैन जेम्स सी — उल्लिखित पृ. 227
3. कोविले एण्ड अदर्स — अवनार्मल साइकालोजी 1963, पृ0 111

व्यक्ति असंगत भय उत्पन्न करने वाली स्थिति से दूर हो जाता है या ऐसी स्थिति उत्पन्न होने ही नही देता है जिससे उसे अत्यधिक चिंता एवं भय उत्पन्न हो। इस प्रकार वह चिंता विमुक्त होकर अपनी जीवनचर्या करता रहता है। उस समय चिकित्सीय सहायता लेना अनिवार्य हो जाता है जब वह ऐसा असंगत भय उत्पन्न कर लेता है जिससे सामान्य व्यवहार तथा सामाजिक एवं व्यक्तिगत कार्यों में बाधा पड़ती हैं।

2. सामान्य भय तथा असंगत भय में अंतर

सामान्य भय उस समय उत्पन्न होता है, जब कोई भयानक स्थिति सामने आ जाती है। इसका कोई न कोई कारण अवश्य होता है। व्यक्ति उसका वास्तविक कारण ढूढ़ लेता है। इस प्रकार का भय स्थिति से संबंधित होता है और स्थिति बदलने पर भय समाप्त हो जाता है। इससे उसके किसी कार्य में बाध ा नही उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए पेड़ पर चढ़ने से भय लगता है क्योकि उससे गिरने का खतरा हैं। यह सामान्य भय है। परन्तु जब व्यक्ति बिना किसी वास्तविक कारण अथवा खतरा न उत्पन्न होने से भी भय उत्पन्न कर लेता हैं उसे असंगत भय कहते हैं। वह इनका कारण नहीं ढूढ़ पाता है, परन्तु भय को समाप्त भी नहीं कर पाता है। उसके व्यवहार में असामान्यता आ जाती है तथा दैनिक क्रिया कलापों में बाधा पहुंचती है। उसको सोचने से ही भय लगने लगता हैं। वास्तविक स्थिति जिससे उसको भय है उत्पन्न होने से तीव्र भय उत्पन्न होता है तथा चिन्ता की गम्भीर स्थिति, उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए जिसको बंद स्थान से भय होता है, वह बंद कमरे में रहने की कल्पना करके ही काँप जाता है और यदि ऐसी स्थिति उत्पन्न होती है जिससे उसे बन्द कमरे में रहना पड़ जाता है तो वह अत्यन्त भयभीत, मानसिक अस्थिर तथा संवेगी हो जाता है। कभी–कभी शारीरिक व्याधिकीय लक्षण भी उत्पन्न हो जाते हैं।

3. असंगत भय के लक्षण

असंगत भय के रोगी में मानसिक तथा शारीरिक दोनों प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं। रोगी में असंगत भय मंद से लेकर तीव्र तक होता है। मंद भय की स्थिति तो रोगी में सदैव बनी रहती है जिसके कारण सामान्य व्यवहार में बाधा उत्पन्न करने वाली स्थिति वास्तव में उत्पन्न हो जाती है तो संवेग अति तीव्र हो जाते हैं। वह अत्यधिक भयभीत हो जाता है, हृदय गति बढ़ जाती है, पसीना आने लगता है। सर दर्द, रीढ में दर्द, पेट की गड़बड़ी, सर चकराना, ध ुंधला दिखायी देना आदि अनेक शारीरिक लक्षण प्रकट हो जाते हैं। रोगी को

यद्यपि यह ज्ञान होता है कि उसका भय अकारण है परन्तु वह अपने भय को किसी भी प्रकार से दूर करने में समर्थ नही हो पाता है।

असामान्य भय से सामान्य क्रियाओं तथा व्यवहार में बाधा उत्पन्न हो जाती है। उदाहरण के लिए जिस व्यक्ति को बंद स्थान से भय (Claustrophobia) है वह आवश्यकता पढ़ने पर भी न तो छोटे कमरे में प्रवेश करता है और न ही तंग रास्ते से गुजरता है। यदि वह असंगत भय उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों का सामनाकरने का साहस करता हे तो उसमें अत्यधिक भय एवं चिंता उत्पन्न हो जाते हैं। विषम असंगत भय की स्थिति में अवास्तविकता, विस्मय तथा आत्म अज्ञान के लक्षण भी वह उत्पन्न करता है।

4. असंगत भय के प्रकार
(Types of Phobia)

उद्दीपन की अनेकता के कारण अनेक प्रकार के असंगत भय उत्पन्न हो सकते हैं। यहां पर कुछ प्रमुख असंगत भयों का वर्णन कर रहे हैं।

1–अगोराफोबिया (Agoraphobia) खुले स्थान से भय।

2–अक्रोफोबिया (Acrophobia)– ऊँचे स्थान से भय।

3–अस्ट्राफोबिया (Astraphobia)–तूफान से भय

4–क्लाउस्ट्रोफोविया (Claustro Phobia) बंद या सकरे स्थान से भय।

5–हिमाटोफोविया (Haemato Phobia)–रक्त से भय।

6–हाइड्रोफोविया (Hydro - phobia)–जल से भय।

7–नेक्रोफोविया (Necro phobia) मृत व्यक्ति से भय।

8–ओक्लोफोविया (Ochlo-phobia)–भीड़ से भय।

9–पैथोफोविया (Pathophobia)–रोग का भय।

10–जूफोविया (Zoophobia)– विशिष्ट या सभी प्रकार के पशुओं से भय

11–टोक्सो फोविया (Toxophobia)–जीव विष से भय।

12–मीसोफोविया (Misophobia)–एकान्त से भय।

अगोराफोबिया
(Agoraphobia)

रोगी को खुले स्थान से भय लगता है। वह अकेले सड़क पर चल नहीं सकता है और न ही अकेले बाहर किसी कार्य वश जा सकता है। उसको किसी

भी प्रकार का कारण ऐसा करने में नहीं प्रतीत होता है। परन्तु इस भय को मस्तिष्क से निकाल नहीं पाता है। उसे किसी खतरनाक घटना के होने का डर लगता है। अकेले में असुरक्षा महसूस करता है और किसी के साथ होने पर वह अपने को सुरक्षित पाता है। उसको भय रहता है कि अकेले में या तो वह मूर्छित हो जायेगा या नियंत्रित नहीं कर सकेगा। इस प्रकार का भय अपरिपक्व शैशवकालीन विकास के कारण होता है जिसके कारण व्यक्ति अपने अहं को वाह्य कारकों से निपटने के लिए कमजोर पाता है।

अक्रोफोविया
(Acrophobia)

इस प्रकार के भय में रोगी मकान की छत, पहाड़, पुल, या अन्य ऊँचे स्थानों से जाने से डरने लगता है। जब वह ऐसे भय उत्पन्न करने वाली परिस्थितियों में होता है तो तीव्र असामान्य लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। इस प्रकार वह ऊँचे स्थानों पर जाने के विचार को सदैव स्थगित करता हैं।

क्लाउस्ट्रो फोबिया
(Claustro Phobia)

रोगी इस प्रकार के भय में बंद कमरे, बंद स्थान अथवा तंग गली एवं सकरे स्थान से डरने लगता है। वह बंद कमरे में या बंद जगह में नहीं रह सकता है जब तक कि कमरे के दरवाजे खुले न हो। यदि बहुत आवश्यकता हुई तो दरवाजे के पास बैठ या खड़ा हो सकता है जिससे आवश्यकता पड़ने पर बाहर तुरन्त जा सके। यदि किसी प्रकार से उसे बंद कमरे में रखा जाता है तो अतयधिक चिंता एवं भय के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। यह असंगत भय अनेक व्यक्तियों में पाया जाता है। उदाहरण के लिए सिनेमा हाल में कुछ व्यक्ति दरवाजे के पास ही बैठना अधिक उचित एवं रुचिकर समझते हैं जिससे वे किसी भी समय हाल से निकल सकें। यदि इसका कारण पूछा जाय तो कोई स्पष्ट उत्तर नहीं दे सकते हैं। वे कहते हैं कि ऐसा करने में उसे अधिक सुरक्षा अनुभव होती है। प्रायः इसका कारण अपनी मूल प्रवृतियों को नियंत्रित करने की अत्यधिक आन्तरिक चेतनता होती है।

ओक्लो फोबिया
(Ochlophobia)

ओक्लोफोविया में रोगी को भीड़–भाड़ से भय लगने लगता है। ऐसे स्थानों पर जाने से या उसकी कल्पना करने से उसकी हालत दयनीय हो जाती

है। वह बाजार जाना, मेला जाना अथवा सामाजिक उत्सव के स्थान पर जाना नहीं पसंद करता है। एक युवती भीड़ से इतना भयभीत थी कि चिकित्सालय में जब वह आयी तो भी उसे भय था कि उसके चारों ओर जो व्यक्ति हैं वे कुचलने का प्रयास कर रहे हैं। वह इस असंगत भय के कारण न तो बाजार जाती थी और न ही रेलगाड़ी, बस, अथवा अन्य किसी साधन से यात्रा करती थी। यद्यपि यह जानती थी कि उसका भय असंगत भय है परन्तु उसको दूर करने में असमर्थ थी।

5 असंगत भय के कारण

यद्यपि रोगी को असंगत भय का कारण मालूम नहीं होता है परन्तु इससे भी अन्य सुरक्षात्मक तरीकों की तरह अहं की रक्षा होती है क्योंकि ऐसा न करने से पूर्व निहित घटना के कारण व्यक्ति मानसिक संघर्ष को दूर करने के लिए भय उत्पन्न करने वाली स्थिति से पलायन करता है। सामान्य रूप से असंगत भय को आतंकित तथा वाहय खतरों से बचने के लिए जिनसे उसे भय उत्पन्न होता है, का एक उपाय समझा जाता है। असंगत भय का कारण व्यक्ति की अचेतन अवस्था में छिपा होता है जिसके कारण उसे इसका ज्ञान नहीं रहता है। कोलमैन[4] ने असंगत भय उत्पन्न करने वाली निम्नलिखित स्थितियों का वर्णन किया है––

1 चिंता का विस्थापन
(Displacement of Anxiety)

असंगत भय की अवस्था में वास्तविक व्यक्ति विषय, परिस्थिति आदि से उत्पन्न चिंता किसी अन्य व्यक्ति, विषय अथवा परिस्थिति को विस्थापित हो जाती है। फायड के विचार से असंगत भय का विस्थापन ओडिपस काम्पलेक्स (Oedipus Complex) के कारण होता है। युवकों में असंगत भय का कारण लैंगिक समस्याओं के अतिरिक्त अन्य दबावपूर्ण परिस्थितियॉं हैं जिनसे विस्थापन यंत्र द्वारा असंगत भय उत्पन्न होता है। उदाहरण के लिए एक व्यक्ति को अपने में कार्य कुशलता न होने के कारण लौकरी से निकाल दिये जाने का भय है तो वह अलेवेटर असंगत भय उत्पन्न कर लेता है जिससे आफिस जाने से बच जाता है। निम्न उदाहरण से यह कथन विशेष रूप से स्पष्ट हो जाता है। एक व्यक्ति ने एक छोटी सी दुकान बड़ी इमारत के गेट के पास व्यापार के हेतु किराये पर लिया था। उसने नेकटाई का धंधा चालू किया। यद्यपि वह अपने अथक परिश्रम व मेहनत से अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए पैसा कमा लेता था परन्तु

---

4. कोलमैन, जेम्स सी0 उल्लिखित, पृ0 228–230

उसकों अपने व्यापार की असफलता आभास हो गया था। उसको यह भी आभास हो गया था कि उसकी दुकान दम घुटने वाली लगती है क्योंकि हवा के निकास का कोई प्रबंध नहीं है तथा बगल में उसके पास कोई कमरा नहीं है। उसको आभास होने लगा की दीवारे उसको दबाये दे रही हैं। अतः शुद्ध हवा के लिए उसे बार–बार बाहर जाना पड़ता है। उसमें यह भावना बढ़ती गयी तथा उसको तभी संतोष मिला जब उसने दुकान हमेंशा के लिए बंद कर दी।

2–मूल प्रवृत्तियों की धमकी से सुरक्षा

(Defence against threatening impulses)

सात्जमैन तथा लीफ (Salzman and Lief) के विचार से जब दमित लैंगिक प्रवृति आक्रामक होकर खतरनाक हो जाती है तो असंगत भय द्वारा सुरक्षात्मक प्रतिक्रिया संभव होती है और व्यक्ति इस खतरे से बच जाता है।[5] रोगी दमित व समाज विरोधी इच्छाओं से बचने के लिए असंगत भय का सहारा लेता है। उसकी चिंता का विस्थापन यहाँ भी होता है। जिस वस्तु या स्थिति से उसे भय लगता है वह स्थिति या वस्तु चिंता का वास्तविक कारण नहीं होती है। उदाहरण के लिए एक पति में अपनी पत्नी को पानी में डुबोकर मारने की इच्छा यदि विद्यमान है तो उसको पानी वाले स्थान से भय (Water Phobia) उत्पन्न हो जाता है। यदि किसी पत्नी में पति या पुत्र को चाकू से गला काटने की प्रवृति दमित हो गयी है तो चाकू या हथियार से असंगत भय उत्पन्न हो जाता है।

3–सम्बन्ध प्रत्यावर्तन तथा बचाव का सीखना

(Conditioning and avoidance of Learning)

सीखने की प्रक्रिया के आधार पर असंगत भय का विकास होता है। जिस व्यक्ति को कुत्ता काट लेता है, वह कुत्ते से डरने लगता है। इसी प्रकार बालक जब स्वतंत्र होने के लिए हतोत्साहित किया जाता है तो वह कभी भी परिस्थितियों से निपटने का विश्वास उत्पन्न नहीं कर पाता है। अतः वह पलायन का रास्ता ग्रहण करता है। इसके अतिरिक्त भयानक उद्दीपन के साथ तटस्थ उद्दीपन भी उपस्थित होता है तो तटस्थ उद्दीपन भी भयानक उद्दीपन का रूप ग्रहण कर लेता हैं।[6]

---

5. सात्जमैन, एल0 — आवसेसेन्स ऐण्ड फोबियाज, इण्टरनेशनल जर्नल आफ साइक्योट्री 1968, 6, पृ0 451–468
6. लीफ, एच0 आई0 — जनरिक ऐण्ड स्पेसिफिक एसपेक्ट्रस आफ फोविया, बिहैवियर इण्टरनेशनल जर्नल आफ साइक्याट्री, 1968, पृ0 470–473

कोलमैन ने इस संबंध में एक 18 वर्ष की लड़की का उदाहरण प्रस्तुत किया है। इसको नैतिकता का कठोर प्रशिक्षण दिया गया था। वह कामवासना को अपराध, पाप, तथा अनैतिक समझती थी। जब अपने प्रेमी से उसके संबंध घनिष्ठ हुये तथा उसने उसका चुम्बन लिया तो उसमें काम–भावना जाग्रत हुई। परन्तु उसके विचार से काम–भावना अपराध की प्रवृति थी । अतः उससे दूर होने के उपाय ढूंढने लगी। उसने अपने प्रेमी से मिलना बंद कर दिया। धीरे–धीरे किसी भी नवयुवक के साथ जाने में भी उसमें दुःखदायी भावना का विकास होने लगा था। अतः वह उन समाजिक परिस्थितियों से भयभीत होने लगी थी जहाँ पर पुरुष उपस्थित हो सकते थे।

4–उपचार

असंगत भय के उपचार में मुख्य रूप से दो विधियों का उपयोग किया जाता है। प्रथम प्रकार के उपचार में यह समझा जाता है कि असंगत भय अत्यधिक चिंता की अभिव्यक्ति है। अतः यदि रोगी को उसके भय का कारण बतला दिया जाय तो उसका भय धीरे–धीरे समाप्त हो जाता है और वह स्थिति से समायोजित होने में सफल हो जाता है। परन्तु यह तरीका विशेष सफल नहीं होता है। साल्जमैन के अनुसार रोगी को अपने भय के कारण का ज्ञान होने पर भी वह असंगत भय को दूर करने में असमर्थ रहता है।

परिणामस्वरूप दूसरी विधि का उपयोग किया जाता है जिससे रोगी के व्यवहार का सुधार करते हैं। इस विधि को व्यवहार सुधारातमक विधि (Modification Technique) कहते है । व्यवहार की प्रत्येक स्थिति में उसके भय को दूर करने का प्रयास किया जाता है और रोगी में धीरे–धीरे विश्वास उत्पन्न होता जाता है।

15

मनोविदलता

मनोविदलता, मनोविकारों में से एक जटिल महाविकार है। इस रोग से संतृप्त रोगी आत्मीय एवं पर्यावरणीय यथार्थता से विमुख हो जाता है। रोगी की प्रज्ञा के नष्ट होने के कारण वह प्रत्यक्षीकरण विचार प्रक्रिया के विषय में असाध्य हो जाता है। संवेगात्मक विधटन के परिणामस्वरूप वह सामाजिक अन्तः क्रिया से अपना वास्तविक तारतम्य स्थापित नहीं कर पाता है। रोगी अपनी प्रज्ञाहीनता के कारण अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रणहीन होने से शंकालु, भयातुर एवं दूसरों के प्रति अविश्वासी बन जाता है । उसकी यह स्थिति जब सीमा का अतिक्रमण कर जाती है तो उसे दूसरों से बातचीत करने में अरुचि हो जाती है व अनियमित इन्द्रियों के कारण उसकी श्रवण इन्द्रियों में, प्रिय व मधुर आवाज भी भयानक दिखाई देती है। रोगी की ऑखों के सामने रंग–बिरंगी तितलियाँ सी उडती दृष्टिगोचर होती हैं।

मनोविदलता के रोगी में व्यक्तित्व सम्बन्धी विकार उत्पन्न हो जाने से उसका व्यवहारिक सामान्य जीवन विश्रृंखलित होकर समस्या मूलक बन जाता है, जैसे बात–चीत करते समय अपनी कही बातें एवं दूसरों की बातों को श्रृंखलाबद्ध करना व उनके सार्थक अर्थ को जोड़ना असम्भव हो जाता है। अनेकों प्रकार के व्यामोह तथा विभ्रम होने लगते हैं। निर्णय प्रतिक्रियाहीनता के कारण वह कभी अतिसक्रिय एवं कभी अतिनिष्क्रिय हो जाता है। उसके सभी कार्य अचेतनावस्था के वशीभूत हो जाते हैं। जिसका कोई सार्थक अर्थ नहीं होता है। इस तरह से जब मनोविदलता से ग्रस्त व्यक्ति को रोगी होने की संज्ञा दी जाती है तो उसे उसके व्यवहार के लिए अपराधी एवं दोषी नहीं ठहराया जा सकता है।

(1) मनोविदलता की परिभाषा

पेज, जे0डी0[1] के अनुसार "मनोविदलता व्यक्तित्व विघटन के द्वारा परिलक्षित अनेक मनोविकारों के समूह का बोध कराने वाला सामान्य शब्द हैं।"

---

1. पेज, जे0 डी0 अवनार्मल साइकोलाजी, पृ0 236

कोलमैन, जेम्स सी0[2] के अनुसार : मनोविदलता मनोकृितियों के समूह के लिए एक विवरणात्मक शब्द है जिसमें वास्तविकता का पूर्ण विघटन , प्रत्यक्षीकरण, विचारों तथा संवेगों का विधटन तथा खण्डन एवं सामाजिक अन्तक्रिया से प्रत्याहार होता है।

सन् 1860 ई0 में वेल्जियम निवासी मोरेल (Morel) ने सर्वप्रथम इन लक्षणों से युक्त रोगियों के लिए मनोह्वास (Dementia Praecox) शब्द का प्रयोग किया। उसके सत्यापनार्थ एक उदाहरण प्रस्तुत किया जो एक 13 वर्षीय बालक के जीवनवृत्त से संबंधित था। वह बालक अपने प्रारम्भिक शिक्षणकाल में कुशाग्र एवं होनहार था। कुछ समयोपरान्त उसका शैक्षणिक एवं सामाजिक व्यवहार सामान्य से निम्नस्तरीय हो गया। वह अपने व्यवहारिक जीवन में असंतुष्टता का अनुभव करने लगा। जिससे उसमें एकाकीपन और नैराश्य से संतृप्त रहने के लक्षण स्पष्ट दिखने लगे।

उसकी स्मरण शक्ति शनैः–शनैः विस्मरण की स्थिति में आ गयी। उसको अपने प्रारम्भिक ज्ञान की बातें भूल गई और अपने पिता की हत्या करने की घोषणा सर्वत्र करने लगा। मोरेल (Morel) ने इस रोगी के लक्षणों को वंशानुगत सिद्ध करने में अपना समर्थन दिया और कहा कि इस व्यवहार के लिए पैतृकता के कारक उत्तरदायी हैं। जिनके कारण वह अपने नैतिक, बौद्धिक, शारीरिक क्रियाकलापों में असंतुलित व्यवहार करने लगा है। मोरेल ने बताया कि पैतृकता से प्राप्त दोषों का निदानात्मक उपचार सम्भव नहीं है।

अतः मोरेल के इस उदाहरण और प्रतिपादित सिद्धान्त से सिद्ध हो गया कि मनोविदलता (मानसिक ह्रास) में रोगी की प्राथमिक अवस्था में मानसिक विश्रृंखलन (Mental Deterioration) जैसे एकाग्रचित्तता, कल्पनाशक्ति तथा मेध ाह्रास आदि विकार उत्पन्न हो जाते हैं। यह महाविकार मुख्यतः प्रौढ़ावस्था में होता है।

जर्मनी के क्रेपलिन[3] (Kraepelin) मनोचिकित्सक ने भी असामयिक मनोह्वास शब्द का उपयोग इस प्रकार के विकारों को स्पष्ट करने के लिए किया। उनके अनुसार भी व्यक्ति में ये लक्षण एक बार उत्पन्न हो जाने पर स्थायी हो जाते हैं तथा उनको किसी भी प्रकार से पूर्णतया दूर नहीं किया जा सकता है।

---

2. कोलमैन, जेम्स सी0 — उल्लिखित, पृ0 268
3. क्रेपलिन, ई0 — डेमेन्सिया प्रेकाक्स ऐण्ड पैरफिनिया, लिविंगटन, इडिनबर्ग, 1925

परन्तु अन्य मनोचिकित्सकों ने इस मत का खण्डन किया क्योंकि मनोविदलता के लक्षण न तो स्थायी होते हैं और न ही केवल युवावस्था में उत्पन्न होते हैं।

क्रेपलिन के विचार को खण्डन करने वाले मनोचिकित्सकों में स्विटजरलैण्ड के ब्लूलर (Bleuler) सर्वप्रथम मनोचिकित्सक थे। उन्होने इस विकृति के लक्षणों के रोग को मनोविदलता (Schizophrenia) के नाम से संबोधित किया। जिसका तात्पर्य व्यक्तित्व के अस्त–व्यस्त तथा विघटन होने से था। उनके विचार से मनोविदलता की अवस्था में व्यक्ति की विचार प्रक्रिया असंगठित होकर विचारों तथा संवेगों में संबंध विघटित हो जाता हैं एवं उसका वास्तविकता से सम्पर्क समाप्त हो जाता है।

मनोविदलता विकृति सभी युगों में मानव समाज में पायी जाती रही है। यह प्रायः 15 वर्ष से 45 वर्ष की आयु के व्यक्तियों में अधिक परन्तु औसतन 30 वर्ष के व्यक्तियों में अधिक सक्रिय पायी गयी है क्योंकि जीवन के यह दिन व्यक्ति के लिए महान दिन होते हैं। इसका योग स्त्रियों तथा पुरूषों में समान रूप से पाया जाता है। इसके लक्षण तुलनात्मक दृष्टि से अन्य मानसिक विकृतियों की अपेक्षा अधिक भयानक व जटिल होने के कारण इसका मानसिक विकृतियों में सबसे महत्वपूर्ण स्थान है।

(2) लक्षण

मनोविदलता के लक्षण व्यक्ति में शनैः– शनैः विकसित होते हैं जिसके कारण प्रारम्भिक अवस्था में वह एकांकी सा बन जाता है। उसका वाह्य पर्यावरण से सम्पर्क कम होने लगता है जिसके फलस्वरूप वह सामाजिक क्रियाओं में रुचि कम लेता है, दिवास्वप्न होने लगते है तथा प्रत्युत्तरों में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। यह विकार व्यक्ति में चूंकि धीरे–धीरे उत्पन्न होता है अतः चिकित्सा की आवश्यकता उसी समय महसूस होती है जब रोग चरम सीमा पर पहुंच जाता है। कभी–कभी यह विकृति एकाएक अप्रत्याशित ढंग से भी उत्पन्न हो जाती है। जिसके कारण व्यक्ति में सांवेगिक उथल–पुथल (Emotional turmoil), भयानक स्वप्न तथा भ्रम उत्पन्न हो जाते हैं। इस तरीके से उत्पन्न होने वाले विकार लक्षणों को मनोचिकित्सकों ने प्रतिक्रियात्मक मनोविदलता (Reactive Schizophrenia) के नाम से सम्बोधित किया है। इस मनोविदलता के लक्षण सामान्यतः एक सप्ताहान्तर ही स्पष्ट हो जाते हैं।

मनोविदलता के रोगी में प्रत्यक्षीकरण विचार प्रक्रिया तथा सांवेगिक लक्षणों में विघटन उत्पन्न हो जाता है जिससे वह व्यवहार को अपने सामाजिक

पर्यावरण में समायोजित नहीं कर पाता है। कोलमैन[4] ने मनोविदलता के लक्षणों को 5 श्रेणियों में विभक्त किया है:—

1— प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में ह्रास (Breakdown of perceptual Filtering)

2— विचार प्रक्रियाओं का विघटन (Disorganization of thought process)

3— सांवेगिक विघटन तथा अतिभय की भावनायें (Emotionaal distortion and feelings of panic)

4— व्यामोह तथा विभ्रम (Delusions and Hallucinations)

5— वास्तविकता से प्रत्याहार (Withdrawal from reality)

1— प्रत्यक्षीकरण की प्रक्रिया में ह्रास

सामान्य व्यक्ति की प्रत्यक्षीकरण की क्रिया वस्तुतः वास्तविक होती है। वह प्रत्यक्षीकरण द्वारा अपने संवेगों को व्यवस्थित करके इन्द्रियों का उपयोग सामान्य तरीके से करते हुये वास्तविकता से सम्बन्ध जोड़ लेता है। जिसके परिणाम स्वरूप सामाजिक सम्बन्ध विकसित होते हैं। मनोविदलता का रोगी वास्तविक तथा अवास्तविक में भेद नहीं कर पाता है। वह प्रत्येक प्रकार के उत्तेजक के लिए अति संवेदनशील होता है। यह उत्तेजक चाहे वाह्य हो अथवा आन्तरिक उचित प्रभाव डालने में असमर्थ होता है। रोगी अपने प्रत्यक्षीकरण को अर्थपूर्ण तरीकों से सम्बन्धित नहीं कर पाता है अर्थात उसका प्रत्यक्षीकरण वास्तविक नहीं हो पाता है। रोगी अत्यधिक सतर्क रहता है तथा घटनाओं की आधिकता के कारण विश्राम नहीं ले पाता है। प्रत्येक विचार उसके मस्तिष्क मेंआकर बाहर निकलते हैं। वह प्रत्येक क्षण सोचता है कि सभी घटनायें उसमें से होकर बाहर निकलती है। वह अपने को ट्रांसमीटर के समान मानता है जिसमें हवा की लहरें पहले आती हैं और जिसके उपरान्त दूसरे व्यक्ति उसको सुनते हैं। परन्तु रोगी इन लहरों के साथ अपने को व्यवस्थित तथा समायोजित करने में असमर्थ होता हैं। अतः वह अपना ध्यान केन्द्रित न कर पाने के फलस्वरूप विभिन्न वार्तालाप उसको एक साथ सुनाई पड़ते है। जिसके कारण वह किसी भी वार्तालाप का सार्थक अर्थ समझने में अपने को असमर्थ पाता है।

---

4. कोलमैन, जेम्स सी0 — अवनारमल साइकोलाजी ऐण्ड मार्डन लाइफ, डी0 वी0 तारापुर वाला सन्स ऐण्ड कं0, बाम्बे, 1974, पृ0 269—77

2– विचार प्रतिक्रियाओं में विघटन

मनोविदलता के रोगी में विचार प्रतिक्रिया इतनी विघटित हो जाती है कि वह अन्य व्यक्तियों से वार्तालाप एवं विचार विनिमय के योग्य नहीं रहता है। वह अपना ध्यान किसी भी विचार पर केन्द्रित नहीं कर पाता है। उसके विचारों में कोई तारतम्यता नहीं होती है। उसके विचारों तथा कार्यों में कोई समन्वय नहीं होता है। रोगी मूर्त तथा अमूर्त में भेद नहीं कर पाता है। क्योंकि प्रत्यक्षीकरण सही नहीं होता है। इसके विपरीत विचारों की तारतम्यता न स्थापित होने से उलझन उत्पन्न हो जाती है। सीधी तथा साधारण बात को भी समझने में उसे कठिनाई होती है। उसकी प्रवृत्ति अन्तर्मुखी हो जाती है जिसके कारण सार्थक विचार उससे दूर हो जाते हैं।

मनोविदलता के रोगी में समस्या को समझने तथा दूर करने की क्षमता का ह्रास हो जाता हैं। उसमें निर्णय करने की प्रक्रिया भी असंगत हो जाती है। जब भी वह किसी विचार पर अपना ध्यान केन्द्रित करने का प्रयत्न करता है तो विकृत रोगियों की तरह अनेक आवाजें तथा विचार एक साथ प्रविष्ट हो जाते हैं। जिससे वह ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है। मनोविदलता की प्रारम्भिक अवस्था में कुछ ही असंगत विचार तथा विचारों की अतारतम्यता होती है। परन्तु धीरे–धीरे लक्षण विकट होते जाते हैं। रोगी यहाँ पर ठीक प्रकार से कार्य नहीं करता है। जिसके कारण वह अपनी आवश्यकताओं की पूर्ति नहीं कर पाता है।

3– सांवेगिक विघटन तथा अतिभय की भावनायें

प्रज्ञानात्मक प्रक्रियाओं में ह्रास होने से रोगी में संवेगात्मक विचलन हो जाता हैं जिससे वह स्थिति के प्रति सामान्य व अनुकूल प्रतिक्रिया नहीं कर पाता है क्योंकि उसका प्रत्यक्षीकरण असंगठित पहले से ही होता है। उसमें संवेगात्मक प्रक्रिया अप्रभावी होकर निष्क्रिय हो जाती है। वह खेदजनक घटनाओं पर दुखी नहीं होता है। सुखद घटनायें भी अपना प्रभाव नही डाल पाती हैं। वह उन बातों से दुखी या प्रसन्न नहीं होता है जिनसे सामान्य व्यक्ति प्रभावित होता है। किसी प्रियजन की मृत्यु पर वह शोक नहीं प्रकट करता है। क्योंकि मनोविदलता के रोगी के संवेग किसी परिस्थिति से सम्बन्धित नहीं होते हैं। जब भी किसी प्रकार के संवेग प्रकट होते हैं तो वे तीव्र होते हैं तथा अत्यधिक उत्तेजक होते हैं। जिसके परिणाम स्वरूप वह हंसता है तो बड़ी तेजी से हॅसता है और रोता है तो निरन्तर रोता ही रहता है। क्रोधित होने पर वह हिंसात्मक व्यवहार करने लगता है। उसका अपने संवेगों पर नियन्त्रण न होने से अहं का संवेग से सम्बन्ध विच्छेदित हो जाता है। उसके सारे व्यवहार अप्रत्याशित तथा अनियोजित होते है।

4– व्यामोह तथा विभ्रम

मनोविदलता का रोगी भ्रान्तियों के कारण असत्य बातों को सत्य मान लेता है। वह कल्पना के लोक में विचरण करता है और दिवास्वप्न देखता है। वह विश्वास करता है कि दूसरे लोग उसे दण्डित करना चाहते है और उससे घृणा करते हैं तथा किसी न किसी आरोप में उसको दोषी टहराना चाहतें हैं। रोगी को अप्रत्याशित विचार भी प्रत्याशित से लगतें है। अतः वह उन्हीं के अनुरूप व्यवहार करता है। जब रोगी के मस्तिष्क में यह विश्वास हो जाता है कि दूसरे लोग उससे शत्रुतापूर्ण व्यवहार करते हें तो वह अपने सम्बन्ध उनसे सीमित कर लेता है तथा अनेक सुरक्षात्मक कदम उठाता है। वह अपनी सुरक्षा के लिए पुलिस में रिपोर्ट दर्ज करता है तथा उच्च अधिकारियों से शिकायत करता है। इसके विपरीत महानता का व्यामोंह होने पर अपने का महान व्यक्ति मानने लगता है।

1–संदर्भ का व्यामोह (Delusion of Reference) रोगी विश्वास करने लगता है कि अन्य व्यक्ति उसके विषय में बातचीत करते है। अपनी बातों के मध्य उनका नाम लेते हैं, उनके आदर्शों का पालन करते हैं तथा उसकी क्रियाओं तथा आचरणों का अनुकरण करते है।

2–प्रभाव का व्यामोह (Delusion of influence) रोगी यह विश्वास करने लगता है कि उसके शत्रु उसको विभिन्न तरीकों से प्रभावित कर रहे है। वे ध्वनि तरंगों द्वारा उसके मस्तिष्क मे अपने विचारों को पहुंचा रहे हैं।

3– दण्डात्मक व्यामोह (Delusion of persecution) मनोविदलता के रोगी को यह विश्वास हो जाता है कि कुछ लोग उसके दुश्मन हैं। वे उसे हानि पहुंचाने के लिए प्रयत्नशील तथा उसे मार डालने के प्रयास में रत है। । अतः रोगी एकान्तप्रिय होकर अपनी सुरक्षा का पूरा प्रबन्ध करता है।

4– पाप और अपराध का व्यामोह (Delusions of sin snd guilt) रोगी विश्वास करने लगता है कि उसने अपने जीवन में घोर पाप किये है जो क्षमा के योग्य नहीं हैं। वह अपने को एक अपराधी समझने लगता है और उसकी धारणा बन जाती है कि उसने समाज को हानि पहुंचाई है।

5–रोग चिन्तात्मक व्यामोह (Hypochondrial delusions) रोगी को यह भ्रान्ति हो जाती है कि वह किसी ऐसी बीमारी से ग्रस्त है जो असाध्य है। कभी रोगी सोचता है कि उसका पेट गायब हो गया है तो कभी सोचता है कि वह टी0 बी0 का रोगी है जिसके कारण उसमें दुश्चिंता उत्पन्न हो जाती है।

6– महानता का व्यामोह (Delusion of grandeur) रोगी कभी–कभी

अपने को महान व्यक्ति समझने लगता है। वह स्वयं को नेता, धर्मप्रचारक, वैज्ञानिक, अन्वेषक राष्ट्रपति, प्रधानमन्त्री इत्यादि कहने लगता है।

7—सारहीनता का व्यामोह (Delusion of Nihilism) मनोविदलता का रोगी कभी—कभी सोचता है कि संसार नाशवान है। यहॉ की कोई वस्तु या व्यक्ति स्थिर नहीं है। यहॉ पर केवल छाया के रूप में उनकी आत्मायें भटक रही हैं।

मनोविदलता का रोगी कल्पित बातों पर विश्वास कर लेता है और समझने पर भी पूर्णरूपेण अपने विश्वास पर अडिग रहता है। उसकी समझ में वास्तविक बात नही आती है तथा तर्क देने पर भी विश्वास नहीं करता है।

विभ्रम की अवस्था में रोगी किसी वस्तु या उत्तेजक की अनुपस्थिति में भी उसकी उपस्थिति समझता है। किसी वस्तु के न होने पर उसे उसके विषय में ज्ञान रहता है। वह बिना मिठाई के स्वाद चखता है बिना बर्फ के ठण्डक महसूस करता है तथा अनके आवाजें सुनता है जो कहीं भी नहीं हो रही है। इसके विपरीत भी रोगी की प्रतिक्रियायें होती हैं। वस्तु उपस्थित होने पर उसे दिखाई नहीं देती है। गन्ध होने पर उसे गन्ध नहीं महसूस होती है, आवाजें देने पर भी उसे आवाज नहीं सुनाई देती है।

मनोविदलता के रोगी में निम्न प्रकार के विभ्रम उत्पन्न हो जाते है।

1— श्रवणीय विभ्रम (Auditory Hallucination) रोगी कभी—कभी ऐसी आवाजे सुनता है जो अवास्तविक होती हैं। वह सुनता है कि कोई उसको अमुक कार्य करने के लिए निर्देश दे रहा है, उसकी क्रियाओं की आलोचना कर रहा है। उसकों चेतावनी दे रहा है कि यदि उसने अपने किये अपराधों तथा कार्यों पर पश्चाताप न किया तो उसे नष्ट कर देगा।

2— दृष्टीय विभ्रम (Visual Hallucination) रोगी ऐसे व्यक्तियों तथा वस्तुओं के दृश्य देखता है जो उपस्थित नहीं हैं। वह बनद कमरे में होने पर भी बाहर के वातावरण का अनुभव करता है। उसे यह अनुभव होता है कि वह पहाड़ पर चल रहा है, बर्फ उसके चारो ओर है अतः उसे ठंडक लगती है। कभी वह देखता है कि उसको मारने के लिए कोई आ रहा है उसके हाथ में हथियार है जिससे उसे मारना चाहता है, अतः वह डर कर चिल्लाता हुआ भागता है।

3— गंधित भ्रम (Olfactory Hallucination) रोगी ऐसी गंधों को महसूस करता है जो प्रत्यक्षतः नहीं हैं। कभी खाने की गंध आती है कभी शराब की गन्ध आती है, कभी फूल की गंध आती है। रोगी ऐसी भी गन्ध महसूस करता है जो

जहरीली है और उसको समाप्त करने के लिए फैलायी गयी है ताकि रोगी की मृत्यु हो जाय।

4– स्वादात्मक विभ्रम (Gustatory Hallucination) रोगी को ऐसे स्वादों का अनुभव होता है जो अवास्तविक हैं। उदाहरणार्थ मीठी चीज न खाने पर भी मिठास को महसूस करना, मिर्च न खाने पर भी कड़ुवापन महसूस करना, अम्लीय वस्तु न खाने पर अम्लीयता का अनुभव करना, आदि। एसे सभी सुस्वाद खाद्य पदार्थों में भी जहर सी कटुता का अनुभव होता है।

5–स्पर्शीय विभ्रम (Tactual Hallucination) रोगी विश्वास करने लगता है कि कोई उसे अपनी ओर खींच रहा हैं। सॉप उसको डस रहे है।, उसके पेट में बिल्ली है, इत्यादि। रोगी को छुने पर कटुता का अनुभव होता है। उसका स्पर्शीय अनुभव शून्य हो जाता है। उसका वास्तविकता से सम्बन्ध विच्छेद हो जाता है।

5. वास्तविकता से प्रत्याहार

मनोविदलता का रोगी कल्पना लोक का प्राणी बन जाता है। उसका वास्तविकता से बिलकुल सम्बन्ध नहीं रहता है तथा वह नवीन अनुभवों को कल्पना द्वारा ग्रहण करता है। पर्यावरण से उसका सम्बन्ध विच्छेद होने के साथ ही साथ स्वयं के विषय में भी वह कोई निर्णय नहीं ले पाता है। उसकी आत्मशक्ति विघटित हो जाती है तथा उसे किसी भी आंतरिक घटना का बोध नहीं होता है। वह अपने अस्तित्व के विषय में भी भ्रम करने लगता है। किसी–किसी रोगी में यहाँ तक विश्वास उत्पन्न हो जाता है कि वह व्यक्ति न होकर कोई पशु या मशीन है।

प्रत्याहार तथा उदासीनता (Withdrawl and Apathy) की सीमा प्रत्येक रोगी में भिन्न–भिन्न होती है। परन्तु प्रत्येक मनोविदलता का रोगी आंतरिक कल्पना में खो जाता है तथा अपने व्यक्तिगत विचार प्रभावपूर्ण लगते हैं। वास्तविकता से सम्पर्क करने के लिए यदि किसी भी प्रकार से रोगी की सहायता की जाती है तो वह उग्र तथा आक्रामक व्यवहार करता है। परन्तु कुछ रोगी स्वयं सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयास करते हैं परन्तु यह संख्या नगण्य होती है। वास्तविकता से पुनर्स्थापन के लिए किये गयें प्रयत्नों में हनाह ग्रीन[5] द्वारा रचित पुस्तक में एक लड़की का उदाहरण अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उन्होंने ऐसी

---

5. Honnah Green's Autobiographical Novel, I Never Promised You a Rose Garden, 1964.

लड़की का वर्णन किया है जो बचपन में मनोविदलता के कारण अस्पताल में निवेसित की गई थी। उसने अपने को सिगरेट से कई बार जलाकर देखा था कि वह जीवित प्राणी है या नहीं।

मनोविदलता के रोगी का व्यवहार विश्रृंखलित होता है। उसका अंग प्रत्ययों के चलाने का ढंग, मुखाकृति, हाव–भाव आदि सभी बेढंगा होता है। वह विचित्र तरीके से अंगों का संचालन तथा हावभावों का उद्‌बोधन करता है। सारांशतः, उसकी सभी शारीरिक गत्यात्मक तथा मानसिक क्रियायें विचित्र होती हैं।

मनोविदलता के रोगी का स्वास्थ्य गिर जाता है। उसको अनिद्रा, अपच, शारीरिक कष्ट आदि अनुभव होते है। उसकी लेखन शैली भी विकृत हो जाती है। कोई–कोई रोगी आवश्यकता से अधिक लिखने लगते है। और कोई–कोई बिलकुल लिखना बन्द कर देते है। लिखने में उनके शब्दों का कोई तारतम्य नहीं होता है। उसका अर्थ भी कुछ नहीं होता हैं। शब्द ठीक नहीं बनते है। वे एक सीध ा में नहीं होते हैं तथा उल्टे–सीधे होते हैं।

रोगी मे वाणी सम्बन्धी विकृति हो जाती है। वह अनर्गल शब्दों का उच्चारण करता है जिनका अर्थ लगाना कठिन होता है। उसके वाक्य असंगठित तथा अनियोजित होते है। कभी–कभी रोगी अपनी बात की पुरावृत्ति करता है। वह नवीन तथा निरर्थक शब्दों का भी उपयोग करता है और आवश्यकता हुई तो वह नये उच्चारण का विकास करता है।

6–अनर्गल वार्तालाप का प्रवाह
(Abnormal Stream of talk)

मनोविदलता के कुछ रोगी बिलकुल बातचीत नहीं करते हैं। वे किसी शब्द का उच्चारण तक भी नहीं करते या वे किसी प्रश्न का उत्तर नहीं देते हैं। उसके विपरीत कुछ रोगी निरन्तर कुछ न कुछ बोला करते है। उनके शब्द अर्थरहित तथा असंगत होते है। वे कभी–कभी एक ही वाक्य को बार–बार दोहराते रहते हैं।

इचोलेलिया (Echolalia) की स्थिति भी प्रकट होती है जिसमें रोगी प्रश्नकर्ता के शब्दों को बार–बार दोहराता है । इचोप्रेक्सिया (Echopraxia) की अवस्था में वह चिकित्सक अथवा कार्यकर्ता के कार्यों को दोहराता रहता है।

रोगी के वार्तालाप में अचानक अवरोध (Blocking) उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण वह बातचीत एकाएक समाप्त कर देता है तथा किसी भी परिस्थिति

में पुनः शीघ्र प्रारम्भ नहीं करता है। उसमें अवरोध (Skidding) के लक्षण भी कभी–कभी उत्पन्न हो जाते हैं। इस अवस्था में यद्यपि रोगी प्रश्न का उत्तर सही प्रारम्भ करता है परन्तु शीघ्र ही असंगत विषय पर पहुंच जाता है। बातचीत के विषय में परिवर्तनशीलता का क्रम जारी रहता है। परन्तु यह परिवर्तन तर्कहीन होता है । अध्यवसाय (Perseverence) के भी लक्षण प्रकट होते है। और इस अवस्था में रोगी अनेक प्रश्नों का एक उत्तर देता है।

उपर्लिखित मनोविदलता के लक्षणों के सम्बन्ध में निम्न बातों का ध्यान अवश्य रखना चाहिए :–

1–सभी लक्षण किसी भी मनोविदलता के रोगी में नहीं पाये जाते हैं।

2–प्रत्येक रोगी के लक्षणों में भिन्नता होती है।

3–यदि रोगी के साथ मनोविदलता रोगी मान कर व्यवहार किया जाता है तो लक्षणों पर प्रभाव होता है।

4–लक्षणों की प्रकृति लघुकालीन तथा दीर्घकालीन दोनों होती हैं।

5–लक्षणों की तीव्रता रोगी के व्यक्तित्व पर निर्भर होती है।

(3) मनोविदलता के प्रकार
(Types of Schizophrenia)

अमेरिकन साइक्यात्रिक एसोशियेसन ने मनोविदलता को 10 श्रेणियों में विभक्त किया है परन्तु यहाँ पर उनमें से कुछ महत्वपूर्ण प्रकारों का ही उल्लेख किया जा रहा है।

(1) सरल प्रकार
(Simple Type)

सरल प्रकार की मनोविदलता धीरे–धीरे रोगी में उत्पन्न होती है। शैशवकालीन अवस्था में इसके लक्षण प्रायः प्रकट होते हैं। रोगी धीरे–धीरे वाह्य संसार के प्रति उदासीन हो जाता है। वह एकान्तवासी, चिड़चिड़ा तथा चिन्तातुर हो जाता है। उसको पढ़ाई में असफल या सफल होने की चिन्ता नहीं रहती है वह अपने सभी सामाजिक सम्बन्धों को धीरे–धीरे समाप्त कर देता है। यहॉ तक कि अपने मित्रों तथा परिवार के सदस्यों से भी कोई सम्पर्क नहीं रखता है। वह बहुत कम बातचीत करता है। रोग के बढ़ जाने पर हाँ, हूँ के अतिरिक्त कुछ नहीं कहता है। रोगी या तो पूरे दिन पड़ा रहता है या फिर आवारागर्दी करता है। वह व्यक्तिगत स्वास्थ्य पर ध्याननहीं देता है तथा विषम लैंगिक इच्छा का ह्रास हो

जाता है। रोगी को किसी **वाह्य** घटना पर ध्यापन केन्द्रित करने में कठिनाई होती है। वह उत्तरदायित्व ग्रहण नहीं करना चाहता है। उसका जीवन निष्क्रिय, सारहीन तथा उद्देश्य रहित होता है। उसके विचार असंगठित अस्तव्यस्त तथा अर्थहीन होते हैं। यद्यपि इस प्रकार के रोगी कभी–कभी चिड़चिड़ापन व्यक्त करते है तथा आक्रामक हो आते हैं परन्तु यह बहुत कम अवस्था आती है। सामान्य्य तथा सरल मनोविदलता का रोगी अपने ही विचारों में खोया रहता है और निष्क्रिय हो जाता है।

रोगी पर भाषण, उत्साहात्मक वाक्यों तथा समझाने का कुछ भी प्रभाव नहीं पड़ता है। इससे उसका व्यवहार कभी–कभी अश्लील, नकारात्मक तथा कटुतापूर्ण हो जाता ळै। परन्तु बौद्धिक तथा सांवेगिक प्रत्याहारों (Intellectual and Emotional withdrawal) के अतिरिक्त उसके मानसिक कार्यों में अधिक विघटन नहीं होता है।

निम्नलिखित वार्तालाप का कुछ अंश सरल प्रकार मनोविदलता के रोगी की भावनाओं को स्पष्ट करने में सहायक होगा।

कार्यकर्ता : आपका नाम क्या है ?

रोगी : मेरा नाम रमेश है।

कार्यकर्ता : क्या आप हमें जानते हैं कि मैं कौन हूं ?

रोगी : मैं डाक्टर समझता हूं।

कार्यकर्ता : ऐसा आप कैसे सोचते हैं ?

रोगी : अनुमान के द्वारा।

कार्यकर्ता : क्या तुम जानते हो कि इस समय तुम कहॉ हो ?

रोगी : मानसिक अस्पताल में।

कार्यकर्ता : यहॉ पर कौन रोगी आते हैं क्या आप जानते हैं ?

रोगी : मैं नहीं जानता, अस्पताल में रोगी आते हैं परन्तु मैं रोगी नहीं हूं। पता नहीं मुझे क्यों यहॉ लाया गया है।

सरल प्रकार मनोविदलता का एक उदाहरण

एक 25 वर्षीय एकलौती लड़की माता–पिता के द्वारा चिकित्सालय में लायी गयी थी। उसका व्यवहार दो सप्ताह से असामानय हो गया था। परिवार के सदस्य उसको समझाने बुझाने का प्रयत्न करते थे। परन्तु उसमें लक्षणों की गम्भीरता धीरे–धीरे बढ़ती जाती थी। वह अपने मित्रों से टेलीफोन पर अधिकाधिक

बात करना चाहती थी। परन्तु वार्तालाप के मध्य वह अस्त–व्यस्त होकर अधिक बातचीत नहीं कर पाती थी। वह उससे मिलने के लिए समय निश्चित करती थी परन्तु शीघ्र ही उसकी तिथि तथा स्थान परिवर्तित कर देती थी। वह प्रायः छोटे छोटे कागज के टुकड़ो पर छोटे–छोटे वाक्यों 'मुझे माता–पिता को असंतुष्ट तथा नाराज नहीं करना चाहिए,' लिखती रहती थी। वह धीरे–धीरे वार्तालाप में अरुचि रखकर विचित्र तरीके से बातचीत करती थी। उसके साथ तर्कयुक्त वार्तालाप करना असंभव हो गया था क्योंकि निरंतर विषय बदलती रहती थी एवं विचारों की कोई तारतम्यता नहीं थी। वह कभी कुछ करने को सोचती भी दूसरे क्षण दूसरा कार्य सोचती थी।

कार्यकर्ता ने रोगी से जब पृथक साक्षात्कार किया तो उसके विचारों से परिचित होने में अत्यधिक कठिनाई हुई। उसने बहुत ही कम प्रश्नों के उत्तर दिये। उसने अपनी सभी परेशानियों का मूल कारण नौकरी का बार बार परिवर्तन बताया। उसने बतलाया कि उसको व्यापारिक दुनिया से कोई लगाव नहीं है। तुरन्त ही उसने कहा कि उसको बचपन में खांसी हो जाने के कारण उसे श्वॉस व्याधि (Asthama) ने ग्रस लिया था। वह अपनी बातों को बराबर बदल–बदल कर कहती थी तथा उसकी बातों में कोई निश्चित संबंध नहीं था। वह अनेकानेक विषयों पर बातें कर रही थी।

रोगी अनेक सेवा पदों पर कार्य कर चुकी थी तथा कहीं भी अधिक समय तक स्थिर नहीं हो पायी थीं उसमें आर्थिक स्वातंत्र्य की भावना सबसे प्रबल थी। वह परिवार के सदस्यों पर बोझ बन कर किसी भी रूप में रहना नही चाहती थी। परन्तु किस प्रकार से वह आर्थिक रूप से आत्मनिर्भर हो सकेगी, यह उसकी समझ के बाहर का विषय था। रोगी ने बताया कि दो वर्ष पूर्व उसने एक व्यक्ति से लैंगिक संबंध स्थापित किये थे। तब से वह बहुत चिंतित रहती थी। यद्यपि उस समय उसे आनन्द प्राप्त हुआ था, परन्तु उसे बाद में यह अनुभव होने लगा कि मेरे में काफी परिर्वतन हो गया हैं। इस लैंगिक संबंध से उसकी कौमार्यशीलता भंग हो गई थी। रोगी का विचार था कि इस अनैतिकतापूर्ण कार्य को उसके परिवार के सदस्य भी जानते हैं। इससे उसे शर्म व चिंता हो गई थी। विषमताओं के बाद भी उस व्यक्ति से उसका लगाव था। काफी समय के उपचारोपरान्त उसकी दशा में कोई सुधार नहीं हुआ। वह सदैव सशंकित रहती थी। वह किसी भी विषय में अपना ध्यान केन्द्रित नही कर पाती थी। कभी–कभी उसको सुनने का विभ्रम (Auditory Hallucination) हो जाता था।

रोगी के संबंध में परिवार के सदस्यों से निम्न सूचनायें प्राप्त हुई थी ।

रोगी दूसरों से पहले से ही बहुत कम मिलती जुलती थी। उसने इण्टरमीडिएट करने के बाद अपनी स्वेच्छा से पढ़ाई छोड़ दी और एकाकी जीवन बिताने की आदी हो गयी थी। सेवा स्थल परिवर्तन करने की आदत पड़ गयी थी। वह किसी से भी अपने आप नहीं बोलती थी। व्यक्तिगत जीवन के संबंध में वह किसी से कुछ भी नही कहती थी। उसमें महत्वाकांक्षाओं का धीरे–धीरे ह्रास हो गया था तथा एकान्तवास पसंद करती थी। परिवार में रोगी के ससुर के भाई मानसिक रोग से पीड़ित थे और अन्होंने आत्महत्या कर ली थी।

रोगी के तथ्यों को ज्ञात करने के पश्चात उसे सरल मनोविदलता का रोगी समझा गया। जिस समय रोगी में मनोविकृति (Psychosis) उत्पन्न हो रही थी उसके संवेग अधिकतर लैंगिक क्षेत्र के थे। धीरे–धीरे उसमें व्यामोह उत्पन्न होता गया और वह सोचने लगी कि उसके लैंगिक कार्यों को उसके परिवार के सदस्य भी जान गयें हैं।

रोगी का प्रारम्भिक जीवन का समय सुखद नही था। उसके माता–पिता आपस में प्रायः लड़ते झगड़ते थे। जब वह छोटी थी उस समय उसके माता–पिता दोनों ही शहर में काम करने जाते थें जिसके कारण परिवार अधिक सामाजिक नहीं था ओर विरले ही कोई मित्र या संबंधी उसके यहाँ आता था। उसका शैक्षणिक जीवन भी कष्टप्रद था। उसने सभी संबंध समाप्त कर दिये तथा उसे किसी भी कार्य से लगाव नही था। 2 वर्ष पूर्व जब उसने लैंगिक समागम किया तो उसे जीवन के कुछ क्षणों के आनन्द की अनुभूति तो हुई परन्तु अहं ने इस घटना को सामान्य रूप से स्वीकार करने से मना कर दिया अर्थात् उसका अहं इस अनैतिक कार्य को बर्दाश्त न कर सका और उसमें पाप तथा व्यामोह होने लगे। रोगी का लालन–पालन ऐसी सामाजिक पृष्ठभूमि में हुआ था जिसमें रोगी साधारण सी बात पर अति संवेदना प्रकट करती थी तथा पश्चाताप करती थी । लैंगिक संबंध को उचित ठहराना उसकी परिवारिक व सामाजिक संस्कृति के लिए एक अप्रत्याशित कार्य था। क्योंकि लैंगिक संबंधो के विषय में रोगी की संस्कृति इतनी उदार और सहिष्णु नहीं थी कि रोगी उसे अपने जीवन का एक अंग बना सकती और उसे उचित ठहरा पाती।

(2) मनोकुंठात्मक मनोविदलता
(Hebephrenic Schizophrenia)

इस मनोविदलता में लक्षण गंभीर होते हैं। इसमें व्यक्तित्व का विघटन अन्य प्रकारों की अपेक्षा अधिक हो जाता हैं रोगी में संवेग तीव्र होते हैं उसका सामाजिक सम्बनध विच्छेद हो जाता है। उसका व्यवहार पूर्णतया असंगत होता

है। रोगी कभी तो अत्यधिक उत्तेजित होकर हिंसात्मक कार्य करने लगता और कभी विषादी होकर निष्क्रय हो जाता है । जिससे उसकी प्रवृतियों में प्रतिगमन होता है। वह बच्चों सा व्यवहार करने लगता है। वह कभी जोर–जोर से रोता है, कभी जोर–जोर से हॅसता है। उसकी वाणी विषादयुक्त होती है तथा शब्दावली विकृत हो जाती है। रोगी को महानता का व्यामोह (Delusion of grandeur) होने लगता है जिससे वह अपने को महान प्रचार, धर्मज्ञाता, वैज्ञानिक, महाननेता, प्रधानमन्त्री, राष्ट्रपति तथा महानवक्ता आदि मानने लगता है। उसमें विभ्रम भी होने लगते हैं। उसमें श्रवण, दृश्य, नस्य आदि के सभी विभ्रम पाये जाते हैं। वह अलौकिक दृश्य देखता है और कल्पना लोक मे विचरण करने का आनन्द प्राप्त करता है।

मनोविदलता का यह प्रकार 15 से 25 वर्ष की आयु में बहुतायत रूप से उत्पन्न होता है। प्रारम्भिक अवस्था ही रोग की चरम सीमा होती है। रोगी न तो किसी घटना की ओर आकृष्ट होता है और न ही किसी व्यक्ति से संबंध स्थापित कर सकता है। वह प्रश्नों के प्रति उत्तरहीन हो जाता है।

उसके शब्दों का उच्चारण अर्थहीन, मूर्खतापूर्ण एवं मुखाकृति भयानक या मुस्कानयुक्त होती है। उसका चलना हिलना डुलना विचित्र होता है। कभी–कभी रोगी ठीक प्रकार से भोजन अपने आप कर लेता है परन्तु अधिकांशतः उसको खाना खिलाना ही पड़ता है। वह जहां चाहता है मल मूत्र त्याग देता है। अपनी सफाई तथा कपड़े आदि की परवाह नहीं करता है। उसके व्यवहार में अश्लीलता तथा असभ्यता होती है। रोगी हस्तमैथुन (Masturbation) खुले आम करता है, तथा रोकने पर आक्रमण भी कर सकता है।

यहॉ पर मनोकुण्ठात्मक रोगी से बातचीत का कुछ अंश प्रस्तुत किया जा रहा है जिससे इस रोग के लक्षणों के विषय में जाना जा सकता हैं

कार्यकर्ता : आपका क्या नाम है ?

रोगी : अगर मुझे नाम मालूम होता तो मै आज प्रधानमंत्री होता, यही त्तो दुःख है कि कोई नाम नहीं बताता।

कार्यकर्ता : आप यहां कब आये ?

रोगी : मै उस समय से यहाँ हूँ जब से मनुष्यों ने जन्म लिया है सभी व्यक्तियों की देखभाल करना मेरा काम है।

कार्यकर्ता : आप यहाँ क्यों आये हैं ?

रोगी	:	(हॅसी आती है) सन् 1120 में मै लड़ाई में मारा गया, परन्तु दुश्मन जान न सका और हम फिर जीवित हो गये आज हमें लगता है कि पेट में बिल्ली पहुंच गयी है।
कार्यकर्ता	:	जहां पर आप इस समय हैं उस स्थान का क्या नाम है ?
रोगी	:	मैने आप को बताया कि मै धर्मात्मा हूँ अपराध हम नहीं करते हैं। लोगों को अब सीखना पड़ेगा कि किस प्रकार व्यवहार करना चाहिए।

3 सामंजस्य ह्रासात्मक मनोविदलता
(Catatonic Schizophrenia)

मनोविदलता के अन्य प्रकारों की अपेक्षा सामञ्जस्य ह्रासात्मक मनोविदलता बहुत ही शीघ्र पूर्ण विकसित होकर व्यक्ति में उत्पनन हो जाती है। इसके लक्षण रोगी में एकाएक प्रकट हो जाते हैं। इसके रोगी वास्तविकता से बिलकुल संबंध समाप्त कर देते है। वे दो स्थितियों के मध्य अपनी प्रतिक्रियायें करते रहते है। कभी वे अत्यन्त विषादी एवं प्रत्याहारी तथा कभी अति उत्तेजक हो जाते है। कुछ रोगियों में केल एक ही प्रकार के लक्षण प्राप्त होते है। प्रत्याहार की प्रतिक्रिया में रोगी की समस्त क्रियायें क्षीण हो जाती हैं तथा वह एक ही स्थिति में बिना किसी गति के काफी समय तक बना रहता है परन्तु उत्तेजना की स्थिति में हिंसात्मक आक्रामक तथा अति सक्रिय हो जाता है। ये रोगी दो प्रकार के होते हैं–

1– जड़ीय (Stupor)
2– उत्तेजित (Excited)

जड़ीय (Stupor) – इस अवस्था में रोगी निश्चेष्ठ (Inert) होकर एक ही स्थिति में विस्तर पर काफी समय तक पड़ा रहता है। रोगी विभिन्न उत्तेजकों के प्रति प्रत्युत्तर करता है परन्तु उसके प्रत्युत्तर अर्थहीन एवं नकारात्मक होते हैं। इस प्रकार के रोगी में नकारात्मकता (Nagativism) का एक विशेष गुण उत्पन्न हो जाता है। जिस कार्य को करता है। रोगी का शरीर लचीला हो जाता है, उसे किसी भी प्रकार से मोड़ा जा सकता है। परन्तु उसमें दृढता भी होती है। वह कहने के अनुसार शारीरिक गति नहीं कर सकता है। उदाहरण के लिए यदि रोगी अपने दोनों हाथ ऊपर उठाये हुये है। आप चाहते हैं कि उनको नीचे कर भी दिया जाय तो नहीं कर सकते हैं। आपने नीचे कर भी दिया तो रोगी पुनः पूर्व

सिथति में तुरन्त कर लेगा। वह एक ही स्थिति में चाहे जितनी कष्टप्रद क्यों न हो घंटों उसी स्थिति में रह सकता है।

जड़ीय अवस्था में रोगी पूर्णतया असामाजिक हो जाता है। प्रायः वह आंखे बंद करके लेटा या खड़ा रहता है। वह सुनने की प्रतिक्रिया नहीं करता है। वह लार भी नहीं निगलता और उसे अधिक होने पर बाहर निकाल देता है। खाना वह पसंद करता है तथा मलमूत्र त्याग करता है। कभी–कभी रोगी अति संवेदनशीन हो जाता है तथा प्रत्येक बात का प्रत्युत्तर उचित देता है। वह दूसरों के व्यवहार की नकल करता है, (Echopraxia) दूसरे शब्दों को बार–बार दुहराता है (Echolia)।

रोगी को विभ्रम तथा व्यामोह होने लगता है। वह श्रवणीय विभ्रम से प्रारम्भिक अवस्था में पीड़ित होता है। धीरे–धीरे अन्य प्रकार के विभ्रम भी होने लगतें है। विष संबंधी विभ्रम होने पर वह खाना बिलकुल नहीं खाता हैं। धार्मिक व्यामोह होने पर वह धर्मात्माओं ऐसी मुखाकृति बनाता है तथा शारीरिक गति करता है। कभी वह ईसामसीह की तरह घन्टों खड़ा रहता है तो कभी महात्मा बुद्ध की भंति आसन जमा देता है। यद्यपि रोगी कहता नहीं है कि वह ईश्वर, ईसामसीह, महात्मा बुद्ध है परन्तु उसकी शारीरिक क्रियायें उन्ही की भांति होती है। भय, चिंता तथा पाप की भावनाओं की प्रचुरता के कारण वह दीवार से सटकर डरने की स्थित में खड़ा होता है।

उत्तेजित (Excited) उत्तेजित अवस्था में रोगीका वयवहार हिंसात्मक हो जाता है। उस समय जो भी व्यक्ति उसके पास पडोस या उसकी पहुंच में होते हैं उनके लिए वह खतरनाक सिद्ध हो सकता है। इस अवस्था की पूर्व सूचना रोगी को नहीं प्राप्त होती है। वह उत्तेजनापूर्वक बोलता है तथा अति सक्रिय हो जाता हें परन्तु उसकी स्थिति उन्माद के रोगीं की तरह नहीं होती है। वह केवल अपने विस्तर अथवा उसके आसपास ही क्रियायें करता है। उसकी क्रियायें निरर्थक होती है। जो भी शब्द उच्चारित करता है उनका कोई अर्थ नही होता है। यह लैंगिक क्रियाओं के संबंध में कोई बंधन नहीं मानता है।

वह खुले स्थानों में हस्तमैथुन करता है। वह स्वयं आत्महत्या का प्रयत्न करता है तथा दूसरों को भी जान से मारने की पूरी कोशिश में लगाा रहता है। यह उत्तेजना रोगी में घंटों तक अथवा कई दिनों तक बनी रह सकती है। अतः वह अपने लिए साथ ही साथ दूसरों के लिए भी खतरनाक होता है।

कभी–कभी कैटाटानिक का रोगी सामान्य तरीके से बात करता है और कभी प्रश्नों के उत्तर ठीक प्रकार से देता है। परन्तु उन उत्तरों का संबंध किसी न किसी व्यामोह से होता है। उदाहरण के लिए जब रोगी को ईश्वर की आवाज सुनाई

देने लगती है या ऐसा लगता है कि वह उससे बाते कर रहा है तो उसी के अनुसार व्यवहार करता है और यह भी बताता है कि उसके साथ क्या–क्या बातें हुयी हैं।

उदाहरण

'स' नाम की 32 वर्षीय अविवाहित महिला अपने असामान्य व्यवहार के कारण चिकित्सालय में लायी गयी। जिस समय वह चिकित्सालय में आयी उस समय वह न तो कुछ बोलती थी और न ही किसी प्रकार की शारीरिक क्रियायें करती थीं। वह पूरे दिन चुपचाप रही तथा खाना भी नहीं खाया। परिवार के सदस्यों ने चम्मच से खाना खिलाने की यद्यपि काफी चेष्टा की परन्तु वह सफल न हो सके। उसका व्यवहार बिलकुल अव्यवस्थित तथा बचपने से पूर्ण था। उसको देखकर ऐसा लगता था कि वह 4–5 महीने की लड़की है क्योंकि वह अपना पॉव का अगूठा चूसती थी। फर्श पर घुटनों के सहारे चलती थी तथा धूल से खेलती थी। बच्चों की भॉति वह कमरे की वस्तुओं को आश्चर्यजनक दृष्टि से देखती थी परन्तु किसी भी वस्तु को छूने से डरती थी। उसकी आवाज से केवल घू–घू, हॉ–हॉ शब्द उच्चरित होते थे तथा कभी–कभी वह चिल्लाने लगती थी। सारांश में उसका व्यवहार निरन्तर शिशु प्रतिगमनात्मक (Infantile regression) हो रहा था।

रोगी चम्मच से खाना नहीं खा सकती थी परन्तु जब उसकों बच्चों वाली बोतल में निपुल लगाकर शरबत दिया गया तो वह उस निपुल द्वारा सारा शरबत पी गयी। उसके पश्चात अपने हाथों को बच्चों की तरह इधर उधर हिलाकर चेहरे पर खुशी प्रकट करने को विस्तर पर जाकर 5–6 महीने के बच्चे ती तरह लेट कर सो गयी।

रोगी का पारिवारिक जीवनवृत्त भी असामान्यता से पूर्ण था। माता–पिता के आपसी सम्बन्ध सुखद न होने के कारण माता को पिता ने तलाक दे दी तथा दूसरा विवाह कर लिया था। जिस समय रोगी की आयु 4 वर्ष की थी उस समय माता को अत्यधिक कामुकता की प्रवृत्ति होने लगी थी और जिसके कारण वह अनेक व्यक्तियों से सम्बनध स्थपित करने की कोशिश कर चुकी थी। प्रारम्भिक अवस्था में उसका लैंगिक व्यापार बिना पति की जानकारी के चलता रहा, परन्तु संतुष्टि न होने पर खुलकर वैश्यावृत्ति करने लगी जिसके कारण उसका तलाक हो गया। रोगी की सौतेली मॉ का व्यवहार बहुत ही निर्दय, क्रूर तथा अपमानजनक था। पत्नी से जो 3 बच्चे हुये थे उनमें रोगी एक था। फलस्वरूप घृणा का पात्र बन गयी थी। सौतेली मॉ ने किसी भी प्रकार उनकों अपने पास रखना स्वीकार न किया। अतः पिता ने उन्हें एक अनाथालय में छोड़ दिया। परन्तु तीनों बच्चे धीरे–धीरे वहॉ से अपने नाना क घर भाग गयें क्योंकि वहाँ का भी आन्तरिक

वातावरण बहुत कष्टप्रद था। जैसे–जैसे बच्चे कुछ बड़े होते गयें उनमें मानसिक विकार के लक्षण प्रकट होते गयें। दोनों भाइयों में से एक को डकैती और हत्या के अपराध में पकड़ा गया अैर दूसरे भाई को शराब पीकर खुलेआम बलात्कार के सन्दर्भ में 5 वर्ष की सजा दी गयी। रोगी मनोविदलता से ग्रसित हुई।

4– व्यामोहात्मक मनोविदलता
(Paranoid schizophrenia)

इस प्रकार की मनोविदलता में रोगी को व्यामोह होने लगतें हैं। रोग की प्रारम्भिक अवस्था में रोगी में सन्दर्भ या विचार (Ideas of reference) पाया जाता है जिसका तात्पर्य यह है कि रोगी विश्वास करने लगता है कि चारों तरफ उसके बारे में लोग बातचीत कर रहें हैं, उसको दण्ड देने के व़िचार से कोई जाल फैला रहे है। रोगी का इस प्रकार का व्यामोह एक व्यक्ति से लेकर सारे विश्व के प्रति भी हो सकता है। वह कभी–कभी अलौकिक दृश्य देखता है तथा ऐसी शक्ति का आभास करता है जिसकी आज्ञा से वह कोई कार्य कर रहा है। वह अपने को महान समझने लगता है तथा दूसरों से आशा करता है कि वे उसकी आज्ञा का अक्षरशः पालन करें। परन्तु जब व्यक्ति उसका कहना नहीं मानते हैं तो वह दन्हें दण्डित करने के लिए तैयार हो जाता है।

इस प्राकर के रोगियों में व्यामोहात्मक विभ्रम (Paranoid Hallucinstion) पाया जाता है। वह सुनने लगता है कि दुश्मन उसे बुला रहा है या उसको पूर्व सूचना मिल जाती है कि उसके विपरीत कोई षड़यन्त्र रचा जा रहा है। कुछ समय उपरान्त यह व्यामोह अन्य प्रकारों के व्यामोहों तथा व्यामोहिक विभ्रम को उत्पन्न करता है।

व्यामोहात्मक मनोविदलता प्रायः 30 से 40 वर्ष के मध्य उत्पन्न होती है परन्तु किन्हीं–किन्हीं स्थितियों में इससे पहले भी होती पायी जाती है।

प्रारम्भिक आवस्था में रोगी वास्तविकता से सम्बन्ध स्थापित करने का प्रयत्न अन्य विकारों से ग्रस्त रोगियों की अपेक्षा अधिक करता है। उसके व्यामोंह भी क्षणिक तथा सीमित होते हैं। उसके व्यवहार में विरोधाभास, अविश्वसनीयता तथा चिड़चिडापन पाया जाता है। यह अवस्था रोगी में कुछ महीने से लेकर वर्षों तक बनी रह सकती है। रोगी अनुभव करता है कि उसके आस पास के लोग उसे परेशान करना चाहते हैं। अतः वह मानवी सहायता लेता है तथा न्यायालय में अपने पक्ष में जोरदार बहस करके प्रभाव जताने की पूरी कोशिश करता है ।

प्रारम्भिक अवस्था समाप्त होने पर रोगी में असुरक्षा की भावना अधिक बढ़ जाती है तथा अपनी रक्षा के लिए दूसरों के प्रति आक्रामक प्रवृत्ति भी रखने

लगता है। उसमें समलिंगी प्रवृत्ति भी विकसित हो जाती है। उसका सांवेगिक तथा बौद्धिक विघटन हो जाता है अतः उसकी देखभाल के लिए बहुत सावधानी रखनी पड़ती है।

व्यामोहात्मक मनोविदलता के रोगी अधिकाधिक उपचार के उपरान्त भी ठीक नही हो पाते है। रोगी यदि किसी एक व्यक्ति अथवा वस्तु के प्रति व्यामोह तथा विभ्रम रखता है तो उस व्यक्ति अथवा स्थिति की अनुपस्थिति में भी सकारात्मक व्यवहार करने लगता है परन्तु इस प्रकार के रोगी से हमेशा खतरा बना रहता है कि वह कभी भी हिंसक कार्यवाही कर सकता है। वह हत्या के लिए भी प्रयत्न कर सकता है।

उदाहरणः— 36 वर्षीय विवाहित 'र' को चिकित्सालय में चिकित्सा हेतु लाया गया। वह दूसरों से बहुत कम बातचीत करता था। परन्तु यदि कोई दूसरा उससे बातचीत करता था तो वह सामान्य रूप से बात करता था। उसमें किसी भी प्रकार का स्मृति दोष नहीं दिखता था। परन्तु बातचीत से मालूम होता था कि उसको उत्पीड़न (Persecution) का व्यामोह हो गया है। बातों में असुरक्षा की भावना प्रतीत होती थी। वह अनेकों व्यक्तियों के प्रति दुर्व्यहार की शिकायत करता था। वह कहता था कि उसके कारण ही संसार में बुराइयाँ उत्पन्न हुई। अतः उसका दोष इतना अधिक है कि क्षमा नहीं किया जा सकता। कभी–कभी उसको महानता का भी व्यामोह होने लगता था। क्योंकि रोगी को शिकायत थी कि वह ईश्वर द्वारा भेजा गया सबसे पवित्र व्यक्ति है और उसका कार्य दुनियां की सभी बुराइयों को समाप्त करना है। रोगी को श्रवणीय विभ्रम भी था। क्योंकि उसको अनेकों आवाजें सुनाई देती थी। यद्यपि वे आवाजें कष्टप्रद लगती थी परन्तु वह पूरी सतर्कता से उनको सुनता था। वाह्य घटनाओं से उसका सांवेगिक सम्बन्ध कम हो गया था। कभी–कभी वह आक्रामक हो जाता था। परन्तु वह तर्कपूर्ण बात करता था। उसकी बातों में तारतम्यता थी। ऐसा लगता था कि वास्तव में वह घर के सदस्यों तथा पड़ोसियों द्वारा पीड़ित किया गया है।

4 —मनोविदलता रोग के कारण

यद्यपि इस क्षेत्र में काफी अनुसन्धान किये जा चुके हैं परन्तु अभी तक किसी एक कारक की खेज नहीं की जा सकी है जिसको मनोविदलता की उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके[6]। कुछ विद्वानों का विचार है कि

---

6. ब्रोइन (Broen) डब्लू0 ई0 सीजोफ्रीनिया, रिसर्च थियरी, एकेडेमिक प्रेस, न्यूयार्क, 1968

पैतृक कारकों से यह रोग उत्पन्न होता है जबकि अन्य विद्वानों का कहना है कि मनोसामाजिक कारक इसकी उत्पत्ति के लिए उत्तरदायी है। अतः हम उन सम्भव कारकों का वर्णन करने का प्रयास करेंगें जिनसे मनोविदलता का संबंध होता है।

1—पैतृकता

(Heredity)

कालमैन[7] ने जुड़वा बच्चों के अध्ययन में पाया कि 86.2 प्रतिशत समान जुड़वा बच्चे, 14.5 प्रतिशत जुंड़वा बच्चें तथा 14.2 प्रतिशत भाई बहन मनोविदलता रोग से पीड़ित थे। कालमैन की यह खेज पैतृकीय कारको के प्रभाव को दर्शाती है क्योंकि समाज में केवल एक प्रतिशत ही व्यक्ति रोग के शिकार हुए थे। कालमैन के अध्ययन के अतिरिक्त हाफर तथा पोलिन[8], क्रिगलेन[9] आदि के जुड़वा बच्चों पर किये गये अध्ययन भी पैतृकीय कारकों के प्रभाव को सिद्ध करतें है।

परन्तु वंशानुक्रम के प्रभाव को मनोविदलता के लिए पूर्णतया उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता हैं क्योंकि अधिकांश रोगियों के पारिवारिक अध्ययनों में इस प्रकार के लक्षण नहीं प्राप्त हुये हैं जिसे उन्हें पैतृक कारकों के लिए उत्तरदायी ठहराया जा सके। अतः पर्यावरण के प्रभाव को भी ध्यान में रखकर उत्तरदायी कारकों की खोज करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है। उदाहरणार्थ माता–पिता में कुछ भी लक्षण मनोविदलता के हैं और बालक को ऐसा पर्यावरण भी मिल जाता है जो मनोविदलता को बढ़ने में सहायक है तो बालक शीघ्र ही मनोविदलता का शिकार हो जाता है।

हैस्टन[10] ने (Heston) अपने अध्ययन में पाया कि 45 प्रतिशत बालक मनोविदल (Scizophrenics) हो गयें जिनमें से कोई एक माता या पिता मनोविदलता

7.	कालमैन (Kallmann)	हेरेडिटी इन हेल्थ ऐण्ड मेंटल डिसआर्डर, नार्टन न्यूयार्क, 1953।
8.	हाफर, ए ऐण्ड पोलिन डब्लू	सीजोफानिया इन दि एन0 ए0 एस0, एन0 आर0 सी0 पेनेल आफ 15909 बैटरन ट्रिविन पेयर्स, आर्चीव आफ जनरल साइक्याट्री 1970 23(5) पृ0 469–477
9.	क्रिगलेन (Kringlen) ई0	हेरेडिटी ऐण्ड इनवाइरनमेंट इन दि फंक्शनल साइकोसिस : ऐन इपीडेंपियालाजिकल क्लीनिक हिन स्टडी, ओसालो, 1967
10.	हेस्टन, एल0 एल0	दि जेनेटिक्स आफ सीजोफ्रेनिक डिजीजेज, साइंस 1970, 167, पृ0 249–256

से ग्रस्त था तथा 66 प्रतिशत वे बच्चे मनोविदलता के शिकार हो गये थे जिनके माता पिता दोनों ही मनोविदलता से पीड़ित थे।

विभिन्न अध्ययनों के द्वारा यह तर्क सिद्ध करने पर भी कि पैतृक कारक मनोविदलता के विकास के लिए उत्तरदायी होते हैं। आधुनिक विद्वान इसकों मानने के पक्ष सें नहीं हैं। उनका कहना है कि पारिवारिक पर्यावरण ही माता पिता तथा उनके बच्चों पर ऐसा प्रभाव डालता है जिससे मनोविदलता उत्पन्न होती है। असामान्य, अनुकूल तथा अनुचित सामाजिक प्रशिक्षण मनोविदलता के विकास के लिए उत्तरदायी कारक है।

2– स्नायुदैहिक कारक
(Neurophysiological factors)

स्नायु दैहिक कारकों को भी मनोविदलता के विकास के लिए उत्तरदायी माना जाता है। जब स्नायु देहिक कारकों जैसे अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियां तथा संचार की प्रक्रिया में अवरोध उत्पन्न हो जाता है तो मनोविदलता के विकास का अवसर मिलता है। स्नायु दैहिक कारकों में दो कारक विशेष महत्वपूर्ण है जिनसे विघटन उत्पन्न हो जाता है।[11]

1– उत्तेजनात्मक तथा निषेधात्मक प्रक्रियाओं में असंतुलन (Inbalance in excitatory and inhabitory process)

2– अनौचित्य दबाव का उभरना (Inappropriate arousal to stress)

1–उत्तेजनात्मक तथा निषेधात्मक प्रक्रियाओं में असंतुलनः–सन् 1941 में पावलोव[12] (Pavlov) ने यह सिद्ध किया था कि मनोविदलता की अवस्था में रोगी का स्नायु–संस्थान असामान्य रूप से उत्तेजित हो जाता है जिसके कारण उसकी प्रतिक्रियायें असंगठित हो जाती हैं। सामान्य अवस्था में जब व्यक्ति को तीव्र उत्तेजना होती है तो सुरक्षात्मक निषेध (Protective inhibition) प्रक्रियायें कार्यशील हो जाती हैं। जिससे उसकी उत्तेजना कम हो जाती है और प्रतिक्रिया अति तीव्र नहीं हो पाती है। यदि किसी कारण तीव्र उद्दीपन अधिक समय तक बना रहता है तो सुरक्षात्मक निषेध प्रक्रिया में परिवर्तन आ जाता है जिससे उद्दीपन तथा उत्तेजना (stimulation and Excitation), की शक्ति में

---

11. कोलमैन, जेम्स सी0 — उल्लिखित पृ0 284
12. पावलव, आई0 पी0 — कन्डीशन्स रेफलेक्सेस ऐण्ड साईक्याट्री, ट्रान्सलेटेड ऐण्ड एडिटेड वाई ग्रेन्ट डब्लू0 एच0, इण्टरनेशनल प्रेस

समुचित सम्बन्ध नहीं रहता है। धीरे–धीरे कम शक्ति के उद्दीपन (Weak stimulation) भी व्यक्ति में तीव्र उत्तेजना उत्पन्न कर देते है।

इसके परिणाम–स्वरूप व्यक्ति उचित तथा अनुचित उद्दीपक में अन्तर नहीं कर पाता है और उसे स्मृति दोष होने लगता है। वास्तविकता से उसका सम्बन्ध धीरे–धीरे कम होता जाता है फलतः वह तथ्य तथा कल्पना में अन्तर स्पष्ट नहीं कर पाता है और व्यामोह तथा विभ्रम का शिकार हो जाता है।

इस सम्बन्ध में मस्तिष्क पर किये गयें अनुसन्धान[13] से यह पता चलता है कि असंतुलित उत्तेजनात्मक तथा निषेधात्मक प्रक्रियाओं की विषम स्थिति में व्यक्ति के व्यवहार में असंगठन हो जाता है। परन्तु यह सिद्ध अभी नहीं हो पाया है कि सभी प्रकार की मनोविदलता का कारण उत्तेजनात्मक तथा निषेधात्मक प्रक्रियाओं में असंतुलन का होना ही उत्तरदायी है।

2– अनौचित्य दबाव का उभरनाः– स्वतन्त्र स्नायु संस्थान (Autonomic Nervous System) में कोई अनियमितता (Irregularity) हो जाती है जिससे विषम तथा तनावपूर्ण स्थिति में असामान्य व्यवहार प्रकट हो जाता है। ब्रोइन[14] के अनुसार इस अवस्था में जब स्वतन्त्र स्नायु संस्थान गड़बड़ हो जाता है तो कम दबाव एवं तनावपूर्ण स्थिति में भी जिसमें कि व्यक्ति विचलित नहीं होता है रोगी में अत्यधिक उत्तेजना उत्पन्न हो जाती है इसके विपरीत जो उद्दीपन तीव्र उत्तेजना की माँग करते हैं उनमें रोगी सामान्य रहता है।

3– जैवरासायनिक कारक (Bio-Chemical Factors)

जब रुधिर में कोई रासायनिक परिवर्तन होता है या कुछ विशेष प्रकार के रासायनिक असंतुलन उपस्थित होते हैं तो मानसिक परिवर्तन होना स्वाभाविक हो जाता है। उदाहरण के लिए लाइसर्जिक एसिड (Lysergic Acid) तथा मेसकालाइन (Mescaline) विचार प्रक्रिया को असंगठित कर देते हैं तथा मनोविकृति के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।[15] विषम तथा तनावपूर्ण स्थिति में व्यक्ति में हेलुसिनेजोन (Hallucinogen) रसायन उत्पन्न हो जाता है। जिसके कारण

---

13. डेलगाडो (Delgado) — साइक्याट्री टुडे, 1970, 3, (12) पृ0 48–53 जे0 एम0 आर0
14. ब्रोइन, डब्लू0 इ0 — सीजोफ्रीनिया, रिसर्च एण्ड थियरी, ऐकेडेमिक प्रेस, न्यूयार्क, 1968
15. कोलमैन, जेम्स सी0 — उल्लिखित, पृ0 289

प्रक्रिया में विघटन होता है। अकरफेल्ड्ट[16] (Aker feldt) ने अपने अध्ययन से सिद्ध कर दिया कि भोजन में एसकारविक एसिड (Ascorvic Acid) की कमी से व्यक्ति में मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न हो जातेहैं। हीथ[17] (Heath) ने अपने प्रयोगों द्वारा यह सिद्ध कर दिया कि मनोविदलता एक रोग है जिसमें शरीर में ही मस्तिष्क कोष्ठों (Brain Cells) के विपरीत रासायनिक प्रतिक्रिया होती है।

4– अनिद्रा एवं अनुकूलन शक्ति का ह्रास
(Sleeplessness and lowered adaptive energy)

जब व्यक्ति को किसी कारण वश नींद की कमी हो जाती है तो उसमें मानसिक अस्तव्यस्तता के लक्षण दिखाई देने लगते हैं। विभिन्न अध्ययनों से यह सिद्ध हुआ है कि निद्रा की कमी से रोगी में मानसिक पीड़ा उत्पन्न होकर उसके स्वभाव में चिड़चिड़ापन आ जाता है। रोगी में देखने का भी विभ्रम होने लगता है और उसके सामाजिक सम्बन्ध अव्यवस्थित हो जाते हैं तथा व्यामोहित विचार उत्पन्न हो जाते है। विलस, क्लार्क तथा वेस्टे[18] ने अपने अध्ययनों में पाया कि निद्रा ह्रास वाले रोगियों को विभ्रम अधिक तीव्र होता है। कारानाई तथा लेहमन[19] ने आठ मनोविदलता के रोगियों का गम्भीरता से अध्ययन किया तथा पाया कि नींद ह्रास के 72 घण्टे के पश्चात तीव्र मानसिक विकार उत्पन्न हो जाते है।

अनुकूलन शक्ति की कमी के कारण भी मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न होते हैं। जब व्यक्ति अत्यधिक दबाव के कारण परिस्थितियों से अनुकूलन नहीं कर पाता है तो उस पर विपरीत प्रभाव पड़ता है। जिसके परिणामस्वरूप जैविकीय रासायनिक क्रिया में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है।

---

16. अकरफेलटेड, एस0 — आक्सीडेशन आफ एन, एन0 डायथेमल पीफेनालिनेने डाइमाइन बाई सीरप फ्राम पेसेन्ट विद मेंटल डिजीज, साइंस, 1957, 125 (1), पृ0 117–119
17. हीथ, आर0 जी0 — ए बायोकेमिकल हाईपोथेसिस आन दि इटियालोजी आफ सीजोफ्रीनिया, इन जेक्शन डी0 डी0 दि इटियालोजी आफ सीजोफ्रीनिया, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क 1960
18. बिलस, ई0 एल0, क्लार्क एल0 डी0 डी0 ऐण्ड बेस्ट सी0 — स्टडीज आफ सजीव डिप्रीवियेशन रिलेशनशिप सीजोफ्रिनिया, आरचीव आफ न्यूरोलोजिकल, साइक्याट्री, 1959, पृ0 348–359
19. कोरिनन्ई, ई0 के ऐण्ड लेहमन एच0 इ0 — एक्पेरीमेंटल स्लीप डिप्रीवियेशन इन सीजोफ्रीनिक पेशेन्टस, आरकाइव आफ, डेमोसाइक्याट्री, 1960 पृ0 1070–1075

5—मनोवैज्ञानिक कारक
(Psychological factor)

मनोविदलता का रोगी मनोवैज्ञानिक दबाव तथा तनाव से इतना बोझिल हो जाता है कि उसको वास्तविकता से सम्पर्क रखते हुये दूर नहीं किया जा सकता है। अतः वह आन्तरिक सम्पर्क को दूर करने के लिए अवास्तविक साधनों का सहारा लेता है और विभिन्न प्रकार के अप्रत्याशित व्यवहार प्रगट करता है।

मनोवैज्ञानिक तथा अन्तर्वैयक्तिक कारकों को कोलमैन[20] ने 6 वर्गों में वर्गीकृत किया है:—

1— प्रारम्भिक मनोघात तथा बंचकता

2— व्याधिजन्य पारिवारिक अवस्थायें

3— त्रुटिपूर्ण सीखने की क्रिया तथा आत्म संरचना

4— तनाव तथा अक्षतिपूर्ति

5— सुरक्षात्मक प्रयत्न तथा

6— सामाजिक भूमिकाओं एवं विभिन्न क्षेत्रों का पुष्टीकरण

1— प्रारम्भिक मनोघात तथा वंचकता
(Early Psychic Trauma and Deprivation)

जिन बालकों को आघात जन्य अनुभव प्राप्त होते है। वे अपने बाद के जीवन में मनोविदलता के लक्षण प्रायः उत्पन्न कर लेते है। वाहल[21] (Wahl) ने संयुक्त राष्ट्र के जल सेना के 568 मनोविदलता के रोगीयों का अध्ययन किया और उसमें पाया कि 41 प्रतिशत रोगियों को 15 वर्ष की उम्र तक पहुंचने के पहले ही माता—पिता की मृत्यु, तलाक अथवा पृथक्करण के कारण वंचकता प्राप्त हो गयी थी। 18 प्रतिशत रोगियों को तो दोनों से वंचकता प्राप्त हुयी थी।

प्रायः प्रारम्भिक मनोघतात्मक अनुभव अन्तः पारिवारिक होते हैं। कभी—कभी बालक समूह के साथ सम्बन्ध स्थापित नहीं कर पाता है क्योंकि उसकी कार्यशीलता उस समूह के स्तर के अनुरूप नहीं होती है अतः उसे अपार कष्ट अनुभव होता है।

---

20. कोलमैन, जेम्स0 सी0 — उल्लिखित पृ0 289

21. वाल, सी0 डब्लू0 — सम एण्टीसीडेन्ट फैक्टर्स अन दि फैमिली हिस्ट्रीज आफ 568 मेल सीजोफ्रेनिक्स आफ दि यूनाइटेड स्टेट्स, नोवी अमेरिकन जर्नल आफ साइक्यात्री, 1956, 2, पृ0 201—223

वह एकाकी जीवन पसन्द करता है। स्कूल में बालक को किसी घटना से सम्बन्धित पाकर अध्यापक का अत्यधिक पीटना या प्रश्नों का उत्तर ठीक न देने पर दुर्व्यवहार आदि बालक में आत्म अवमूल्यन की प्रवृति विकसित कर देते हैं। बीमारी की अवस्था भी बालक में मनोआघात का कार्य करती है। चिकित्सालय में भर्ती किये जाने के कारण उसकी मानसिक क्षमता को आघत पहुंचता है जिसका बालक पर अमिट प्रभाव पड़ता है।

यरवरी (Yerbury) तथा नेवेल (Newell)[22] का अध्ययन इस क्षेत्र में प्रारम्भिक अध्ययन माना जाता है। उनके अनुसार युवकों तथा बच्चों में मनोविकृति का मुख्य कारण मानव सम्बन्धों में पूर्ण असुरक्षा, पारिवारिक विघटन, माता पिता द्वारा अमानुषिक व्यवहार तथा घृणा व तिरस्कार की भावना है। उन्होंनें 56 मनोविकृत रोगियों का अध्ययन किया। 10 बालकों को अपने माता–पिता की मृत्यु का असहनीय शोक पहुंचा था क्योंकि उनको शैशविक लगाव (Infantile attachment) था। 4 बच्चे सीखने की प्रक्रिया उचित न होने के कारण वास्तविक स्थिति से सामंजस्य नहीं प्राप्त कर सके थे। 14 बच्चे अपने मानसिक रोगी माता के साथ रहे थे। 14 बच्चों को लैंगिक आघात पहुंचा था। क्योंकि वे हस्थमैथुन में अधिक तल्लीन हो गयें थें। 4 बालक समलिंगी सम्बन्धों कि लिए फुसलायें गये तथा उनसे काफी दिनों तक समलिंगी सम्बन्ध स्थापित किया था। 3 बच्चे परिवार के सदस्यों के साथ व्यभिचार (Incest) के आरोप में भयानक रूप से डर गयें थें तथा तीन लड़कियॉ गर्भवती हो गयी थी। 5 लड़कियों को काल्पनिक गर्भ को वाह्यता मूलक व्यामोह हो गया था। 6 बच्चों को ताड़ना दी गयी थी तथा बहुत ही शारीरिक दण्ड दिया गया था।

आघात जब बालक के लिए असहनीय हो जाता है तो वह प्रतिगमन तथा प्रत्याहार (Withdrawl) करता हे परन्तु जब इससे भी पूर्ण संतुष्टि नहीं होती है तो प्रतिगमन के विपरीत व्यवहार करने लगता था। उसका वयवहार आक्रामक हो जाता है। वह व्यक्तियों से आक्रामक (Aggressive) सम्बन्ध स्थापित करना चाहता है जिसमें उसे अर्थपूर्ण जीवन के दर्शन होते हैं। वह अपने आधात को दूसरों पर आरोपित तथा प्रत्याशित करने की पूरी कोशिश करता है। इसका कारण उसके जीवन की असहनीय घटनाये हैं जो सामान्य रूप से स्वीकार करने के स्थान पर उसे दूर भागने के लिए बाध्य करती हैं। अतः बालक में आक्रमण

---

22. यरवरी, इ0 सी0 तथा नेवल, एन0 — जेनेटिक्स ऐण्ड इनवाइरनमेंटल फैक्टर्स इन साइकोसिस आफ चिल्ड्रेन, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1943, 100 पृ0 599–605

तथा आघात पहुंचाने की प्रवृत्ति, घर से भागने की प्रवृत्ति तथा व्यामोह एवं विभ्रम उत्पन्न हो जाते हैं।

साधारणतया प्रारम्भिक अवस्था में जब बालक की मानसिक क्रियाओं पर कोई आघात पहुंचता है अर्थात् जिस समय बालक सॉवेगिक मानसिक बौद्धिक, ज्ञानात्मक, सामाजिक आदि लक्षणों को प्राप्त करने तथा सीखने में अत्यधिक तल्लीन होता है उस समय यदि कोई आघात पहुंचता है अथवा इन प्रक्रियाओं में प्रतिबन्ध हो जाता है तो उसे आघात के परिणाम स्वरूप मनोविदलता हो जाती है। परन्तु अधिकांश बच्चों को आघात के उपरान्त भी मनोविदलता नहीं होती है। अतः यह सिद्ध होता है कि प्रारम्भिक आघात तथा बंचकता मनोविदलता रोग के विकास के लिए पूर्ण उत्तरदायी नहीं है। अन्य कारक भी इसके विकास में सहायक सिद्ध होते हैं।

2— पारिवारिक व्याधीय अवस्थायें (Pathogenic family patterns)

बालक पालन पोषण के ढंगों तथा सीखने की विधियों द्वारा व्यक्तित्व का विकास करता है। जिस प्रकार की शिक्षा तथा व्यवहार बालक को सिखाया जाता है वह आगे चलकर उसी प्रकार के गुणों को विकसित कर लेता है। यदि पालन पोषण सामान्य ढंग से नहीं होता है अथवा किसी कारणवश बालक अस्वीकृत कर दिया जाता है तथा उसका सामाजिक शिक्षण असामान्य हो जाता है तो वह अपने भविष्य के जीवन में प्रायः असामान्य गुणों का विकास कर लेता है।

मनोविदलता ग्रस्त माता पिता अपने गुंणों को बालक तक पहुंचाते हैं जिससे उनमें भी इसी प्रकार के लक्षण उत्पन्न होते हैं। विशेष कर माता को यदि कोई असामान्य लक्षण अपने जीवन में प्राप्त होता है तो वह उन लक्षणों को अवश्य ही बालक पर प्रत्यावर्तित करती है। उदाहरण के लिए यदि माता को अपने जीवन में अस्वीकृति प्राप्त हुई है, उस पर पूर्ण नियन्त्रण रहा है या उसको अधिक स्नेह दिया गया है तो वह बालक द्वारा इनके प्रभावों को दूर करने की पूरी कोशिश करती है। वह अपने सांवेगिक सन्तोष तथा भावनाओं की संतुष्टि के लिए पति की अपेक्षा बच्चे पर अधिक निर्भर हो जाती है। वह बच्चे पर पूर्ण नियन्त्रण रखती है उन्हें आत्मविश्वास का अवसर नहीं देती है तथा उनको ऐसा पर्यावरण प्रदान करती है जिससे बालक उस पर पूर्णतया आश्रित हो जाता है।

सामान्यतः मनोविदलता में माता पुत्र का सम्बन्ध युवावस्था में अपरिपक्वता तथा चिन्ता उत्पन्न करता है उसको अपने सम्बन्ध में पूर्ण ज्ञान नहीं हो पाता है।

आत्म के विकास में बाधायें होने के कारण त्रुटिपूर्ण आत्म विकास होता है जिससे आन्तरिक तथा वाह्य दोनों प्रकार के पर्यावरण से उसका सामान्य समायोजन नहीं हो जाता है। उसमें अनौचित्य तथा अकर्मण्यता के लक्षण उत्पन्न होने लगतें हैं।

काउफमैन[23] के अनुसार 80 प्रतिशत मनोविदल बालकों तथा युवकों के माता पिता सांवेगिक रूप से असन्तुष्ट थे। माताओं ने अपनी समस्याओं के समाधान के लिए मनोजन्य सुरक्षात्मक तरीकों का उपयोंग किया था तथा पिता ने बालकों के साथ सामान्य सम्बन्ध नहीं रखा था।

माता पिता में असामान्य वैवाहिक सम्बन्ध भी बच्चों के व्यवहार पर प्रभाव डालता है। सामान्य संबंध होने पर बालक को सामान्य विकास के लिए अनुकूल वातावरण मिलता है। बालक को माता पिता दोनों सें ही सामान्य प्रेम सहिष्णुता तथा संवेदनशीलता आदि का व्यवहार प्राप्त होता है। पन्तु यदि माता पिता के आपस के सम्बन्ध दोषपूर्ण तथा तनावपूर्ण होते हैं तो वे अपनी ही समस्याओं से त्रस्त रहते हैं, बच्चों की ओर पूरा ध्यान आकृष्ट नहीं कर पाते है जिसके कारण बच्चे का सामान्य विकास नहीं हो पाता है। उसमें भी मानसिक संघर्ष, अस्वीकृत की भावना, घृणा आदि लक्ष्ण उत्पन्न हो जाते हैं।

साइगेल (Siegel) ने अपने अध्ययन में पाया कि 97 प्रतिशत रोगियों के माता पिता के मध्य तनावपूर्ण स्थिति थी तथा एक दूसरे को बहिष्कृत कर दिया गया था। लिज[24] (Lidz) ने अपने 14 रोगियों के परिवारों के अध्ययन में पाया कि कोई भी परिवार ऐसा नहीं था जिसमें माता पिता के संबंध पूर्ण एकीकृत हों। इन 14 में से 8 दम्पतियों में वैवाहिक संबंध इतने बिगड़ गयें थे कि वैवाहिक स्थिति खतरे में पड़ गयी थी। इन परिवारों में विशेष बात यह थी कि माता पिता एक दूसरे को अर्थहीन समझते थे जिसके कारण रोगी में यह भावना प्रारंभ से ही उत्पन्न हो गयी थी कि माता पिता एक दूसरे का आदर नहीं करते थें और न ही एक दूसरे के गुणों का मूल्य समझतें थे। माता पिता यह सोचते थे कि बालक उनमें से एक को अधिक पसन्द करता था अतः दूसरा उसे उपेक्षा की दृष्टि से

---

23. काउफमैन आई0 फ्रैंक टी0 ऐण्ड अदर्स — ट्रीटमेन्ट इम्प्लीकेशन्स आफ ए न्यू क्लासी–फिकेशन आफ सीजोफ्रेनिक चिल्ड्रेन, अमेरिकन जर्नल आफ साईक्याट्री, 1960, 116, पृ0 920–924

24. लिज, टी0 ऐण्ड अदर्स — इक्स्ट्राफेमिलयल इनवाइनमेंट आफ दि सीजोफ्रेनिक पेसेन्ट, साइक्याट्री,, 1957, 20, पृ0 329–342

देखता था। फ्लैक[25] (Flack) ने अपने अध्ययन में पाया कि पुरूष मनोविदलता के रोगी प्रायः उन परिवारों से आतें हैं जिनमें माता द्वारा पिता पर शासन किया जाता है, उसकी इच्छाओं का दमन होता है तथा पिता की भूमिका निरर्थक होती है। इसके कारण पिता अपने पुत्र का आदर्श व्यवहार सिखाने में असमर्थ होता है। बालक अपनी सभी आवश्यकताओं के लिए माता पर निर्षर हो जाता है जिससे उसका माता से आश्यकता से अधिक लगाव उत्पन्न हो जाता है। महिला रोगी प्रायः उन परिवारों से संबंधित होती हैं जिनमें माता का संवेगिक व्यवहार उचित नहीं होता हैं तथा पिता का बालक के प्रति अधिक लगाव होता है।

सामान्य अन्तर्संबंध के विकास के लिए व्यक्तिगत प्रामाणिकता (Authoenticity) भी एक महत्वपूर्ण कारक हैं। जब तक व्यक्ति की योग्यता, क्षमता तथा कार्य शक्ति पर विश्वास नहीं किया जायेगा तब तक संबंध सामान्य विकसित नहीं हो सकते हैं। मार्टन बूवर[26] (Martin Buber) के विचार से मनोविदलता के रोगियों में व्यक्तिगत प्रमाणिकता को अस्वीकृत किया जाता है। हेलेय[27] (Haley) ने मनोविदलता के रोगियों के परिवारों के अध्ययन में पाया कि जब इन परिवारों के सदस्य पारस्परिक अन्तःक्रिया करते हैं तो उनमें प्रत्येक सदस्य एक दूसरे के कथन को अयोग्य सिद्ध करने का प्रयत्न करते हैं। जिसके संचार प्रक्रिया औचित्यपूर्ण नहीं होती है। जिसके फलस्रूप बालक का सामान्य विकास नहीं हो पाता है।

उदाहरण

राम देवी नाम की महिला अपने विशिष्ट व्यावहारिक आचरणों के कारण चिकित्सालय में लायी गयी थी। उसके व्यवहार में आकस्मिक परिवर्तन आ गया था जिसके कारण विचित्र व्यवहार करने लगी थी। तीन सप्ताह से वह इतनी एकान्तप्रिय हो गयी कि लोगों से मिलना जुलना बिल्कल पसन्द नहीं करती थी। उसका किसी काम में मन न लगता था। धीरेधीरे उसमें आत्मकेन्द्रित प्रवृत्ति जागृत हो गयी

---

25. फलीक, एस0 — फेमिली डायनमिक्स ऐण्ड ओरिजिन आफ सीजोफ्रेनिया, साइकोसिमेटिक मेडिसिन, 1966, 22, पृ0 337–339
26. बूवर, मार्टिन — डिसटेन्ट ऐण्ड रिलेशन, साइक्याट्री, 1957 पृ0 97–104
27. हिलेय, जे0 — डाइरेक्ट स्टडी आफ चाइल्ड पैरेन्ट इण्टरेक्शन, अमेरिकन जर्नल आफ आर्थोसाइक्याट्री, 1960, 30 पृ0 460–467

थी। वह कभी हँसने लगती थी कभी रोने लगती थी तथा अनेकों प्रकार की मुखाकृति बनाती थी। उसका अपनी इन्द्रियों पर नियंत्रण नहीं था। टट्टी पेशाब बिस्तर पर कर लेती थी। वह जो भी कुछ कहती थी। वह कोई अनर्गल अलाप मात्र था। वह किसी भी उत्तेजक को देखकर प्रतिक्रिया नहीं करती थी। उससे बातचीत करना असंभव था क्योंकि उसकी बातमें में कोई तारतम्य नहीं था।

जिस समय रोगी को चिकित्सालय में लाया गया उस समय उसके बाल बिखरे हुये तथा वह पूर्णरूपेण अस्त व्यस्त थी। उसके चेहरे की मुखाकृति विकृत तथा आकर्षणहीन एवं भयावह थी। वह अपने हाथों तथा उंगलियों को इस प्रकार से लहराती थी एवं मसलती थी जिससे लगता था कि मानों कोई जादूगरी कर रही है। वह अपने बालों को उगलियों में फसाकर खीचती थी जिससे बढ़ी भयानक दिखायी दे रही थी। उससे बात करना कठिन कार्य था। क्योंकि हर दो मिनट के पश्चात अपने पैरों पर उछलती थी तथा बिना किसी कारण के हसती थी। वह इतनी अस्थिर एवं भ्रमित थी कि अपनी कठिनाइयों को भी नहीं कह पा रही थी। वह कमरे के कोने में कुछ सुनने के अन्दाज में कानों को लगाकर बैठी रहती थी। उसकों सुनने का विभ्रम हो गया था।

उसका पूर्व जीवन वृत्त के विषय में ज्ञात करना दुष्कर था क्योकिं उसके परिवार के सदस्य उसमें कम रूचि ले रहे थे और मात्र उसे देखने चले आते थे। जो भी जीवन वृत्त ज्ञात हो सका उसके अनुसार रोगी में प्रारम्भिक जीवन काल में असामान्य असंगत लक्षण नहीं थे। परन्तु माता पिता का ध्यान उसकी ओर बच्चों की बहुलता के कारण अधिक आकृष्ट नहीं हो पाया था। वह घूमने तथा बातचीत करने में अधिक रुचि लेती थी। उसका विषम लिंगी संबधों के प्रति भी कोई झुकाव नही था। इस घटना के पूर्व रोगी को एक नौकरी पेशा व्यक्ति से प्यार हो गया था और उसने इस शर्त पर लैंगिक संबंध स्थापित किये थे कि वह उससे कुछ ही समय में विवाह कर लेगा। परन्तु उसने लैंगिक संबंध उस समय समाप्त कर दिया जब उस व्यक्ति ने उसे धोखा देना प्रारम्भ कर दिया। रोगी का जब उस व्यक्ति से संबंध विच्छेद हुआ उसके दो सप्ताह के बाद ही वह मनोविदलता (मनोविकृति) की शिकार हो गयी।

3. दोषपूर्ण आत्म संरचना तथा प्रशिक्षण

परिवार में व्याधीय स्थितियों के होने के कारण बालक का न तो प्रशिक्षण तथा सामाजिक सीख उचित हो पाती है और न ही आत्म का विकास सामान्य रूप से हो पाता है। इन परिवारों के माता पिता का बालकों के ऊपर कठोर नियंत्रण होता है। वे बालक को पूर्ण रूप से अपने ऊपर आश्रित कर लेते

है या बालक को अस्वीकृत कर देते हैं। बालक में वास्तविकता का विकास नहीं हो पाता है जिससे वह न तो अपने मूल्यों का मूल्यांकन कर पाता है और न ही सामाजिक परिस्थितियों के विषय में पूर्ण अवगत होकर सामान्य प्रतिक्रिया कर पाता है जिससे ज्ञानात्मक, संचारात्मक, बौद्धिक तथा मनोवैज्ञानिक क्षमताओं का विकास ऐसा नहीं हो पाता है कि वह दूसरों के साथ सामान्य अन्तःक्रिया कर सके। फलतः इस कमी के कारण बालक भविष्य के जीवन में प्रतिगमन करता है। उसको सामाजिक संबंधों के प्रति अरुचि और दुराव हो जाता है। परन्तु उसमें आत्मप्रदर्शन, सामाजिक स्वीकृति पद स्थान आदि प्राप्त करने की आकांक्षा निरंतर विद्यमान रहती है। परन्तु वह संतोष जनक वैवाहिक तथ पारस्परिक संबंध स्थापित नहीं कर पाता है है तथा सामाजिक समायोजन में उसे कठिनाई होती है। रूइच[28] (Ruesch) ने अपने अध्ययन में पाया कि मनोविदलता के रोगियों के जीवन में सामाजिक समायोजन उचित नहीं होता है, सामाजिक संबंध तनावपूर्ण होते हैं तथा व्यावहारिक योग्यता की कमी होंती है।

4 अतिदबाव तथा अक्षतिपूर्ति
(Excessive stress and Decompensation)

बचपन, युवा अथवा प्रौढावस्था में अति दबाव एवं तनाव के कारण मनोविदलता के लक्षण प्रकट हो सकते हैं। अति दबाव एवं तनाव के लक्षण दूसरों को स्पष्ट नहीं होते हैं क्योंकि ये व्यक्ति की आंतरिक स्थिति का बोध करते हैं और व्यक्ति इनको व्यक्त नहीं कर पाता है। किसी प्रियजन की मृत्यु पर व्यक्ति असामान्य लक्षण इसीलिए प्रकट करता है क्योकि उसकी क्षतिपूर्ति नही हो सकती है। अरोनसन (Aronson) तथा पोलगर[29] ने 13 फौज के सिपाहियों का अध्ययन किया जो मनोविदलता के रोग से पीड़ित थे। वे सिपाही कम से कम 1 वर्ष की सेवा फौज में करने के बाद ही इस रोग से पीड़ित हुये थें। इन फौजी सिपाहियों का कार्य अत्यधिक सराहनीय तथा साहसी रहा था। परन्तु वे उस समय तक अपने कार्य को अधिकतम योग्यता तथा क्षमता से करते थें तथा जब तक कि उनके सुपरवाइजर उनके व्यवहार को यथोचित समझतें थे परन्तु जब सुपरवाइजरों का स्थानांतरण हो गया और नये सूपरवाइजरों की नियुक्ति हुई तो

---

28. रूईच, जे0 अदर्स — दि अक्यूट नर्वस ब्रेक डाऊन, आर्काइव आफ जनरल साइक्यात्री 1963, 8, पृ0 197–207
29. अरोनसन, जे0 एण्ड पोलगर, एस0 — पैथेडेनिक रिलेशनशिप्स इन सीजोफ्रीनिया, अमे– रिकन जर्नल आफ साइक्यात्री, 1962, 119, पृ0 222–227

इन रोगियों के संबंध सामान्य न रह सके क्योंकि वे उस प्रकार से न तो पसंद करतें थे और न ही साहयता पहुचाते थे। जब इन फौजी सिपाहियों के लिए नियंत्रित व्यवहार करने के लिए बाध्य किया गया तो प्रतिक्रिया स्वरूप मनोविदलता के लक्षण स्पष्ट होने लगे।

क्षति की पूर्ति न होने पर व्यक्ति अनेको उपायों को अपनाता है। बोवर्स[30] (Bowers) ने 4 चरणों का अल्लेख किया जिनका उपयोग गरने से मनोदिलता के लक्षण प्रकट होतें है।

1–पृष्ठ भूमि (Setting)– रोगी यद्यपि अपने विशिष्ठ लक्षणों का कारण कोई विषय बताता है, परन्तु उसके मस्तिष्क में अवश्य ही संघर्ष तथा नैराश्य उत्पन्न होता है। उसके व्यवहार से चिंता तथा व्याकुलता के लक्षण प्रकट होते है।

2–प्रत्यक्षीकरण तथा प्रभाव का विघटन (Destructuring of perception and effect)– प्रारम्भ में रोगी में विचारों का ताता लगा रहता है। उसमें प्रत्यक्षीकरण इतने अधिक होने लगते है कि मानसिक सूचना प्रदान करने वाली यंत्र प्रणाली में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। अर्थात स्नायु संस्थान तथा प्रत्यक्षीकरण प्रक्रिया में सामन्जस्य स्थापित नहीं हो पाता है। इस असामन्जस्य के कारण न केवल अनुभवों में गड़बड़ी होती है बल्कि प्रत्यक्षीकरण पर विपरीत प्रभाव पड़ने लगता है। रोगी वस्तु का सही प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाता है क्योंकि उसको उस वस्तु के अनेकों अर्थ मस्तिष्क में आने लगते हैं। इस प्रकार रोगी व्यामोह के प्रभाव में आ जाता है।

3– आत्म चेतना का विघटन (Destructuring of the sense of self) जब रोगी को व्यामोह होने लगता है, अनुभवों की अनौचित्यता उत्पन्न हो जाती है, विचारों की तारतम्यता लग जाती है, तो उसका वास्तविकता से संपर्क कम होता है। वह अवास्तविक विषय या वस्तु को ही वास्तविक मानकर संबंध स्थापित करता है। परन्तु इस संबंध से भी उसके उद्देश्य की पूर्ति नहीं होती है। उसको कोई समाधान नहीं मिलता है अतः उसके आत्म का प्रभाव कम होता जाता है। इसका परिणाम प्रत्याशित व्यवहार के लक्षणों में प्रकट होता है। उसकी आंतरिक तथा वाह्य स्थिति में कोई संबंध नहीं रहता है जिसके कारण वह अपने को भी मुल्याँकित करने में असमर्थ पाता है। अपने विषय में उसे भ्रम होने लगता है और वह अपने विषय में अनेक प्रश्नों का उत्तर ढूढने का प्रयास करता है।

---

30. बोवर्स, एम0 — दि आनसेट आफ साइकोसिस–ए डायरी एकाउन्ट साइक्याट्री, 1965, 28, पृ0 346–358

4—व्यामोह का निर्माण (Formation of Delusions) व्यामोह का कारण प्रत्यक्षीकरण में त्रुटि, स्नायु संस्थान की गड़बड़ी, संवेदनाओं में बाधा, आत्म अवमूल्यन तथा विघटन एवं विपरीत विचारों की तारतम्यता होती है । प्रारम्भ में मानसिक संघर्ष होता है परन्तु जब मानसिक संघर्ष का किसी भी प्रकार से निराकरण नहीं हो पाता है तो शारीरिक तथा मानसिक दोष उत्पन्न होने लगते हैं जिसके कारण व्यामोह को पनपने का अवसर मिलता है। इससे व्यक्ति को अपनी क्षति को पूरा करने का अवास्तविक अवसर प्राप्त होता है।

5— मानसिक रक्षणात्मक उपायों का आधिक्यः— मनोविदलता का रोगी अत्यधिक अहं रक्षण उपायों का उपयोग करता है। सांवेगिक विघटन द्वारा वह भग्नाषा तथा असंतोष को दूर करता है। प्रतिगमन की स्थिति से आकांक्षा का स्तर निम्न हो जाता है एवं रोगी में पराधीनता की भावना दृढ़ हो जाती है फलतः उसे कठिनाइयों का सामना नहीं करना पड़ता है। वह प्रक्षेपण के द्वारा अहं एकता को बनाये रखने का प्रयास करता है तथा उससे अपनी दुःखद परिस्थिति का कारण समझने में सुगमता होती है। वाध्यतामूलक विचार अन्य दुखदायी विचारों को रोकता है तथा कल्पना के द्वारा वह आत्म अवमूल्यन तथा असफल इच्छाओं की क्षतिपूर्ति करता है। वह जब मानसिक सुरक्षात्मक उपायों के विषम स्तर पर पहुंच जाते हैं तब व्यक्ति में व्यामोह तथा विभ्रम उत्पन्न होने लगते हैं जिसके कारण एक ओर रोगी प्रत्यक्षीकरण और विचार श्रृंखला में बाध ा अनुभव करता है तथा दूसरी ओर मानसिक रक्षणात्मक प्रयत्नों के महत्व को स्वीकार करता है। उदाहरण के लिए संदर्भ व्यामोह द्वारा अपने अनैतिक विचारों तथा व्यवहार के लिए दूसरे को दोषी ठहराता है जिससे उसे आन्तरिक सुख प्राप्त होता है। अतः वह बार—बार व्यामोह का सहारा लेकर अपने को संतुष्ट करता है।

6—विरोधात्मक सामाजिक भूमिकायें:— मनोविदलता के विकास का कारण व्यक्ति की विरोधात्मक सामाजिक भूमिकायें होती हैं जिनके कारण वह स्थिति से सामन्जस्य स्थापित करने में अपनी क्षमता को अपूर्ण पाता है। परिणामस्वरूप उसमें मनेविदल प्रतिक्रियायें होने लगती है। विरोधात्मक सामाजिक भूमिकायें व्यक्ति तभी करता है जब उसका सामान्य विकास नही हो पाता है। उसको स्थिति के अनुरूप व्यवहार करने की शिक्षा समुचित नहीं प्राप्त होती हें कैमरन[31] (Cameron) तथा मारगैरेट ने अपने अध्ययन में पाया कि अधिकांश मनोविदलता के रोगी प्रारम्भिक जीवन में औचित्यपूर्ण व्यवहार की भूमिकायें सीखने में असफल रहे थे। उनको परिस्थिति के प्रति अन्तःक्रिया तथा प्रत्युत्तर का उचित ज्ञान नही हो पाया था।

6. सामाजिक एवं सांस्कृतिक कारक

मनोविदलता सभी समाजों में पायी जाती है। अविकसित तथा अर्ध विकसित देशों में इसके रोगी मिलते हैं तथा पूर्ण औद्योगिक एवं प्राद्यौगिक देशों में भी व्यक्ति इससे पीड़ित दिखाई देते हैं। परन्तु एक समाज से दूसरे समाज में इसकी घटना की दर में अन्तर होता है। विकसित समाजों में इसकी दर तीव्र होती है क्योंकि ऐसे समाजों में लक्षणों के प्रकट होने के लिए अनुकूल पर्यावरण प्राप्त होता है। मर्फी[32] ने सामाजिक वर्ग तथा मनोविदलता के संबंध को दर्शाने के लिए एक अध्ययन किया और उसमें यह पाया कि अधिकांश मनोविदलता के रोगी नगरों की घनी तथा गन्दी बस्ती के होते हैं। उनका जीवन स्तर निम्न होता है। गन्दी बस्तियों के रहने वाले मनोविकृति तथा मनोस्नायुविकृति के अधिक शिकार हो जाते हैं क्योंकि सामाजिक पारिवारिक तथा व्यक्तिगत सभी प्रकार के विघटनों के लक्षण पाये जोते हैं। असुरक्षा की भावना तथा निर्धनता के कारण व्यक्तिगत समस्याओं को प्रोत्साहन मिलता है, मानसिक संघर्ष का सूत्रपात होता है और दुखमय जीवन परिस्थितियों के कारण व्यक्तित्व का विघटन होता है।

जैको[33] (Jaco) ने पेशा तथा मनोविदलता के सन्दर्भ में पाया कि व्यावसायिक व्यक्तियों में कुशल तथा अकुशल व्यक्तियों की अपेक्षा मनोविदलता के लक्षण अधिक पाये जाते है। व्यावसायिक महिलाओं में पुरूषों की अपेक्षा अधिक मनोविदलता का रोग उत्पन्न होता है।

उपर्लिखित अनेक विवरण के आधार पर यह कहा जा सकता है कि मनोविदलता के विकास के लिए कोई एक कारक को उत्तरदायी ठहराया नहीं जा सकता है। जैविकीय, सामाजिक, मनौवैज्ञानिक आदि कारकों के विपरीत प्रभाव के कारण वयक्ति में मनोविदलता का विकास हो जाता है।

---

31. कैमरन, एन0 ऐण्ड मारगेट, ए0 — विहैवियर पैथालोजी, हघटन मिफलिन, वास्टन, 1951
32. मर्फी, एच0 वी0 — कल्चुरल फैक्टर्स इन दि जेनिसिस आफ सीजोफ्रीनिया, इन रोसेन कल केटी ए0 एस0, दि ट्रांसमिशन आफ सीजोफ्रीनिया, परमेम्टेन प्रेस, न्यूयार्क, 1968, पृ0 137–152
33. जैको, ई0 जी0 — दि सोशल इपिडमियोलोजी आफ मेंटल डिसआर्डस, रसेल सेज फाउन्डेसन, न्यूयार्क, 1960

मनोविदलता का उपचार

कुछ समय पूर्व मनोविदलता एक असाध्य मानसिक रोग समझा जाता था। चिकित्सालय में भर्ती होने वाले रोगियों में कुछ ही पुनः सामान्य स्थिति में आ पाते थे। परन्तु वर्तमान समय में नवीन चिकित्सा विधियों एवं प्रणालियों के विकास से रोग का उपचार संभव हो गया है फिर भी शत प्रतिशत रोगी सामान्य नहीं हो पाते है। आघात चिकित्सा (Shock Therapy) इन्सुलिन पद्धति तथा शल्य चिकित्सा से रोग पर अधिक सीमा तक नियन्त्रण पा लिया गया है। व्यावसायिक चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, सामाजिक चिकित्सा भी इन रोगियों के लिए समान रूप से महत्वपूर्ण होती है।

16

स्थिर व्यामोह

स्थिर व्यामोह (Paranoia) शब्द का प्रयोग प्राचीन काल से होता चला आ रहा है परन्तु इस रोग के लक्षणों का कुछ ही समय पूर्व स्पष्ट किया जा सका है। प्राचीन काल में ग्रीक के मानसिक विशेषज्ञ स्थिर व्यामोह को मानसिक रोग तो अवश्य बताते थे परन्तु अन्य मानसिक रोगों से विभिन्नता स्थापित करने में सफल नहीं हुये। इस रोग के लक्षणो की सर्वप्रथम खोज हीनरोथ (Heinroth) ने सन् 1818 ई0 में की थी। परन्तु स्थिर व्यामोह शब्द का सुव्यवस्थित प्रयोग सर्वप्रथम सन् 1863 में कालवाम (Kallbaum) ने किया। सन् 1893 ई0 में क्रेपलिन ने अपने विस्तृत विचार स्थिर व्यामोह के सम्बन्ध में प्रस्तुत किये। उनके कथनानुसार स्थिर व्यामोह के रोगी में व्यामोह होने लगते हैं तथा उसका वास्तविक संबंधों में अलगाव हो जाता है। परन्तु व्यक्ति का विघटन मनोविदलता के रोगी के सदृश्य नहीं होता है। उसका व्यक्तित्व स्थिर व्यामोहात्मक दशा (Paranoid state) की अपेक्षा अधिक विश्रृंखलित नहीं होता है। रोगी को सन्देह तथा भ्रान्ति अधिक होने लगती है जिससे उसका सामाजिक समायोजन अपेक्षाकृत शिथिल हो जाता है। उसके मन में भ्रान्ति बन जाती है कि उसके चारो ओर षड्यन्त्र का जाल बिछाया जा रहा है और उसको हर प्रकार से फॅसाने का प्रयत्न किया जा रहा है।

1. स्थिर व्यामोह का अर्थ

स्थिर व्यामोह शब्द ग्रीक शब्द से निकला है जिसका तात्पर्य व्यवध ाानात्मक मस्तिष्क अथवा तर्क से होता है। जैसे कि नाम से ही विदित है इसके लक्षण मुख्य रूप से विचार (Thought) के क्षेत्र में होते हैं। रोगी की सांवेगिक एवं व्यवहारिक प्रतिक्रियायें व्यामोहात्मक विश्वास के साथ जुड़ी होती है जो पहले मानसिक जीवन को अधिकाधिक निर्देशित करती थी। स्थिर व्यामोह एक अति जटिल एवं मन्दगति से उत्पन्न होने वाली स्थिर व्यामोहात्मक अवस्था हैं व्यामोह प्रायः अति व्यवस्थित तथा चेतना की धारणा से विरक्त होते है।

1. स्थिर व्यामोह की परिभाषा

ब्राउन[1] के अनुसार शाब्दिक रूप से इसका अर्थ मिथ्या तर्क (False reasoning) से होता है जो जीवन के उत्तरार्ध में उत्पन्न होता है तथा लक्षण रहित होता है। जिसमें रोगी को व्यवस्थित रूप से दण्डात्मक व्यामोह होता है जो कि महानता के व्यामोह द्वारा संतुलित किया जाता है।

क्लीन डी0 बी0[2] के अनुसार स्थिर व्यामोह एक कार्यात्मक मनोविकृति है जो व्यवस्थित दण्डात्मक व्यामोह तथा व्यामोहात्मक विचारों का प्रत्पेक्षण जो सन्देह हास्य–रहित आक्रामकता तथा संदर्भ के विचारों से उत्पन्न होते हैं, से विशेषीकृत होता है।

कोलमैन, जेम्स सी0[3] के अनुसार स्थिर व्यामोह का रोगी अनुभव करता है कि वह निकाल दिया गया है, उससे लाभ प्राप्त कर लिये गये हैं। उसके साथ बुरा व्यवहार किया गया है, उसके विरूद्ध जाल बिछाया गया है, चोरी की गयी है, गुप्तचर लगे है। स्थिर व्यामोहावस्था में रोगी अनुभव करता है कि वह समाज से निष्कासित कर दिया गया है, उसके प्रति प्रत्येक व्यक्ति दुर्व्यवहार और विरोध कर रहा है, उसके चारों ओर गुप्तचर घूम रहे हैं तथा लोग उससे अनुचित लाभ अर्जित करने का प्रयत्न कर रहे हैं। उसके व्यामोह प्रायः किसी एक विशेष विषय से संबंधित होते हैं। उदाहरणार्थ आर्थिक मामलों से संबंधित, नौकरी से संबंधित, अविश्वसनीय पत्नी या दूसर किसी मामले से संबंधित व्यामोह रोगी को परेशान करने लगतें हैं। यदि कोई व्यक्ति अपनी नौकरी करने में किसी कारण असफल होता है तो उसका कारण अपने उच्च्य अधिकारियों को व्यवहार को उत्तरदायी बताता है और दोष लगाता है कि द्वेष, ईर्ष्या की भावना की प्रबलता के कारण उसके अच्छे कार्यों की भी अवहेलना की जाती है। वे नही चाहते हैं कि वह किसी प्रकार से कार्य करने में सफल हो। अतः बाधायें उत्पन्न करने का भरसक प्रयास करते हैं उनको इस बात का खतरा है कि यदि वह उचित प्रकार से यहॉ कार्य कर सका तो उसकी योग्यता तथा क्षमता के कारण अन्य लोग उसे ही सम्मान प्रदान करेंगे। इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति उस नौकरी को छोड़ देता है तथा दूसरी नौकरी की तलाश करता है। परन्तु यहॉ भी

---

1. ब्राऊन, जे0 एफ0 — दि साइकोडायनमिक्स आफ एवनार्मल विहैवियर, मैकग्राहिल बुक कं0 न्यूयार्क, 1940, पृ0 332
2. क्लीन, डी0 वी0 — मेटल हाइजीन, हेनरी होल्ट ऐण्ड कं0, न्यूयार्क, 1956 पृ0 11
3. कोलमैन, जेम्स सी0 — उल्लिखित, पृ0 311

व्यक्तित्व की विशेषता के कारण विरोध उत्पन्न होने लगता है और लोग ईर्ष्या की भावना का विकास कर लेते हैं। धीरे–धीरे उसको यह आभास होने लगता है कि यहाँ भी कोई षड़यन्त्र रचा जा रहा है। वह सोचता है कि पहले सेवा स्थान के उच्च अधिकारियों ने अवश्य ही यहाँ के व्यक्तियों से शिकायत की होगी तथा दुर्व्यवहार करने के लिए कहा होगा तभी तो यहाँ भी उसी प्रकार से लोग उसको अच्छा नहीं समझतें है। तथा धीरे–धीर प्रत्येक व्यक्ति उसके विपक्ष में होता जा रहा है जिससे उसको विकास एवं उन्नति का अवसर न प्राप्त हो सके। इस प्रकार धीरे–धीरे व्यक्ति का प्रत्यक्षीकरण व्यामोह से प्रभावित हो जाता है और वह वाह्य घटना से व्यामोहात्मक सम्बन्ध स्थापित करता है। जिससे जो भी उसको अनुभव प्राप्त होता है उसमें व्यामोहात्मक विचारों का प्रभाव उत्पन्न हो जाता है।

स्थिर व्यामोह का रोगी उग्र व्यवहार करता है। उसकी सम्प्रेरणा उन व्यक्तियों के प्रति अधिक तीव्र होती है जिनके कारण उसे कठिनाई हो रही है। उदाहरण के लिए यदि वह देखता है कि कुछ लोग खड़े बातचीत कर रहे हैं तथा बीच–बीच में उसकी तरफ भी देख रहे हैं तो वह समझ लेता है कि उसके विषय में ही वे लोग बातचीत कर रहे हैं।वे या तो उसकी हंसी उड़ा रहे हैं या फिर उसके विरूद्ध कोई कार्य करने के लिए योजना तैयार कर रहे हैं। ऐसे व्यक्ति अपनी पत्नी के प्रति प्रायः शक उत्पन्न कर लेते हैं। यदि उसे थोड़ी सी भी आने में या कार्य करने में या उसके अनुसार व्यवहार करने में देरी होती हे तो वह विश्वास कर लेता है कि उसकी पत्नी अब उसके प्रति विश्वसनीय नहीं रही है, उसमें रुचि नहीं ले रही है, वह अब किसी अन्य को चाहने लगी है।

एक स्थिर व्यामोह रोगी ने जिसकी आयु 33 वर्ष थी उसने अपनी पत्नी की हथौड़े के आघात से हत्या कर दी थी। जब उसके विषय में कारणों की खोज की गयी तथा मानसिक स्थिति का अध्ययन किया गया तो पता चला कि रोगी को विश्वास हो गया था कि उसकी पत्नी किसी अप्रत्याशित रोग से पीड़ित है तथा अपने उस रोग के जीवाणुओं को उसमें भी पहुंचा रही है जिंससे कि उसकी शीघ्र ही मृत्यु हो जाय और उसकी अपार सम्पत्ति की यह स्वामिनी बनकर अपने घर वालों को अधिकाधिक लाभ पहुंचा सके तथा अन्य पुरुषों के साथ स्वतन्त्रतापूर्वक स्वच्छन्द सम्बन्ध स्थापित कर सके। उसको विश्वास हो गया था कि उसकी पत्नी रोग के जीवाणुओं को भोजन के माध्यम से उसमें सम्प्रेषित कर रही है क्योकि भोजन में पहले ऐसा स्वाद नहीं रह गया है तथा वह भी उसके प्रति अरुचि उत्पन्न कर रही है। रोगी ने अपने विश्वास के कारणों की पुष्टि निम्नलिखित आधार से की।

1– उसकी पत्नी ने जीवन बीमा कराने के लिए विवाह के तुरन्त बाद ही दबाव डाला था जबकि उसकी इच्छा बिल्कुल जीवन बीमा कराने की नही थी।

2– रोगी को पता चला कि जो व्यक्ति विवाह से पूर्व उसकी पत्नी का प्रेमी था तथा विवाह करने के लिए तैयार था परन्तु किसी कारण वश उससे विवाह नहीं हो सका था। वह विवाह के तुरन्त बाद किसी घटना का शिकार हो गया।

3– उसके दो बच्चे बिना किसी बीमारी के शीघ्र ही मर गये।

4– उसको व्यापार में घाटा हुआ।

5– पत्नी का व्यवहार धीरे–धीरे असहयोगी हो गया तथा लैंगिक सम्बन्धों में रुचि समाप्त हो गयी।

6– रोगी को अपराध करने के कई महीनों से पहले भोजन का स्वाद बिल्कुल परिवर्तित लगता था। उसको आभास होता था कि भाजन किसी चुड़ैल के हाथ का बना है।

7– अपराध से पूर्व उसको शारीरिक कष्ट जैसे सीने में दर्द, सर चकराना आदि होने लगा था।

2. लक्षण

स्थिर व्यामोह विचारों (Paranoid Thinking) में अनेक विविधतायें होती हैं मंद अवस्था में रोगी को अधिक शंका तथा द्वेष होने लगता है। वह सोचता है कि दूसरे उससे सम्बन्धित व्यक्ति उसके व्यवहार को नहीं पसंद करते हैं जिसके कारण उसके उच्छे कार्ये की भी प्रशंसा नहीं करते है। परंतु जैसे–जैसे व्यामोहात्मक विचारों में गम्भीरता आती जाती है वैसे–वैसे उसके विचार अवास्तविक होते जाते है तथा रोगी व्यामोहात्मक स्थिति तक पहुंच जाता है।

स्थिर व्यामोह का रोगी अपना सीमित समायोजन बनाये रखने में सफल होता है। यदि रोग के लक्षण गंभीर न हों तो चिकित्सा की भी विशेष आवश्यकता नही पड़ती है क्योकि रोग का निदान (Diagnosis) ही प्रारंभिक अवस्था में नहीं हो पाता है। वह अपनी भावनाओं तथा विश्वासों को दूसरों के समक्ष प्रकट नहीं करता है क्योंकि उसे सभी लोगों का व्यवहार संदेहजनक लगता है।

स्थिर व्यामोह से पीड़ित व्यक्ति जिस प्रकार से अपने मानसिक संघर्ष को दूर करने का प्रयास करता हैं उससे यह अनुमान लगाना कठिन हो जाता है कि कब रोग का प्रारम्भ हुआ है। साधारणतया इस प्रकार के रोगियों में अवसाद से अतिचिंतात्मक व्यामोह होने लगता है। जिससे धीरे–धीरे लक्षण की तीव्रता से दण्डनात्मक व्यामोह होने लगता हैं। दण्डनात्मक व्यामोह के कारण संदर्भ विचार उत्पन्न हो जाते हैं। रोगी सोचने लगता है कि उसके दुश्मन उसके विपरीत कोई षड़यन्त्र रच रहे हैं तथा लोग उसकी ओर संकेत करके बातें कर रहे हैं। उसके चारों तरफ गुप्तचर हैं। उसको जहर देने का भी प्रयत्न किया जा रहा है तथा अधिकांश व्यक्ति उसके विपक्षी होते जा रहे हैं। रोगी को महानता का भी व्यामोह होने लगता है जिसके कारण अपनी योग्यताओं तथा क्षमता को सामान्य से अधिक आंकने लगता है। उसका उच्च अधिकारियों से सामंजस्य स्थापित नही हो पाता है। क्योंकि वह समझने लगता है कि वे उसकी योग्यता से द्वेष करते हैं।यदि कोई उसको समझाने का भी प्रयत्न करता है और वह उसकी आंतरिक बातों के विषय में जानना चाहता है इसलिए अधिक बातचीत भी नहीं करता है।

वास्तविक स्थिर व्यामोह का रोगी कभी भी विभ्रम से नहीं पीड़ित होता है तथा उसका व्यवहार समाज के अनुकूल ही बना रहता है। इस कारण चिकित्सालय में बहुत ही कम प्रवेश की आवश्यकता होती है।

3. स्थिर व्यामोहात्मक मनोविदलता, स्थिर व्यामोह तथा स्थिर व्यामोह दशा में अन्तर

मनोविदलता की व्यामोहात्मक दशा (Paranoid state) के रोगी व्यामोह से अतिपीड़ित तथा लम्बी अवधि के लिए रोगी बने रहते है। इनको प्रायः धन से सम्बन्धित व्यामोह होते हैं, साथ ही साथ विभ्रम भी होने लगते हैं। ये विभ्रम प्रायः श्रवणीय क्षेत्र के होते है। स्थिर व्यामोह तथा व्यामोहात्मक दशा में केवल अंश का भेद होता है जब रोगी की दशा शोचनीय हो जाती है तथा उसको समाज से समायोजन करने मे कठिनाई अनुभव होती है, उसको वाह्य नियन्त्रण की आवश्यकता पड़ती है ऐसी दशा में रोगी व्यामोहात्मक दशा से पीड़ित होता है। स्थिर व्यामोह की अवस्था में रोगी का सामाजिक संबंध यद्यपि पूर्ववत् नहीं रहता है परन्तु फिर भी संबंध बिगड़ते नहीं हैं। उसमें निर्णय शक्ति का ह्रास नहीं होता है और न ही वाह्य नियंत्रण की आवश्यकता होती है। परन्तु उसकी भवनाओं में अन्तर आ जाता है। उसमें चिंता तथा अपराध की प्रवृत्ति विकसित हो जाती है। वह शंकालु, भयातुर तथा भयभीत सा लगता है। वाह्य जगत में जो भी घटित

होता है उससे उसका संबंध हो या न हो वह उसको अपने से संबध जोड़ लेता है। उसमें संदर्भ के विचार (Ideas of reference) आ जाते हैं। वह अपनी गलती को कभी भी स्वीकार नहीं करता है। इसके लिए वह प्रक्षेपण (Projection)का सहारा लता है।

स्थिर व्यामोहात्मक व्यक्तित्व का व्यक्ति अपनी योग्यता तथा क्षमता को वास्तविकता से अधिक आंकता है। वह अधिकांशतः उन कार्यो को अधिक करना चाहता है जिनको पूरा करने की यद्यपि उसमें क्षमता नहीं है परन्तु वह समझता है कि उसको पूरा करने से वह अवश्य ही सफल होगा। जब वह उसे कार्य का पूरा करने में असफल होता है तो उसके लिए उच्चाधिकारियों को दोषी ठहराता है। उस कार्य के प्रति उसमें असंतोष उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण वह दूसरा कार्य स्वीकार करता है। यही नियम नौकरी के विषय में भी लागू होता है। उसका कही भी सामान्य समायोजन स्थापित नहीं हो पाता है। जिसके कारण विभिन्न नौकरियों की तलाश में रहता है।

सेवा प्राप्त करने के कुछ ही समय में उससे उस विभाग के कर्मचारी परिचित हो जाते है। वह नई–नई योजनाये प्रस्तुत करता है और यदि उन योजनाओं को कार्यान्वित नहीं किया जाता है तो उसके अहं पर कुठाराघात होता है और वह विश्वास करने लगता है कि उसके उच्च अधिकारी उसके विपरीत हैं ओर वे उसकी उन्नति नहीं देखना चाहते हैं तथा साथ ही साथ दूसरों को भी विपरीत दृष्टिकोण अपनाने के लिए उकसाते हैं। इस विश्वास के कारण स्थिर व्यामोहात्मक व्यक्ति द्वेषात्मक दृष्टिकोण उत्पन्न कर लेता है।

स्थिर व्यामोहात्मक मनोविदलता, स्थिर व्यामोह तथा स्थिर व्यामोह दशा (Paranoidrschizophrenia, Paranoia and Paranoid state) में मुख्य अन्तर अहं संरचना के विघटन तथा प्रतिगमन की भिन्नता की विविधता से स्पष्ट होता है। इन सभी स्थितियों में व्यामोहात्मक व्यवस्था पायी जाती है तथा प्रक्षेपण का उपयोंग प्राथमिक सुरक्षात्मक यन्त्र के रूप में किया जाता है। लेकिन केवल स्थिर व्यामोहात्मक मनोविदलता प्रक्रिया में ही विभ्रम, अनोखापन तथा अहं का विघटन होता है। स्थिर व्यामोह तथा स्थिर व्यामोहात्मक मनोविदलता एक श्रेणी की विपरीत स्थितियाँ है। श्रेणी के एक ओर स्थिर व्यामोह तथा दूसरे छोर पर व्यामोहात्मक मनोविदलता होती है। इस श्रेणी के मध्य स्थिर व्यामोहात्मक दशा होती है यदि वास्तविक स्थिति सामान्यतः प्रत्यक्षीकृत होती है, सांवेगात्मक प्रक्रिया में कोई महत्वपूर्ण विघटन नहीं होता है, विभ्रम नहीं होते है तथा आवश्यक व्यक्तित्व समायोजन बना रहता है तो व्यक्ति स्थिर व्यामोह की ओर

प्रयास करता है। यदि इसके विपरीत स्थिति होती है तो स्थिर व्यामोहात्मक मनोविदलता के लक्षण उत्पन्न होते है। व्यामोहात्मक प्रक्रिया किसी भी व्यवहारिक विकृति से सम्बन्धित हो सकती है । निम्न चार्ट में तीनों प्रकारों की आवश्यक विशेषताओं का उल्लेख किया गया है।

	स्थिर व्यामोह	स्थिर व्यामोहात्मक दशा	स्थिरव्यामोहात्मक मनोविदलता
प्रक्षेपण	अत्यधिक	भिन्न–भिन्न	अत्यधिक
व्यामोह	व्यवस्थिति	अव्यवस्थिति	व्यवस्थित या अव्यवस्थित
विभ्रम	बहुत कम	बहुत कम	प्रायः
प्रतिगमन	कुछ (Little)	कुछ (Little)	अधिक
अहं	तुलनात्मक रक्षित	तुलनात्मक रक्षित	तुलनात्मक विकृत

व्यामोहात्मक स्थिति मनोविदलता का एक प्रकार है जिसमें रोगी की दशा मनोविदलता और स्थिर व्यामोह के बीच की होती है। उसमें वे लक्षण पाये जाते हें जो स्थिर व्यामोहात्मक रोगी के होते हैं। परन्तु उनमें इतनी तीव्रता होती है कि उसका व्यवहार मनोविदलता के रोगी के समान हो जाता है। इस दशा में प्रायः दण्डनात्मक प्रकृति के व्यामोह होते हैं तथा व्यवहार में असामन्जस्य हो जाता है। उसका व्यवहार सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल नहीं रहता है क्योकि प्रत्यक्षीकरण में बाधा उत्पन्न होती है। विभ्रम अन्य मनोविदलता के प्रकारों की अपेक्षा कम होते है परन्तु उसका व्यक्तित्व कुछ सीमा तक विघटित हो जाता है। यह दशा किसी विशेष दबाव को दूर करने से स्थिति समाप्त भी हो जाती है। रोगी के अन्तर्व्यक्तित्व संबंधों में कठिनाई उत्पन्न होने से शंका उत्पन्न हो जाती है जिससे वह सोचने लगता है कि उसके सगे संबंधी भी उसको पसंद नहीं करतेहैं और अनेकों प्रकार से परेशान करने के लिए प्रयत्न कर रहे है। अतः उसका व्यवहार उग्र हो जाता है।

व्यामोहात्मक स्थिति वैवाहिक संबंधों में तनाव के कारण उत्पन्न होती है। मोडलिन (Modlin) ने अपने अध्ययन में पाया कि पति–पत्नी के संबंधों में गड़बड़ी के कारण व्यामोहात्मक स्थिति उत्पन्न हो जाती हे जिसके कारण रोगी में पति या पत्नी से संबंधित विभ्रम तथा व्यामोह होते है।

4. स्थिर व्यामोह के प्रकार

स्थिर व्यामोह के मुख्य निम्न प्रकार हैं—

1—महानता से संबंधित स्थिर व्यामोह

रोगी में महान होने के विचार उत्पन्न हो जाते हैं। वह अपने को महान व्यक्ति समझने लगता है। इस महानता को प्रदर्शित करने का भी पूरा प्रयास करता है तथा उस महानता की रक्षा का भी प्रबंध करता है, दूसरों की इस कार्य में सहायता लेता है तथा अनेक संबंधित कार्य करता है। वह अपने को महान नेता, पैगम्बर, अन्वेषक, धर्मप्रचारक, वैज्ञानिक आदि समझने लगता है और उसी प्रकार का व्यवहार करता है।

2—उत्पीड़न स्थिति व्यामोह

इस प्रकार के स्थिर व्यामोह में रोगी को अनुभव होने लगता है कि दूसरे उसे सताने, मारने , धोखा देने, तथा नष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हैं। वह समझता है कि उसके चारों और दुश्मनों द्वारा जाल बिछाया जा रहा है। चिकित्सालय में भी उसे यह व्यामोह सताता रहता है जिसके कारण उपचार प्रक्रिया में भाग नहीं लेता है।

3— रोग चिंतात्मक स्थिर व्यामोह

रोगी का विचार दृढ़ हो जाता है कि उसे कोई ऐसा रोग हो गया है जो कभी ठीक नहीं हो सकता है। वह समझता है कि उसका शरीर अस्तित्वहीन होता जा रहा है, पेट गायब हो रहा है, रोग बढ़ता जा रहा है। अपनी शारीरिक विषमताओं एवं दोषों के लिए वह अच्छे से अच्छे चिकित्सक की सलाह लेता है परन्तु उसे विश्वास हीं होता है कि वह रोगमुक्त है।

4— आत्मनिंदनात्मक स्थिर व्यामोह

रोगी समझने लगता है कि उसने ऐसे निकृष्टकार्य किये है जिनको क्षमा नहीं किया जा सकता है। वह इस कार्य में रुचि नहीं लेता है तथा जीवन सरहीन निरर्थक एवं भार तुल्य समझता है।

5—वादकारी स्थिर व्यामोह

कुछ स्थिर व्यामोहात्मक रोगियों को मुकदमेबाजी का शौक उत्पन्न हो जाता है। जब तक वे कानूनी दांव पेच की बाते नहीं करते हैं तथा दूसरों को मुकदमेबाजी में फंसा नहीं लेते है। तब तक उन्हें शान्ति नहीं मिलती है। उनको इस बात की चिंता नहीं रहती है कि फैसला उनके पक्ष में हो रहा है अथवा नहीं, वे इस कार्य में निरंतर लगे रहते है।

6–ईर्ष्यात्मक स्थिर व्यामोह

जब रोगी को इस प्रकार का स्थिर व्यामोह होता है तो वह दूसरों से ईर्ष्या करने लगता है, प्रत्येक प्रकार के व्यवहार को शंका की दृष्टि से देखता है। दुसरों पर दोषारोपण करता है तथा इससे संबंधित प्रमाणों को बड़ी सावधानी एवं सतर्कता से एकत्र करता है। पति–पत्नी एक दूसरे के चरित्र पर अविश्वास करने लगते हैं जिसके कारण आंतरिक जीवन कलहपूर्ण हो जाता है। वह इसकी चर्चा दूसरों से भी करते हैं।

5. कारण

स्थिर व्यामोह के कारणों की मनोसामाजिक आधार पर सुस्पष्ट रूप में व्याख्या की जा सकती है। हम सभी दिन–प्रतिदिन के जीवन में किसी न किसी असफलता का अनुभव करते हैं और उसका कारण प्रक्षेपित करके सांत्वना प्राप्त करते है। कभी–कभी यह भी भावना उत्पन्न होती है कि दुनियां बहुत स्वार्थी है तथा ईमानदार व्यक्ति का कोई स्थान नहीं है, वह चाहे जितना परिश्रमी तथा योग्य क्यों न हो। इस भावना के कारण दुसरों के प्रति शंका उत्पन्न हो जाती है तथा उसके व्यवहार को शंका से देखते हैं परन्तु यह स्थिति अस्थायी होती है और समय परिवर्तन के साथ–साथ उसकी भावना में अन्तर आ जाता है। स्थिर व्यामोहात्मक रोगी के लक्षण उपर्लिखित प्रकार के ही होते है। परन्तु उनमें अधिक तीव्रता होती है एवं स्थायित्व का भाव अधिक होता है।

स्थिर व्यामोह के लक्षण प्रायः संवेदनशील, शंकालु, अन्तर्मखी, नियमानुकूल तथा कम सामाजिक व्यक्ति में उत्पन्न होते हैं जो तनाव, कठिनाई एवं संघर्ष की अवस्था में वास्तविकता का उचित प्रत्यक्षीकरण नहीं कर पाते हैं जिससे निर्णय शक्ति असंतुलित हो जाती है और वह सोचने लगते हैं कि दूसरे व्यक्ति अनावश्यक रूप से उन्हें परेशान करने पर तुले हुये हैं।वे सोचते हैं कि अन्य संबंधित व्यक्ति जानबूझ कर हस्तक्षेप कर रहे हैं।

स्थिर व्यामोह के विकास में जैवरासायनिक या वंशानुक्रम संबंधों का अधिक महत्व नहीं होता है। अधिकांश मनोवैज्ञानिकों ने मनोसामाजिक कारकों का वर्णन किया है।

---

4. कोलमैन, जेम्स सी0 — अवनार्मल साइकोलोजी एण्ड मार्डन लाइफ, डी0 वी0 तारपोरवाला ऐण्ड संस,बाम्बे, 1974 पृ0 315

1. दोषपूर्ण प्रशिक्षण एवं विकास
(Faulty learning and development)

स्थिर व्यामोह के रोगी बचपन में एकान्तप्रिय, क्रोधी, शंकालु, दुराग्रही (Stubborn) तवा हठी होते हैं। उनमें हीन भावना पाये जाती है। सारविस (Sarvis) ने जब इन रोगियों को अध्ययन किया तो उनको पता चला कि इन रोगियों का समाजीकरण सामान्य नहीं होता है। उनको माता पिता से प्रेम नहीं मिलता है तथा उन पर कठोर अनुशासन रहता है।[5] वे बहुत ही कम समूह के कार्यकलापों में भाग लेते है।

इन रोगियों की पारिवारिक पृष्ठभूमि अधिनायक तन्त्रीय होती है। बालकों पर परिवार का कठोर नियन्त्रण होंने के कारण, उनकी भावनाओं की उपेक्षा की जाती है तथा परिवार के नियमों, रीति रिवाजों, आचारों–विचारों आदि का पालन करने के लिए बाध्य किया जाता है। परिवार के वयोवृद्ध व्यक्तियों का प्रमुख स्थान होता है और उनकी आज्ञा का पालन प्रत्येक व्यक्ति को अनिवार्यतः करना पड़ता है। विशेषता के कारण बालक में प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्तियों का विकास होता है और वह समझने लगता है कि परिवार के शीर्षस्थ लोग अनावश्यक रूप से प्रभाव डालने का प्रयत्न कर रहे हैं। इस प्रकार एक ओर तो प्रतिक्रियात्मक मनोवृत्ति का विकास होता है और दूसरी ओर आत्म स्वीकृति की कमी (Lack of self acceptance) तथा हीन भावना विकसित होती है। जब बालक में विकास प्रारम्भ होता है तभी अन्य सामजिक कारक अपना प्रभाव डालते हैं तो वह अपनी पूर्व मनोवृत्ति के अनुसार उस प्रभाव के प्रति प्रतिक्रिया करता है। बालक अनौचित्य समाजीकरण के कारण अन्य व्यक्यिों की सम्प्रेरणाओं को उचित प्रकार से समझने में असमर्थ होता हैं जिसके कारण उनका गलत अर्थ लगता है तथा उनके व्यवहार को शंका की दृष्टि से देखता है। जब वह सामाजिक सम्बन्धों में भाग लेता है तो अपने प्रति परिवार द्वारा किये गयें अन्याय का प्रतिशोध लेना चाहता है और अधिशासकीय तरीकों का उपयोग करता है जिससे अन्य भाग लेने वाले व्यक्ति उससे सम्बन्ध विच्छेद कर लेते है।

इस असफलता के कारण वह एकान्तप्रिय हो जाता है और दूसरों में विश्वास खो देता है। यह सत्य है कि बालक के प्रारम्भिक अनुभव भविष्य के संबंधों पर प्रभाव डालते हैं। उसमें आत्म महत्व (Self importance) कठोरपन,

---

5. सारविस, एम0 ए0 — पैरावाइड रियैक्सन्स परसेप्चुअल डिसटार्सन ऐज ऐन इटियालोजिकल ऐजेन्ट, अर्चीव आफ जर्मन साइक्यात्री, 1962, 61 पृ0 157–162

अभिमान, अधिनायकतन्त्र आदि के गुण विकसित हो जाते हैं। वह दूसरों की कमजोरियों को सतर्कता से पहचान लेता है परन्तु अपनी कमजोरियों के प्रति उसका प्रत्यक्षीकरण सही नहीं हो पाता हैं । वह अपनी कठिनाइयों के लिए दूसरों को दोषी ठहराता है।

जिन व्यक्तियों में इस प्रकार के व्यवहारिक गुण उत्पन्न हो जाते हैं वे अपने ही दृष्टिकोण को महत्व देते है। दूसरों की बातों पर विश्वास नहीं करते है क्योंकि उनकों अपनी बुद्धि ज्ञान तथा योग्यता पर शत प्रतिशत विश्वास हो जाता है। इसका परिणम यह होता है कि वे दूसरों के सूझावों की अवहेलना तथा अपने विचारों तथा कायों में उन सुझावों को बाधक समझते हैं। वे अपनी आकांक्षा का स्तर इतना ऊँचा रखते हैं कि उस तक पहुंचना उनके लिए कठिन हो जाता है क्योंकि अच्छाई तथा बुराई, गुण--अवगुण, शक्तियों एवें कमियों की पहचान में एकाकी दृष्टिकोण अपनातें हैं। ऐसे व्यक्तियों का यद्यपि व्यवहार सामान्य लगता है परन्तु वे दूसरे व्यक्तियों से घनिष्ठ संबंध स्थापित करने में सक्षम नहीं हो पाते है।

2. असफलता तथा हीनता (Failure and Inferiority)

स्थिर व्यामोहात्मक रोगी की आकांक्षा का स्तर इतना ऊँचा होता है कि वह उस स्तर को किसी प्रकार से भी प्राप्त करने में सफल नहीं होता है अपने अवास्तविक विचारों, व्यवहारों तथा अहं की भावना के कारण वह दूसरों से संबंध स्थापित नहीं कर पाता है जिसके कारण उसे सामाजिक तथा व्यावसायिक क्षेत्रों में असफलता प्राप्त होती है। वैवाहिक संबंधों में भी जटिलता उत्पन्न हो जाती है क्योंकि जीवन साथी के प्रति उसका दृष्टिकोण सामान्य नहीं होता है। जीवन की इन सभी असफलताओं के कारण आत्मा (Self) का स्वरूप विघटित हो जाता है जिसके कारण दूसरों पर दोषारोपण करता है। वह अपनी असफलता का कोई स्पष्ट कारण नहीं खेज पाता है जिसके कारण सामाजिक सम्बन्धों से प्रत्याहार के अतिरिक्त कोई रास्ता नहीं रहता है। वह सोचने लगता है कि जब उसके अन्य सहयोगी नकारात्मक दृष्टिकोण रखते हैं तो वह व्यर्थ ही अपने विभाग की उन्नति एवं विकास के लिए प्रयत्न कर रहा है। वह समझ नहीं पाता है कि परिश्रम करने के बावजूद भी दूसरे लोग उसे क्यों पसंद नहीं करते है। उसको अपनी कमी का ज्ञान न होने के कारण दूसरो के व्यवहार से असफलता का सम्बन्ध स्थापित करता है।

स्थिर व्यामोहात्मक रोगी में हीन भावना का विकास हो जाता है। यह भावना उसमें शनैः शनैः विकसित होती है जब वह देखता है कि अन्य व्यक्ति उसके समकक्ष तुलना में जो अल्प बुद्धि अविवेकी एवं कामचोर है उनका अधिक महत्व है और उनकी कोई आलोचना नहीं करता है। इसके विपरीत वह परिश्रमी और बुद्धिमान है परन्तु उसका कोई सम्मान एवं आदर नहीं करता है तो स्वभावतः उसके अन्तःकरण में हीन भावना विकसित हो जाती है। परन्तु वह हीनभावना को वह व्यवहारिक रूप से श्रेष्ठता की भावना में सदैव परिवर्तित करने का प्रयत्न करता है और आत्ममहत्व पर सदैव बल देता रहता है। उसके प्रयत्नों के परिणामस्वरूप भी उसके व्यवहार में कई प्रकार से हीन भावना का विकास हो जाता है। रोजेन तथा काइने[6] (Rosen and Kiene) के अनुसार स्थिर व्यामोह के रोगी में अपनी प्रशंसा तथा स्वीकृति की असीम आन्तरिक भूख होती है। वह आलोचना के प्रति अति संवेदनशील होते हैं तथा छोटे–छोटे कार्यों के के लिए प्रशंसा चाहते हैं।

स्थिर व्यामोह से पीड़ित व्यक्ति अपने में कमी ढूंढ़ने लगता है, परन्तु जब नहीं पाता है तो वह दूसरों पर दोष लगाता है। परन्तु इसे समस्या का समाधान नहीं होता है। वह हीनता की ओर बढ़ता है क्योंकि उसकी सांवेगिक शक्ति उसकों अपने में त्रुटि समझने के लिए बाध्य कर देती है। वह सोचने लगता है कि अवश्य ही कहीं न कही उसके व्यवहार में अभाव है परन्तु वह इसका कोई औचित्य खोज नहीं पाता है जिसके कारण दिनोदिन दृढ़ता, द्वेषपूर्ण भावना तथा संवेदनशीलता बढ़ती जाती है। वह अपनी कमियों को स्वीकार नहीं करता। दूसरों को मूर्ख समझता है क्योंकि उनमें उसके कार्यों की समझने की शक्ति ही नहीं है। उसके ये सुरक्षात्मक तरीके (Defensive patterns) असहनीय हीन भावना की सुरक्षा करते है। जिससे उसे आंतरिक शान्ति मिलती है।

3. सुरक्षात्मक उपाय तथा छद्म समुदाय
(Elaboration of defences and the Pseudo Community)

अडिग, महत्वाकांक्षी अविनोदी तथा एकाकी व्यक्ति समाज में लोकप्रिय नहीं हो पाता है। लोग उससे कम संबंध स्थापित करते है क्योंकि वह संबंधों को निभाने में समर्थ नहीं होता है। फलस्वरूप वह और भी अधिक संशकित तथा एकाकी हो जाता है। वह सोचने लगता है कि अन्य लोग न द्वेष रखते है बल्कि

---

6. रोजेन, एच0 एण्ड काईन, एच0 ई0 — पैरानोइया ऐण्ड पैरान्वाइडरियक्शन टाइम्स, डिजीजेज आफ दि नर्वस सिस्टम, 1946, 7, पृ0 303–337

उसके प्रति भेद भाव भी करते है। उसके प्रति उनका व्यवहार भी सामान्य नहीं होता है वह अन्याय के प्रति अत्यन्त सावधान रहता है जिसके कारण अवास्तविक बातों पर विश्वास कर लेता है और उसे मिथ्या भ्रम होने लगता है। वह विश्वास करने लगता है कि दूसरे लोग उसे दण्ड देना चाहते हैं। इसके लिए वह अनेकों प्रमाणों को भी प्रस्तुत करता है।

स्थिर व्यमोहात्मक प्रतिक्रियाओं में धीरे–धीरे वृद्धि होती है। निरंतर असफलता के परिणाम स्वरूप व्यक्ति सुरक्षात्मक संरचना का सुदृढ प्रबंध करता है। वह अपनी चिंता को कम करने तथा औचित्य स्थापन के अनेक मानसिक रक्षणात्मक उपायों का उपयोग करता है। वह अपनी असफलता का औचित्य ढूढता है, आत्म अवमूल्यन को दूर करने के लिए काल्पनिक रूप से तर्क का सहयोग प्राप्त करता है। उसकी क्यों उपेक्षा की जाती है तथा दूसरों को क्यों विकास एवं उन्नति का अवसर दिया जाता है, इसकों जानने के लिए अधिक सतर्क तथा चिंतित रहता है। तथा प्रत्येक प्रकार के व्यवहार का प्रदर्शन एक अप्रत्याशित ढंग से करता है। इसके मस्तिष्क में ये चित्र शीघ्र ही स्पष्ट होने लगते है। (Crystallize) तथा उसको विश्वास हो जाता है कि उसको किसी अश्लीलता एवं अनैतिकता के कारण समूह से बाहर निकाल दिया गया है। दूसरे लोग उसके विपरीत व्यवहार करके उसके कार्यो में हस्तक्षेप कर रहे हैं । वह सोचता है कि उसमें कुछ त्रुटि है और वह निरंतर अपनी त्रुटियों पर ध्यान देकर कमियों की खोजबीन करता है तो उसे असहनीय कष्ट होता है क्योकि उसमें ऐसी कमी है जो उसके समायोजन में बाधक है। अतः वह इस भवना कादूसरों पर प्रक्षेपण (Projection)करता है। वह अपनी अफलता का कारण अपनी कमी या हीनता की भावना को अस्वीकार करके दूसरों को इसके लिए दोषी ठहराता है। वह अपने को उचित अच्छा तथा समाज का सहयोगी समझता है तथा दूसरे, जो उसके विकास कार्य में बाध पहुंचा रहे हैं उनको असामाजिक तथ्यों का सहयोगी सिद्ध करता है। वह समझने लगता हैं कि उन व्यक्तियों में दुष्ट आत्मा का प्रवेश हो गया है इसीलिए वे समाज विरोधी होने के साथ–साथ उसके भी विरोधी हो गये हैं । जब व्यक्ति में इस प्रकार की मानसिक सुरक्षात्मक प्रक्रिया कार्य करने लगती है तो उसका वास्तविकता से अलगाव होने लगता है उसकी तार्किक शक्ति में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है तथा तथ्यों को त्रुटिपूर्ण तरीकों से निरूपण करके अपने विश्वास के प्रति अडिग हो जाता है। इसके परिणाम स्वरूप व्यामोहात्मक तरीकों की उत्पत्ति होती है। वह सर्वप्रथम दण्डनात्मक व्यामोह (Delusion of persecution) से पीड़ित होकर तत्पश्चात अन्य व्यामोह जैसे अतिचिंतात्मक (Hypochondrinl) महानता आदि का व्यामोह होता है।

कैमरन (Comeron) ने इस प्रक्रिया को जसमें एक व्यक्ति विश्वास उत्पन्न कर लेता है कि दूसरे लोग उससे द्वेष करते हैं, छद्म समुदाय के नाम से सम्बोधित किया है और विचार इस प्रकार व्यक्त किये है कि एक स्थिर व्यामोहात्मक व्यक्ति अपने चारों ओर के (वास्तविक तथा काल्पनिक दोनों) एक संगठित रूप में मानस पटल पर अंकित करता है जिनका उद्देश्य केवल उसके विपरीत तथा विरोध में कार्य करना है। जब वह भावना पूर्णरूप से उसमें विकसित हो जाती है तो उसमें आमोह की व्यवस्था निश्चित हो जाती है जिससे उसको प्रत्येक बात का अर्थ अपने प्रकार से स्पष्ट होने लगता है। वह कहने लगता कि उसको अब कोई भ्रम नहीं है। दूसरे के व्यवहार तथा अपनी असफलता का ज्ञान उसे हो गया है। वह प्रत्येक बात का व्यामोहात्मक व्यवस्था के द्वारा अर्थ लगाता है जिसके कारण उसके विश्वास में कठोरता उत्पन्न हो जाती है और यदि कोई व्यक्ति उसे समझाने का प्रयत्न करता है तो उसका व्यवहार उसे संदेहास्पद लगता है तथा दूसरों को संदेह की दृष्टि से देखता है। परन्तु उसकी व्यामोहात्मक व्यवस्था उसी क्षेत्र में कार्य करती है जिससे उसे असफलता प्राप्त होती है अथवा उन व्यक्तियों के संदर्भ में यह प्रणाली कार्य करती है जो उसकी सम्प्रेरणा संतुष्टि में बाधक है। अन्य क्षेत्रों में उसका व्यवहार सामान्य रहता है। वह उन लोगों से उचित सामाजिक संबंध तथा अपनी भूमिकाओं को उचित प्रकार से निभाता है। परन्तु जब व्यामोहात्मक व्यवस्था की अवधि लंबी हो जाती है तो उसका प्रभाव अन्य क्षेत्रों पर भी पड़ता है।

जब व्यामोह के कारण एक व्यक्ति में भावना उत्पन्न हो जाती है कि दूसरे लोग उसके विरूद्ध षड़यंत्र रच रहे हैं तो वह अपने विषय में भी एक धारणा का विकास करता है। वह सोचने लगता है कि उसका महत्व आवश्यकता से अधिक है तभी तो दूसरे लोग इससे ईर्ष्या रखते है तथा षड़यंत्र रचते हैं। इस प्रकार उसको महानता का व्यामोह (Delusion of grandeur) होने लगता है। वह अपने को महान वैज्ञानिक अथवा अन्वेषक समझने के कारण दूसरों के प्रति द्वेषपूर्ण भावना जागृत करता है। वह विश्वास करता है कि वे लोग उसकेअमूल्य सूत्र (Formula) को हथियाने के लिए अनेक षड़यंत्र रच रहे हैं। वह सोचता हे कि उसने जिस सूत्र का अन्वेषण किया है। उससे उस समुदाय का अहित होगा अतः उस समुदाय के सभी लोग उसके विपरीत कार्य कर रहे हैं।

जब व्यक्ति को शंका उत्पन्न हो जाती है कि दूसरे लोग उसके विपरीत व्यवहार कर रहे हैं तो वह प्रत्येक छोटे से छोटे चिन्ह को बृहद् अर्थ में परिवर्तित करता है और अनुकूल किये गये व्यवहार को महत्वहीन कर देता है। आज के

प्रतिस्पर्धात्मक युग में इस प्रकार के चिन्हों का होना स्वाभाविक हो जाता है। उसमें शंका, अविश्वास तथा दूसरों की आलोचना करने की भावना विकसित हो जाती है जिसके कारण एकाकीपन विकसित हो जाता है।

4. लैंगिक असमायोजन
(Sexual maladjustment)

स्थिर व्यामोह प्रायः उन व्यक्तियों को हो जाता हैं जिनका लैंगिक विकास सामान्य नहीं होता है। वे अपने कार्य को अधिक महत्व देते हें जिसके कारण लैंगिक भावना का ह्रास हो जाता है। अतः लैंगिक संबंध स्थापित करने की बहुत ही कम इच्छा रखते हैं। विभिन्न अध्ययनों से पता चलता है कि ऐसे व्यक्तियों का वैवाहिक जीवन बहुत कष्टप्रद रहता हैं। उनका जीवन साथी से उचित समायोजन नहीं हो पाता है। उनमें मैथुन शक्ति क्षीण हो जाती है, तथा संबंध तनावपूर्ण हो जाते हैं। वे अपने जीवन साथी में अनेक दोष निकालने का प्रयत्न करते हैं। इस प्रकार वे इस विधि के उपयोग द्वारा अपनी लैंगिक कमजोरी की काल्पनिक रूप से क्षतिपूर्ति करते हैं।

स्थिर व्यामोह के अधिकांश रोगी नैतिकता पर अधिक जोर देते हैं। प्रत्येक कार्य में उचित–अनुचित, नैतिक–अनैतिक, अनुकूल–प्रतिकूल, अनेक गुणों को देखते हैं। इसी दृष्टिकोण के आधार पर ही वे लैंगिक संबंधों को भी देखने का प्रयास करते हैं। उन्हें लैंगिक संबंध स्थापित करने में कोई नैतिकता नहीं दिखाई देती है जिसके कारण अपने जीवन साथी को लैंगिक कार्यो से दूर रहने का सुझाव देते हैं तथा नैतिकता पर चलने के के लिए बाध्य करते हैं। वह नैतिकता का उपयोग अपनी आत्मशक्ति को बढ़ाने के लिए करता है। परन्तु उसमें नैतिकता का विकास स्वतः नहीं होता है। वह अपनी लैंगिक कमजोरी को नैतिकता के आवरण में ढक लेता है।

कुछ स्थिर व्यामोहात्मक प्रतिक्रियायें व्यक्ति की लैगिक अपराध के कार्यों के परिणामस्वरूप उत्पन्न होती हैं। उदाहरण के लिए एक रोगी जो दण्डनात्मक व्यामोह से पीड़ित था वह चिकित्सालय में भर्ती किया गया। प्रारम्भ में उसकी अवस्था सामान्य रही। परन्तु धीरे–धीरे वह अपने वाह्य पर्यावरण के प्रति दोषारोपण करने लगा। उसके विषय में जब जानकारी, प्राप्त हुई तो पता चला कि उसके अपनी पत्नी से लैंगिक संबंध सामान्य नहीं थे। वह बहुत ही कम संबंध स्थापित करने के लिए तैयार होता था। रोगी से जब इसका कारण पूछा गया तो उसने बताया कि जब वह 16 वर्ष का था तो एक लड़की से उसका प्यार हो गया था। उसके साथ उसने लैंगिक संबंध भी स्थापित किये थे। परन्तु

बाद में उसे आभास हुआ कि उसने अनैतिक कार्य किया। इसके कारण विवाह से पूर्व फिर कभी ऐसा कार्य नहीं किया। परन्तु अब अपनी पत्नी से लैंगिक संबंध स्थापित करने की कोशिश की तो उसे असफलता मिली क्योंकि पत्नी की लेंगिक भूख बहुत अधिक थी। वह इस भूख को किसी प्रकार भी संतुष्ट नहीं कर सकता था। वह लैंगिक संबंध स्थापन के लिए निरंतर बल देती थी परन्तु रोगी में ऐसी शक्ति नही थी। इसके साथ ही साथ वह इस कार्य को अनैतिक भी समझने लगा था। अतः उसे धीरे–धीरे विश्वास होने लगा कि उसकी पत्नी कोई षड़यंत्र रच रही है और उसे शीर्घ ही पतन के गर्त में डालना चाहती है।

समलिंगी संघर्ष (Homosexual Conflict) के कारण भी स्थिर व्यामोहात्मक लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। फायड के विचार से स्थिर व्यामोह से पीड़ित व्यक्तियों का व्यक्तित्व समलिंगी होता है परन्तु उनमें इस प्रवृति का दमन होने से वे अपेक्षित वस्तु से भी घृणा करने लगते हैं तथा प्रक्षेपण विधि के उपयोग द्वारा वे समझने लगते हैं कि दूसरे व्यक्ति उसे घृणा करते हैं। वह अविश्वास (Infidelity) की भावना उत्पन्न करता है जिसका प्रक्षेपण समलिंगी भावना को छिपाने के लिए करता है। परन्तु उसमें सदैव इस प्रकार की प्रतिक्रियायें नहीं पायी जाती हैं और वे सदैव अस्वाभाविक भी नहीं होती है। उनमें कुछ न कुछ वास्तविकता अवश्य होती है।

6. उपचार

स्थिर व्यामोह के रोगी के साथ उपचार कार्य अत्यधिक कठिन होता है क्योंकि वह अपने को एक विशेष व्यक्ति समझने लगता है। वह दूसरों पर विश्वास नहीं करता हैं, इस कारण सुई लगाने पर भी बड़ी कठिनाई होती है। वह चिकित्सक दल को अपना विरोधी समझता है अतः सहयोग देने के स्थान पर विरोध अधिक करता है। फिर भी यदि रोगी की सहायता प्राप्त कर ली जाय तथा विश्वास उत्पन्न करा दिया जाय तो कुछ सीमा तक सफलता प्राप्त हो सकती है। इसलिए मनोचिकित्सा का कार्य अधिक महत्वपूर्ण होता हैं।

17

उन्माद अवसाद मनोविकृति

ग्रीक चिकित्सक हिपोक्रेट्स ने समस्त मानसिक विकारों को तीन बृहद् श्रेणियों में विभक्त किया था :– उन्माद (Mania), विषाद (Melancholia), तथा विक्षिप्तता (Phrenitis)। अलेक्जन्डर ट्रालियानस (Alexander Trallianus) जो कि छठी शताब्दी का सबसे बड़ा चिकित्सक था उसने उन्माद के संबंध में अपना पहला अनुभव प्रकट किया कि उन्माद तथा अवसाद दोनों ही एक व्यक्ति में साथ–साथ प्रकट हो सकते है। वोनेट (Bonet) ने सन् 1684 में, फालरेट ने सन् 1854 में यह ज्ञात कया कि उन्माद तथा अवसाद दोनो प्रकार की दशाओं के लक्षण एक ही रोगी में उत्पन्न होते हैं। परन्तु इस समय तक इस मनोविकृति का निश्चित नाम तथा उसके लक्षण नहीं स्पष्ट किये जा सके थे। क्रेपलिन (Kraepelin) ने सन् 1899 ई0 में सर्वप्रथम उन्माद अवसाद मनोविकृति शब्द का उपयोग करते हुये उसके लक्षणों को स्पष्ट किया। क्रेपलिन ने उन्माद (Mania) तथा अवसाद (Depression) दो अवस्थाओं को एक ही रोग की दो विकृत अवस्थायें माना है।

1– उन्माद अवसाद मनोविकृति का तात्पर्य

उन्माद अवसाद मनोविकृति में रोगी की दो विपरीत मनोवृतियों, भाववृतियों तथा मनोगत्यात्मक लक्षण स्पष्ट होते है। उन्माद की अवस्था में रोगी अधिक उत्साही, कार्यशील तथा सक्रिय हो जाता है। उसकी मनोगत्यात्मक क्रियायें (Psycho-motor activity) बढ़ जाती है। अवसाद की स्थिति में रोगी दुर्बलता निष्क्रियता विचारशून्यता, विचार दुर्बलता तथा संवेगात्मक विकृति के लक्षण प्रकट करता है। उसका किसी कार्य में मन नहीं लगता है तथा थोड़ा सा भी कार्य करनें पर अधिक थकान महसूस करता है। किसी वस्तु पर वह अपना ध्यान नहीं केन्द्रित कर सकता है और न ही दुख –सुख संवेग प्रकट होते है।

विभिन्न अध्ययनों एवं परीक्षणों से यह ज्ञात हुआ है कि उन्माद अवसाद मनोविकृति के रोगी के लक्षण मनोविदलता (Schizophrenia) के लक्षण से

भिन्न होते हैं। इस मनोविकृति में कुछ रोगी केवल उन्मत्त प्रतिक्रियायें करते हैं और कुछ केवल अवसादी प्रतिक्रियायें। प्रन्तु अधिकांश रोगियों में दोनों प्रकार की प्रतिक्रियाओं के लक्षण देखने को मिलते हैं, या तो दोनों दशाये एक दूसरे के बाद रोगी में स्पष्ट होती हैं या दोनो दशाओं के मिश्रित लक्षण रोगी में पाये जाते है। अतः उन्माद अवसाद मनोविकृति को तीन प्रकारों में विभक्त कर सकतें हैः–

(1) उन्मत प्रकार (Manic Type)

(2) अवसाद प्रकार (Depressive Type)

(3) मिश्रित प्रतिक्रियायें (Mixed Reactions)

वर्तमान समय में अवसाद प्रकार की मनोविकृति अधिकतर समाजों में पायी जाती है क्योकि सामाजिक स्वरूप में पहले से अधिक परिवर्तन हो चुका है। यह मनोविकृति 25 वर्ष से 65 वर्ष के मध्य होती है परन्तु इस प्रकार के लक्षण व्यक्ति में बचपन से लेकर वृद्धावस्था तक हो सकते हैं। युनानस्की तथा रूल (Poznanski and Zrule) ने स्पष्ट किया है कि बच्चों में अवसाद प्रतिक्रियायें 3 से 12 वर्ष तक होती है तथा वृद्धों में भी 85 वर्ष के उपरान्त में लक्षण देखने को मिलते है। यह मनोविकृति पुरूषों की अपेक्षा महिलाओं में अधिक पायी जाती है। महिलाओं तथा पुरुषों में यह विकृति तीन तथा दो के अनुपात से घटित होती है।

लक्षण
(Symptomutology)

उन्माद अवसाद मनोविकृति में दो प्रकार की दशाये एवं लक्षण प्रकट होते हैं,– उन्मादित लक्षण तथा अवसादी लक्षण। अतः दोनों प्रकार की दशाओं का पृथक–पृथक वर्णन करना अधिक उपयुक्त प्रतीत होता है।

2– उन्माद
(Mania)

उन्माद की अवस्था में आशावादिता (Optimism) उल्लास, विचार प्रतिक्रियाओ में अतिशय गतिशीलता, अनिद्रा, विचारों की उड़ान, स्मृति दोष, उत्साही, आदि लक्षण प्रकट होते है।

(1) उल्लास (Elation) रोगी प्रायः प्रसन्नचित्त रहता है। उसको देख कर ऐसा लगता है कि उसको कोई बहुत बड़ा लाभ हुआ है या किसी विशेष उद्देश्य की प्राप्ति हुई है। वह सक्रिय तथा चंचल रहता है। वह सामाजिक स्थानों में अधिक रुचि रखता है तथा अपने में ही प्रसन्न रहता है। उसमें लैंगिक इच्छा

बढ़ जाती है तथा मदान्ध होकर असामाजिक कार्य भी कभी–कभी करने लगता है। विरोध उसको विल्कुल सहन नहीं होता है। ऐसी अवस्था में वह उद्दण्डता के कार्य करने लगता है।

(2) मनोकार्यात्मक सक्रियता (Psycho-motor activity) उन्माद का रोगी अपने को किसी न किसी कार्य में बहुत व्यस्त रखता है। उसको असीम शक्ति का आभास होता है तथा 24 घंटे तक इसके रोगी कुछ न कुछ कार्य किया करते हैं। परन्तु वे किसी एक कार्य पर केन्द्रित नहीं रहते हैं। कभी कुछ कार्य करते हैं तो दूसरे क्षण दूसरा कार्य करने लगते हैं। उनके कार्यों में तारतम्यता (Continuity) नहीं पायी जाती है। इसका रोगी कभी घूमता हैं, कभी हँसता हैं, कभी गाना गाता है, कभी लिखने लगता है। वह अपने कार्य को बहुत तेजी से बदलता रहता है। उसको अपने कार्य में सन्तोष मिलता है तथा अपने में ही प्रसन्न रहता है, उसको विध्न बिल्कुल सहन नहीं होता है। विघ्न एवं बाधा की अवस्था में वह क्रोधित हो जाता है तथा तोड़–फाड़ के कार्य करने लगता है।

(3) विचारों में अस्थिरता (Thought instability) उन्माद का रोगी किसी वस्तु पर अपना ध्यान पूर्णरूप से आकृष्ट नहीं कर पाता है। वह एक विचार से दूसरे विचार पर शीघ्र ही पहुंच जाता हैं । कभी–कभी वह कल्पना में भी विचरण करता है। एक प्रश्न पूछे जाने पर विभिन्न प्रकार के उत्तरों की झड़ी लगा देता है।

(4) निर्णय शक्ति का विघटन (Impairment of judgement power) उन्माद का रोगी किसी निर्णय पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है। उसमें सही तथा गलत समझने की क्षमता का ह्रास हो जाता है तथा उसके विचारों में कोई क्रम नहीं होता है। वस्तुस्थिति के प्रति उसका प्रत्यक्षीकरण सामान्य नहीं होता है।

(5) स्मृति दोष तथा व्यामोह (Memory disorder and Delusions) रोगी की स्मृति विकृत हो जाती है। वह पूर्व बातों पर ध्यान आकृष्ट नहीं कर पाता है। विचार शक्ति में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है। उसको महानता का व्यामोह (Delusion of grandeur) होने लगता है। रोगी अपने को देश का शासक, महान चिकित्सक तथा महान विजेता समझने लगता है।

(6) लैंगिक क्रियाओं तथा व्यवहार के नियमें में बाधा, (Restraint in sexual activities and loss of behaviour system) कुछ रोगियों को छोड़कर अधिकॉश रोगियों की लैंगिक क्रियायें कमजोर पड़ जाती है। उनका मन लैंगिक

सम्बन्ध से विक्षुब्ध हो जाता है। व्यवहारिक नियमों का पालन स्मृति दोष के कारण नहीं कर पाते है।

(7) अनिद्रा के प्रकार (Types of Insomnia) उन्माद के रोगी बहुत कम सोते है। क्योकि वे अधिकांश समय अपने को व्यस्त रखते है। नींद की अवस्था में भी किसी न किसी प्रकार की मुद्रायें बनाते रहते हैं।

3– उन्माद के प्रकार
(Types of Mania)

उन्माद के लक्षण रोगी में मन्द से लेकर तीव्रतम होते हैं। रोगी उन्माद के लक्षणों को अवसाद को दूर करने के लिए, अचेतन रूप से विकसित करता है। अतः जो लक्षण उन्माद से सम्बन्धित जैसे उल्लास, कार्यात्मक गतिशीलता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है वे वास्तविक नहीं होते है।

अवस्था के आधार पर उन्माद को तीन प्रकार की श्रेणियों में विभक्त किया जा सकता है।[1]

(1) मन्द उन्माद
(Hypo-mania)

इस अवस्था में उन्माद के लक्षण मन्द होते है। उल्लास, विचारों की उड़ान तथा अतिक्रियात्मक लक्षण साधारण प्रकार के होते है। रोगी आभास करता है कि उसको जीवन मे कभी भी सुख नहीं प्राप्त हुआ है। वह अपनी योग्यता तथा ज्ञान पर अतिविश्वास करने लगता है और किसी भी विषय पर बिना हिचकिचाहट के अपना मत प्रकट करने लगता है। उसकी विचारशक्ति बढ़ जाती है तथा वह दूसरों का मनोरंजन भी करने लगता है। दूसरे लोग उसको पूरी तरह सामान्य समझते हैं उसका लोगों के साथ सामञ्जस्य पूरी तरह से गड़बड़ नहीं होता है। रोगी को थकान नहीं महसूस होती है। तथा उसकी नींद कम होने लगती हैं इसका कारण पूछने पर रोगी अपने को अतिस्वस्थ का कारण बताता है तथा किसी प्रकार के विश्राम की आवश्यकता की अवहेलना करता है। दिन में वह अपने को पूरी तरह से व्यस्त रखता है। वह अनेक प्रकार के कार्यक्रम बनाता है। कभी टेलीफोन पर बात करता है, कभी पत्र लिखता है, कभी नवीन कार्यक्रमों पर बहस करता है। अनेकों व्यक्तियों को मिलने का समय निश्चित किया जाता है, स्थगित

---

1. कोलमैन, जेम्स सी० — अवनारमल साइकालोजी एण्ड मार्डन लाइफ, डी०वी० तारापुर वाला एण्ड संस कं० बाम्बे, 1974, पृ० 324

किया जाता है तथा अस्वीकार किया जाता है। आदेशों के सम्बन्ध में भी यही दशायें घटित होती हैं। ऐसे रोगी थोड़ी–थोड़ी बात पर टेलीफोन तथा टेलीग्राम भी करते पाये जाते है।

उन्माद की प्रारम्भिक अवस्था में रोगी आक्रामक, निपुण, योग्य, सामाजिक तथा उत्साही बन जाता है। परन्तु धीरे–धीरे वह आत्मकेन्द्रित होने लगता है और जिस कारण उसमें प्रभुत्व स्थापन की प्रवृति उत्पन्न हो जाती है। वह आलोचको को सहन नहीं कर पाता है। जो उसकी आलोचना करते हैं या उसके विचार से सहमत नहीं होते है उन्हें वह मूर्ख बेवकूफ तथा मूढ कहता है। रोगी योजनाये तो बड़ी–बड़ी बनाता है परन्तु किसी भी योजना को पूरा नहीं कर पाता है पहले तो उनका कार्यान्वयन नहीं करता है और यदि ऐसा करता भी है तो कुछ समय के बाद विचार बदल देता है। कभी–कभी ऐसा व्यक्ति फिजूलखर्ची करने लगता है और सम्पूर्ण सम्पत्ति जल्दी से नष्ट कर देता है।

इस प्रकार व्यक्तियों को यद्यपि विभ्रम तथा व्यामोह (Hallucinations and Delusions) नहीं होते है परन्तु उनकी निर्णयशक्ति क्षीण हो जाती है। ऐंसे व्यक्तियों को यदि कोई चिकित्सक से परामर्श करने की सलाह देता है तो क्रोधित हो जाते हैं तथा उल्टा–सीधा बकने लगते हैं।

(2) तीव्र उन्माद

(Acute Mania)

तीव्र उन्माद के लक्षण प्रायः वही होते हैं जो मन्द उन्माद के होते हैं परन्तु उनमें तीव्रता होती है। लक्षण या तो मन्द उन्माद के पश्चात प्रकट होते हैं अथवा आकस्मिक रूपसे बिना किसी पूर्व सूचना दिये अथवा संकेत प्रकट किये रोगी में परिलक्षित होने लगते हैं। रोगी में अनिद्रा तथा बेचैनी महसूस होती है तथा वह अधिक चिड़चिड़ा हो जाता है। रोगी में अति उल्लास के लक्षण दिखायी देते हैं। कभी–कभी वह काफी लम्बे समय तक हँसता रहता है। वह अपनी पूरी शक्ति से तथा तेज आवाज में बात करता है तथा तानाशाही लक्षण व्यवहार में प्रकट करता है। चिड़चिड़ापन बहुत अधिक हो जाता है, वह फर्नीचर को ताड़ने तगता है, दीवारों को गिराने का प्रयत्न करता है तथा कभी–कभी परिचारिकाओं तथा दूसरे रोगियों पर आक्रमण कर देता है । ऐसे रोगी निरंतर किसी न किसी कार्य में लगे रहते हैं, अश्लील बातों की झड़ी लगा देते हैं तथा लैंगिक सम्बन्धों पर खुलकर बात करते हैं। उनमें कल्पना की उड़ान होती है। वे एक विचार से दूसरे विचार पर बहुत ही शीघ्र पहुंच जाते हैं। अश्लील बातों को करते–करते वे धार्मिक कार्यो पर वक्तव्य देने लगते हैं।

तीव्र उन्माद के रोगी में विभ्रम तथा व्यामोह होने लगता है। रोगी को प्रायः अपने धन तथा योग्यता का व्यामोह हो जाता है। वह जिस व्यक्ति की स्मृति करता है उसको वह प्रत्यक्ष दिखाई देता है तथा उससे बाते करने लगता है। उसकी निर्णयशक्ति तथा अन्तर्दृष्टि पूर्णतया विघटित हो जाती है। उसमें संवेगात्मक विकार उत्पन्न हो जाते हैं।

(3) तीव्रतम उन्माद
(Delirium mania)

उन्माद की यह तीव्रतम अवस्था होती है। इसमें रोग के लक्षण चरम सीमा पर पहुंच जाते हैं। रोगी को अत्यधिक मदहोशी, थकान या अतिशय सक्रियाता, व्यामोंह एवं विभ्रम अनुभव होने लगते हैं। रोगी भ्रमित अवस्था में पहुंच जाता है। उसका व्यवहार पूर्णरूपेण हिंसात्मक हो जाता है। उसको देखने तथा सुनने का विभ्रम होने लगता है। उसके लिए बातचीत करना असहनीय हो जाता है और वह ध्यान केन्द्रित नहीं कर सकता है। उसकी मनोगत्यात्मक क्रियायें (Psycho-motor-activity) ध्वंसात्मक तथा हिंसात्मक हो जाती हैं वह अपना समय अत्यधिक बेचैनी से व्यतीत करता है। कभी वह अपनी पूरी शक्ति से चिल्लाता है और कभी आर्तनाद करता है। उसकी आदतों में उन्माद के लक्षण प्रकट होते हैं। खाने की सम्बन्ध में कभी वह खाना खाने से इन्कार कर देता है और कभी खाने की अधिकाधिक माँग करता है। उसकी व्यक्तिगत आदतें बिलकुल विघटित हो जाती हैं। उसके व्यवहार में अश्लीलता, लज्जा एवं हीनता के लक्षण प्रकट होने लगते है। वह अपने मल–मूत्र को कभी–कभी हॉथ से बिखेरने लगता है। वह अपने निकटवर्ती व्यक्यिों के लिए खतरनाक हो जाता है। साराँश में तीव्रतम उन्माद के रोगी का व्यक्तित्व तथा व्यवहार पूर्णतया असंगठित तथा असंगत हो जाता है।

(4) अवसाद
(Depression)

अवसाद की अवस्था में व्यक्ति निराशा, निष्क्रियता तथा एकाकीपन महसूस करता है। उसके लिए दुनियाँ की सभी वस्तुयें नैंराश्यपूर्ण हो जाती है। वह किसी भी कार्य में मन नहीं लगाता है तथा किसी भी प्रकार से उसे सन्तोष नहीं होता है। उल्लास के लक्षण उसमें नहीं प्रकट होते हैं। उसके मस्तिष्क में खालीपन महसूस होता है तथा उसके लिए सभी वस्तुयें सारहीन हो जाती है। व्यवहार धीरे–धीरे असामाजिक होता जाता है। विचार प्रक्रिया में बाधा उत्पन्न हो जाती है। वह धीरे–धीरे मन्द आवाज में बोलता तथा बातचीत करता है। वह अपने

प्रश्नों तथा उत्तरों को संक्षिप्त करने का प्रयास करता है। वह अमिलनसार हो जाता है तथा दूसरे से मिलना–जुलना बिलकुल पसंद नहीं करता है। वह विस्तर पर पड़ा रहना अधिक पसन्द करता है। उसको आत्मग्लानि होने लगती है तथा अतिचिंतात्मक व्यामोह होने लगते हैं। वह अपने को अनेक अपराधों का दोषी ठहराता है। उसे दण्डात्मक व्यामोह भी होने लगता है। वह सोचता है कि उसने अपने को अनेक अपराधों का दोषी ठहराता है। उसको दण्डात्मक व्यामोह भी होने लगता है। वह सोचता है कि उसने अपने जीवन में ऐसे दोषपूर्ण कार्य किये हैं जिनको माफ नहीं किया जा सकता है अतः उसका जीवित रहना किसी के हित में नहीं है।

अवसाद की अवस्था के लक्षणों को निम्न प्रकार से वर्गीकृत किया जा सकता है :–

(1) विचार प्रतिक्रिया में मंदता

(Slow thought process)

रोगी के विचार करने की शक्ति में ह्रास होने लगता है। उसके विचारों में कोई तारतम्यता नहीं होती है। वह जो कुछ बोलता है बहुत धीरे–धीरे कहता है तथा उसकी भाषा असंगत होती है वह कम से कम बातचीत करना पसन्द करता है। अनेकों प्रश्नों का उत्तर एक देता है। तथा वह दूसरों की कम से कम बातों को सुनना चाहता है।

(2) मनोगत्यात्मक निष्क्रियता

(Psycho-motor inactivity)

अवसाद का रोगी कोई काम करना नहीं चाहता है। उसकी इच्छा सदैव बिस्तर पर पड़े रहने की होती है। उसमें उत्साह, स्फूर्ति तथा साहस आदि सभी गुणों का ह्रास हो जाता है। शारीरिक दुर्बलता उसकों इतनी अधिक महसूस होती है कि अपने हाथ–पाव भी हिलाना वह पसन्द नहीं करता है। यदि उसे कोई काम करना पड़ जाय तो शीघ्र ही अति थकान महसूस करता है उसके लिए पूरा संसार सारहीन दृष्टिगोचर होता है अतः उसे अत्यधिक नैराश्य हो जाता है।

(3) वाणी विकार

(Speech disorder)

रोगी की आवाज बैठ जाती है, उसकी भाषा टूटी–फूटी होती है। उसके शब्दों में लड़खड़ाहट होती है, वाक्य असंगत होते हैं तथा वह अपने भावों को स्पष्ट करने में कठिनाई अनुभव करता है।

(4) सामाजिक व्यवहार विकृति
(Disorder of social behaviour)

रोगी का व्यवहार असामान्य हो जाता है। वह किसी से मिलना–जुलना पसन्द नहीं करता है। सामाजिक कार्यकलापों में कोई रूचि नहीं होती है। उसमें चिड़चिड़ापन आ जाता है तथा हर समय चिन्ता में डूबा रहता है।

(5) संवेगात्मक प्रतिक्रियायें
(Emotional reactions)

रोगी को सामाजिक घटनायें प्रभावित नहीं करती है। वह किसी घनिष्ठ की मृत्यु पर न तो रोता है और न ही किसी के जन्म लेने पर खुशी प्रकट करता है।

(6) व्यामोह
(Delusions)

रोगी में आत्म–निंदनात्मक (Self condemnatory) तथा अतिचिंतात्मक व्यामोह (Hypochondrial delusions) होने लगते हैं। वह अपने को अनेकों अपराधों तथा बुराइयों का कारण मानता है जिसके कारण वह क्षोभ तथा ग्लानि प्रकट करता है। उसको शारीरिक कष्ट का अनुभव होता है। कभी–कभी वह सोचता है कि उसमें कोई ऐसा रोग उत्पन्न हो गया है जिसका उपचार सम्भव नहीं है। जब अवसाद के लक्षण तीव्र हो जाते हैं तो रोगी भयानक रोग से पीड़ित अपने को समझता है तथा आत्महत्या के लिए तैयार हो जाता है। उसमें भविष्य के प्रति निराशा की भावना उत्पन्न हो जाती है। उसको नींद नहीं आती तथा बिस्तर पर लेटे कल्पना जगत में विचारण करता रहता है।

अवसाद के प्रकार
(Types of Depression)

अवसाद के कई स्तर होते है और इन स्तरों के आधार पर इसके लक्षण भी मन्द तथा गम्भीर होते है। कालमैन ने तीन प्रकार के अवसाद का उल्लेख किया है :–

(1) साधारण या सरल अवसाद (Simple Depression)

(2) तीव्र अवसाद (Acute Depression)

(3) विषादात्मक जड़ता (Depressive Stupor)

(1) सरल अवसाद

इस स्थिति में रोगी का साहस धीरे–धीरे समाप्त होता जाता है। उसकी शारीरिक तथा मानसिक क्रियायें शिथिल पड़ जाती है। वह निरुत्साही हो जाता है। उस पर किसी बात का प्रभाव नहीं होता है। उसमें ग्लानि उत्पन्न हो जाती है। भावशून्यता, निराशा, हीनभावना, तथा आत्मनिंदा की भावना उत्पन्न हो जाती है। उसकी विचारशक्ति में मंदता होती है। उसकी आवाज मंद हो जाती है। वह कम से कम शब्दों का उपयोंग करता है। भाषा में लड़खड़ाहट होती है तथा वाक्य छोटे–छोटे बोलता है। रोगी प्रायः अकेले बैठना पसंद करता है। क्योंकि उसे एकाकी अवस्था में पश्चाताप करने का अवसर मिलता है। उसमें आत्महत्या की भी कभी–कभी प्रवृत्ति मिलती है क्योंकि उसका भविष्य उसे अन्धकारपूर्ण लगता है।

मानसिक तथा शारीरिक शिथिलता के बावजूद भी वास्तविकता से सम्पर्क समाप्त नहीं होता है। उसकी स्मृति में कोई दोष नहीं आता है। वह प्रश्नों का उत्तर उचित देता है और यदि उसे कहने का समय दिया जाय तो पूरी बात करता है। कभी–कभी वह उपचार के लिए भी कहता है परन्तु उपचार अवसाद के लक्षणों का नहीं बल्कि शारीरिक कष्टों जैसे भूख न लगना, बदहजमी, सरदर्द आदि का करना चाहता है। वह अवसाद की स्थिति को स्वीकार नहीं करता है। अवसाद प्रतिक्रियाओं में मुख्य रूप से रोगी यह सोचता है कि उसके कष्टों तथा आपत्तियों का कारण उसके दुष्कर्म हैं, उसको अपने पापों का परिणाम कष्ट के रूप में प्राप्त हो रहा है। अतः उसका कोई उपचार नहीं है।

(2) तीव्र अवसाद

तीव्र अवसाद की अवस्था में अत्यधिक साहसिक तथा शारीरिक शिथिलता उत्पन्न हो जाती है। व्यक्ति का प्रत्युत्तर बहुत क्षीण होता है। निष्क्रियता बढ़ जाती है, एकाकी जीवन हो जाता है और उसका किसी से भी लगाव नहीं रहता है। उसमें आत्मदोष तथा आत्मग्लानि की प्रतिक्रियायें बढ़ जाती है।

वह संसार की अनेकों बुराइयों का कारण स्वयं को समझता है। वह सोचता है कि महामारियां, विप्लव, बाढ़, सूखा, आर्थिक गड़बड़ी आदि उसके कारण उत्पन्न होती हैं। वह सोचता है कि उसने ऐसे गम्भीर अपराध कियें है जो दूसरों के लिए अत्यधिक हानिकारक है। अतः वह अपने को महान पापी समझने लगता है।

रोगी को व्यामोह होने लगतें हैं। वह सोचने लगता है कि उसका मस्तिष्क शून्य होता जा रहा है या उसमें विचार प्रक्रिया समाप्त हो गयी है। कभी–कभी रोगी समझता है उसकी टट्टी– पेशाब सभी बन्द हो गयी है। यह भी सम्भव है कि रोगी खाना खाने से इन्कार कर दे क्योंकि वह साचने लगता है कि उसका पेट गायब हो चुका है।

रोगी को अत्यधिक विषाद होता है। उसको कोई आशा नहीं रहती है तथा वह अनुभव करता है कि उसकी हालत मे अब कभी सुधार नहीं हो सकता है। किसी भी प्रकार का उपचार उसके लिए व्यर्थ है क्योंकि उसका अंत घोर कष्टों के साथ होने वाला है। कभी–कभी विभ्रम (Hallucination)भी उसे होने लगते हैं। आत्महत्या की गुंजाइश ऐसे रोबियों में बनी रहती है क्योंकि उनको मृत्यु के अतिरिक्त कोई दूसरा रास्ता दिखलाई नहीं देता है।

(3) विषादात्मक जड़ता

जब अवसाद की सीमा बहुत बढ़ जाती है तो व्यक्ति की सभी क्रियायें पूर्णतया शिथिल हो जाती है। वह चुपचाप बिस्तर पर पड़ा रहता है और किसी भी काम में कोई रूचि नहीं लेता है। वह न तो बोलता है और न ही खाना खाता है। अतः उसे ट्यूब से खाना–पानी देना पड़ता है। उसमें चेतना तथा संवेग क्रिया बहुत मन्द हो जाती है। समय, स्थान तथा व्यक्ति के विषय में भ्रम हो जाता है और उसे पूर्वजन्म , पाप, मृत्यु आदि से सम्बन्धित व्यामोह तथा भ्रम होने लगते है।

(4) उन्माद तथा अवसाद में लक्षणों के आधार पर अन्तर

	उन्माद	अवसाद
सांवेगिक लक्षण	प्रफुल्ल मुद्रा,हँसमुख, सामा–जिक, अत्यधिक आपश्र्व, आलोचना, असहनीय	खिन्न मन,अन्धकारपू–र्ण भविष्य, निराशा, सा–माजिक प्रत्याहार चिड़–चिड़ापन
ज्ञानात्मक लक्षण	ध्यान केन्द्रित न होना, विचारों की दौड़ तथा विचारों की उड़ान अति–सक्रिय , कार्य के प्रति लगाव निरर्थक वाक्यों का कभी–कभी उपयोग, स्मृतिदोष,	विचार प्रक्रियाओं मे ह्रास, बाध्यतामूलक चिन्ता समस्या का बढ़ाचढ़ा कर वर्णन, हतोत्साह, नकारात्मक

	दूसरों को दोष देने की आदत विकृत प्रत्यक्षीकरण, दोषपूर्ण निर्णय तथा महानता का व्यामोह	आत्म भावनायें,आत्मनिंदा पाप,अपराध रोग आदि सम्बन्धी व्यामोह, पापों के लिए स्वयंदोषी
गत्यात्मक लक्षण	मनोगत्यात्मक गति, सक्रियता, संलग्नता, अथकान, नींद की कमी, लैंगिक इच्छा में वृद्धि तीव्र उत्साह	मनोगत्यात्मक निष्क्रियता थकान,अनिद्रा, पेट की गड़बड़ी, लैंगिक इच्छा में ह्रास

6. मिश्रित प्रकार का उन्माद अवसाद मनोविकृति (Mixed type of Mania Depressive Psychosis)

प्रायः रोगी में उन्माद तथा अवसाद के लक्षण साथ साथ प्रकट होते है। कभी रोगी की हालत उन्माद की अवस्था में होती है और कभी उसे अवसाद का अनुभव होता है। मिश्रित अवस्था में रोग के लक्षण चक्रीय होते है। कभी रोगी अत्यधिक कार्यशील हो जाता है और कभी अत्यधिक निष्क्रिय । यह परिवर्तन प्रायः रात्रि के समय होता है। उदाहरण के लिए रोगी शाम को अवसाद की अवस्था में सोता है और जागने पर उन्माद के लक्षण पाता है। जेनर (Jenner)[2] ने उन्माद अवसाद रोगी का उदाहरण दिया है जिसमें दोनों प्रकार के लक्षण बराबर'–बराबर समय में रोगी को प्रभावित करते थे। वह चौबीस घण्टे उन्माद का रोगी दिखाई देता था। परन्तु दूसरे चौबीस घण्टे वह अवसाद का रोगी दिखाई देता था। यह चक्र ग्यारह वर्षो तक बराबर बना रहा।

मिश्रित अवस्था में उन्माद तथा अवसाद के लक्षण निरंतरता से प्रकट होते रहते है। क्रेपलिन (Kraepelin) के अनुसार मिश्रित अवस्था 6 प्रकार की होती है।

1 उन्माद जड़ता (Mania stupor)

2 अनुत्पादक उन्माद (Unproductive Mania)

3 अवसादात्मक उन्माद (Depressive Mania)

4 उद्दीप्त अवसाद (Agitated Depression)

---

2. जोनर, एफ0 ए0 एण्ड अदर्स ए मेनिक डिप्रेसिव साइक्रोटिक विद ए फोर्टी एट आवर साइकिल, ब्रिटिश जरनल आफ साइक्याट्री, 1967, 113 (501, 859–910)

5 विचारों की उडान के साथ अवसाद (Depression with Flight of ideas)

6. संवेगात्मक उल्लास एवं विचारों की उड़ान से संबंधित अवसाद (Depression with emotional elation and flight of ideas)

यहाँ पर हम उन्माद तथा अवसाद दोनों प्रकार के रोगियों से वार्तालाप का कुछ अंश प्रस्तुत कर रहे हैं इसमें रोगी के विचारो तथा प्रतिक्रियाओं के तरीकों का पता चलता है।

उदाहरण नं0 1

कार्यकर्ता : कहिए आज आप कैसा अनुभव कर रही हैं ?

रोगी : अति सुन्दर, परन्तु आप कैसा अनुभव कर रहे हैं ? मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि आप पहले से अधिक प्रसन्न हैं। मैने अपने जीवन में कभी भी सुख की अनुभूति नहीं की है। आप यहाँ शायद पहली बार आये हैं क्योंकि मैने पहली बार देखा है। यदि हम और आप बाहर धूमने चलें तो कैसा रहेगा ?

कार्यकर्ता : आप यहाँ आने से पहले क्या करती थी ?

रोगी : मै समाज की सबसे सुन्दर रानी हूँ। राजाओं तथा राष्ट्रपतियों का मनोरंजन करती थी। मेरे पाँच लड़के हैं। मेरे ऐसी औरत कोई दूसरी नहीं हैं। बहुत ही सुन्दर बुद्धिमान तथा चुस्त औरत हूँ ।

कार्यकर्ता : जब आप एकदम ठीक हैं तो यहॉ क्यों है ?

रोगी : यही कठिनाई है मेरे पति मुझे कभी नहीं समझ सके। उनमें इतनी क्षमता नहीं कि वे मेरे मस्तिष्क का अध्ययन कर सकते। मेंरे में वे गुण हैं जो किसी पुरुष को बहुत ही शीघ्र मोहित कर लेते हैं। मै बहुत अच्छा खाना बनाती हूँ मेंरे बनाये खाने में ऐसा स्वाद आता है जैसा तुमने कभी नहीं खाया होगा, लड़के मुझे भूख लग रही है कुछ भी हो तो मुझे दो।

कार्यकर्ता : आप क्या कार्य करना पसंद करेगी ?

रोगी : मै एक फिल्म शो, गायन तथा नृत्य का आयोजन करना चाहती हूँ। मै यह सब स्वयं कर सकती हूं। लेकिन मैं पूछना चाहती हूं कि तुम इस विषय में क्या सोचते हो ?

उपर्लिखित उदाहरण उन्माद के रोगी का है। इसमें वे सभी लक्षण मिलते है। जो उन्माद के रोगी में पाये जाते है । विचारों की उड़ान मनो–गत्यात्मक सक्रियता, महानता का व्यामोह, वाणी विकार, तर्कहीन व्यवहार आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

उदाहरण नं0 2

कार्यकर्ता : नमस्कार, आज आप कैसी है ?

रोगी : उत्तम, मूझे थोड़ा–थोड़ा हतोत्साह अनुभव हो रहा है। पर मुझे इसके कारण का पता नहीं है।

कार्यकर्ता : क्यों कोई ऐसी बात है जो तुम्हे चिंतित कर रही है ?

रोगी : इसका मुझे कोई पता नहीं है लेकिन प्रत्येक वस्तु मेरे लिए अनुपयोगी है और न ही कोई वस्तु मुल्यवान दिखती है। मुझे ऐसा अनुभव होता है कि सभी वस्तुओं की उपयोगिता नष्ट हो रही है। मेरा भी जीवन अब उपयोगी नहीं रहा है।अतएव मेरा जीवित रहना अर्थहीन है। इसके लिए मैने यद्यपि कोई विचार नहीं बनाया है लेकिन अब मुझे कुछ इस संदर्भ में सोचना ही पड़ेगा।

कार्यकर्ता : क्या आप अपनी भावनाओं के विषय में और अधिक विस्तार से बता सकती हैं ?

रोगी : क्यों नहीं, मेरे परिवार को मुझसे बहुत बड़ी–बड़ी आशायें है। मै परिवार की महत्वपूर्ण सदस्या हूँ क्योंकि मैं सुन्दर तथा पैसा पैदा करती हूं। मै किसी से कुछ भी आशा नहीं करती हूं। मैने जीवन में जिस भी व्यक्ति पर विश्वास किया वह सदैव धोखा देता रहा है।

कार्यकर्ता : यह तो बड़े दुख की बात है।

रोगी : हाँ, कुछ समय पूर्व मेरी एक मित्र थी जिस पर मैने बहुत विश्वास किया था और प्रायः हम लोग साथ–साथ रहते थे। मैने साचा था कि वह मेरा मित्र है पर उसने मुझे धोखा दिया और मेरा सारा धन लेकर गायब हो गयी। (रोगी के आँसू आ जाते हैं)।

कार्यकर्ता : क्या आप उसके इस प्रकार के व्यवहार का कारण बता सकती हैं ?

रोगी : हाँ, यह सभी मेरी गलती है। मै किसी को इसके लिए दोषी नही ठहरा सकती हूं। जो कुछ भी मेरे साथ घटित हो रहा है वह मेरे पापों का परिणाम है। मै इस लायक नहीं हूं कि कोई मुझसे मित्रता करे। मैने अपने जीवन में ऐसे अपराधपूर्ण कार्य किये हैं जिनको किसी दशा में क्षमा नही किया जा सकता है।

कार्यकर्ता : आपने किस प्रकार के पाप तथा अपराध किये हैं ?

रोगी : मै दूसरों से ईर्ष्या रखती थी किसी को लाभ होने पर मुझे कष्ट होता था तथा हानि होने पर प्रसन्नता होती थी। इसी कारण मैं अपने उद्देश्य में असफल रही और न ही भविष्य में कोई आशा है।

उपर्लिखित उदाहरण सरल प्रकार के अवसाद मनेविकृति का एक उदाहरण हैं।

उदाहरण नं0 3

कार्यकर्ता : श्रीमान हरीश सुबह का नमस्कार, कहिए आप आज कैसे है।

रोगी : (काफी देर तक रोगी कार्यकर्ता की ओर देखता है इसके बाद सिर अपना नीचा कर लेता है तथा कोई उत्तर नहीं देता है)

कार्यकर्ता : मैने कहा नमस्कार, मिस्टर हरीश ! क्या आप बताना नहीं चाहते है कि आज आप कैसे हैं ?

रोगी : (वह फिर आश्चर्य से देखता है) मै बहुत ही भयानक अनुभव कर रहा हूं मुझे अत्यन्त कठिनाई हो रही हैं।

कार्यकर्ता : आप किस कारण से तकलीफ अनुभव कर रहे हैं ?

रोगी : इसका एक उत्तर न होकर अनेक उत्तर हैं। मेरे लिए अब दुनियां बेकार हो चुकी है। कोई भी आशा नहीं है। मेंरा हाजमा खराब हो चुका है। वह अब कभी ठीक नही हो सकता है।

कार्यकर्ता : क्या आप बता सकते हैं कि आपकों परेशानी कब प्रारम्भ हुई ?

रोगी : इसका मुझे पता नहीं हैं .....ऐसा प्रतीत होता है कि मेरे पेट में कोई भारी वस्तु है। मै स्वयं को भिन्न अनुभव करता हूं ....। मै अब दूसरो के समान नहीं हूं मेरा स्वास्थ्य एकदम गिर गया है...। मैं अब जीवित नहीं रहना चाहता।

कार्यकर्ता : क्या आपका स्वास्थ्य एकदम गिर गया है ?

रोगी : ...हॉ, मेरा मस्तिष्क बिलकुल शून्य हो गया है, पेट गायब हो गया है ..मेरे मस्तिष्क में कीड़ा लग गया है.......मैं अब जिन्दा रहने योग्य नहीं हूं......मैने प्रत्येक वस्तु को नष्ट कर दिया है...। मै सभी दोषों के लिए स्वयं उत्तरदायी हूँ।

कार्यकर्ता : क्या यह सब तुम्हारी ही गलती है ?

रोगी : हाँ, मै अपनी पत्नी के लिए कभी वफादार नहीं रहा जिसका मै दंड पा रहा हू।...मेरा स्वास्थ्य एकदम नष्ट हो गया है ...जीवित रहने से कोई लाभ नहीं है (रोगी आह भरता है) मैने हर वस्तु को नष्ट कर दिया है। मै दूसरों के लिए दुर्भाग्य लाता हूं । अतः मुझे किसी भी दशा में जीवित नहीं रहना चाहिए। आप मुझे क्यों नहीं मरने की कोई दवा दे देतें हैं ?

उपलिखित उदाहरण में तीव्र अवसाद के लक्षण रोगी में दृष्टिगोचर होते है।

7 उन्माद अवसाद मनोविकृति के कारण

1– वंशानुक्रम का प्रभाव

उन्माद अवसाद मनेविकृति पर किये गये अध्ययनों से पता चला है कि यह विकृति उन परिवारों में अधिक होती है जिनमें पहले से विद्यमान होती है। अर्थात वंशानुक्रम के लक्षण आगे आने वाली संतानों को प्रभावित करते है। स्लेटर (Slater) ने अपने अध्ययन में पाया कि लगभग 15 प्रतिशत उन्माद अवसाद के रोगियों के भाई–बहन, माता–पिता, तथा बच्चे इस रोग से पीड़ित थे।[5]

---

5. स्लेटर, ई0 टी0 ओ0 जेनेटिक्स इन साइक्याट्री, जर्नल आफ मेंटल साइंस, 1944–90, पृ0 17–35

रेईच[6] (Reich) ने अपने 59 रोगियों के अध्ययन में पाया कि 20 प्रतिशत पिता तथा 34 प्रतिशत माताओं में पहले से उन्माद अवसाद विशेषकर अवसाद के लक्षण विद्यमान थे। डोरेजब (Dorzab) विनोकर (Winokur)[7] आदि ने भी अपने अध्ययनों मे पाया कि उन्माद अवसाद के रोगी के संबंधियों में यह रोग अधिकाधिक पाया जाता है।

2– शरीर गठनात्मक संबंधी कारक (Constitutional factors)

क्रैशमर (Kretschmer) के अनुसार उन्माद अवसाद के अधिकांश रोगी गोल मटोल तथा स्थूल शरीर वाले होते है। शैल्डन के अनुसार यह रोग दुबले–पतले (Asthenic) व्यक्तियों में कम पाया जाता है परन्तु इस संबंध में कोई विशेष जानकारी नहीं प्राप्त हो सकी है।

3–स्नायुदैहिक प्रक्रियायें (Neurophysiological Processes)

जर्जर शरीर, मस्तिष्क की विकृति, अन्तःस्त्रावी ग्रन्थियों में गड़बड़ी, रासायनिक क्रियाओं में विकृति आदि के कारण यह रोग उत्पन्न होता है। स्नायु दैहिक कारकों के प्रभाव को स्पष्ट करने के लिए इन्जेल[8] ने बताया कि केन्द्रिय स्नायु संस्थान (Central Nervous System) का संगठन दो विरोधी प्रत्युत्तरों में समझौता करने के लिए संगठित होता है। पहला प्रत्युत्तर सक्रिय, लक्षण भेदी, वाह्य श्रोतों से आवश्यकता की पूर्ति, संबंधी होता है। इसके विपरीत दूसरे प्रकार के प्रत्युत्तर सुरक्षात्मक कम क्रियाशील बाधाओं से बचाव, शक्ति का संग्रह तथा अवयव के श्रोतों को अपने तक सीमित रखने से संबंधित होते है। उन्मत्त प्रतिक्रियायें पहले प्रकार के प्रत्युत्तर का बृहद रूप हैं तथा अवसादात्मक प्रतिक्रियायें दूसरे प्रत्युत्तर की अन्तिम सीमा है।

6.	रेइच, टी0 क्लाइटोन पी0 एण्ड विनोकुर, जी0	फेमिलीहिस्ट्री स्टडीज, दी जेनिटिक्स आफ मेनिया, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1969, 125, (10) 5 पृ0 1338–1369
7.	डोरजाव जे0 ,बेकर एम0 सी0 एण्ड विनोकुर जी0	डेप्रेसिव डिजीज : फेमिलियल साइक्याट्रीक इल–नेसु अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1971 127 (9) 5, 48–60
8.	इन्जेल (Engel) जी0 एल0	इंजांइटी एण्ड डिप्रेशन विड्राल : दि प्राइमरी इफैट्स अनप्लीजर, इंटरनेशनल जर्नल आफ साइकोएनालिसिस 1962, 43 पृ0 89–97

4– मनोवैज्ञानिक कारक
(Psychological Factors)

एडोल्फ मेयर[9] (Adolf Meyer) के विचार से उन्माद अवसाद मनोविकृति जीवन की दृःखपूर्ण घटनाओं की प्रतिक्रिया है। दुःखपूर्ण स्थिति से दोनों स्तरों–मनोवैज्ञानिक तथा जैवकीय से संबंधित प्रतिक्रियायें होती है तथा उनकी प्रकृति सुरक्षात्मक और क्षतिपूर्ति की होती है। वास्तव में व्यक्ति की ये प्रतिक्रियायें व्यक्ति की सुरक्षा करने में प्रभावपूर्ण हो या न हो परन्तु वे दुःख को कम कर देती हैं और वह स्वस्थ्य महसूस करने लगता है । इसका परिणाम यह होता है कि व्यक्ति में धीरे–धीरे दुःख बढ़ता जाता है और एक स्थिति में उसका दुःख असहनीय होकर रोग का रूप धारण कर लेता है।

रेनाई तथा फाउलर[10] ने विपरीत जीवन स्थितियों (Aversive life situation) को उन्माद–अवसाद का कारण बताया है। उन्होने अपने अध्ययन में पाया कि लगभग 80 प्रतिशत रोगियों में विपरीत जीवन स्थितियॉ पहले से विद्यमान थीं अर्थात रोग की वृद्धि किसी न किसी दुःखद घटना के कारण हुई थी। अरीटी[11] (Arieti) ने इस दुः,खपूर्ण घटनाओं को तीन श्रेणियों में विभक्त किया है—–

1–प्रियजन की मृत्यु

2–महत्वपूर्ण पारस्परिक संबंध में असफलता

3–उस कार्य से अत्यधिक निराशा जिसमं व्यक्ति ने पूरा जीवन लगाया है।

पेकेल[12] (Paykel) ने 185 अवसाद के रोगियों का अध्ययन किया तथा पाया कि अधिकांश रोगियों में दुःखपूर्ण घटनायें रोग के प्रारम्भ होने से पहले घटित हुई थीं। इन घटनाओं में वैवाहिक परेशानियॉ, व्यक्तिगत बीमारियॉ तथा

9.	मेयर एडोल्फ	कलैक्टैड पेपर्स आफ एडोल्फ मेयर, 4 वाल्यूमस, जान हापविन्स प्रेस, बाल्टीमोर, 1948, 1952
10.	रेनाई (Rennie) टी0 ए0 एण्ड फाउलर जेवी0	प्रोगनोसिस इन मैंनिंक डिप्रेसिव साइकोसिस, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1942, 98 पृ0 801–814
11.	आरटी, एस0	अमेरिकन हैण्डबुक आफ साइक्याट्री, बेसिकबुक्स, न्यूयार्क 1959, पृ0 419–454
12.	पेकेल, ई0 एस0 एण्ड अदर्स	लाइफ इविन्ट्स एण्ड डिप्रेशन, आर्चीव आफ जनरल साइक्याट्री, 1969–21, पृ0 753–760

प्रियजन की मृत्यु सम्मिलित थी। रोच (Routch) तथा बनी (Bunney)[13] ने 40 अवसाद के रोगियों का विस्तार से अध्ययन किया और पाया कि इन रागियों ने रोग से पूर्व अनेक दुःखपूर्ण स्थितियों का सामना किया था। उन्होने निम्न दुःखद स्थितियों को रोग के उत्पन्न होने के संदर्भ में प्राप्त किया–

1 लैंगिक कठिनाई

2 वैवाहिक संबंधों में परिवर्तन

3 कार्य में परिवर्तन

4 वासतविकता को अस्वीकार करने के लिए बाध्य होना

5 शारीरिक रोग

6 कार्य (Job) में असफलता

7 माता–पिता के उद्देश्यों को पूरा करने में बच्चों की असफलता।

8 उत्तरदायित्व में वृद्धि

9 सामाजिक स्थिति में ह्रास

10 महत्वपूर्ण व्यक्ति की मृत्यु

बेक (Beck)[14] ने अनेकों अवसाद के रोगियों के स्वप्नों का अध्ययन किया और पाया कि अधिकांश रोगियों के स्वप्न अपराध संबंधी थे। वे स्वप्न में किसी न किसी दुःखदपूर्ण घटना देखते थे। उनको भग्नाशा, विषाद तथा हानि संबंधी स्वप्न अधिकांशतः दिखायी देते थें।

यहाँ पर एक बात ध्यान देने की है कि दुःखपूर्ण घटनायें स्वयं विकास उत्पन्न करने के लिए उत्तरदायी नहीं है क्योंकि प्रत्येक व्यक्ति के जीवन में दुखद धटनायें अवश्य आती हैं। कुछ न कुछ सभी की हानि होती है, सभी सेवानिवृत्त होते हैं, बच्चों से मनमुटाव तथा पृथकीकरण होता है, तथा किसी–किसी के प्रियजन की मृत्यु भी होती है। परन्तु सभी मनोविकृति के शिकार नहीं होते है। व्यक्ति का व्यक्तित्व तथा उसकी मानसिक विशेषतायें विशेष महत्वपूर्ण होती हैं। वह किस प्रकार से इन घटनाओं का सामना करता है यह महत्वपूर्ण है तथा

---

13. रोच, जे0 एफ0, लेफ, एम0 जे0 एण्ड बनी डब्लू ई0 — इनवाइरनमेंटल फैक्टर्स प्रसीडिंग दि आनसेट आफ सेवियर डिप्रेशन, साइक्याट्री 1970, 33, (3) पृ0 298–311

14. बेक,ए0 टी0 — दि मीनिंग आफ डिप्रेशन, साइंस न्यूज, 1969, 96 (24) पृ0 554

उसी के द्वारा यह निश्चित होता है कि उसमें मनोविकृति उत्पन्न होगी या नही। तनाव तथा भाग्नाशा से व्यक्ति में चिंता की भावनायें उत्पन्न होती हैं तथा आत्म सम्मान (Esteem) को धक्का पहुंचता है। इस प्रकार वेक ने अपने अध्ययन मे पाया कि 78 प्रतिशत अवसाद के रोगी आशाहीनता की भावना तथा भविष्य के प्रति नकारात्मक दृष्टिकोण रखते है। परन्तु केवल तनावपूर्ण तथा दुःखद स्थितियों के आधार पर उन्माद अवसाद मनोविकृति को नहीं समझा जा सकता है। अन्य मनोवैज्ञानिक तथा जैवकीय कारक भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाते है।

1 दबाव (Stress) की प्रतिक्रिया के रुप में उन्माद के लक्षण

दबाव का दो तरीकों से व्यक्ति सामना करता है। दुःख प्रकट करके चिंता द्वारा या दबाव को भुलाकर वास्तविकता से अस्वीकृति द्वारा। उन्माद का रोगी वास्तविकता को अस्वीकार कर कठिनाइयों से मुक्ति प्राप्त करता है। वह वियारों की उड़ान द्वारा दबाव को कम करता है। प्रेम में विफल होने पर व्यक्ति बहुत अधिक सामाजिक होकर लोगों से संबंध स्थापित करने का प्रयत्न करता है या कोई ऐसा कार्य करने लगता है जिससे उसको विफलता के कष्ट से मुक्ति मिलती है। अतः वह अपने को अधिक से अधिक समय तक काम में व्यस्त रखना चाहता है। धीरे–धीरे उसमें गत्यात्मक सक्रियता बढ़ जाती है। इस प्रकार व्यक्ति को कठिनाइयों से समायोजन करने में सफलता प्राप्त होती है।

जब व्यक्ति एक बार इस प्रकार का समायोजन स्वीकार कर लेता है तो यह उस समय तक बना रहता है जब तक उसका सांवेगिक ह्रास नहीं होता तथा पराजय को स्वीकार करके अवसादी नहीं बन जाता है। उन्माद की अवस्था में रोगी सूचनाओं से बहुत अधिक बोझिल हो जाता है। उसकी विचार प्रतिक्रियायें अत्यन्त गतिशील हो जाती है। जिसमें उचित तथा अनुचित समझने की क्षमता नष्ट हो जाती है। उसमें आंतरिक समन्वय कम हो जाता है तथा अनुकूलन की क्षमता में ह्रास होता है। इस संदर्भ मे यह समझना आवश्यक है कि उन्माद में असंगत अनुकूलन अवसाद की अपेक्षा अधिक होता है। उन्माद के रोगी में आत्मशक्ति तथा निर्याय प्रक्रिया में विघटन हो जाता है।

2 दबाव प्रतिक्रिया के रूप में अवसाद के लक्षण

जहॉ पर एक ओर उन्माद की दशा में विफलता की क्षतिपूर्ति वास्तविकता को स्वीकार करके की जाती है वहीं पर दूसरी और अवसाद में व्यक्ति असफलता के लिए स्वयं को दोषी ठहराता है। वह अपने को अर्थहीन समझता है। इस प्रकार दबावपूर्ण एवं दुःखद स्थिति से दूर भगता है। अवसाद का रोगी प्रत्यक्ष रूप से अपनी सफलता को स्वीकार करके तथा पराजय को ग्रहण करके

असहनीय दु:ख पूर्ण स्थिति से कुछ हल्का होता है। विचार प्रक्रियाओं की कमी करके दु:खद विचारों से मुक्ति पाता है, परन्तु इस प्रकार की मुक्ति का प्रभाव अहं पर पड़ता है जिससे उसमे आत्म निंदा की भावना का विकास होता है। मेलजेस तथा बाउलवाई[15] ने अपने अध्ययन में पाया कि 80 प्रतिशत अवसाद के रोगियों में आत्म निंदा एवं आत्म दोष के लक्षण उपस्थित थे। अवसाद का रोगी कठिनाइयों के लिए स्वयं को दोषी ठहाराता है। वह अपने पूर्व–जीवन को अति सूक्ष्म तरीके से विश्लेषित करता है तथा अपने पूर्व कार्यो का पाप से संबंध जोड़ता है। उसकी दृष्टि में अनैतिक लैंगिक व्यवहार, धार्मिक कार्यों की अस्वीकृति तथा अन्य इसी प्रकार के अनैतिक कार्यो पर जाता है। आक्रामणात्मक तथा उग्र भावनाओं को जब आंतरिक मोड़ दिया जाता है तो उसका स्वरूप परिवर्तित होकर अवसाद के रूप में प्रकट होता है। केन्डेल[16] (Kendell) ने अपने अध्ययन में यह पाया कि यदि आक्रमणात्मक तथा उग्र (Aggressive and Hostile) प्रत्युत्तरों के प्रकट होने का अवसर नहीं मिलता है तो व्यक्ति के व्यवहार में विषादात्मक लक्षण प्रकट हो जाते है। निम्नलिक्षित उदाहरण इस स्थिति को पूर्ण रूप से स्पष्ट कर देता है।

3 वर्ष पहले 'स' 22 वर्षीय छात्रा अपने प्रेमी के साथ घर से भाग गयी थी उसके माता –पिता उस प्रेमी से 'स' का विवाह नहीं करना चाहते थे परन्तु वह पूर्ण रूप से उससे संतुष्ट थी तथा हर प्रकार से विवाह करने के लिए तैयार थी। भागने का परिणाम यह हुआ है कि दोनो प्रेमियों को सम्पत्ति तथा धन से हाथ धोना पड़ा। माता–पिता ने किसी भी प्रकार से सहायता देने से इन्कार कर दिया। फलतः वे दोनों लखनऊ आये और वहाँ पर छोटी–मोटी नौकरी की तलाश की।

'स' तथा उसके माता–पिता में कोई सम्बन्ध नहीं रह गया था क्योंकि उसका व्यवहार माता–पिता को अत्यधिक कष्टप्रद था। लड़की में भी अपराधी भावनायें जागृत हो गयी थी। वह समझती थी कि उसने जो कुछ किया है उससे माता–पिता के सम्मान में ठेस पहुंची हैं। वह यह भी सोचती थी कि उससे माता–पिता को बड़ी उम्मीदे थी तथा वे सम्मान के साथ विवाह करना चाहते थे। धीरे–धीरे वह

---

15. मेलजेस एफ0 एण्ड बाउल वाई जे0	टाइप्स आफ होपलेसनेस इन साइको पैथोलो–जिकल प्रोसेस, आर्काइव आफ जर्नलसाइक्याट्री, 1969, 20 पृ0 690–699
16. केन्डेल, आर0	रिलेशनशिप विटवीन एग्रेशन एण्ड डिप्रेशन, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 1970, 22. पृ0 308–318

सोचने लगी की जो कुछ उसने किया है वह अत्यन्त निंदनीय तथा दण्डनीय है। लखनऊ में रहते हुये दूसरे वर्ष वह गर्भवती हो गयी तथा बच्चा पैदा होने के कुछ पहले उसने अपने माता–पिता को इस बात की सूचना दी। परन्तु अभाग्यवश उसका पुत्र जन्म लेते ही खत्म हो गया। इस बात की सूचना के पूर्व उसके माता–पिता ने अपनी छिपी दुखद भावनाओं पर नियन्त्रण रखकर उसको एक अच्छा उपहार भेजा। परन्तु यह उपहार बच्चा मरने के पश्चात् प्राप्त हुआ जिससे उसकी और भी भग्नाशा एवं चिन्ता में वृद्धि हुई। जब माता–पिता को इसकी सूचना मिली तो वे उससे मिलने के लिए लखनऊ रवाना हुये। दुर्भाग्यवश लखनऊ पहुंचने से पहले ही एक दुर्धटना में माता–पिता दोनों ही समाप्त हो गयें।

जब रोगी को माता–पिता के मरने की सूचना मिली तो वह अत्यन्त दुखी हुई तथा अवसाद की अपनी चरम सीमा पर पहुच गयी जिसके कारण आत्महत्या के प्रयास से उसने नींद की कई गोलियॉ एक साथ खा ली। यद्यपि उसको समय पर ही चिकित्सा सहायता प्राप्त हुई परन्तु वह तीव्र अवसादी बनी रही। उसका मन भारी रहता था तथा किसी वस्तु पर अपना ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाती थी। केवल माता–पिता की मृत्यु पर ही थोड़ी–बहुत बात करती थी तथा उसी पर सोचती रहती थी। बच्चे की मृत्यु, माता–पिता की कृत्यु, घर की बरबादी आदि के लिए वह स्वयं अपने का दोषी ठहराती थी। काफी दिनों तक मानसिक अस्पताल में भर्ती रही। उससे इस संदर्भ में निम्नलिखित बातचीत हुई :–

कार्यकर्ता : क्या आप महसुस करती हैं कि आपको माता–पिता की मृत्यु के कारण दोषी ठहराया जाता है ?

रोगी : हाँ मैने उन्हे मारा है। वे मेरे लिए विचित्र माता–पिता थें। उनको मैंने खूब परेशान किया। उनका कहना नहीं मानी तथा उनको जान से खत्म भी कर दिया। अतः अब मेरा मरना ही उचित है। हे ईश्वर मैंने अपने बच्चे तथा माता–पिता को मार दिया । मुझे मर जाने दो। मेंरे में कोई अच्छाई नही है। आह भगवान! मैनें यह क्या किया?

इस उदाहरण में रोगी ने अपने माता–पिता के प्रति उग्र भाववनाओं को जागृत कर लिया था क्योंकि माता–पिता ने उससे सम्बन्ध रखना अस्वीकार कर दिया था। उग्र भावनाओं के साथ ही साथ उसमें आत्मग्लानि की भी भावना, माता–पिता की अवज्ञा के कारण उत्पन्न हो गयी थी। वह इन भावनाओं को कहीं भी व्यक्त नहीं कर पायी थी। पति से तो वह कह नहीं सकती थी तथा और किसी से कोई सम्बन्ध नहीं था धीरे–धीरे उसमें आत्म–ग्लानि बढ़ती गयी। अवसाद जटिल होता गया, तथा असामान्य लक्षण प्रकट होते गयें। दुर्भाग्यपूर्ण

घटनाओं ने इन भावननाओं को उत्तेजित करने में पूरी सहायता की और रोगी उन्माद अवसाद मनोविकृति का रोगी बन गयी।

आशाहीनता

आशा हीनता से व्यक्ति में अवसाद उत्पन्न होता है। जब व्यक्ति को एहसास हो जाता है कि वह अपने उद्देश्यों को प्राप्त करने में सफल नहीं हो सकेगा तो चिन्ता एवं अवसाद के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। बिवरिंग[17] (Bibring) के अनुसार अहं जब असहाय तथा आशाहीन हो जाता है उसको उद्दीपन प्रभावित नहीं करते है। तथा किसी उद्देश्य को लेकर आगे नहीं बढ़ता है क्योंकि पूर्व कार्य में उसे असफलता ही प्राप्त हुई है इससे व्यक्ति में अवसाद उत्पन्न होता है। लजारस[18] (Lazarus) के अनुसार अनौचित्यपूर्ण तथा अपूर्ण पुष्टीकरण का कार्य अवसाद के रूप में समझा जा सकता है। अर्थात् अवसाद उस समय उत्पन्न होता है जब पुष्टीकरण (Reinforcement) अपूर्ण अथवा उचित नहीं होता है। स्टाटलैण्ड[19] (Stotland) केअनुसार व्यक्ति को जितनी ही कम उम्मीद, उद्देश्य या लक्ष्य को प्राप्त करने की होती है तथा लक्ष्य जितना महत्वपूर्ण होता है उतना ही अधिक व्यक्ति चिन्ता अनुभव करता है। यदि आशाहीनता उद्देश्य के प्रति उत्पन्न हो जाती है तो व्यक्ति में अवसाद, प्रत्याहार, अतिचिन्ता आदि के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

(5) पूर्व प्रवृत्त (Predisposing) व्यक्तित्व तथा परिवारिक कारक

जिक्सन[20] ने अपने अध्ययन द्वारा यह सिद्ध किया कि उन्माद विषाद के रोगी उन परिवारों से अधिक सम्बन्धित होते हैं जिनमें सम्मान प्राप्त करने के लिए संघर्ष होता है, परिवार सामाजिक अनुमोदन के लिए अथक प्रयास करता है तथा

---

17. विवरिंग ई0 — दि मेकेनिज्म आफ डिप्रेशन इन पी ग्रीनाक्रे (इडिटेड) एफेक्टिव डिसआर्डर्स, इण्टरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1953, पृ0 39
18. लजारस, ए0 पी0 — लर्निंग थियरी इन दि ट्रीटमेंट आफ डिप्रेशन, विहवियरिस्टिक रिसर्च थिरैपी, 1968 पृ0 83–85
19. स्टाटलैण्ड, ई0 — दि साइकोलोजी आफ होप, जोसी ब्रासु सेन्फ्रानसिसको, 1969 पृ0 9
20. जिक्सन, आर0 डब्लू0 — दि फेमिली बैकग्राउन्ड एण्ड अर्ली लाईफ इक्सपीरियन्सेस आफ मेनिक डिप्रेविव पेसेन्ट, साइक्याट्री, 1958 पृ0 71–79

प्रतिस्पर्धात्मक पर्यावरण होता है। ऐसे परिवारों में व्यवहार के प्रतिमान बड़े कठोर होते है। प्रतिमानों को न मानने पर कठोरतम् दण्ड दिया जाता है। व्यक्ति के आक्रामक अतिमिलनसार, अति उत्साही तथा महत्वाकाँक्षी गुण उन्माद अवसाद मनोविकृति को उत्पन्न करते हैं। उद्देश्य प्राप्त करने की अति चिन्ता तथा अति चेतनता, सामाजिक स्वीकृति प्राप्त करने की असीम आकाँक्षा, अनुकूल परिस्थितियाँ होने पर उन्माद के लक्षण उत्पन्न कर देते हैं। ग्रिनकर[21] (Grinker) के अनुसार जिस व्यक्ति में वाह्य विचार, चिन्तातुर आत्मप्रदर्शन तथा कठोर चेतनता का विकास होता है वे अपनी उग्र भावनाओं को वाह्य रूप में प्रकट नहीं कर पाते हैं जिससे यदि उनका आचरण गलत होता है या उससे संबंधित घटनायें प्रतिकूल होती हैं तो वह अपने को दोषी ठहराने लगता है और पाप की भावना जागृत कर लेता है।

(6) सामाजिक भूमिकायें (Social roles) तथा संचार

सामाजिक भूमिकायें तथा संचार व्यवस्था भी उन्माद अवसाद मनोविकृति को उत्पन्न करने में सहायक होता है। उन्माद की अवस्था में व्यक्ति में दूसरों से पृथक रहने तथा सहायता न लेने की इच्छा अत्यधिक सक्रिय हो जाती है। इसके विपरीत अवसाद का रोगी दूसरों की सहायता तथा सहानुभूति की सदैव आशा करता है तथा दुःख इसीलिए प्रकट करता है कि दूसरे भी इसी प्रकार महसूस करे। जेनोवस्की लेफ तथा इपस्टीन[22] ने उन्माद के रोगी के संदर्भ में अवलोकन करके निम्नलिखित तथ्य प्रस्तुत किया। उन्माद का रोगी प्रायः अपने को परिवार, मित्र तथा अन्य लोगों से पृथक कर देता है। वह अपनी हानि की पूर्ति अत्यधिक सक्रियता एवं विचारों की उड़ान द्वारा करना चाहता है। उसकी आत्मशक्ति कमजोर हो जाती है तथा स्वयं पर संदेह होने लगता है। वे अपने कार्यो को उचित ठहराते हैं तथा सुरक्षात्म्क कदम उठाते हैं। अवसाद रोगी के विपरीत उन्माद के रोगी दूसरों पर विश्वास नहीं करते है और न ही दूसरों पर निर्भर होना चाहतें हैं। वे नहीं चाहते हैं कि उनकी कोई देख–भाल करे क्योंकि वे अपने को रोगी नहीं समझते है।

उन्माद का रोगी आत्मशक्ति तथा भावनाओं की उपयुक्तता को बनायें रखने के लिए वह उस प्रकार की सामाजिक भूमिकायें अदा करता है जिन पर उसका नियंन्त्रण रहता है तथा लोगों को अपने अनुकूल बनाने में सफल होता है।

---

21. ग्रिनकर, आर0 — एन0एस0 आन सीजोफ्रीनियां एण्ड साइंस, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 1969, 20 (1) पृ0 710–716
22. जेनोवस्की, डी0एस0 लीफ एम, एण्ड इपस्टीन आर0 — प्लेइंग दि मैजिक गेम, आर्काइव आफ जर्नल साइक्याट्री 1970, 22, पृ0 252–254

अवसाद का रोगी अपनी भूमिकाओं में अन्य व्यक्तियों की सहायता चाहता है। वह अपने अवसादी लक्षणों द्वारा न केवल कष्ट स्पष्ट करता है बल्कि दूसरों की सहायता तथा सहानुभूति द्वारा अपनी भावनाओं तथा प्रत्यक्षीकरण के आधार पर व्यवहार करने में सफल भी होता है।

अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धों में प्रायः अवसाद के लक्षण संचार के रूप में प्रकट होते है। संचार के माध्यम से व्यक्ति में अवसादी लक्षण प्रकट हो जाते है। विवाह की असफलता का मुख्य कारण संचार द्वारा अवसाद को उत्पन्न करना है। विवाह का एक पक्ष अपनी कठिनाइयों, अपूर्ण इच्छाओं, तनाव, चिन्ताा आदि का संचार करता है परन्तु जब दूसरा पक्ष उसकी आशा के अनुसार व्यवहार करने में असफल होता है तो उसमें अवसाद के लक्षण उत्पन्न हो जाते है। गोल्डस्मिथ तथा क्रेंटेकोस[23] ने वियतनाम के युद्ध से वापस जाने वालों का अध्ययन किया तथा पाया कि जहॉ इन लोगों में चिंता की बाहुल्यता थी वहीं अन्तर्व्यक्तिगत सम्बन्धों तथा संघर्ष सम्बन्धी अवसाद की प्रतिक्रियायें थीं।

(7) सामाजिक सांस्कृतिक कारक

सामाजिक स्थिति तथा सामाजिक पर्यावरण उन्माद अवसाद मनोविकृति को उत्पन्न करने में प्रभावकारी होता है। सामाजिक पर्यावरण की भिन्नता के साथ–साथ उन्माद अवसाद विकृति की दर में भी भिन्नता होती है। उन्माद की प्रतिक्रियायें किन्हीं समाजों में अधिक होती है और कहीं अवसाद की प्रतिक्रियायें अधिक पायी जाती है। न्यूजीलैण्ड तथा स्काटलैण्ड में उन्माद अवसाद प्रतिक्रियायें अधिक पायी जाती हैं जब कि फिनलैण्ड और इसरायल में कम होती हैं। (गोल्फ 1951) हेस, 1960 न्यूजीलैण्ड डिपार्टमेन्ट आफ हेल्थ 1960, स्काटिश होम एण्ड हेल्थ डिपार्टमेन्ट 1961, कैरोथरस[24] (Carothers) के विचार से अफ्रीका के निवासियों में उन्माद के लक्षण तो देखने को मिलते हैं परन्तु अवसाद के लक्षण बहुत कम दिखायी देते हैं जबकि संयुक्त राज्य अमेरिका में इसके बिल्कुल विपरीत है। उनके विचार में अवसाद के लक्षण परम्परागत संस्कृति में कम होते

23.	गोल्डस्मिथ, डब्लू एण्ड क्रेटेकोस, सी0	अनहैपी ओडीसेज, साइक्यात्रिक हासपिट–लाइजेशन एभांग वियतनाम रिटर्नीर्ज, आर्का–इव आफ जर्नल साईक्यात्री, 1969, 20, पृ0 78–83
24.	कैरोथरस जे0, सी0	दि अफ्रीकन माइन्ड इन हेल्थ एण्ड डिजीज, इन ए स्टडी इन इथनोसाइक्यात्री वर्ल्ड हेल्थ अर्गनाइजेशन, 1953

हैं। अफ्रीका एक परम्परागत समाज है जबकि अमेरिका आधुनिक । अफ्रीका में परम्परागत संस्कृति होने के कारण कोई व्यक्ति अपनी असफलता तथा दुर्भाग्य के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है या उसमें यह भावना नहीं पैदा होती है कि यदि वे असफल होते हैं तो उनकी इसमें कोई गलती है। ईश्वर के प्रति श्रद्धा रखने के कारण उसे दोषी ठहराते हैं।

अनेक अध्ययनों (किडसन एण्ड जोन्स,[25] लाट एण्ड क्लेट[26] तथा जेग) से यह सिद्ध हो चुका है कि अवसाद आधुनिक तथा विकसित देशों में अधिक होता है तथा आत्महत्या की प्रवृत्ति भी अधिकाधिक पायी जाती है। विकसित समाजों में चिन्ता, आत्मग्लानि, आत्मदोषी, अपराध, आशाहीनता, पाप की भावनायें, आत्मअवमूल्यन, आत्महत्या की प्रवृति अधिक पाये जाती है । इंग्लैंड, फ्रॉस, जर्मनी, अमेरीका, जापान, इटली, आदि देशों में उन्माद अवसाद मनोविकृति अधिक पायी जाती है। सामाजिक वर्ग तथा उन्माद अवसाद मनोविकृति के सम्बन्ध में काफी मतभेद हैं। कुछ अध्ययनों से उच्च सामाजिक वर्ग तथा उन्माद अवसाद मनोविकृति में सकारात्मक सम्बन्ध देखने का मिलता है। कुछ अध्ययनों से नकारात्मक सम्बन्ध ज्ञात होता है तथा कुछ अध्ययनों से कोई सम्बन्ध नहीं ज्ञात होता है। जेको[27] (Jaco) ने टैक्सास में अपने अध्ययन में पाया कि उन्माद अवसाद की मनोविकृति उच्च शिक्षा प्राप्त करने वाले, व्यवसाय करने वाले तथा आर्थिक–सामाजिक स्थिति ग्रहण करने वालों में अधिक पायी जाती है। नगरीय जीवन में, ग्रामीण जीवन से यह मनोविकृति तीन गुना अधिक थी तथा विवाहित एवं विधवाओं की अपेक्षा तलाकशुदा व्यक्तियों तथा पृथक रहने वालों में अधिक थी।

उन्माद अवसाद के सम्बन्ध में निम्न बातों का ज्ञान होना आवश्यक होता है :–

(1) जीवन क्रम
(2) सुधार की सीमा (Extent of Recovery)
(3) घटित होने की तारतम्यता (Frequency of attack)

25.	किडसन एम ऐण्ड जोन्स आई	साइक्याट्रिक डिसआर्डर्स एमांग अवोरिजिन्स आफ दि आस्ट्रेलियन वेस्टर्न डेजर्ट, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 1968
26.	लार, एफ0 एण्ड क्ले सी0 जे0	क्लास कल्चरल कम्परीजन आफ साइक्याट्रिक सिन्डोप्स, जर्नल आफ अवनारमल साइकालोजी 1969, 74 (4) पृ0 357–358
27.	जैको ई0जी0	दि सोशल इपिडेमिओलोजी आफ मेन्टल डिसआर्डर्स, रसेल सेज फाउन्डेसन न्यूयार्क, 1960

(4) घटित होने की अवधि (Duration of attack)

(5) व्यक्तित्व प्रकार (Personality type)

बहुत से रोगी केवल एक बार इस रोग के शिकार होते हैं लेकिन पुनः शिकार होने की पूरी सम्भावना रहती है। सुधार की सम्भावना पूरी रहती है तथा मध्यांत में भी असामान्य लक्षण नहीं प्रकट होता है। युवकों में यह रोग कम समय तक रहता है तथा मध्यान्तर भी काफी होता है। 45 वर्ष की उम्र के पश्चात यदि रोग होता है तो उसका स्वरूप तीव्र होता है। अधिक समय तक बना रहता हे तथा मनोविदलता के रूप में प्रायः परिणित हो जाता है । उन्माद अवसाद का जीवनक्रम निश्चित नहीं है तथा यह प्रायः 30 से 39 वर्ष के व्यक्तियों में अधिक पाया जाता है।

चिकित्सालय में उन्माद अवसाद के रोगी कई बार भर्ती किये जाते हैं क्योंकि कुछ मध्यान्तर के उपरान्त रोग पुनः प्रकट हो जाता है। जिन व्यक्तियों में यह रोग प्रायः हो जाता है उनके व्यक्तित्व में निम्नलिखित विशेषतायें पायी जाती हैं:—

(1) विषादात्मक, चिन्तात्मक तथा चिन्तातुर व्यक्तित्व

(2) प्रसन्न आक्रामक तथा हतोत्साही

(3) व्यक्तित्व की खिन्नता तथा उल्लास में निरन्तर परिवर्तन।

उन्माद अवसाद मनोविकृति में मध्यान्तर सामान्य होता है अतः चिकित्सा प्रणाली निश्चित करने में कठिनाई होती है।

(8) उपचार

उन्माद अवसाद मनोविकृति के उपचार में विद्युत आघात चिकित्सा तथा औषधि चिकित्सा का उपयोग अधिक लाभप्रद होता है। मनोचिकित्सा के उपयोग के सम्बन्ध में विरोधात्मक दृष्टिकोण है। मनोचिकित्सा में चिकित्सात्मक सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त आवश्यक होता है। परन्तु इन रोगियों से उद्देश्यपूर्ण सम्बन्ध स्थापित करना अत्यन्त कठिन होता है। रोगी किसी भी स्थिति में सहयोग करने की स्थिति में नहीं होता है। अवसाद की स्थिति में वह चिकित्सक की ओर ध्यान ही नहीं देता है तथा उल्लास की स्थिति में सामञ्जस्य स्थापित नहीं कर पाता है। आलम्बन चिकित्सा किसी सीमा तक लाभकारी होती है। उसे वाह्य उत्तेजकों से बचाना आवश्यक होता है। ऐसा वातावरण उत्पन्न करने का प्रयास किया जाय जिसमें वह शान्त एवं प्रसन्नचित्त रह सके। उन्माद की अवस्था में जल चिकित्सा भी महत्तवपूर्ण होती है।

18

अन्तर्मुखी विषाद

व्यक्ति प्रारम्भिक जीवन में अपनी समस्त इच्छाओं तथा अभिलाषाओं को पूरा करने की पूर्ण क्षमता रखता है। उसका शरीर तथा मन दोनों ही संतुलित रूप से कार्य करते हैं और निश्चित उद्देश्यों को प्राप्त करने में सहयोगिक क्रियाओं का सम्पादन करते हैं। उम्र बढ़ने के साथ–साथ शारीरिक क्षमता में कमी आने लगती है। यह प्रायः अधेड़ अवस्था के उपरान्त प्रकट होती है। शरीर की कार्यत्मक क्षमता में ह्रास होने लगता है तथा प्रजनन ग्रन्थियों की गड़बड़ी से शरीर की रासायनिक पोषक पदार्थों में परिवर्तन (Metabolic) तथा कार्यात्मक क्रियाओं में अत्यधिक परिवर्तन आता है। इन शारीरिक तथा दैहिक परिवर्तनों का प्रभाव व्यक्ति के मानसिक लक्षणों पर भी पड़ता है क्योंकि व्यक्ति अविभाज्य एकता है।[1] शारीरिक लक्षणों में परिवर्तन होने से व्यक्तित्व के संगठन में बाधा पड़ती है तथा व्यक्ति के लिए आंतरिक जीवन की समस्याओं के साथ तथा वाह्य पर्यावरण से समायोजन करना कठिन हो जाता है। वह मानसिक रूप से अपनी वर्तमान स्थिति को सामान्य बनाये रखने के लिए पूरा प्रयत्न करना चाहता है परन्तु ऐसा करने में वह समर्थ नहीं होता है। उसके विचार तथा अनुभूतियाँ एवं शारीरिक शक्ति उसकी इच्छाओं तथा अभिलाषाओं कों पूरा करने की स्थिति में नहीं होती है। इस प्रकार व्यक्ति में निराशा एवं आंतरिक विषाद उत्पन्न हो जाता है। अतः अन्तर्मुखी काल (Involutional Period) वह समय है जब मनोविकृतियाँ उत्पन्न होने की स्थितियॉ उत्पन्न हो जाती है।[2]

(1) अन्तर्मुखी विषाद का अभिप्राय

अन्तर्मुखी विषाद अन्य विषादात्मक प्रतिक्रियाओं से भिन्न होता है क्योंकि इसमें शारीरिक तथा मानसिक दोनों के लक्षण में परिवर्तन होता है। यदि

---

1. नोइस, आर्थर पी0 — ए टेक्स्ट बुक आफ साइक्याट्री, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 1936, पृ0 170
2. उपर्लिखित — पृ0 170

इस रोग का उपचार न किया जाय तो रोग भीषण हो जाता है तथा इसका स्वरूप चिरकालिक (Chronic) हो जाता है। अन्तर्मुखी काल महिलाओं में 40 से 55 वर्ष के मध्य तथा पुरूषों में 50 से 65 वर्ष के मध्य माना जाता है।[3] अमेरीका के मानसिक अस्पतालों मे भर्ती होने वाले कुल रोगियों में लगभग 3 प्रतिशत अन्तर्मुखी विषाद के रोगी होते है। यह रोग पुरुषों की अपेक्षा स्त्रियों में अधिक व्यापक रूप से पाया जाता है। महिलाओं में अन्तर्मुखी विषाद पुरुषों से तीन गुना अधिक होता है।[4]

अन्तर्मुखी विषाद के रोग में लगभग वही लक्षण पाये जाते है जो कि विषाद (Depression) की अवस्था में होते हैं। विषादयुक्त (Melancholic) व्यक्तित्व के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि ऐसे व्यक्तियों में अन्तर्मुखी (Introvert) व्यक्तित्व के लक्षण पाये जाते हैं। ऐसे व्यक्ति गम्भीर, कठोर, संवेदनशील, परिश्रमी, कम सामाजिक तथा विषादी होते हैं। उनकी जीवन परिधि सीमित होती है तथा उनमें चिंता सदैव बनी रहती है। उनका परिस्थिति से समायोजन उचित प्रकार से नहीं हो पाता है और वे किसी न किसी समस्या को लेकर उलझते रहते हैं। जब अन्तर्मुखी काल आने लगता है तो कई परिस्थितियों तथा दशाओं से समायोजन करना और भी कष्टप्रद हो जाता है। इस अवस्था में उसकी चिंता अधिक बढ़ जाती है और वह समझने लगता है कि अब उसकी इच्छाएं एवं अभिलाषाएं पूर्ण नहीं हो सकेंगी तथा जो उसने युवा अवस्था में स्वप्न बनाये थे वे अब कभी भी साकार न हो सकेगें क्योंकि उसमें शारीरिक क्षमता में कमी आने लगती है, कार्यशील समय समाप्त होने लगता है, जीवन शक्ति में क्षीणता आती है तथा पुरानी गलतियों को सुधारने के अवसर समाप्त होने लगते हैं एवं नवीन सफलताओं की योग्यता नहीं रह जाती है। जब व्यक्ति इन विशेषताओं पर ध्यान देता है तो उसमें विषाद उत्पन्न हो जाता है और वह अपने को असफल तथा अर्थहीन समझने लगता है। स्त्रियों में अपने शारीरिक तथा चेहरे के लक्षणों के प्रति चिन्ता उत्पन्न हो जाती है। रोगी समझने लगता है कि उसका सौदर्य तथा आकर्षित करने की क्षमता धीरे–धीरे समाप्त हो रही है। वह यह भी सोचने लगती है कि प्रजनन शक्ति का ह्रास का तात्पर्य जीवन की निरर्थकता है।[5] स्त्रियों में मासिकधर्म बन्द हो जाता है। (Monopause)

3.	कोलमैन, जेम्स सी0	एबनार्मल साइकोलोजी ऐण्ड माडर्न लाइफ, डी0वी0 तारापोरवाला ऐण्ड कं0 बाम्बे, फोर्थ एडीसन, 1974, पृ0 343
4.	उपर्लिखित	पृ0 343
5.	नाईस आर्थर पी0	उल्लिखित, पृ0 171

इसके लक्षण के साथ–साथ उसमें ग्लानि, चिन्ता, तथा भय की भावना उत्पन्न होने लगती है। वह शारीरिक आकर्षण के लिए चिंतातुर हो जाती है। उनमें साँवेगिक विघटन के लक्षण स्पष्ट होने लगते हैं। जैसे–जैसे उम्र बढ़ती जाती है मृत्यु सम्बन्धी विचार आने लगते हैं तथा चिन्ता गम्भीर होती जाती है शारीरिक शक्ति में क्षीणता के कारण अचेतन शक्तियाँ तथा प्राचीन संघर्ष (Old Conflict) अपेक्षाकृत सुदृढ़ होती जाती हैं तथा रोगी को हर प्रकार कष्ट पहुंचाने का प्रयत्न करती है।

(2) लक्षण

यह रोग धीरे–धीरे बढ़ता है। रोगी में निराशा, चिन्ता, चिड़चिड़ापन, व्याकुलता तथा अनिद्रा धीरे–धीरे बढ़ने लगती है। प्रायः छोटी–छोटी बात को लेकर रोगी बहुत व्याकुल हो जाता है तथा अधिक समय तक उस पर विचार करके रोता रहता है। पूर्व स्मृति होने पर वह दुःखी होता है तथा भविष्य में उसे कोई आशा की किरण नहीं दिखायी देती है। जब इस प्रकार की भावनाएँ रोगी में गम्भीर हो जाती हैं। तो उसमें विषाद की मात्रा बढ़ जाती है। अतिचिन्तात्मक लक्षण (Hypochondrial) स्पष्ट होने लगते हैं। रोगी समझने लगता है कि उसने संसार में अनेकों बुराइयाँ की है तथा उनका प्रायश्चित करना उसके लिए अनिवार्य है। अतः आत्महत्या की प्रवृति भी उत्पन्न हो जाती है। शारीरिक कष्ट बना रहता है। इससे कभी अपच तथा नींद की शिकायत रहती है। कभी पेट की गड़बड़ी रहती है, कभी सरदर्द रहता है। ये सभी लक्षण एक साथ ही स्पष्ट होते हैं। रोगी में अतिचिन्तात्मक व्यामोह उत्पन्न हो जाता है। रोगी इस बात पर जोर देता है कि उसकी ट्टटी–पेशाब बन्द हो गयी है तथा अब कभी नहीं हो सकती है, उसका शरीर सूखता जा रहा है, उसका मस्तिष्क गायब होता जा रहा है, उसे कैंसर या कोई भयानक रोग हो गया है। (अस्तित्वहीन व्यामोह) तथा अविश्वास की भावनाएं सामान्य रूप से प्रभावकारी होती हैं। रोगी महसूस करता है कि वह छाया की दुनिया (Shadow world) में रह रहा है। उसके बच्चे तथा पत्नी सभी मर चुके हैं तथा किसी में कोई जीवन नहीं है। उसके चारों तरफ छाया घूम रही है।

रोगी में उदासीनता, चिंता, भविष्य से आशाहीनता, अक्षम्य अपराधों के प्रति व्याकुलता, उलझन, आत्मभर्त्सना, अति संवेदनशीलता, आत्महत्या की प्रवृति, अनिद्रा, व्यामोह, निराशा आदि लक्षण प्रकट होते हैं। वह अपना जीवन निरर्थक समझता है तथा मृत्यु का आलिंगन करना चाहता है।

रोगी में विषाद तथा चिंता की भावनाएं गत्यात्मक क्रिया (Motor Activity) को बढ़ा देती हैं जिसमें रोगी यद्यपि अधिक कार्य करने में तो समर्थ नहीं होता हे परन्तु बेचेनी तथा चिड़चिड़ापन बढ़ जाता है और रोगी रोता रहता है। अपने को कोसता है, हाथ मलता है अपने बालों को खींचता है। होठों को काटता है तथा अपने भाग्य पर आहें भरता है। परन्तु रोगी की विचार शक्ति में ह्रास तथा व्यक्तित्व में विघटन नहीं होता है। उसका प्रत्यक्षीकरण लगभग सामान्य रहता है तथा मानसिक लक्षणों में कोई विशेष बाधा नहीं उंत्पन्न होती है परन्तु रोगी यह महसूस करता है कि उसे उपचार की आवश्यकता है। यदि रोगी अपनी दशा पर अन्तर्दृष्टि (Insight) का उपयोग करता है तो आत्महत्या का खतरा भी उत्पन्न हो जाता है तथा ऐसे व्यक्तियों को विशेष सहायता की आवश्यकता होती है। इस सम्बन्ध में यह अनुमान लगाया गया है कि आधुनिक उपचार प्रक्रिया के प्रारम्भ होने से पहले 25 प्रतिशत इस रोग के रोगी आत्महत्या कर लेते थें।[6] अन्तर्मुंखी विषाद के रोगी यद्यपि कोई हिंसात्मक कार्य नही करते है परन्तु दूसरे व्यक्तियों को सुरक्षित रखने के लिए तथा साथ ही साथ इन रोगियों की सुरक्षा के लिए चिकित्सालय में भर्ती करना आवश्यक हो जाता है।[7]

(3) रोग के कारण

अन्तर्मुखी विषाद रोग के सम्बन्ध में विभिन्न मत प्रचलित हैं। कुछ विद्वानों की राय है कि इसका मुख्य कारण जैविकीय कारक हैं जबकि कुछ विद्वानों की राय यह है कि मानसिक कारक विशेष रूप से उसके रोग के विकास के लिए उत्तरदायी है। यहॉ पर हम दोनों कारकों को स्पष्ट करने का प्रयत्न कर रहे हें।

1– जैविकीय कारक
(Biological Factors)

अधिकांश स्त्रियाँ अन्तर्मुखी काल के प्रारम्भ होने के समय अनेक शारीरिक बाधओं का अनुभव करती हैं। इन बाधाओं का मुख्य सम्बन्ध मासिकधर्म बन्द होने के लक्षणों (Monapause) से संबंधित होता है। अन्तः स्रावी ग्रंथियों

---

6. इंगलिश, ओ0 एण्ड फिंच, एस0 एम0 — इन्ट्रोडक्शन टु साइक्याट्री,, नार्टन कम्पनी, न्यूयार्क, 1954
7. लेजकरोन (Lazkron) ई0 — मर्डर एज ए रिएक्शन टु पैरान्वायड डिल्यूजन्स इन इनवालूशनल साइकोसिस ऐण्ड इट्स प्रेवेन्स, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1961, पृ0 426–429

(Endocrine glands) में गड़बड़ी उत्पन्न हो जाती है और रोगी सरदर्द, स्नायु संस्थान के कार्य में बाधा, मस्तिष्क चकराना, विचार शून्यता (Dizziness)अनिद्रा, विचार केन्द्रित करने में बाधा आदि शिकायतें करता है। रोगी में मन्द विषाद होता है तथा मन्द मनोस्नायुविकृति पायी जाती है। उपर्लिखित लक्षण प्रजनन शक्ति की कमी से उत्पन्न होते है। इस संदर्भ में न्यूगार्टन (Neugarten-1967) ने बताया है कि इन लक्षणों को इस्ट्रोजन (Estrogen) के उपचार से दूर किया जा सकता है।[8] परन्तु मासिकधर्म सम्बन्धी गड़बड़ी व अन्तर्मुखी विषाद में अन्तर है और वे दोनों साथ–साथ बहुत कम घटित होते है। इसके अतिरिक्त अंतर्मुखी विषाद अधिक गम्भीर होता है।

2– मनोवैज्ञानिक कारक

अन्तर्मुखी विषाद का मुख्य कारण पूर्व प्रवृत्यात्मक तत्वों को (Predisposing personality factors) माना जाता है। इन रोगियों में अतिसंवेदनशीलता, लज्जा, लगनशीलता आदि गुण पहले से उपस्थित होते हैं। टिटले ने (Titley 1936) अपने अध्ययन में पाया कि इस प्रकार के रोगी अपने पूर्व जीवन में अत्यधिक परिश्रमी, अतिसंवेदनशील, नैतिकता का कठोरता से पालन करने वाले, चिन्तातुर, रुचियों की सीमित परिधि तथा निम्न कोटि का लैंगिक समायोजन रखने वाले होते है।[9] अन्य विद्वानों[10] ने उत्कृष्टता (Perfectionism) अत्यधिक दृढ़ता असुरक्षा वाह्य क्रियात्मकता (Compulsiveness) आदतों का दृढ़ता से पालन आदि मानसिक गुणों का होना अन्तर्मुखी विषाद का कारण बताया है।

8.	न्यूगार्टन वी0 एल0	ए न्यू लुक ऐट मोनापज, साइक्याट्री टुडे, 1967 पृ0 67–69
9.	टिटले, डब्लू वी0	प्री साइकोटिक पर्सनाल्टी, आफ इवोल्यूशनल मेलेनकोलिया, (आर्चो0 आफ जर्नल साइक्याट्री) 1936, पृ0 19–33
10.	(1) ग्रेगोरी (Gregory) आई0	साइक्याट्री बाइलोजिकल ऐण्ड सोशल, लुंकलू वी0 सैन्डर्स, फिलेडिल्फया 1961
	(2) हैगर्टी (Haggerty) एच0	प्री साइकोटिक पर्सनाल्टी टैट्स इन वीमेन विद इवोल्युशनल मेलेनकोलिया, स्टडीज इन सोशल वर्क स्मिथ कालेज, 1941 पृ0 191–192
	(3) रोजेनथल (Rosenthal) एस0 एच0	दि इनवोल्यूशनल डेप्रेसिव सिन्डोम, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1968, 24, 21–34

जिन व्यक्तियों में मनोवैज्ञानिक अपूर्णता तथा अक्षमता पायी जाती है तथा व्यक्तित्व में अन्तर्मुखी गुण (Introvert traits) होते हैं उनमें अन्तर्मुखी विषाद उत्पन्न होने के अवसर रहते है। टैट (Tait) तथा वर्नस[11] ने सन् 1951 में 379 अन्तर्मुखी विषाद के रोगियों का अध्ययन किया और अपने अध्ययन में उन्होंने पाया कि इन रोगियों का आत्म ह्रास (Declibe of self) सबसे महत्वपूर्ण कारक था अर्थात् ऐसे रोगियों में आत्म–ह्रास हो जाता है। बिना किसी पूर्वधारणा तथा सूचना के व्यक्ति को जराभ्रम होने लगता है। वह समझने लगता है कि उसके जीवन के क्षण बहुत ही कम रह गये हैं। व्यक्ति में भविष्य के प्रति निराशावादी दृष्टिकोण उत्पन्न हो जाता है। वह सोचने लगता है कि अब न तो वह कोई उन्नति कर सकता है और न ही जीवन की दिशा में परिवर्तन कर सकता है। उसमें शक्ति की कमी होने लगती है तथा थोड़ा सा भी कार्य करने पर थकान महसूस करता है। उसकी लैंगिक इच्छा का ह्रास हो जाता है। महिला रोगी महसूस करती है कि वह अब कभी भी बच्चे नहीं उत्पन्न कर सकती है तथा उसकी सुन्दरता एवं शारीरिक आकर्षण समाप्त होता जा रहा है। उसके चेहरे की बनावट विकृत होती जा रहीं है।

प्रत्येक व्यक्ति इस प्रकार के तनाव तथा दबाव को अपने अनुरूप देखता है तथा व्यक्तित्व के गुण के आधार पर प्रतिक्रिया करता है। व्यक्तित्व संगठन, जीवन में सफलता की दर, आत्म स्वतन्त्रता, औपरिचारिक सम्बन्ध तथा अन्य अन्तर्वैयक्तिक कारक व्यक्ति की नवीन स्थिति के प्रति प्रतिक्रिया को प्रभावित करते हैं। कुछ व्यक्ति नवीन परिवर्तनों को जीवन का एक आवश्यक अंग समझकर शांतिपूर्वक एवं सोच समझ कर अंगीकार करते हैं और अपनी भावनाओं तथा विचारों को तदनुरूप परिवर्तित कर लेते हैं। वे अधिक सोच–विचार नहीं करते और न ही चिन्तातुर होते है। परन्तु कुछ व्यक्ति इन मानसिक व शारीरिक लक्षणों के परिवर्तन से बिल्कुल भयभीत हो जाते हैं तथा बहुत ही दुःखपूर्ण समय समझते हैं। उनके लिए इस स्थिति में समायोजन करना कठिन हो जाता है। परन्तु यदि विफलता तथा निराशा का कारण वास्तविक है–– जैसे आर्थिक हानि, प्रियजन की मृत्यु या आत्यधिक शारीरिक दुर्बलता, तो उसकी प्रतिक्रिया वास्तविक होती है। ऐसी परिस्थिति में एकान्तप्रिय अतिसंवेदशील तथा परिश्रमी व्यक्ति बहुत ही शीघ्र चिंतातुर, व्याकुल तथा विषादी हो जाते हैं। भूतकालीन असफलता तथा निराशा व्यक्ति में भविष्य के प्रति निराशा एवं विफलता का कारण बन जाती है और वह आत्म केन्द्रित होने लगता है। रुचियों

11. टैट, सी डी० ऐण्ड वर्नस जी सी० — इनवाल्यूशनल इलनेसेस, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1951, 108, पृ० 27–36

तथा विचारों का स्तर सामान्य हो जाता है और वह अपने प्रति अनेक मिथ्या धारणाएँ उत्पन्न कर लेता है। अतिचिंतात्मक कारक (HyPochondrial factors) व्यक्ति में विकसित हो जाते हैं तथा अन्तर्मुखी प्रतिक्रियाएँ बढ़ने लगती हैं। यदि यह स्थिति अधिक समय तक रहती है तो व्यामोह (Delusion) भी उत्पन्न हो जाते हैं।

सामाजिक रुचियों में ह्रास, पर्यावरण के प्रति उदासीनता सामूहिक कार्यो में भाग लेने की अरुचि तथा रुचियों का आत्मकेन्द्रीकरण व्यक्ति में अवास्तविक विचारों को उत्पन्न कर देते हैं। जैसे–जैसे इस प्रकार की भावनाओं तथा विचारों को सूत्रपात होता जाता है तथा स्थिति सुदृढ होती जाती है वैसे–वैसे सामाजिक सम्बन्धों में कमी आती जाती है। यदि हम केवल अपने विचारों तथा कठिनाइयों के प्रति ही सोचते हैं। तो वाह्य संसार निरर्थक प्रतीत होने लगता है। आगे चलकर वाह्य संसार के प्रति अवास्तविक धारणा उत्पन्न हो जाती है और संसार के अन्य प्राणी छाया मात्र दिखते हैं। इस प्रकार यह आश्चर्य की बात नहीं है कि जिन व्यक्तियों के व्यक्तित्व में शंका तथा अविश्वास का लेश मात्र भी लक्षण होता है वे स्थिर व्यामोहात्मक व्यामोह को भी भविष्य में उत्पन्न कर लेते हैं। जब वे अपनी समस्याओं पर ही केन्द्रित होते हैं और अर्थपूर्ण सामाजिक अन्तःक्रिया से सम्बन्ध विच्छेद कर लेते हैं तो अनेकों प्रकार के भ्रमों का उत्पन्न होना स्वाभाविक हो जाता है।

व्यक्ति में असफलता की भावना के कारण आत्मग्लानि उत्पन्न हो जाती है। वह सोचने लगता है कि समाज की अनेक बुराइयों का कारण वह स्वयं है, ऐसी स्थिति में उसका इस संसार में रहना उचित नहीं है। वह सोचने लगता है कि अपने जीवन की समस्त सफलताएँ जो उसने प्राप्त की हैं उनके लिए वह योग्य नहीं था। इस विचार के उत्पन्न होने के बाद ग्लानि और भी बढ़ जाती है और वह सोचने लगता है कि उसके भूतकालीन पापों को किसी भी दशा में माफ नहीं किया जा सकता है।

अन्तर्मुखी रोगी आत्मग्लानि तथा आत्मिक दोष के कारण संतोष प्राप्त करता हैं। वह अपने पापों से सम्बन्धित कार्यों का उल्लेख किया करता है। वह प्रायः कहता है कि उससे बढकर दुनिया में कोई पापी नहीं है, इस बात को पूरा संसार जानता है। इस प्रकार के शब्दों से न केवल उसकी अपराधी भावनाओं का स्पष्टीकरण होता है बल्कि उसको आत्मिक सुख प्राप्त होता है क्योंकि वह अपने को इसके द्वारा एक अनोखा व्यक्ति भी समझता है। यदि ये सुरक्षात्मक तरीके (Defensive measures) असफल हो जाते हैं तथा निराशा एवं विषाद

की भावनाएँ निरन्तर बनी रहती हैं तो उनका प्रभाव व्यक्ति के वर्तमान समायोजन की प्रतिक्रियाओं पर पड़ता है। अतः उपचार कार्य का प्रारम्भ प्रारम्भिक स्थिति से होना अनिवार्य होता हैं।

3– सामाजिक कारक

सामाजिक भिन्नता के कारण अन्तर्मुखी प्रतिक्रियाओं के घटित होने में भी अन्तर हो जाता है। जिन समाजो में शंकामूल तथा अविश्वसनीय व्यवहार का बोलबाला होता है, वहाँ पर इस प्रकार की प्रतिक्रियाएँ वृद्धावस्था में उत्पन्न हो जाती हैं। भारत में नगरों की अपेक्षा ग्रामीण समुदाय में इस प्रकार के रोगियों की संख्या कम होती है। प्रतिस्पर्धत्मक समाजों में वृद्धावस्था में विषाद के लक्षण अवश्य उत्पन्न हो जाते हैं।

4– सांस्कृतिक कारक

सांस्कृतिक विशेषताएँ भी अन्तर्मुखी विषाद को उत्पन्न करने में सहायक होती हैं। जहाँ पर तथा जिन समाजों में धार्मिक अविश्वास धर्मान्धता तथा लौकिक शक्ति में विश्वास पाया जाता है वहाँ के निवासियों में इस प्रकार के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं।

5– पारस्परिक सम्बन्ध तथा प्रथाएँ

विवाह प्रथा का भी प्रभाव रोग के विकास में पड़ता है। जिस समाज में विवाह एक पवित्र संस्कार माना जाता है तथा पति–पत्नी आजीवन एक दूसरे को प्रत्येक स्थिति में सहायता करने का वचन देते हैं वहा पर इस रोग की मात्रा बहुत ही कम पायी जाती है। इसके विपरीत जिन समाजों में विवाह एक लैंगिक आवश्यकता समझी जाती है तथा बंधन की कमी होती है वहाँ पर अन्तर्मुखी के लक्षणों की बहुलता होती है। उदाहरण के लिए 'स' एक शांत महिला थी। प्रारम्भ में वह अधिक परिश्रमी तथा अतिउत्तम गृहणी थी लेकिन जब वह वृद्ध हुई तथा बच्चों ने परिवार छोड़ दिया तो उसके पति ने अपनी लैंगिक इच्छाओं की संतुष्टि के लिए अन्य स्त्रियों का उपयोग करना प्रारम्भ कर दिया और उसके प्रति उदासीनता दिखाने लगा। इस स्थिति में पत्नी की जीवन पद्धति में एकाएक परिवर्तन आया जिसके परिणाम स्वरूप उसमें अन्तर्मुखी विषाद के लक्षण स्पष्ट होने लगे।

निम्नलिखित उदाहरण अन्तर्मुखी विषाद के संदर्भ में प्रस्तुत किया जा रहा है। शीला नाम की महिला (49 वर्ष) जिसमें इस रोग के लक्षण थे उसी के विचारों तथा भावनाओं का चित्रण यहाँ पर किया गया है।

कार्यकर्ता : श्रीमती जी आप कैसा अनुभव कर रही हैं ?

रोगी : (आह भरते हुए) आप मेरे प्रति इतने चिंतातुर क्यों है, मुझे मर क्यों नहीं जाने देते है ? अगर आप मुझे मर जाने देगें तो संसार के सभी व्यक्तियों को इससे बहुत लाभ होगा। इसके अतिरिक्त मेरा मरना ही सभी के हित में है।

कार्यकर्ता : आप ऐसा क्यों सोचती है ? आप का जीवन उसी प्रकार सामान्य है जिस प्रकार अन्य व्यक्तियों का।

रोगी : आप मेरी बात को कृपया सुने तथा हमें सलाह दें कि कि क्या मरने के अतिरिक्त कोई मुक्ति पाने का साधन है ? मेरे चारों और दुःख ही दुःख है । जो भी व्यक्ति मेरे नजदीक आता है वह इन दुःखों की चपेट में आ जाता है तथा उसका भी जीवन कष्टप्रद हो जाता है। मेंरे परिवार के सभी सदस्यों को मेरे हाथों कष्ट पहुँच चुका है। सभी मुझसे पीड़ित हैं। मेरे माता–पिता मेरे हाथों पहले मर चुके हैं। मेरे दुःखों का अन्त यहाँ भी न हुआ और पति तथा बच्चों की मृत्यु के लिए भी स्वयं उत्तरदायी रही। उन लोगों को जीवन भर उससे कष्ट मिलते रहे तथा अंत में भी किसी प्रकार का सुख न दे सकी (वह उठती है और हाथ मलने लगती है तथा मत्थे पर हाथ रखकर बैठ जाती है)

कार्यकर्ता : इसका तात्पर्य यह हुआ कि जो लड़की तुम्हें देखने आती है तथा हमदर्दी प्रकट करती है वह तुम्हारी पुत्री नहीं है। वह तो तुम्हें अपनी माता मानती है और उसी प्रकार का व्यवहार भी करती है।

रोगी : वह कहती है कि मै उसकी माँ हूँ और वह उसकी पुत्री है, परन्तु मेरे सभी बच्चे मर चुके हैं। उनमें से कोई भी जिंदा नही है। इन सभी बच्चों की मृत्यु का कारण वह स्वयं है तथा मैने अनेक अपराध किये हैं। इन अपराधों के कारण उसे बहुत ही दर्दनाक मृत्यु होनी आवश्यक है। इन अपराधों के प्रति ईश्वर सजग है। वह जानता है कि मैने कितने अपराध किये हैं इसीलिए वह मुझे कष्ट दे रहा है तथा उसकी इच्छा है कि अब मुझे मर जाना चाहिए।

अब बेकार में ही मेरे प्रति इतने दयालु तथा विनम्र हैं। यदि आप मुझसे किसी भी प्रकार से आत्मीयता प्रकट करेंगे तथा संबंध स्थापित करेंगे तो आप पर भी विपत्तियाँ आने लगेंगी। अतः मेरा जिन्दा रहना किसी भी प्रकार से ठीक नहीं है। दुनिया में मेरे लिए सिवाय मृत्यु के कुछ भी नहीं है क्योंकि मैंने जितने पाप किये हैं उनको किसी भी स्थिति में कोई क्षमा नहीं कर सकता है। यदि आप मुझे इस जीवन से मुक्ति दिला दें तो मैं आपके लिए ईश्वर से प्रार्थना करूंगी कि आप सुखी रहें (वह बेचैनी के साथ अपने हाथों को मलती है तथा बालों में अंगुलियों को उलझाती है)।

कार्यकर्ता : आपको ऐसा नहीं सोचना चाहिए। हम सभी आपके हितैषी तथा मित्र हैं। हम लोग प्रयत्न कर रहें है जिससे आपका जीवन सुखी तथा प्रसन्न रहेगा।

रोगी : ऐसा कभी नही हो सकता है। उसने जो पाप किये हैं। उनको उसे भोगना पड़ेगा । अब कुछ भी शेष नहीं रह गया है, सभी नष्ट हो चुका है। में कैवल धूल हूॅ जीवन का कुछ भी अंश नहीं है। अतः धूल में मिलना ही अब शेष रह गया है। अतः वह किसी भी प्रकार से इस संसार के योग्य नहीं है। उसको तो खाना भी नहीं खाना चाहिए क्योंकि धूल कभी ऐसा नहीं करती है। मुझे अब कुछ भी नहीं कहना तथा करना है। लोगों ने मुझे जीवन भर बेकार की वस्तु समझा तथा कष्ट दिया। जीवन में कभी भी उसकी उपयोगिता नहीं रही है, इस बात को सभी व्यक्ति पूर्णरूप से जानते हैं।

कार्यकर्ता : क्या यहॉ भी लोग आपके साथ उचित व्यवहार नहीं करते हैं ?

रोगी : यद्यपि यहाँ लोग किसी प्रकार की हानि उसे नहीं पहुँचाना चाहते हैं। परन्तु यह बात निश्चित है कि यदि वे उसकी किसी भी प्रकार से सहायता करेंगे तो आजीवन कष्ट उठाते रहेंगें। उन लोगों को उसकी किसी भी प्रकार से सहायता नहीं करनी चाहिए क्योंकि अब मेरे में धूल के अतिरिक्त कुछ भी नहीं रह गया है। मेरा अब कोई मूल्य

नहीं है तथा किसी भी प्रकार मैं अब मित्रता के योग्य नहीं रह गयी हूं। कोई व्यक्ति इस शरीर को देखकर घृणा के अलावा कुछ भी नहीं दे सकता है।

(4) उपचार

आधुनिक चिकित्सा विज्ञान की उत्पत्ति के पहले अन्तर्मुखी विषाद का प्रभावकारी काल अधिक समय तक चलता रहता था। जो रोगी ठीक हो जाते थे उनमें से 30 से 60 प्रतिशत 1 वर्ष से 4 वर्ष तक इससे पीड़ित रहते थं।[12] दूसरे 40 प्रतिशत चिरकालीन रोग के शिकार हो जाते थे। विद्युत आघात चिकित्सा ने इस अवधि को काफी कम कर दिया है। अब रोगी 3 से 6 सप्ताह तक ही केवल इस रोग का शिकार रहता है।[13] मनोचिकित्सा तथा सामाजिक चिकितसा का प्रभाव विशेष रूप से इन रोगियों पर असर डालता है। यदि इन रोगियो को उपयुक्त सामाजिक चिकित्सा प्रदान की जाय तो वे शीध्र ही अनुकूल प्रत्युत्तर करते हैं।

यह स्पष्ट किया जा चुका है कि इस रोग का मुख्य कारण जीवन की असफलता तथा हानि है अतः यदि रोगी को सामाजिक मनोचिकित्सा को पूर्ण ध्यान में रखकर उपयोग किया जाय तो वह पुनः संघर्ष के पथ पर चलने के लिए तैयार हो सकता है। परन्तु इन रोगियों के लिए दीर्घकालीन उपचार एवं सहायता कार्य की आवश्यकता होती है क्योंकि वे अपनी बात के पक्के तथा विचारें में दृढ़ होते हैं। वे भविष्य को निराशा की दृष्टि से देखने लगते हैं तथा कोई भी उद्दीपन (Incentive) उसको आकृष्ट नहीं करता है।

मनोचिकित्सात्मक प्रणाली का उपयोग रोगी के व्यक्तित्व पर निर्भर होता है। यदि रोगी अधिक पीड़ित होता है तो पहले विद्युत आघात चिकित्सा तथा हालत के सुधरने पर मनोचिकित्सा का उपयोग अधिक उपयुक्त होता है। जिन रोगियों का स्वभाव चिड़चिड़ा तथा बाध्यतामूलक होता है उनका पराहं (Superego) बहुत दण्डनात्मक तथा अतिसंवेदनशील हो जाता है। इस स्थिति में मनोचिकित्सा की आवश्यकता होती है जिससे की उनके पराहं में कुछ परिवर्तन लाया जाय तथा अपनी आवश्यकताओं, मनोभावनाओं तथा इच्छाओं को

---

12. रोजेनथल — उल्लिखित, पृ0 21–24
13. कोलमैन जेम्स सी0 — एबनारमल साइकालोजी ऐण्ड मार्डन लाइफ, डी0 वी0 तारापेरवाला संस कं0, बाम्बे 1974 पृ0 347

ध्यान में रखते हुए शांतिपूर्वक समाज में अपना समायोजन प्राप्त कर सकें। ऐसे रोगियों को प्रेम तथा सद्भावना की आवश्यकता होती है। क्योंकि इन्ही कारकों की अनुपस्थिति में रोग के लक्षण प्रायः स्पष्ट होते हैं तथा रुचियों का एक सीमित क्षेत्र बन जाता है जो कि सांवेगिक स्वास्थ्य के लिए बहुत ही कटुपूर्ण होता है। मनोचिकित्सा की सहायता से रोगी को उचित सांवेगिक तनाव प्रकट करने का अवसर दिया जाता है और उसकी सम्पूर्ण मनोसामाजिक स्थिति को समझकर कार्यकर्ता (Social worker) इस प्रकार के वातावरण का विकास करता है जो रोगी के मानसिक, सांवेगिक तथा सामाजिक परिस्थितियों के अनुकूल होता है। यदि रोगी की पारिवारिक पृष्ठभूमि बचपन तथा अन्य प्रारम्भिक जीवन की मनोवृत्तियों का विष्लेषण किया जाय तो रोगी के सम्बन्ध में अधिक सूचनाएँ ज्ञात होती हैं तथा रोगी को अधिकाधिक सहायता पहुंचाई जा सकती है। कार्यकर्ता इन सूचनाओं को रोगी से साक्षात्कार करके, परिवार के सदस्यों से बातचीत करके तथा यदि आवश्यक हुआ तो पड़ोस तथा संबंधित व्यक्तियों के गृह सम्पर्क द्वारा प्राप्त करता है। रोग का निदान करने के पश्चात कार्यकर्ता रचनात्मक क्रियाओं की ओर अपनी चिकित्सा पद्धति को इंगित करता है। वह अपनी समस्त शक्ति अहं (Ego) को दृढ़ करने में लगाता है जिससे रोगी का दृढ एवं दुखी पराहं कमजोर हो जाता है और रोगी कुछ समय की चिकित्सा के उपरान्त आत्मसंतोष प्राप्त करता है जिससे उसकी दशा में सुधार आना संभावी हो जाता है।

इन रोगियों में संबंधित दूसरी महत्वपूर्ण बात इनके उम्र से संबंधित है जिसमें कि इस रोग के लक्षण प्रकट होते हैं। अधिकांश रोगी 40 वर्ष की उम्र से अधिक होते हैं अर्थात् यह विकार अधेड़ अवस्था के उपरान्त प्रकट होता है। उनमें यह विचार उत्पन्न हो जाता है कि उनके जीवन का महत्वपूर्ण तथा लाभदायक समय समाप्त हो चुका है, उसकी कार्यक्षमता समाप्त हो रही है। वे अब वृद्धावस्था की ओर प्रयाण कर रहे हैं। बच्चों से निकट के संबंधों के विघटन के कारण वे सोचने लगते हैं कि अब उनका कोई मूल्य नहीं रह गया है। लैंगिक स्थिति के विषय में भी इसी प्रकार के विचार उत्पन्न हो जाते हैं। इन व्यक्तियों का यह स्वभाव हो जाता है कि वे अपने संबंधों को सीमित कर देते हैं। मित्रों से पृथकीकरण कर लेते हैं तथा वाह्य क्रियाओं से अरुचि प्रकट करते है। वे अपने को केवल परिवार की परिधि में उपयुक्त पाते हैं। परिवार के बाहर वे न तो सुख का अनुभव करते हैं और न ही साथी–संगी बनाने में रूचि रखते हैं धीरे–धीरे व्यक्ति आत्मकेन्द्रित हो जाता है। ऐसी रोगियों को प्रोत्साहन तथा पूर्ण आश्वासन की आवश्यकता होती है जिससे पुनः अपनी क्रियाओं को पूर्व की

स्थिति के अनुरूप कर सकें तथा नये कार्यों का सम्पादन ठीक प्रकार से कर सकें। कार्यकर्ता इन रोगियों की सहायता करता है। इन्हे ऐसे अवसर प्रदान करता है जिससे वे स्वयं महूसस करते हैं कि भविष्य का जीवन अन्धकारमय नहीं है। कार्यकर्ता एक आशा की किरण उनके जीवन में उत्पन्न करता है जिसकी सहायता से रोगी अपना पुनर्समायोजन की बात सोचने पर विवश हो जाता है।

चिकित्सा कार्यकाल

अन्तर्मुखी विषाद के रोगियों की चिकित्सा लम्बी अवधि की होती है। इन रोगियों के साथ कार्य करने वाले कार्यकर्ताओं को अधिक धैर्य तथा उत्साह की आवश्यकता होती है क्योंकि इनका उपचार लम्बी अवधि तक चलता रहता है। काफी समय के पश्चात् ये रोगी अपना सांवेगिक समायोजन करने में सफल होते हैं। इस रोग में विद्युत–आघात चिकित्सा उतनी लाभदायक नहीं होती है जितनी कि मनोसामाजिक चिकित्सा। अतः मनोचिकित्सा का अधिकाधिक उपयोग ही रोग को कम कर सकता है।[14]

उपचार की प्रारम्भिक अवस्था में रोगी अपनी बात पर दृढ़ रहता है तथा कार्यकर्ता को अपनी भावनाओं से प्रभावित करना चाहता है। वह कार्यकर्ता से यह आशा करता है कि वह भी उसी प्रकार के विचार उसके प्रति रखे तथा वर्तमान कष्टप्रद अनुभव होने वाली स्थितियों की आलोचना करे। धीरे–धीरे वह समझने लगता है कि कार्यकर्ता वैसा नहीं हो सकता है जैसे कि वह तथा उसकी भावनाओं से वह प्रभावित नहीं हो सकता हैं। इस अवस्था में वह (रोगी) और भी अपनी इच्छाओं को पूरा करने का प्रयत्न करता है तथा उसकी प्रवृतियाँ अधिक तीव्र हो जाती हैं। उसमें पुनर्गमन की भी प्रवृति पायी जाती है। अतः कार्यकर्ता के लिए आवश्यक होता है कि वह उपचार कार्यक्रम के मध्य मित्र सा व्यवहार करें, अपने ज्ञान का पूर्ण उपयोग करे तथा अपने कार्य में पूर्ण संलग्नता प्रदर्शित करे। उसको रोगी के उन प्रयत्नों को सदैव प्रोत्साहन देना चाहिए जिनसे संबंधों में घनिष्ठता उत्पन्न होती है और सामञ्जस्य की समस्या का समाधान होता है। रोगी के हर प्रकार के व्यवहार को उसको स्वीकार करना चाहिए तथा किसी प्रकार की विरोध की भावना का विकास नहीं करना चाहिए।

---

14. इंगलिश ओ0 स्पूरिजोन तथा फिंच, स्टुआर्ट, एम0 — इण्ट्रोडक्शन टु साइक्याट्री, डब्लू 2 नार्टन ऐण्ड कं0 इंक न्यूयार्क, 1954, पृ0 406

(5) वैकल्पिक इतिहास–एक उदाहरण

रोगी का नाम : श्रीमती कमला
उम्र : 48 वर्ष

वर्तमान विकार एवं कठिनाइयाँ

रोगी को यह शिकायत थी कि उसका स्वभाव निरंतर चिड़चिड़ा होता जा रहा है तथा मानसिक अस्तव्यस्तता बढ़ती जा रही है। उसके यह शिकायत थी कि उसके शरीर में अनेक व्याधियाँ उत्पन्न हो गयी हैं तथा उसका शरीर पहले से हल्का महसूस हो रहा हैं उसके शरीरिक पीड़ा संबंधी अनेको अस्पष्ट संदिग्ध तथा अनोखी शिकायतें थी। उसको प्रायः सर दर्द, पेट दर्द, कमजोरी तथा अपच की शिकायत रहती थी। उसे सबसे अधिक विषाद प्रायः सुबह होता था। क्योंकि रात बड़ी बेचैनी से कटती थी। उसने अनेक बार जीवन लीला समाप्त करने का भी प्रयत्न किया था क्योंकि उसमें विषाद के लक्षण भी धीरे–धीरे गम्भीर हो गये थे। वह सोचती थी कि अब वह अपने पति के लायक नहीं रह गयी है तथा बच्चों के प्रति उसका ममत्व समाप्त हो गया है। उसके दोनों बच्चे विवाह के उपरान्त उसको छोड़ चुके है। वह सोचती है कि अब उसका शरीर आकर्षणहीन होता जा रहा है। इन सभी कारणों से दैनिकचर्या में उसकी रुचि समाप्त हो गयी थी तथा कर्तव्यों से अरुचि बढती जा रही थी। उसको पति से भी कोई रुचि तथा लगाव नहीं था। वह उससे कई दिनों तक बिना बातचीत किये रहती थी।

पूर्व इतिहास

रोगी के पूर्व अध्ययन से पता चलता है कि रोगी पहले बहुत ही परिश्रमी, लगनशील, उत्कृष्ट, अति संवेदनशील तथा कर्तव्यों के प्रति सजग थी। अनेक महिलायें उसकी मित्र मंडली में थी परन्तु उनमें से कोई भी उसकी घनिष्ट मित्र नही थी और न ही रोगी को किसी मित्र से कोई अत्यधिक तथा घनिष्ट संबंध था। वह उच्च अभिलाषावान महिला थी तथा उसका प्रयत्न सदैव उच्चतर उद्देश्यों को प्राप्त करना था। वह सदैव कार्यो तथा उद्देश्यों को प्राप्त करने में लगी रहती थी परन्तु परिणामों से सदैव वह असंतुष्ट रहती थी। यद्यपि वह सदैव जीवन को सुखमय, शांतिमय तथा संतोषपूर्ण बनाने में प्रयत्नशील थी परन्तु जीवन में उसने कभी भी सुख की अनुभूति नहीं की। वह सदैव अपने पति, बच्चों तथा स्वयं के प्रति प्रत्येक बात के लिए चिंतित रहती थी ।

जब इस रोगी का मासिक धर्म बन्द हुआ और वृद्ध होने की अनुभूति होने लगी तो उसको अपूर्ण उद्देश्यों के प्रति अधिक चिंता होने लगी। उसके अधिकांश उद्देश्य इस उम्र तक पूरे नही हो सके थे। उसको अनुभव होने लगा कि उसके बच्चे अब उसका ध्यान नहीं रखते हैं तथा उसका पति भी किसी प्रकार का लगाव उससे नहीं रखता है।

रोग का निदान

तथ्य खोजने से पता चला कि रोगी की अनेक अभिलाषायें थीं जिनको वह पूरा नहीं कर पायी थी। उसके बच्चे जो उससे अत्यधिक प्रेम करते थे, पढ़ने के बाद सेवावृत होकर दूर जा चुके थे जिससे उनसे संबंध नाममात्र को रह गये थे। दोनों लड़को का जब से विवाह हो गया था तब से संबंध और भी बिगड़ गये थे। पति को अधिक कार्य करना पड़ता था क्योंकि जीविका के साधन बहुत सीमित थे, अतः वह रोगी को अधिक समय नहीं दे सकता था।

उपचार

रोगी के साथ मनाचिकित्सा प्रारम्भ हुई तथा वैंयक्तिक सेवा कार्य का उपयोग किया गया। धीरे–धीरे रोगी में जीवन के प्रति आशा का संचार किया गया तथा इस बात की प्रेरणा दी गयी कि रोगी अधिकाधिक अपने पारिवारिक संबंधों को बढ़ावे। कर्ता ने बच्चों तथा रोगी के पति को इस संदर्भ में समस्या से अवगत कराया। परिणाम यह हुआ कि दानें बच्चों से जैसे ही दो–दो पत्र प्राप्त हुये तथा पौत्रों का प्रणाम करने का संदेश प्राप्त हुआ, रोगी में प्रसन्नता के लक्षण प्रकट होने लगे तथा विषाद में कमी आनी शुरू हो गयी।

सामूहिक कार्य की सहायता से रोगी को आत्म प्रदर्शन तथा संबंध स्थापित करने का अवसर प्रदान किया गया। धीरे–धीरे रोगी ने सामाजिक तथा व्यक्तिगत कार्यो में रुचि लेनी प्रारम्भ कर दी। दो महीने की अवधि के उपरान्त रोगी पुनः अपनी पूर्व स्थिति के अनुरूप व्यवहार करने लगी।

19

आंगिक या विषज मनोविकृतियाँ

आंगिक मनोविकृतियाँ संरचनात्मक मनोविकृतियों की श्रेणी के अन्तर्गत आती हैं जिसमें आंगिक परिवर्तन प्रधान होता है। इस श्रेणी के अन्तर्गत निम्न प्रकार की मनोविकृतियाँ आती है:–

1– संक्रमण सम्बन्धी मनोविकृतियाँ (Psychosis associated with infection)

2– उपदंशजन्य मनोविकृतियाँ (Psychosis due to Syphilis)

3– मस्तिष्क सूजन (Encephalitis)

4– कोरिया मनोविकृति (Chorea)

5– आघात्मक मनोविकृतियाँ (Traumatic Psychosis)

6– रक्त चक्र की मनोविकृतियाँ (Psychosis due to circulation)

7– मस्तिष्क ट्यूमर से संबंधित मनोविकृतियाँ (Psychosis assiciated with Brain Tumours)

8– विषज मनेविकृतियाँ (Psychosis due to Toxins)

9– मद्यज मनोविकृतियाँ (Psychosis due to Alcoholism)

10– नशीली वस्तुओं को कारण उत्पन्न मनाविकृतियाँ (Psychosis due to drug Addiction)

11– अपस्मार या मिर्गी (Epilepsy)

संक्रमण सम्बन्धी मनोविकृतियाँ

व्यक्तित्व सम्बन्धी विकृतियाँ तथा मानसिक विकास अनेक प्रकार के संक्रमण से भी उत्पन्न हो जाते हैं। रोग के अणु संक्रमण करके व्यक्ति के मस्तिष्क में प्रवेश कर जाते हैं और विष उत्पन्न कर देते हैं। इस विष के कारण मस्तिष्क के स्नायुओं को बहुत धक्का पहुंचता है तथा उनके कार्य में व्यवधान उत्पन्न हो जाता है। परिणाम स्वरूप मनोविकृतियों के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं।

उपदंशजन्य मनोविकृतियाँ

उपदंश एक मौन संक्रामक रोग होता है जो सेफलिस (Syphilis) के दूषित प्रभाव के कारण उत्पन्न हो जाता है। यह रोग यद्यपि लैंगिक रोग होता है परन्तु जब विषम रूप धारण कर लेता हे तो इसके रोगाणु मस्तिष्क में पहुंचकर कुप्रभाव पहुंचाते हैं जिसे मस्तिष्क अंगों को झटका पहुंचता है और मानसिक अस्तव्यस्तता दृष्टिगोचर होती है। यह विकृति मध्य अवस्था के लगभग उत्पन्न होती है और स्त्रियों की अपेक्षा पुरुषों में अधिक होती है। सेफलिस से अनेक प्रकार की मनोविकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं। परन्तु यहाँ पर हम तीन महत्वपूर्ण विकृतियों का वर्णन कर रहे हैं।

1– आंशिक पक्षाघात या अर्ध लकवा :– आंशिक पक्षाघात आंगिक रोग है। प्रारम्भिक अवस्था में सिर दर्द, चक्कर आना, थकान आदि के लक्षण होते हैं। परन्तु धीरे–धीरे विशेष लक्षण प्रकट होने लगते हैं। मुखाकृति में परिवर्तन होता है, चेहरा चिपटा लगने लगता है, अस्पष्ट ध्वनियाँ करता है, लिखने में बीच–बीच के अक्षर छूट जातें हैं तथा लाइनें काफी टेढ़ी–मेढ़ी दिखाई देती हैं। आँख की शक्ति कम हो जाती है तथा कई सहज क्रियायें असंभव हो जाती हैं। बुद्धि और चरित्र में मर्यादा की कमी आ जाती है। वह किसी काम की परवाह नहीं करता है और न ही उत्तरदायित्व को पूरा करने का प्रयास करता है। उसकी रुचियाँ कम होती जाती हैं। चोरी भी करने लगता है। नंगा भी हो जाने की आदत पड़ जाती है।

इस प्रकार के रोगी में सांवेगिक एवं स्मरण सम्बन्धी विकृतियाँ भी उत्पन्न हो जाती हैं। वह चिड़चिड़ा हो जाता है अथवा भावुक प्रवृत्ति का प्रदर्शन करता है। उसकी बुद्धि क्षीण हो जाती है जिसके कारण स्मृति ह्रास हो जाता हैं। उसको न तो स्थान का ध्यान रहता है और न ही किसी प्रकार के बन्धन का। कभी–कभी वह उत्तेजित हो जाता है और आत्म–हत्या का भी प्रयास करता है। उसको व्यामोह होते हैं। कभी–कभी वह विषादी हो जाता है। जिससे वह चुपचाप पड़ा रहता है।

आंशिक पक्षाघात उपंदश के संक्रमण के कारण होता है। उपदंश के सूक्ष्म विषाणु (viruses) शरीर में प्रवेश करके मस्तिष्क में फैल जाते हें जिसके कारण पक्षाघात के लक्षण प्रकट होने लगते हैं।

2– मस्तिष्क सुषुम्ना उपदंश (Cerebro-Spinal Syphilis) यह भी सेफलिस के कारण होता है। इसमें केन्द्रीय स्नायुमंडल के तंतु कुप्रभावित होते है। सिरदर्द, चक्कर आना, अनिद्रा, मूर्छा, कै होना, मानसिक घबराहट, स्मृति लोप, धुंधलापन आदि लक्षण प्रकट होते हैं।

गामक शिथिलता (Motor Ataxia) इस रोग से सुषुम्ना के पृष्ठ भाग में विकृति आ जाती है। जिसके कारण सामान्य अर्ध लकवा हो जाता है। इसमें विभ्रमपूर्ण व्यवहार हो जाता है। संवेगात्मक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं तथा सहज क्रिया में गड़बड़ी आ जाती है। शारीरिक अंगों में कोई समन्वय नहीं रहता है। शरीर में चुभन सी महसूस होती है तथा टाँगे लड़खड़ाती हैं।

इन मनोविकृतियों का औषधीय उपचार अत्यन्त आवश्यक होता है। इसके साथ–साथ सामान्य प्रशिक्षण एवं मनोचिकित्सा भी महत्वपूर्ण होती है।

मस्तिष्क सूजन
(Encephalitis)

इस प्रकार की मनोविकृति में मस्तिष्क के स्तम्भ में सूजन आ जाती है जिसके कारण दृष्टि विघटन होता है। वस्तुयें दो दिखाई देती है पुतली की गति बन्द हो जाती है, गर्दन की मांसपेशियाँ कड़ी जो जाती हैं तथा उनमें दर्द होने लगता है, सुस्ती तथा शिथिलता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है। रोगी अर्धसुप्तावस्था में रहता है तथा संज्ञाहीन हो जाता हे। रोगी विमूढ़ दिखाई देता है तथा संवेगात्मक प्रभाव असर नहीं करतें हैं। चिन्ता तथा उत्तेजना दोनों प्रकार के लक्षण भी उत्पन्न होते हैं। उसके अंग और हाथ–पाँव काँपते हैं तथा बाध्यतायें प्रदर्शित होती हैं। यह रोग महामारी से फैलता है तथा बालकों व युवा व्यक्यिों को होता है।

कोरिया मनोविकृतियाँ

इसे हंटिंगटन कोरिया सेंट ह्वाइट लाँस (St. whitis lance) कहते हैं। इस रोग में शारीरिक सामञ्जस्य समाप्त हो जाता है। माँसपेशियों पर व्यक्ति का नियन्त्रण नहीं रहता है जिससे क्रियायें अनैच्छिक, आकस्मिक एवं अनियमित होती हैं। वह न तो साफ बोल पाता है और न ही पूरे शब्द कह पाता है। हाथ चेहरे तथा जीभ पर विशेष प्रभाव होता है। इस रोग में लड़कियाँ तथा स्त्रियाँ अधिक प्रभावित होती हैं।

आघात्मक मनोविकृतियाँ

जब मस्तिष्क पर कोई विशेष चोट पहुंचती है तो उससे मस्तिष्क में अस्तव्यस्तता एवं व्यवधान उत्पन्न हो जाता है जिसके कारण उन्माद, मिर्गी, डिलीरियम आदि के लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

रक्त चक्र की मनोविकृतियाँ

इस प्रकार की मनोविकृतियों में जराजन्य मनोविकृति (Senile Paychosis) प्रकुख है। 50 वर्ष की अवस्था के बाद व्यक्ति में शारीरिक व मानसिक परिवर्तन होने लगतें हैं, उसकी शक्तियों में ह्रास हाने लगता है तथा शारीरिक व मानसिक कार्यो में शिथिलता आती है। वह अपनी इच्छाओं को अतृप्त अनुभव करता है। इससे क्लेश उत्पन्न होता है।

इस मनोविकृति के लक्षण धीरे–धीरे विकसित होकर विषम हो जाते है। स्मृति ह्रास होती है तथा धारणा शक्ति में कमी आती है । रोगी की स्मृति इतनी कमजोर हो जाती है कि उसको 10–5 मिनट पहले की घटना भी याद नहीं रहती हैं ऐसे रोगी केवल अपने ही विषय में बातचीत करते हैं। (उन्हें स्थान व समय का ध्यान नही रहता है जिससे हर प्रकार का कार्य नहीं कर सकते है।) आत्मकेन्द्रित होने के कारण दूसरों में रुचि नहीं लेते हैं तथा हित–अहित का ध्यान भी नहीं रखते है। वे अश्लील व्यवहार करते हैं तथा कभी–कभी नंगें भी हो जोते है। वे प्रायः हठी भी हो जाते हैं। ऐसे रोगी कभी–कभी इतने बेचैन हो जाते हैं कि उन्हें रात–रात नींद नहीं आती है। विषम स्थिति में डिलीरियम (Delirium) के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। शारीरिक परिवर्तन भी होते हैं। वह धीरे–धीरे बोलते हैं तथा शारीरिक कम्पन होता हैं। मल–मूत्र के समय में नियम नही रखते हैं। उन्हें विभ्रम तथा व्यामोह होने लगते हैं।

धमनी काठिन्य (Psychosis with arterio sclerosis) रक्त चक्र की दूसरी मनोविकृति है। इसमें मस्तिष्क की क्रियाओं मे ह्रास होता है । धमनियों में तनाव उत्पन्न हो जाता है क्योंकि उनमें उचित रक्त नहीं पहुंचता है। पोषण तत्व के अभाव में ये कोषिकायें प्रायः रक्त की कमी के कारण सूखकर कड़ी हो जाती है। जिससे व्यवहार छिन्न–भिन्न हो जाता है। इस प्रकार की मनोविकृति की प्रारम्भिक अवस्था में सिरदर्द, थकान, अनिद्रा, अतन्मयता, ध्यान अकेन्द्रीकरण, चिड़चिड़ापन, विषाद आदि लक्षण उत्पन्न होते हैं। धी–धीरे स्मृति विकार, संवेगात्मक अस्थिरता, बुद्धि क्षीणता आदि के लक्षण प्रकट होते हैं। उसकी स्मरण शक्ति क्षीण हो जाती है तथा वास्तविकता से सम्बन्ध समाप्त हो जाता है।

मस्तिष्क के ट्यूमर से सम्बन्धित मनोविकृतियाँ

जब मस्तिष्क के किसी भाग में ट्यूमर बन जाता है तो उसका प्रभाव मतिष्क तन्तुओं पर पड़ता है। इस कारण सिरदर्द, मतली, सुस्ती, आँखां में नीरवता, पक्षाघात, अरूचि, विभ्रम आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते है।

विषज मनोविकृतियाँ

इस प्रकार की मनोविकृतियों की उत्पत्ति विष के सेवन से होती है। संखिया, पारा, शीशा तथा अन्य रासायनिक द्रव के सेवन से शारीरिक व मानसिक विकृति के लक्षण उत्पन्न होते हैं। व्यक्ति पर इन पदार्थो का शीघ्र ही प्रभाव होता है और विषम प्रकार के लक्षण स्पष्ट दृष्टिगोचर होने लगते हैं। इन मनोविकृतियों का उपचार कार्य अत्यन्त कठिन होता है।

मद्यज मनोविकृतियाँ

औद्योगिक उन्नति एवं नगरीकरण के साथ–साथ शराब पीने की भी लोकप्रियता बढ़ गयी है। उच्च समाजों में तो शराब पीना एक फैशन हो गया है। नियम से थोड़ी सी पी लेने वालों की संख्या भी बढ़ रही है क्योंकि जीवन समस्यायें नैराश्य, अलगाव आदि के कारण थोड़ी मात्रा में शराब का सेवन कर लेने से चिंतायें दूर हो जाती हैं। परन्तु ऐसे व्यक्तियों को मद्यसेंवी नहीं कहा जा सकता है क्योंकि उनमें मदिरा की तीव्र उत्तेजना नहीं होती है और न ही किसी प्रकार का व्यक्तित्व विघटन होता है। परन्तु जब व्यक्ति की शराब पीने की आदत पड़ जाती है और न मिलने पर वह व्याकुल एवं चिन्तित होने लगता है तो उसे मद्यसेवी कहते हैं। अतिशय प्रयोग करने पर मानसिक एवं शारीरिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है।

शराब पीने का कारण

1– आजकल शराब पीना एक फैशन हो गया है और उच्च सभ्यता का प्रतीक माना जाता है। परन्तु यही फ़ैशन व्यक्ति को अपने चंगुल में फँसा लेता है और वह पीने का आदी जो जाता है।

2– जीवन की दुःखद स्थितियों एवं उसके प्रभावों से बचने के लिए शराब का सेवन होता है। कभी–कभी दुःखपूर्ण स्थितियाँ ऐसी उत्पन्न हो जाती हैं जिनका वह सामना करने में असमर्थता प्रकट करता है। शराब के पीने से उसमें दुःख की अनुभूति कम हो जाती है और जीने की इच्छा जागृत हो जाती है।

3– आत्मग्लानि तथा आत्मदोषारोपण से बचने के लिए भी शराब पीते हैं।

4– भय को दूर करने के लिए भी शराब पी जाती है।

5– पराजय को न स्वीकार करने एवं निराशाओं से पीछा छुड़ाने के लिए लोग शराब पीने लगते है।

6– विघटित व्यक्तित्व के कारण भी मद्यपान करने की आदत पड़ जाती है। जिन व्यक्तियों का व्यक्तित्व विकृत होता है एवं संवेगात्मक समायोजन में विक्षिप्तता विद्यमान होती है वे मद्यसेवन करने लगते है।

मद्यज मनोविकृतियों के प्रकार

निम्न प्राकर की मद्यज मनोविकृतियाँ होती हैः–

व्याधिकीय मादकावस्था (Pathological Intoxication) यह अवस्था कुछ समय से लेकर घण्टों तक बनी रह सकती है। इस अवस्था में व्यक्ति की मानसिक अस्तव्यस्तता हो जाती है। उसे ज्ञान नहीं रहता है तथा प्रत्येक प्रकार का व्यवहार कर सकता है। उसकों कुछ भी स्मरण नहीं रहता है।

2– नशे से ज्ञान भ्रान्ति (Delirium Tremers) यह प्रकार 30 वर्ष की आयु के बाद ही उत्पन्न होता है। उसमें शरीर में कम्पन, बातचीत की अतारतम्यता, वाणी विकार, व्याकुलता, अनिद्रा आदि लक्षण हो जाते है। प्रायः निम्न प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैः–

i) **विभ्रम** (Hallucination)– रोगी अपने शरीर में रेंगते हुये का अनुभव करता है, वह साँप, चूहे, बिच्छू आदि देखता है। वह देखता है कि कोई उसे मारने आ रहा है अतः भयभीत रहता है तथा आत्महत्या का प्रयास करता है।

ii) **भ्रम**– रोगी भ्रम के कारण अनेक प्रकार के अनुभव करता है तथा भयभीत आशंकित तथा डरा–डरा रहता है।

iii) जीभ में कम्पन होता है तथा वाणी विकृत होती है।

iv) कब्ज बना रहता हैं, पेट मे दर्द प्रायः होता रहता है। हृदय गति तेज होती है तथा पसीना आता रहता है।

v) रोगी को किसी प्रकार का ज्ञान नहीं रहता है। यह अवस्था उसमें नौ दिन तक रहती है।

3–दीर्घकालीन मद्यज मनोविकृति (Chronic Alcoholic Psychoses) जो व्यक्ति शराब पीने के आदी हो जाते है वे भी इसके प्रभाव से बच नहीं पाते हैं तथा उनमें मनोविकृति के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। शारीरिक व मानसिक दोनों प्रकार का ह्रास होता है तथा बुद्धि व चरित्र पर कुप्रभाव पड़ता है। शरीर काँपने लगता है, चेहरा थका–थका लगता है, शरीर में दर्द हो जाता है, पेट के रोग उत्पन्न हो जाते है तथा आँतो में खराबी उत्पन्न हो जाती है। स्मृति ह्रास, विकृत चरित्र, निर्णय शक्ति का ह्रास, अस्थिरता आदि लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं। वह अपने उत्तरदायित्व को पूरा नहीं कर पाता है तथा असभ्यपूर्ण व्यवहार करता है। वह झूठ बोलता है तथा शराब के लिए पैसा माँगने में कई तरीके अपनाता है। आदर्श बातें करता है तथा हवा के पूल बाँधता है।

कारस्कोफ मनोविकृति (Korskoff Psychoses) :रोगी की स्मरण शक्ति बहुत क्षीण हो जाती है। उसको घटनाओं की स्मृति नहीं रहती है। वह मनगढ़त बातें अधिक करता है। उसमें संवेगात्मक अस्थिरता के लक्षण प्रकट हो जाते हैं। वह हर समय हाथ पैर में दर्द अनुभव करता रहता है। भ्रम तथा विभ्रम कभी–कभी प्रकट होते हैं।

नशीली वस्तुओं के सेवन से उत्पन्न मनोविकृतियाँ

भाँग, अफीम, गाँजा, कोकीन, संखिया आदि के संवन से शरीर व मस्तिष्क पर बुरा प्रभाव पड़ता है। यद्यपि वस्तुओं के सेवन से मानसिक तनाव कम होता है परन्तु क्षति बहुत अधिक होती है। रोगी आत्म संयम खो देता है, चरित्र भ्रष्ट हो जाता है। धोखा तथा बेइमानी करना साधारण सी बात हो जाती है। नैतिकता का विनाश हो जाता है। उसको नशीली वस्तु की मात्रा दिनोदिन अधिक करनी पड़ती है।

अफीम के सेवन करने वाले की त्वचा सूख जाती है शरीर काला पड़ने लगता है, मुँह सूखता है तथा भूख मर जाती है। वह पेट के रोग का शिकार हो जाता है। उसमें नपुंसकता भी बढ़ जाती है। संदेहशीलता, भ्रम, अतिशय–सक्रियता, निष्क्रियता आदि के लक्षण उत्पन्न होते हैं। वह बहुत अधिक बात करता है। जब उसको अफीम नहीं मिलती है तो अनिद्रा, बेचैनी तथा दुख का अनुभव करता है। भाँग के सेवन से भी इसी प्रकार की मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती हैं।

अपस्मार या मिरगी

मिरगी एक ऐसा मानसिक रोग है जिसके विषय में प्राचीन काल से ही लोगों का ज्ञान है। यह रोग प्रत्येक देश में विद्यमान तथा लक्षण भी सर्वविदित एवं स्पष्ट हैं। मिरगी में दौरे पड़ते हैं और चक्कर आते हैं। शरीर ऐंठने लगता है तथा रोगी की मुखाकृति बिगड़ जाती है। उसके हाथ–पैरों में सिकुड़न तथा कंपकपाहट होती है, दाँत भिच जातें हैं। रोगी कुछ समय के लिए चेतनाशून्य हो जाता है । शरीर की ऐंठन प्रमुख लक्षण होती है। रोगी ऐंठन के कारण हाथ–पैर पटकने लगता है। काँपने लगता है तथा काँपकर गिर जाता है। यह रोग स्त्री पुरुषों को समान रूप से होता है तथा आयु की भी कोई निश्चित सीमा नहीं है।

मिरगी के प्रकार

मिरगी के दौरे प्रायः तीन प्रकार के होते हैं :

हल्का दौरा (Petit Mal) : यह मिरगी का साधारण दौरा होता है जिसमें क्षणिक लक्षण प्रकट होते हैं। रोगी काम करते–करते ऐंठ जाता है, रंग उड़ जाता है चेहरा भावशून्य हो जाता है। कुछ बुदबुदाने लगता है तथा कोई अस्पष्ट आवाज करता है। इस प्रकार के दौर के उपरान्त रोगी पुनः कार्य करने लगता है। उसको किसी बात का अनुभव नहीं होता है। वह नहीं जानता है कि उसे दौरा पड़ा है।

बड़ा दौरा (Grand Mal) : इसमें रोगी की दशा बिगड़ जाती है लक्षणों की गंभीरता एवं विषमता होती है। रोगी को पहले विभ्रम (Hallucination) होता हैं, दुःखद संवेदना शरीर के किसी भाग में होती है, ऐंठन अनुभव होती है तथा चीख–चिल्लाहट के लक्षणों के बाद वह चेतनाशून्य हो जाता है। उसका शरीर काँपने लगता है। हाथ–पैर पटकता है। मुँह से झाग निकलता है, चेहरा नीला पड़ जाता है। कुछ समय उपरान्त चेतना लौटती है और पुनः दौरा पड़ता है। रोगी को दौरों की स्मृति नहीं होती है। केवल प्रारम्भिक संवेदनायें याद रहती है। रोगी बहुत अधिक कमजोरी अनुभव करता है।

मनोगत्यात्मक मिरगी (Psychomotor) : इस प्रकार की मिरगी में रोगी में भिन्न–भिन्न प्रकार के लक्षण प्रकट होते हैं। वह हर एक कार्य विशेष ढंग से करने लगता है बात विशेष ढंग से करने लगता है, होंठ चबाने लगता है, कपड़े उतारने लगा है, एक वाक्य दो बार बोलता है। रोगी दौरे की स्थिति में भी चलता है तथा होश आने पर नये स्थान पर अपने को पाता है। यह दौरा कुछ मिनट से लेकर कई घंटों तथा दिनों तक चल सकता है। दौरे की स्थिति में रोगी अपराध भी कर बैठते हैं।

जैक्सोनियन मिरगी (Jacksonian Epilepsy) : शरीर के किसी भाग में दौरा पड़ता है वह अंग कुछ समय के बाद चेतना शून्य हो जाता है। रोगी को पूर्ण चेतना रहती है।

मिरगी के कारण

मिरगी का कोई कारण नहीं है। वंशानुक्रमण के माध्यम से कुछ तत्व व्यक्ति में प्रवेश कर जाते हैं तथा मिरगी के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं। वंशानुक्रम के अतिरिक्त संवेगात्मक व्यवधान (Emotional disturbances) एक प्रमुख कारण है। जब व्यक्ति सांवेगिक तनाव, अस्थिरता, संघर्ष आदि को अधिक अनुभव करता है तो मिरगी के दौरे पड़ने लगते हैं।

उपचार

मिरगी के दौरों को कम करने के लिए विभिन्न औषधियों का सेवन किया जाता है परन्तु मनोचिकित्सा तथा परामर्श रोगी को स्थायी शान्ति प्रदान करते हैं।

20

मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व तथा चरित्र विकृतियाँ

1 अभिप्राय

मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व तथा समाज विरोधी व्यक्तित्व उन व्यक्तित्व विशेषताओं एवं व्यावहारिक तरीकों, जिनसे व्यक्ति अन्तर्वैयक्तिक संबंधों में विषम कठिनाई अनुभव करता है तथा समाज से निरन्तर संघर्ष करने के लिए बाध्य हो जाता है, को प्रदर्शित करने के लिए एक दूसरे के स्थान पर प्रयोग किये जाते हैं। समाज विरोधी व्यक्तित्व को मानसिक मंदता, मनोस्नायु विकृतियों तथा मनोविकृतियों की भाँति वर्गीकृत नहीं कर सकते हैं क्योकि विरोधात्मक लक्षण कई रूपों में कार्य करते है। इस प्रकार के व्यक्तित्व में सामाजिकता, नीति तथा नैतिकता का समुचित समन्वय नहीं होता है। उसमें इन विशेषताओं की कमी होती है जिसके कारण वह व्यवहार के स्वीकृत प्रारूप को अपनी जीवन–शैली का अंग नहीं बना पाता है। मूलरूप से मनोव्याधिकीय व्यक्ति असमाजीकृत होते हैं तथा दूसरे व्यक्तियों, समूहों एवं सामाजिक मूल्यों के प्रति श्रद्धा एवं आदर नहीं रखते हैं। ऐसे व्यक्ति बुद्धिमान, मिलनसार, आकर्षक, बातचीत में चतुर तथा व्यवहार कुशल होते हैं, ऐसे व्यक्ति भूत या भविष्य की चिंता न करके वर्तमान में रहकर दूसरे के सुख--दुख की बिल्कुल चिंता नहीं करते हैं। इस प्रकार के व्यक्तित्व के अन्तर्गत सिद्धान्तहीन व्यापारी, भड़काने वाले वकील, नीम हकीम चिकित्सक, विकृत राजनैतिक नेता, विकृत मिथ्याभाषी, ठग, नैतिक दोषी, अपराधी तथा बाल अपराधी आदि आते हैं।

2 लक्षण

निम्नलिखित विशेषतायें समाज विरोधी व्यक्तित्व को प्रदर्शित करती हैं:

1. अपूर्ण चेतन विकास तथा चिंता व अपराध भावना की कमी

समाज विरोधी या मनोव्याधिकीय व्यक्ति नैतिक मूल्यों को समझने तथा व्यावहारिक उपयोग में लाने में असफल होता है। उसके चेतन विकास तथा बुद्धि स्तर में विरोधाभास होता है इसीलिए उसे नैतिक मूर्ख (Moral Moron)

कहा जाता हैं। वह नैतिकता को झूठ तथा धोखा समझता है। तनाव अनुभव होने पर चिंता के स्थान पर उसको निष्कासित करने का पूरा प्रयास करता है। उसके कार्य बिना सामाजिकता नैतिकता व समयानुकूलता के होते हैं। वह अक्सर उग्र तथा आक्रामक होता है। उसमें चिंता एवं अपराध की भावना न होने के कारण किसी कार्य को करने के लिए सामाजिक मापदण्ड नहीं होता है। जिन व्यक्तियों से वह लाभ नहीं उठा पाता है उनको घृणा की दृष्टि से देखता है।

2. अनुत्तरदायी एवं मूल प्रवृतित्यात्मक व्यवहार

मनोव्याधिकीय व्यक्ति दूसरे के हितों की बिल्कुल चिंता नहीं करता है। वह दूसरों की इच्छाओं, आवश्यकताओं, कठिनाइयों तथा अधिकारों की बिल्कुल परवाह नहीं करता हैं। वह अत्यधिक मिथ्याभाषी होता है तथा 'लेन–देन' (Give and Take) में विश्वास नहीं करता है। जहाँ तक सम्भव होता है अपने हितों को हर प्रकार से पूरा करने का प्रयास करता है। वह बिना परिणाम सोचे कार्य करता है। वह कानूनों को बिना ज्ञान के तोड़ता है। अतः उसका व्यवहार मूल पद्धतियों से अधिक नियंत्रित होता है।

3. सहिष्णुता की कमी

समाजविरोधी व्यक्ति अपनी भग्नाशा को अधिक समय तक नहीं सहन कर सकता है। वह भविष्य की चिंता नहीं करता है और न ही भविष्य के सुख के लिए कोई कार्य करता है। वह वर्तमान में रहता है। वाह्य वास्तविकता का उपयोग तात्कालिक संतुष्टि के लिए वह करता है। वह किसी उत्तरदायित्व को पूरा नही कर पाता, अतः अपने पेशे को जल्दी–जल्दी बदलता रहता है।

4. दूसरों को आकर्षित एवं शोषित करने की क्षमता

प्रायः समाज विरोधी या मनोविकृत व्यक्ति आकर्षक तथा व्यवहार कुशल होता है। वह दूसरे व्यक्तियो को अपनी ओर शीघ्र ही आकृष्ट कर लेता है तथा विश्वास उत्पन्न कर देता है,जिसके कारण मित्रता अधिक सरलता से स्थापित कर लेता है। उसमें वाक्य चातुर्य बहुत अधिक होती है जिसके कारण अपने उद्देश्य को सफलता से पूरा कर लेता है।

5. समाज विरोधी व्यवहार का प्रक्षेपण

मनोव्याधिकीय व्यक्ति अपने समाजविरोधी व्यवहार को दूसरों पर प्रक्षेपित कर देता है। वह इस कार्य में इतना कुशल होता है कि दूसरो को इस

प्रक्षेपण एवं तर्क द्वारा शीर्घ ही प्रभावित कर लेता है जिससे चिंता एवं अपराध की भावना नहीं पनपती है।

6. सुखद अन्तर्वैयक्तिक संबंधों को बनाये रखने में कठिनाई

यद्यपि मनोव्याधिकीय व्यक्ति संबंध स्थापित करने तथा मित्रता उत्पन्न करने में अत्यन्त कुशल होते हैं परन्तु इस संबंध को अधिक समय तक स्थिर नहीं रख पाते है । वे अनुत्तरदायी, आत्मकेन्द्रित, शक्की, असहिष्णु, कृतघ्न तथा स्वार्थी होते हैं। वे दूसरों के लिए कुछ त्याग नहीं कर सकते हैं। ये लोग परिवार के लिए भार होते है। वे अविश्वसनीय पति तथा पिता होते हैं।

7. सत्ता का तिरस्कार

समाज विरोधी व्यक्तियों के लिए सामाजिक अथवा वैधानिक कोई भी नियम व कानून अर्थहीन होता है। वे किसी भी प्रकार के नियमों का बंधन नहीं मानते हैं। उनकों शिक्षा संस्थाओं एवं अन्य संस्थाओं में कठिनाई अनुभव होती है। इस कारण वे अपराधपूर्ण कर्म करते हैं परन्तु वे व्यावसायिक अपराधी नहीं होते है।

8. अनुभव से सीखने की अक्षमता

मनोव्याधिकीय विकृत व्यक्ति अपने अनुभव से सीखने में असमर्थ होता है। उसको चाहे जितनी बार दण्ड दिया जाय, यह एक ही प्रकार का व्यवहार करता है।

उपर्लिखित अधिकांश विशेषतायें, मनोस्नायु विकृतियों तथा अन्य प्रतिकूलित एवं असामाजिक व्यवहारों में भी पायी जाती है। परन्तु मनोव्यधिकीय व्यक्तित्व में ये अत्यधिक प्रभावकारी होती है तथा अन्य मनोव्याधिकीय लक्षणों के साथ प्रकट होती हैं। उदाहरण के लिए अधिकांश मनोस्नायु विकृत व्यक्ति चिंता से ग्रस्त रहते हैं तथा परिस्थिति से दूर भागने का प्रयत्न करते हैं जबकि समाज विरोधी व्यक्ति अपनी मूल प्रेरणाओं को बिना भय एवं चिंता के पूरा करने का प्रयत्न करता है। उसको परिणाम की कोई चिंता नहीं होती है।

क्लीकले[1] (Cleckly) ने मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व क लिए 16 कारको को आवश्यक बताया है–

---

1. क्लीकले, एच0 — दि मास्क आफ सैनिटी, सेन्टलूइस, मासबाई, 1964, पृ0 362–363

1 बनावटी आकर्षण तथा अच्छी बुद्धि
2 व्यामोह तथा अन्य अतार्किक विचारों की अनुपस्थिति
3 अधीरता (Nervousness) या मनोस्नायुविक लक्षणों की अनुपस्थिति
4 अविश्वसनीयता
5 असत्यभाषिता एवं अकर्त्तव्यपरायणता
6 पश्चाताप एवं लज्जा की कमी
7 अपर्याप्त रूप से सम्प्रेरित समाज–विरोधी व्यवहार
8 कम निर्णय शक्ति तथा अनुभव से सीखने की असफलता
9 व्याधिकीय आत्मकेन्द्रिता तथा प्यार करने की अक्षमता
10 प्रमुख भावात्मक प्रतिक्रियाओं में सामान्य कमी।
11 अन्तर्दृष्टि की विशेष कमी।
12 सामान्य अन्तर्वैयक्तिक संबंध में प्रत्युत्तर विहीनता
13 नशे की अवस्था या बिना नशे की अवस्था में विचित्र तथा अप्रत्याशित व्यवहार।
14 आत्महत्या की मूल प्रवृत्तियाँ परन्तु वे बहुत कम व्यवहार में लायी जाती हैं।
15 लैंगिक जीवन अव्यक्तिगत, तुच्छ (Trivial) तथा कम एकीकृत।
16 किसी भी जीवन शैली (Plan) को चलाने में असफल।

ग्रे[2] (Gray) तथा हचिंसन ने 1000 कनाडा के मनोविकार चिकित्सकों की राय मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के व्यावहारिक लक्षणों के संबंध में ज्ञात करना चाही। उत्तरदाताओं ने निम्नलिखित 10 लक्षणों को अत्यधिक महत्वपूर्ण बतायाः–

1 ये व्यक्ति अनुभव से लाभ नहीं उठा सकते।
2 इनमें उत्तरदायित्व की कमी होती है।
3 अर्थपूर्ण संबंध स्थापित करने में अयोग्य होते हैं।
4 मूल प्रवृतियों पर नियंत्रण की कमी होती है।
5 नैतिक दृष्टिकोण की कमी होती है।
6 स्वाभाविक समाज विरोधी होते हैं।

---

2. ग्रें, केसी तथा हचिसन एच0 सी0 — दि साइकोपैथिक पर्सनाल्टी : ए सर्वे आफ कनेडि–यन साइक्याट्रिस्ट्स ओपिनियन, कैनेडियन साइक्याट्री एसोसिएशन जर्नल, 1964, 1, पृ0 452–461

7 दण्ड व्यवहार में परिवर्तन नहीं लाते हैं।

8 सांवेगिक रूप से अपरिपक्व होते हैं।

9 अपराध (Guilt) अनुभव करने में अयोग्य होते हैं।

10 आत्मकेन्द्रित होते है।

इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि मनोव्याधिकीय व्यक्ति एक असमाजकृत व्यक्ति होता है। वह व्यवहार के नियमों को अस्वीकृत करता है जिसके कारण समाज से संघर्ष करता है। उसमें किसी भी प्रकार का समूह मित्र अथवा मूल्य व्यवस्था के प्रति कोई श्रद्धा नहीं होती है। वह स्वार्थी, आत्मकेन्द्रित, मूल प्रवृतियों से नियंत्रित तथा अनुभव से सीखने में असमर्थ होता है। वह रुकावट को सहन नहीं कर पाता है। वह जिस बात को चाहता है, तुरन्त चाहता है तथा तुरन्त कार्यवाही करता है।

3. मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व का वर्गीकरण

ऐसे बहुत से समाज विरोधी कार्य होते हैं जो मनोव्याधिकीय व्यक्तियों द्वारा किये जाते हैं तथा जिनके आधार पर अनेक वर्गों में विभक्त कर सकते हैं। इसमें प्रकारों का वर्णन इमाइल क्रेपलिन ने अपनी पुस्तक टैक्स्ट बुक आफ साइक्याट्री में किया है : (1) उत्तेजक (Excitable), (2) अस्थिर (Unstable), (3) मूलप्रवृत्यात्मक (Impulsive), (4) सनकी (Eccentric), (5) मिथ्याभाषी तथा ठग (Liars and Swindler), (6) समाज विरोधी (Anti-Social), (7) झगड़ालू (Quarrelsome)

सामान्यतः निम्न प्रकारों में मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व को वर्गीकृत कर सकते हैं :–

1. आक्रामक

इन व्यक्तियों की विशेषता होती है कि वे सदैव आक्रामक दृष्टिकोण एवं व्यवहार रखते हैं। इसलिए साधारण बात पर भी झगड़ा कर देते हैं तथा आक्रामक रुख अपनाते हैं। ऐसे व्यक्ति आक्रामक संवेग में भयानक से भयानक कार्य करने के लिए तैयार हो जाते हैं अतः अधिक खतरनाक होते हैं।

2. अस्थिर

ऐसे व्यक्ति किसी कार्य एवं व्यवहार पर स्थिर नहीं रह पाते हैं। उनके व्यक्तित्व की अस्थिरता प्रमुख विशेषता होती है। कब किस प्रकार का और क्या व्यवहार करेगा, वह स्वयं भी नहीं जानता है।

3. सनकी

कुछ व्यक्ति बहुत सनकी तथा झक्की होते हैं। आन्तरिक जीवन में अस्तव्यस्तता के कारण इनके स्वभाव में सनकी प्रवृत्ति उत्पन्न हो जाती है। ऐसे व्यक्ति बड़ी कठिनाई से किसी बात पर विश्वास कर पाते हैं।

4. मूल प्रवृत्यात्मक

कुछ मनोव्याधिकीय व्यक्ति ऐसे होते हैं जो मूल प्रवृत्तियों पर नियंत्रण नहीं रख पाते हैं। जब जो मूलप्रवृत्ति उत्पन्न होती है वे उसकी संतुष्टि के लिए तुरन्त प्रयास करते हैं तथा रुकावट को सहन नहीं कर पाते।

5. झगड़ालू प्रवृत्ति

इस प्रकार के व्यक्ति में उद्दण्डता एवं झगड़ालू प्रवृत्ति बहुत अधिक होती है। वे बिना परिणाम सोचे संघर्ष के लिए तैयार हो जाते हैं। यदि दूसरा व्यक्ति झगड़ा नही करना चाहता है तब भी जानबूझकर ऐसा कार्य करते हैं जिससे झगड़ा या लड़ाइ होने की स्थिति उत्पन्न हो जाती है। मुकदमेबाजी पर भी ऐसे व्यक्ति उतारू हो जाते हैं।

6. मिथ्या भाषी

ऐसे व्यक्ति बिना किसी कारण एवं अर्थ के झूठ बोलते हैं। झूठ बोलने की उनकी एक प्रकार की आदत पड़ जाती है। उनको इस प्रकार के व्यवहार से न तो कोई लाभ होता है, और न किसी उद्देश्य की पूर्ति होती है, परन्तु फिर भी वे झूठ बोलते हैं।

7. ठग

ऐसे व्यक्तियों को दूसरों को धोखा देने की आदत पड़ जाती है। वे काल्पनिक व्यवहार को वास्तविकता में परिणित कर देते हैं तथा झूठ का सत्य स्थापित करने में कुशल होते हैं।

8. संवेग–नियंत्रण–हीन अपराधी

ऐसे व्यक्ति हत्या, लूट, डाका, चोरी तथा गैर कानूनी कार्य उस समय करते हैं जब संवेग तीव्र होते हैं। वे इन पर नियंत्रण नहीं रख पाते यद्यपि उनमें ज्ञान की कमी नहीं होती है।

4. मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के कारण

मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के संबन्ध में भिन्न–भिन्न मनोवैज्ञानिकों ने भिन्न–भिन्न कारणों का उल्लेख किया है अतएव किसी कारण को प्रमुख रूप से उल्लिखित नहीं किया जा सकता है।

1. वंशानुक्रम

कुछ मनोवैज्ञानिकों का मत है कि जब वंशानुक्रम में कोई दोष होता है अथवा माता पिता किसी एक मानसिक विकृति से पीड़ित होते हैं तो उसका लक्षण वंशानुक्रम से हस्तांतरित होकर बालक में आ जाता है तथा उसके व्यक्तित्व का अंग बन जाता है।

2. सम्बद्ध प्रत्यावर्तन (Conditioning)

अइसेनेक[3] के अनुसार इस प्रकार के व्यक्तियों में सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा सम्बद्ध प्रत्यावर्तन की गति धीमी होती है जिसके कारण वे सामान्य समाजीकरण की प्रतिक्रियाओं को प्राप्त नहीं कर पाते हैं तथा चेतनात्मक विकास में भी अपर्याप्त होते हैं। हेर (Hare)[4] ने भी अपने अध्ययनों में पाया कि भय तथा चिंता प्रतिक्रियाओं का विकास समयोचित न होने से वे अनुभव से सीख नहीं पाते हैं।

3. उत्तेजना प्राप्ति

हेयर (Hare) ने मनोव्याधिकीय अपराधियों का अध्ययन किया और पाया कि ये व्यक्ति उत्तेजना के निम्न स्तर पर कार्य करते हैं। उनको उत्तेजना सहन करने तथा संतुष्टि करने का प्रशिक्षण बचपन से प्राप्त नहीं होता है जिसके कारण वे उत्तेजना को ही उद्देश्य मान लेते हैं।

4. प्रारम्भिक सामाजिक सांस्कृतिक क्षति

किसी भी प्रकार की सामाजिक सांस्कृतिक क्षति जैसे माता–पिता की मृत्यु अथवा उनके संबंध में विघटन अथवा अन्य कारण बालक में सामान्य गुणों का विकास नहीं हो पाता है। उसमें मनोव्यधिकीय व्यक्तित्व के लक्षण उत्पन्न

---

3. आइसेनेक, एच0 जे0 — विहैवियर थिरैपी एण्ड दि न्योरोसिस, पगमिन प्रेस, लंदन 1960
4. हेर, आर0 डी0 — साइकोपैथी, आटोनामिक फंक्शनिंग एण्ड दि ओरियन्टैशन रिसपान्स, जर्नल आफ एवनार्मल साइकालोजी, 1968, पृ0 1–24

हो जाते हैं। वेरेस (Beres) तथा ओवर्स[5] ने 38 किशोरों का अध्ययन किया जिनका अनाथालय या किसी अन्य समान संस्था में पालन पोषण हुआ था। इनमें 21 किशोरों का व्यक्तित्व विघटित था। अन्य अध्ययनों से पता चलता है कि प्रारम्भिक क्षति के कारण चेतना विकास की गति धीमी होती है। दूसरों को स्वीकृत करने में कठिनाई होती है। दीर्घकालीन उद्देश्य का निर्धारित नहीं कर पाते हैं। आत्म ज्ञान की कमी होती है। वाह्य जगत के प्रति लगाव प्रदर्शित नहीं कर पाते हैं। परिवार में भी बालक के प्रति तिरस्कार की भावना, अपत्य प्रेम, लगाव तथा संचार व्यवस्था की रोग ग्रस्तता के कारण समुचित विकास अवरुद्ध हो जाता है।

5. दोषपूर्ण प्रारूप तथा सीखना

जब माता–पिता किसी मनोवैज्ञानिक अथवा सामाजिक दोष अथवा किसी प्रकार की अवास्तविकता के शिकार होते हैं तो उसका प्रभाव बालक पर भी पड़ता है। हीवेर[6] (Heaver) ने पुरुष मनोव्याधिकीय व्यक्तित्वों का अध्ययन किया और पाया कि दोषपूर्ण माता–पिता विशेषकर माता का पुत्र के साथ अत्यधिक लगाव तथा बालक से अत्यधिक दूरी मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के विकास की प्रमुख कारण होती है।

दोषपूर्ण प्रारूप के अतिरिक्त सीखने का भी प्रभाव व्यक्तित्व पर पड़ता है। माहेर (Maher) ने अध्ययन में पाया कि नैतिक व्यवहार तथा चेतना का विकास 'दण्ड एवं पुरस्कार' व्यवस्था पर आधारित होता है। उदाहरण के लिए यदि बालक घर में कोई उत्तेजनात्मक अथवा अव्यवहारिक कार्य (जैसे चुराना) करता है और उस कार्य को स्वीकृत कर दिया जाता है अथवा दण्ड नहीं दिया जाता है तो वह ऐसे व्यवहार की आदत डाल लेता है। दूसरी अवस्था में यदि बालक को आकर्षण होने एवं अत्यधिक लगाव के कारण दण्ड नहीं दिया जाता

---

5. वेरेस, डी0, तथा ओवर्स, एस0 जे0 — दि इफेक्ट्स आफ एक्सट्रीम डिप्रीवियेसन इन इनफैनसी आफ सायकिक स्ट्रकचर इन एडोलेसेन्स, साइकोएनालिकिल स्टडी आफ चाइल्ड, इण्टरनेशनल प्रेस, न्यूयार्क वाल्यूम 5, 1950
6. हीवेर, डब्लू0 एल0 — ए स्टडी आफ फोर्टी मेल साइकोपैथिक पर्सनाल्टी विफोर, ड्यूरिंग एण्ड आफ्टर हास्पिटलाइजेशन, अमेरिकन जर्नल आफ साईक्याट्री, 1943 पृ0 352–356

है तो वह समझता है कि आकर्षक बनकर दुखदायी परिणामों से वह बच सकता है। अतः अपने व्यवहार को अपने उद्देश्य पूर्ति के लिए आकर्षक बनाता है परन्तु परिपक्वता की कमी के कारण सफल संबंध स्थापित नहीं कर पाता है।

6. अनियमन तथा अलगाव (Anomie and Alienation)

यद्यपि मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व के विकास में शारीरिक तथा पारिवारिक कारक अत्यन्त महत्वपूर्ण होते हैं परन्तु इसके साथ–साथ वर्तमान समय की समाजिक दशायें मनोव्याधिकीय व्यक्तित्व को प्रोत्साहन प्रदान कर रही हैं। नगरों में सामाजिक प्रतिमान अस्तित्वहीन होते जा रहे हैं। नियमों की कोई चिंता नही करता है। परिवार का प्रभाव कम होता जा रहा है। अवांछनीय तत्व अधिक सक्रिय रूप से कार्य करते हैं। एक दूसरे से संबंध केवल अर्थपूर्ण ही रह गया है। सांवेगिक लगाव की कमी होती जा रही है तथा अलगाव की प्रवृत्ति बढ़ रही है जिसके कारण मनोव्यधिकीय व्यक्तित्व के लक्षण स्वाभाविक रूप से उत्पन्न हो रहे हैं। स्टाट लैण्ड[8] (Stotland) ने उल्लेख किया कि जिन व्यक्तियों में इच्छित उद्देश्य प्राप्त करने की अत्यधिक लालसा होती हैं तथा वे उद्देश्य प्राप्त नहीं कर पाते हैं तो वे अपने को असहाय तथा आशाहीन समझते हैं। वे समझते हैं कि उनके कार्यों का जब कोई महत्व नहीं तो ऐसे कार्य करें जिससे आत्मिक सुख अवश्य प्राप्त हो। अतः वे समाज विरोधी कार्य करने लगते हैं।

5. चारित्रिक विकृतियाँ (Character Disorders)

व्यक्तित्व एवं चरित्र में घनिष्ठ संबंध है। व्यक्तित्व व्यक्ति के व्यवहारों का संगठित रूप है जिसे वह सामाजिक व्यवस्थापन के लिए करता है। व्यक्तित्व के अन्तर्गत अनेक पक्षों का समावेश होता है वस्तुतः व्यक्तित्व व्यक्ति के रूप, गुण, बुद्धि, प्रवृत्ति आदि का संगठन है। इसमें व्यवहार से संबंधित समस्त गुणों का समावेश होता है। चरित्र द्वारा व्यक्ति के व्यक्तित्व का प्रदर्शन होता है। यदि चरित्र संगठित एवं संतुलित होता है तो उसका व्यक्तित्व भी संतुलित एवं संगठित होता है।

---

7. माहेर, वी0ए0 — प्रिंसिपिल्स आफ साइकोपैथालोजी, मैकग्राहिल कं0 न्यूयार्क, 1966

8. स्टाटलैण्ड, ई0 — दि साइकोलाजी आफ होप, जोस वास, सेनफ्रान्सिसको, 1969

विकृत चरित्र की श्रेणी में उन व्यक्तियों को रखा जाता है जो वाह्य दृष्टि से समायोजित तो दिखते हैं परन्तु आंतरिक रूप से अस्तव्यस्त, असंतुलित तथा दुखी होते हैं। इस श्रेणी की निम्न प्रमुख विकृतियाँ हैं :–

1. आत्म हत्या (Suicide)
2. अपराध (Crime)
3. वैश्यावृति एवं वैश्यागमन (Prostitution)
4. मद्यपान (Alcohalism)
5. मादक द्रव्य व्यसन (Drug Addiction)

1. आत्महत्या

आत्महत्या एक विषम प्रकार का व्यक्तिगत विघटन है जिसमें व्यक्ति अपनी परिस्थितियों से इतना ऊब जाता है कि वह अपनी जीवन लीला को समाप्त करने का निश्चय कर लेता है। दुर्खीम ने आत्महत्या संबंधी विवेचना को अपनी पुस्तक ली स्वीसाइड (Le Suicide) में प्रस्तुत किया है। उन्होंने आत्महत्या को सामाजिक घटना के रूप में प्रस्तुत किया है। उन्होंने आत्महत्या के निम्न कारणों की व्याख्या की है।

1– आवश्यकतायें एवं साधन

कोई भी व्यक्ति तब तक सुखी, प्रसन्न तथा चिंताविहीन नहीं रह सकता है जब तक कि उसकी आवश्यकताओं एवं उसके साधनों का संतुलित अनुपात नहीं होता है। अर्थात् यदि व्यक्ति की आवश्यकतायें साधनों की अपेक्षा अधिक हैं तो उसे अनेक व्याधियाँ, बाधाओं एवं रुकावटों का सामना करना पड़ता है जिसके परिणाम स्वरूप जीवन में दुःख का संचार होता है।

2– असंतोष

जब व्यक्ति अपने कार्य में सामाजिक बाधाओं के कारण सफलता नहीं प्राप्त करता है तो उसमें असंतोष के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं यदि उसे बार–बार कार्य में असफलता मिलती है तो उसका व्यक्तित्व अत्यन्त विघटित हो जाता है और वह जीवन को अर्थहीन समझने लगता है।

3– सामाजिक परिवर्तन

सामाजिक परिवर्तन के कारण सांस्कृतिक विडम्बना उत्पन्न हो जाती है। सामाजिक परिवर्तन की गति इतनी अधिक तेज होती है कि व्यक्ति अपने को नई परिस्थितियों में आसानी से नहीं ढाल पाता है। उसमें असंतोष उत्पन्न होता है।

4– मूल्यों में संघर्ष

सामाजिक परिवर्तन के कारण जीवन में दशायें बदलती रहती हैं। जीवन की नवीन दशाओं से व्यक्ति की पुरानी आवश्यकतायें पूरी नहीं होती हैं, जब तक कि नवीन परिस्थिति से वह संतुलन स्थापित नहीं कर लेता है। इस प्रकार परिवर्तन की स्थिति में न तो जीवन के मूल्य स्थापित हो पाते हैं और न ही सम्भव असम्भव, उचित अनुचित में अन्तर स्पष्ट हो पाता है। एनामी (Anomie) की स्थिति होने से व्यक्ति लक्ष्य प्राप्त नहीं कर पाता है।

5– आदर्शहीनता

दुर्खीम के अनुसार गरीबी आत्महत्या को रोकती है। इसी कारण प्राचीन अविकसित समाजों में सम्पन्न समाजों की अपेक्षा कम आत्महत्यायें होती थीं। उन्नति एवं विकास की गति के साथ व्यक्ति की आवश्यकतायें बढ़ती हैं जिससे वह अनैतिकता की ओर अग्रसर होता है। धर्म का महत्व कम हो जाता है आत्महत्या की प्रवृत्ति जागृत होती है।

6– नैतिक मूल्यों का पतन

औद्योगिक विकास के कारण नैतिक मूल्यों में कमी होती जा रही है और समाज का विघटन हो रहा है जिसके परिणामस्वरूप नियंत्रण की शक्ति शिथिल हो रही है। परन्तु कुछ बन्धन अत्यन्त आवश्यक होते हैं चाहे वे कानूनी, धार्मिक, आर्थिक ही क्यों न हों। इससे उसे आत्मिक शक्ति प्राप्त होती है। नैतिकहीनता की स्थिति आधुनिक औद्योगिक समाज में शोचनीय लक्षण प्रकट कर देती है।

7– सामाजिक विघटन

दुर्खीम ने सामाजिक विघटन को आत्महत्या का प्रमुख कारण माना है। इनका विचार है कि स्वतंत्र विचारकों में आत्महत्या की दर अधिक होती है। उदाहरण के लिए भारत में स्त्रियाँ, पुरुषों की अपेक्षा कम आत्महत्या करती हैं।

8– दबावपूर्ण स्थितियाँ

दबावपूर्ण स्थितियों के कारण ही व्यक्ति आत्महत्या की ओर उन्मुख होता है। निम्न दबावपूर्ण स्थितियाँ आत्महत्या के लिए विशेष उत्तरदायी हैं:–

अन्तर्वैयक्तिक संघर्ष :– जब अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध में संघर्ष होने लगता है तो व्यक्ति आशाहीन हो जाता है। वैवाहिक जीवन में संघर्ष, अलगाव, तलाक अथवा अन्य किसी प्रकार से जीवन साथी का वियोग व्यक्ति के व्यवहार में आत्महत्या की प्रवृत्ति उत्पन्न कर देता है।

असफलता तथा आत्म अवमूल्यन :— विशेषकर पुरुषों में यह प्रवृत्ति पायी जाती है कि जब वे किसी कार्य में असफल हो जाते हैं तो अपने को सारहीन, अस्तित्वहीन तथा महत्वहीन समझने लगते हैं। इस भावना के उत्पन्न होने पर आत्महत्या की प्रवृत्ति महत्वपूर्ण स्थान प्राप्त करने लगती है।

अर्थहीनता तथा आशाहीनता :— मेलगेस तथा बाउलवाई[9] (1969) ने यह निष्कर्ष निकाला है कि अधिकांश आत्महत्याओं में आशाहीनता प्रमुख कारण होती है। जब वह सफल नहीं होता है, उसको अपना जीवन अर्थहीन मालूम होता है। विषम प्रकार के रोग में इस प्रकार की भावना उत्पन्न होती है।

9— आत्महत्या सम्बन्धी सम्प्रेरक तथा विचार

आत्महत्या एक तरीका है जिसके द्वारा व्यक्ति अपनी दुःखदायी स्थिति से संतुष्टि प्राप्त करता है। सभी व्यक्तियों को दबावपूर्ण स्थिति का सामना करना होता है परन्तु वे सभी आत्महत्या तो नहीं कर लेते हैं। अतः तनाव एवं दबावपूर्ण स्थिति के अतिरिक्त आत्महत्या के समय व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक स्थिति भी महत्वपूर्ण भूमिका निभाती है। मोटो[10] (Motto) 1969 ने अनुमान लगाया है कि 75 से 80 प्रतिशत आत्महत्याओं में विषम विषाद (Severe Depression) की स्थिति होती है जब व्यक्ति वैज्ञानिक रूप से हतोत्साहित एवं कष्ट अनुभव करता है तो उसमें विषाद के लक्षण उत्पन्न हो जाते हैं और उस समय उसकी तार्किक क्षमता का ह्रास हो जाता है।

प्रायः तीन प्रकार के सम्प्रेरक आत्महत्या को प्रोत्साहन देते हैं।

1. अन्तर्वैयक्तिक कठिनाइयाँ
2. अर्थहीनता एवं आशाहीनता का विचार
3. अन्तर्द्वन्द्व

आत्महत्या का वर्गीकरण

दुर्खीम ने आत्महत्या के तीन प्रकारों का उल्लेख किया है :—

---

9. मेलगोस, एफ0 तथा बाउलवाई, जे0 — टाइम्स आफ होपलेसनेस इन साइकोपैथेलाजिकल प्रोसेस, आर्च जर्नल आफ साइक्याट्री 1964, 20 पृ0 690—99

10. मोटो, जे0ए0 — लोन्गले पोर्टर रिसीवर्स ग्रान्ट स्टडी डिप्रेशन ऐण्ड सुसाइड, यूनिवर्सिटी आफ कैलीफोर्निया यूनिवर्सिटी बुलेटिन 1969—17 पृ0 18

1. अहंवादी आत्महत्या (Egoistic Sucide)
2. अव्यवस्थित आत्महत्या (Anomic Suicide)
3. परार्थवादी आत्महत्या (Altruistic Suicide)

अहंवादी आत्महत्या :– व्यक्ति जब सामाजिक जीवन में उचित भाग नहीं ले पाता है तो उसको अपने मूल्य का भी ज्ञान नहीं हो पाता है। अतः लक्ष्यों एवं शक्ति में असमानता एवं असंतुलन उत्पन्न हो जाता है। उत्तेजित परिस्थिति उत्पन्न होने पर वह अपने आप का अन्त कर लेता है। वह अपने अस्तित्व के लिए किसी आधार को नहीं पाता है।

अव्यवस्थित आत्महत्या :– अव्यवस्थित स्थिति में जब समाज के आदर्श शून्य हो जाते हैं तो सामाजिक नियंत्रण की शक्ति कम हो जाती है। इस स्थिति में इच्छाओं एवं रुचियों के विकास की पूरी स्वतंत्रता होती है परन्तु लक्ष्य प्राप्त करने के साधन सीमित रहते हैं। समाज के नियंत्रणों के प्रभाव में कमी आत्महत्या की दर को बढ़ा देती है। उदाहरण के लिए अविवाहित व्यक्तियों में आत्महत्याएं अधिक होती हैं क्योंकि पारिवारिक बंधन ढीले होते हैं।

परार्थवादी आत्महत्या :– जब समाज का व्यक्ति के अपेक्षा महत्व अधिक होता है तो व्यक्ति अपने जीवन को अनावश्यक ही समझता है। वह समाज के हित के लिए अपने को समाप्त कर देता है। उदाहरण के लिए सेना में आत्महत्यायें अधिक होती हैं क्योंकि सेना में अपनी रुचियों एवं इच्छाओं का कोई महत्व नहीं होता है।

2. अपराध

जो कार्य समाज द्वारा वर्जित होता है उसको करने से अपराधी, व्यवहार का प्रदर्शन होता है। अपराध की अनेक प्रकास से विवेचना की गयी है। वैधानिक दृष्टि से कानून के विरुद्ध कार्य करना ही अपराध है परन्तु इसका तात्पर्य यह नहीं है कि जहाँ कोई कानून न हो वहाँ अपराध नहीं होंगे। सामान्य रूप से अपराध कार्य के साथ दण्ड व्यवस्था की योजना कार्य करती है।

गिलिन तथा गिलिन के अनुसार :– अपराध वे कार्य हैं जो समाज के लिए वास्तव में अहितकर बताये गये हैं जो उन व्यक्तियों के समुदाय द्वारा जिसके पास अपने विश्वास को कार्यान्वित करने की शक्ति है, समाज के लिए अहितकर ठहराये गये हैं और जिनको उन्होंने दण्ड द्वारा रोक दिया है।

लैडिस तथा लैडिस के विचार :– अपराध वह कार्य है जिसे राज्य ने सामूहिक कल्याण के लिए हानिकारक घोषित कर दिया है और उसे दण्ड देने के लिए राजा शक्ति रखता है।

सदरलैण्ड के विचार से :– अपराधी आचरण वह होता है जिससे अपराध सम्बन्धी कानून भंग होता है।

इलियट ऐण्ट मेरिल के अनुसार :– अपराध एक कार्य है जो कानून के द्वारा वर्जित है जिसके लिए कर्ता को मृत्यु दण्ड, जुर्माना, जेल, श्रमालय एवं सुधारगृह में बन्दी जीवन बिताने का दण्ड दिया जाता है।

अपराधी व्यवहार का अर्थ समय व स्थान के परिवर्तन से भिन्न हो जाता है। एक समाज में एक समय एक व्यवहार अपराध समझा जाता है परन्तु दूसरे समय उसको सामान्य व्यवहार के रूप में माना जाता है जैसे अपने धन व जीवन की रक्षा के लिए हत्या करना अपराध नहीं है परन्तु दूसरों का धन व जीवन लेने के लिए हत्या करना अपराध है। शान्ति काल में हत्या करना अपराध होता है। परन्तु युद्धकाल में हत्या करना बहादुरी का प्रतीक होता है। अपराध व्यवहार के निर्धारण में संस्कृति व सामाजिक स्थिति को भी काफी महत्व होता है।

अपराध का वर्गीकरण

अपराध को निम्नलिखित तीन वर्गों में विभक्त कर सकते हैं :–

1. राजद्रोह अपराध (Treason)

इस अपराध में व्यक्ति अपने देश व शासन के विरुद्ध कार्य करता है। इन कार्यों में प्रमुख कार्य अपने देश के विरुद्ध युद्ध करना, युद्ध में दुश्मन की सहायता करना तथा शासन के प्रति षडयन्त्र करना है।

2. भयंकर अपराध (Felony)

इस प्रकार के अपराध में हत्या, डकैती, बलात्कार आदि प्रमुख हैं।

3. दुराचार अपराध

इसके अन्तर्गत मदिरापान, जुआ, चोरी, पाकेटमारी के कार्य आते हैं।

अपराधियों का वर्गीकरण

हेज (Hayes) ने अपराधियों को 4 वर्गो में विभक्त किया है

1 प्रथम दोषी (First offender)

2 आकस्मिकदोषी (Occasional offender)

3 आदती अपराधी (Habitual offender)

4 पेशेवर अपराधी (Professional offender)

लोम्ब्रोसो (Lombroso) ने चार प्रकार के अपराध बतायें है:–

1 जन्मजात अपराधी

2 अपस्मारी अपराधी (Epileptic)

3 आकस्मिक अपराधी (Occasional)

4 काम अपराधी (Sexual)

सामान्यतः निम्न प्रकार से अपराधियों को वर्गीकृत कर सकतें हैं:

1– सामान्य अपराधी

इस प्रकार के अपराधी अपराधकार्य को प्रत्यक्ष करकों के कारण करते हैं। उनके व्यक्तित्व में असामाजिक तत्व विद्यमान होते हैं।

2–आकस्मिक अपराधी

ऐसे अपराधी किसी विशेष स्थिति उत्पन्न होने पर अपराध करते है।

3–जन्मजात दोषी अपराधी

ऐसे व्यक्तियों को अपने अहं पर नियंत्रण नहीं हाेता है। वे आंगिक दोष के कारण अपराध करते है।

4– मनोव्याधिकीय अपराधी

ऐसे व्यक्ति अचेतन मन में अन्तर्द्वन्द होने के कारा अतार्किक तथा असामाजिक कार्यो को करते हैं।

5– ऐच्छिक, उत्तेजनात्मक एवं परपीड़न रति संबंधी अपराधी

ऐसे व्यकक्त एक दूसरे को कष्ट पहुंचायकर आनन्द का अनुभव करते हैं।

6– लैंगिक अपराधी

जिन व्यक्तियों का लैंगिक विकास सामान्य नहीं होता है वे इस प्रकार के अपराध करते हैं।

7– निष्क्रिय उत्तेजनात्मक अपराधी

ऐसे वे अपराधी होते हैं जो किसी भी कार्य में नेतृत्व नहीं करते हैं तथा

विरोध नहीं करते हैं परन्तु कभी–कभी साधारण सी बात पर बहुत उत्तेजित होकर अपराधपूर्ण कार्य कर देते हैं।

8– दण्ड पसंद अपराधी

कुछ ऐसे भी अपराधी हैं जो अपराधपूर्ण कार्य केवल दण्ड प्राप्त करने के लिए करते हैं। इससे अहं को संतुष्टि प्राप्त होती है।

9– बाध्यता मूलक अपराधी

कुछ ऐसे अपराधी होते हैं जो अपनी सामाजिक विरोधी मूल प्रवृत्तियों के कारण अपराध करने के लिए बाध्य हो जातें है।

अपराध के कारण

अपराध के सामान्यतः निम्न कारण हैं:–

1–शारीरिक विकास संबंधी दोष

2–पारिवारिक विघटित स्थिति

3–दोषपूर्ण शिक्षा

4–संवेगात्मक अस्थिरता तथा संवेगात्मक संघर्ष

5–चलचित्र

6–निर्धनता

7–व्यावसायिक मनोरंजन

8–बच्चों तथा स्त्रियों की नौकरी

9–व्यापार की गिरावट

10–मद्‌यपान

11–औद्योगिक उन्नति के कारण मकान समस्या तथा यौन नैतिकता को प्रोत्साहन

12–दहेज प्रथा

13–न्यायालय की दोषपूर्ण न्याय पद्धति

14–मानसिक मंदता एवं मानसिक रोग

15–सामाजिक मूल्यों की गिरावट

16–धर्म की रक्षा

17–अस्वस्थ पड़ोस

18–राजनीतिक तथा दलबंदी

अपराधियों का उपचार

अपराधी प्रवृत्ति को शारीरिक दण्ड द्वारा ठीक नहीं किया जा सकता है क्योंकि इससे उग्र व्यवहार को और अधिक प्रोत्साहन मिलता है। उनको व्यावसायिक समायोजनात्मक संबंधी सेवाओं की अत्यन्त आयश्यकता होती है। सामूहिक चिकित्सा (Group therapy) सामान्य अपराधियों के लिए उपयोगी होती है । इससे उनको अपने वास्तविक व्यवहार का ज्ञान होता है तथा सामाजिक रुचि का विकास होता है। आकस्मिक अपराधियों के लिए सामाजिक सेवा की आवश्यकता होती है। इसके द्वारा उन कारणों को दूर किया जा सकता है जिसके कारण वे अपराध करते है मनोव्याधिकीय अपराधियों के साथ उपचार कार्य करना अत्यन्त दुर्लभ होता है। मनोचिकित्सा इन अपराधियों के लिए अत्यन्त आवश्यक होती है। व्यावहारिक चिकित्सा (Behavioural Therapy) का भी प्रभाव पड़ता हैं। बौद्धिक दोषी तथा सांवेगिक असंतुलित अपराधियों के लिए अलग संस्था की आवश्यकता होती है जहां प्रशिक्षण द्वारा समायोजन संबंधी प्रविधियों को विकसित किया जा सके। परपीड़न रति (Sadistic) अपराधी वैयक्तिक देखभाल चाहते हैं । मनोअभिनय (Psycho-drama) विशेष रूप से लाभदायक होता है। लैंगिक अपराधियों के लिए सामाजिक शिक्षण, नैतिक शिक्षण तथा धार्मिक प्रवचन लाभदायक होते हैं। दूसरे प्रकार के अपराधियों लिए मनोविश्लेषण, सामाजिक,वैयक्तिक सेवा कार्य, अहं मनेविज्ञान, परामर्श आदि के द्वारा अपराधी प्रवृति को दूर किया जा सकता है।

3 वेश्यावृत्ति

(Prostitution)

वैश्यावृति एक ऐसा अवैध यौन संबंध होता है जो धनोपार्जन के लिए अनेक व्यक्तियों के साथ किया जाता है। इसमें प्रेम तथा स्नेह का बिलकुल अभाव होता है। यौन संबंध स्थापित करने वाले एक दूसरें से अवगत भी नहीं होते हैं।

इलिएट एण्ड मेरिल के अनुसार वेश्यावृति एक प्रकार का अवैध यौन संबंध है जो अनेक व्यक्तियों के साथ धन प्राप्ति के लिए स्थापित किया जाता है और जिसमें प्रेम जैसे उद्वेगों का अभाव होता है। वैश्यावृति और दो प्रेमियों के बीच के अवैध यौन संबंध में अन्तर होता है, वैश्यावृति में प्रेम और स्नेह का सर्वथा अभाव होता है। वेश्यायें अपने शरीर को केचल धनोपार्जन के लिए अर्पित करती हैं। वेश्यागमन करने वाले पुरुषों में भी स्नेह और व्यक्तिगत घनिष्ठता नहीं होती है। वे अपनी इच्छापूर्ति के लिए धन खर्च करते हैं।

वैश्याओं का वर्गीकरण

वैश्याओं को हम निम्न वर्गो में बांट सकते हैं–

1 साधारण वेश्यायें – इस प्रकार की वेश्यायें प्रायः गांवों में रहती हैं तथा व्यवसायिक रूप से वेश्यावृत्ति को करती है इनमें नैतिकता का पूर्ण अभाव होता है। मानसिक दृष्टिकोण से भी मंद बुद्धि की होती है। इनका जीवन अस्थिर होता है।

2 धार्मिक वैश्यायें– कुछ वेश्यायें धार्मिक रीति–रिवाज के कारण वेश्यावृति को स्वीकार कर लेती है। मद्रास, बम्बई, उड़ीसा आदि प्रदेशों में वे किसी कारणवश पुजारी को सौप दी जाती हैं। उनका कार्य मंदिर में नाचना–गाना होता है। उसें महन्तों की सेवा भी करनी होती हैं इस सेवा में यौन संतुष्टि भी सम्मिलित होती है। कुछ स्त्रियाँ घर के संघर्षात्मक वातावरण से ऊबकर भाग जाती हैं और कुचक्र में फंसकर वेश्यावृति करने लगती हैं।

3 यौनइच्छा प्रबल वेश्यायें– इस प्रकार की वेश्याओं में यौन इच्छा बहुत प्रबल होती है जिसके कारण काम संतुष्टि के लिए पेशे को स्वीकार कर लेती हैं।

4 छिपकर व्यवसाय करने वाली वेश्यायें– बहुत सी लड़कियाँ वर्तमान औद्योगिक समाज में छिपकर लैंगिक इच्छापूर्ति धनोपार्जन एचं नवीन अनुभव के लिए वेश्यावृति करती हैं। बहुत सी स्त्रियाँ फैशन के वशीभूत होकर अपनी नैतिकता खो देती हैं। वे इस कार्य को फैशन के वश में होकर अस्थायी रूप से स्वीकार कर लेती हैं।

वेश्यावृत्ति के निम्न मुख्य कारण हैं–

1– अनैतिक वातावरण

2–कम आयु में नौकरी

3–अवैध मातृत्व

4–निर्धनता

5–मानसिक अस्थिरता

कोई स्त्री वेश्यावृति को तभी स्वीकार करती है जब उसमें लैंगिक इच्छा की प्रधानता होती है। पेट पालने का कोई साधन नहीं होता है या कुचक्र में फंस जाती है या सामाजिक बहिष्कार हो जाता है।

4. मद्यपान

मद्यपान एक व्यक्तिगत एवं सामाजिक समस्या है। इससे व्यक्ति का विघटन होता है तथा समाज पर इसका कुप्रभाव पड़ता है। नशे की हालत में वह ऐसे कार्य कर बैठता है जो अनुचित होते है। मद्यपान प्रायः दो प्रकार के व्यक्ति करते है (1) मनोस्नायुविकृत व्यक्ति (2) विघटित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति । प्रायः ऐसा देखा जाता है कि असंतुलित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति नशा खोरी अधिक करते हैं। वे अपनी एकान्तता, असुरक्षा की भावना, अशान्ति तथा मानसिक अन्तर्द्वन्द को कम करने के लिए शराब का सेवन करतें हैं। विघटित व्यक्तित्व वाले व्यक्ति शराब पीने की आदत बना लेते हैं । मद्यपान से अनेक मानसिक विकृतियां उत्पन्न हो जाती हैं जिनका वर्णन पूर्व किया जा चुका है।

5. मादक द्रव्य सेवन

(Drug addiction)

शराब की भांति ही मादक द्रव्य भी व्यक्ति एवं समाज के लिए हानिकारक होते हैं। शराब का प्रचलन प्रायः उच्च वर्गो में होता है जबकि मादक द्रव्यों जैसे चरस, गांजा, भंग, अफीम, कोकीन आदि का सेवन निम्न वर्ग के व्यक्तियों में अधिक होता है। द्रव्य–व्यसनी होने के निम्न मुख्य कारण हैं–

1–व्यक्तित्व की अशांन्ति

2–दवा के रूप में सेवन तथा आदत में परिवर्तन

3–द्रव्य च्यसनी व्यक्तियों का साथ

द्रव्य सेवन से स्वास्थ्य, व्यक्तित्व तथा कार्य कुशलता पर बुरा प्रभाव पड़ता हैं। व्यक्तित्व विघटित हो जाता हैं तथा नैतिक अनैतिक का ज्ञान नहीं रहता है।

21

मनोदैहिक विकृतियाँ

1 अभिप्राय

सामान्यतया यह परम्परा रही है कि चिकित्सकीय व्यवसाय ने शारीरिक व्यवधानों एवं रोगों के लिए सदैव दैहिक (Organic) को ही उत्तरदायी माना है। वर्तमान समय में भी नवीन चिकित्सकीय अनुसंधान दैहिक कारकों की खोज में लगे हुये हैं। अतः इन रोगों का उपचार कार्य भी इसी आधार पर किया जाता है। इसके विपरीत मनोव्याधिकी (Psychopathology) में मानसिक विकृतियों का कारण पूर्णतया मनोवैज्ञानिक एवं सांवेगिक माना जाता है। परन्तु आज के अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि इस प्रकार का दृष्टिकोण संकुचित दृष्टिकोण है। कोई भी रोग मूलतः दैहिक अथवा मनोवैज्ञानिक कारण से उत्पन्न हो नहीं सकता हैं। रोग व्यक्ति के किसी विशेष अंग अथवा मन का नहीं होता है बल्कि सम्पूर्ण व्यक्ति शारीरिक एवं मानसिक दोनो प्रकार से विकृत हो जाता है। थकान अथवा जुकाम में व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक दबाव सहन करने की क्षमता में ह्रास होता हैं तथा सांवेगिक व्यवधान अथवा मानसिक विकृति में शारीरिक रोगों का विरोध करने की शारीरिक क्षमता में ह्रास होता है। इस प्रकार यह कहा जा सकता है कि व्यक्ति चाहे स्वस्थ्य हो , रोगग्रस्त हो अथवा किसी भी कार्यात्मक स्थिति में हो, यह पूर्ण (whole) होता है।

मनोदैहिक दृष्टिकोण (Psychosomatic) एक आधुनिक बहुचर्चित चिकित्सा प्रणाली है जिसमें जैविक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक कभी कारकों को रोग के निदान एवं उपचार में महत्व दिया जात है यह दृष्टिकोण न केवल उन रोगों में जिनमें मनोवैज्ञानिक कारक महत्वपूर्ण होते हैं अथवा उनकी कुछ न कुछ भूमिका होती है बल्कि उन रोगों लिए भी उपयोगी समझा जाता हैं जिसमें स्पष्ट रूप से शारीरिक कारक दृष्टिगोचर होते हैं। सर्वांशवादी दृष्टिकोण की उपयोगिता के संबंध में फ्लैन्डर्स डनवर (Flanders Dunbar) के वाक्य अत्यन्त महत्वपूर्ण हैं। उन्होंने कहा है कि प्रायः यह जानना कि रोगी को क्या रोग है की अपेक्षा रोगी किस प्रकार का है यह जानना अति आवश्यक होता है।[1]

2. मनोदैहिक विकृतियों का वर्गीकरण

अमेरिकन साइक्याट्रिक एसोसियेशन ने मनोदैहिक विकारों के 10 प्रकार बतायें हैं:–

1–मनोदैहिक त्वचा विकृतियाँ :– इसमें न्यूरोडर्माटोसिस, एटोपिक डेरयाटिटिस, एक्जिमा एक्ने तथा हाइव्स प्रतिक्रियायें आती है।

2– मनोदैहिक पेश कॉक्लीय विकृतियाँ (Psychophysiologic Musculer skeletal Disorders):– इसमें पीठ में दर्द, माँसपेशियों में ऐंठन, तनावपूर्ण सरदर्द तथा गठिया के कुछ प्रकार आतें हैं।

3–मनोदैहिक श्वसन विकृतियाँ (Psychophysiological Respiratory Disorders):– इन विकृतियों में श्वसनीय दमा, हिक्कफ आदि रोग आते हैं।

4–मनोदैहिक ह्रदयवाहिका विकार (Cardiovascular Disorders) :– ह्रदय गति में वृद्धि रक्त चाप में वृद्धि, वाहिका ऐंठन (Vasculer Spasm) तथा आधा सिर दर्द (Migraine) प्रमुख हैं।

5–मनोदैहिक रुधिर तथा लसीका विकृतियाँ (Hemic and Lymphatic Disorders) :– इसमें रूधिर लवीका संबंधी विकार आतें हैं।

6–मनोदैहिक आमाशय विकृतियाँ (Gasto intestinal Disorders):–म्यूक्सकोलाइटिस, पेप्टिक अल्सर, कोलाइटिस, हाइपर एकटीविटी, आदि रोग आतें हैं।

7–मनोदैहिक जनन मूत्र संबंधी विकृतियाँ (Gemoto-Urinary Disorders) :–मासिक धर्म से संबंधित विकार तथा पीड़ायुक्त मूत्र क्रिया एवं पीड़ायक्त यौन संकुचन आदि विकार आते है।

8–मनोदैहिक अन्तः स्त्रावी विकृतियाँ (Endocrine Disorders) :–हारपर थाइराइडिज्म आवेसिटी तथा अन्य अन्तःस्त्रावी विकार आतें है। इन विकारों में सांवेगिक कारण महत्वपूर्ण भूमिका निभातें हैं।

9–विशेष आंगिक इन्द्रियों से संबंधित विकृतियाँ (Disorders of Organs of Special Sense):–इनमें रूपान्तरिक प्रतिक्रियायें सम्मिलित की जाती हैं।

10–अन्य प्रकार की मनोदैहिक विकृतियाँ (Disorders of other Types):–स्नायु संस्थान में व्यवधान जिसमें सांवेगिक कारक कारणत्मक भूमिका निभाते हैं, सम्मिलित किये जाते हैं।

---

1. डनवर फ्लैन्डर्स — साइकोसेमेटिक डाइग्नोसिस हारपर, न्यूयार्क, 1943, पृ0 23

उपर्लिखित वर्गीकरण के अवलोकन से यह स्पष्ट हो जाता है कि बहुत सी ऐसी शारीरिक विकृतियाँ एवं रोग हैं जिनके सांवेगिक कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। इन विकारों में सर्वप्रथम शारीरिक लक्षण प्रकट होते हैं। रोगी को सांवेगिक कारकों का बिल्कुल ज्ञान नहीं होता है। लेकिन जब तक सांवेगिक तनाव एवं दबाव कम नहीं होता है रोग दूर नहीं होता है।

3. कुछ विशिष्ट प्रतिक्रियायें
(Some Specific Reactions)

यहाँ पर हम कुछ सामान्य प्रकार की मनोदैहिक प्रतिक्रियाओं का वर्णन कर रहें हैं:—

1– आँतों में घाव
(Peptic Ulcer)

अल्सर सांवेगिक तनाव एवं दबाव के कारण उत्पंन्न होता है क्योंकि मानसिक द्वन्दता, चिंता, ग्लानि , दबाव, तनाव आदि कारणों से रासायनिक परिवर्तन होते हैं और उसका प्रभाव आँतों पर पड़ता है। अमेंरिका में पेट के अल्सर के रोगियों की बहुत अधिकता है। यह अनुमान लगाया गया है कि 10 में से 1 व्यक्ति अवश्य ही किसी न किसी स्तर पर इस रोग का शिकार हो जाता हैं।

अल्सर प्रायः आमाशय में अत्यधिक पाचक जूस एसिड के बहाव के कारण उत्पन्न होता है। यद्यपि रोग भोजन में तत्व तथा अन्य आंगिक दशायें अल्सर को उत्पन्न करती है लेकिन आज यह सिद्ध हो गया है कि स्नायुविक तनाव, चिंता, दमित क्रोध तथा अन्य सांवेगिक तनावों का प्रभाव भोजन तथा शारीरिक क्रियाओं पर अधिक होता है। प्रायः सभी व्यक्ति सांवेगिक तनाव अनुभव करते हैं तथा अव्यवस्थित हो जातें हैं । परन्तु कुछ समय के पश्चात वे पुनः सामान्य हो जातें है। लेकिन जब सांवेगिक तनाव अधिक समय तक रहता है— उदाहरण के लिए क्रोध का दमन कर दिया जाता है और उसकी अभिव्यक्ति किसी भी रूप में नहीं हो पाती है तो उसका प्रभाव आमाशय क्रिया पर पड़ता है। पाचक रस अधिक प्रभावित होता है। जिससे आमाशय में घाव हो जाता है।

2– आधा सिर दर्द, तनावपूर्ण सरदर्द
(Migraine and Tension Headache)

यद्यपि सर दर्द आंगिक कारकों के कारण भी उत्पन्न हो सकता हैं परन्तु अधिकांश सरदर्द विशेष कर आधा सिर दर्द में सांवेगिक कारक विशेष महत्वपूर्ण होते हैं। माइग्रेन एक ऐसा सरदर्द है जिसमें सर के किसी एक भाग

में अत्यधिक पीड़ा उत्पन्न होती है और कुछ समय के पश्चात समाप्त हो जाती है। यह दर्द कभी–कभी होता है।

3– दमा
(Asthma)

माइग्रेन के समान ही दमा भी सांवेगिक कारणों से होता है। जब प्रतिक्रियात्मक वायु मार्ग (Reactive Air ways) प्रति बंधित हो जाते हैं तो स्वांस लेने में कठिनाई होने लगती है। दमा का प्रकोप जब होता है तो खाँसी से श्वसन क्रिया में कठिनाई होने लगती है। यह प्रकोप कुछ मिनटों से लेकर घंटों तक का हो सकता है।

4– अकौता
(Eczema)

त्वचा का रक्त कोशिकाओं से अत्यन्त घनिष्ठ सम्बन्ध होता है, अतः यह सांवेगिक स्थिति की सूचक होती है। जब व्यक्ति क्रोधित होता है तों उसकी त्वचा लाल हो जाती है। जब वह अत्यधिक भयभीत हो जाता है तो रक्त कोशिकाओं से वापस आ जाता है जिसके कारण त्वचा पीली पड़ जाती है। प्रायः जो लोग निरन्तर दबाव एवं सांवेगिक अस्त व्यस्त अवस्था में रहतें हैं उनके शरीर में फफोले (Rashes) या अन्य त्वचा प्रतिक्रियायें होती हैं। ऐसी प्रतिक्रियायें मनोवैज्ञानिक तनाव एवं दबाव दूर होने पर दूर हो जाती है। लेकिन त्वचा पर खुजली के चिकत्ते पड़ जातें हैं और त्वचा पर खरोंच ऐसे चिन्ह बन जाते हैं।

5– हृदयगति की तीव्रता
(Hyper tension)

हृदयगति पर सबसें अधिक प्रभाव सांवेगिक तनाव एवं दबाव का पड़ता है। सामान्य दशा में हृदय धड़कन सामान्य रहती है तथा रक्त चाप सापेक्ष रूप से कम रहता है तथा रक्त प्रवाह सामान्य होता है। सांवेगिक तनाव की स्थिति में इन कार्यों में अति सक्रियता आती है। हृदयगति तीव्र हो जाती है। रक्त चाप बढ़ जाता है तथा नाड़ी की गति तीव्र हो जाती है। जब सांवेगिक तनाव की स्थिति समाप्त हो जाती है तो सामान्यतः रक्त चाप सामान्य हो जाता है। परन्तु कुछ व्यक्तियों में सामान्य नहीं हो पाता हैं औरं वे हृदय रोग के रोगी हो जाते हैं।

4. मनोदैहिक विकृतियों के कारण

जैविकीय, मनोवैज्ञानिक, अन्तर्वैयक्तिक, सामाजिक तथा सांस्कृतिक सभी कारक भिन्न–भिन्न भूमिका अदा करतें हैं।

जैविकीय कारक

जैविकीय, कारकों में प्रजनन सम्बन्धी कारक स्वतः प्रतिक्रियाओं में भिन्नता, दैहिक कमजोरी आदि कारक सम्मिलित होते हैं।

कुछ मनोदैहिक विकृतियों में प्रजनन (Genetic) कारक महत्वपूर्ण भूमिका अदा करते हैं। सालोमन[2] (Solomon) ने अने अध्ययन में पाया कि गठिया बुखार व अथराइटिस का कारण प्रजनन कारक होतें हैं।

ग्रेगोरी तथा रोसेन (Gregory and Rosen)ने स्पष्ट प्रदर्शित किया कि अल्सर रोगी के भाई–बहनों को अल्सर सामान्य जनता की अपेक्षा से अधिक दुगुना होने की सम्भावना रहती है। अस्थमा, ब्रोन्काइटिस, माइग्रेन, हाइपर टेन्श्न आदि रोगों की भी इसी प्रकार सम्भावना अधिक रहती है।

व्यक्ति अपनी प्रतिक्रियाओं में भिन्न–भिन्न होता है। यही कारण है कि एक ही स्थिति का भिन्न–भिन्न व्यक्तियों पर भिन्न–भिन्न प्रभाव होता है। इस भिन्नता के कारण दैहिक प्रतिक्रियायें भी भिन्न–भिन्न होती हैं। दैहिक दुर्बलता की भिन्नता के कारण भी व्यक्ति भिन्न–भिन्न प्रत्युत्तर करता है। दैहिक दुर्बलता की भिन्नता के कारण प्रत्येक व्यक्ति किसी विशेष स्थिति के उत्पन्न होने से विकृत हो जाता है। किसी व्यक्ति को जुकाम जल्दी हो जाता है, किसी को धूप जल्दी लग जाती है तथा कोई थोड़ा सा भोजन में अनियमन होने से पेट को रोगी बन जाता है।

मनोवेज्ञानिक तथा अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धी कारक

मनोदैहिक विकृतियों में मनोवैज्ञानिक एवं अन्तर्वैयक्तिक कारक कितने महत्व हैं, इस सम्बन्ध में स्पष्ट प्रमाण अभी तक नहीं प्राप्त हो सके हैं। परन्तु यह स्पष्ट हो गया है कि व्यक्तित्व की भिन्नता, पारिवारिक पर्यावरण एवं संचार प्रक्रिया, दबाव एवं सुरक्षायें तथा स्नायु संस्थान की भिन्नता का मनोदैहिक विशेषताओं पर प्रभाव पड़ता हैं। फलैन्डर्स डनवर (1943 : 1954) ने अपने अध्ययन में पाया कि कुछ विशेषताओं के व्यक्ति मनोदैहिक विकृतियों के लिए अधिक उपयुक्त हैं।

जो व्यक्ति कठोर तथा अति संवेदनशील होते हैं उनकों अति ह्रदय चाप की

---

2. सोलोमन, जी0 एफ0 — इमोशन स्ट्रेस, दि सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम एण्ड इम्यूनिटी, एनाल्स आफ न्यूयार्क एकेडेमी साइंस, 1965, 164, (2), पृ0 335–343

विकृति हो जाती है। ग्राहम[3] (Graham) ने व्यक्ति के दृष्टिकोण तथा समस्या समाधान की प्रतिक्रियाओं के आधार पर व्यक्तियों को बर्गीकृत किया है। अल्सर का रोगी प्रायः अनुभव करता है कि उसको जो कुछ मिलना चाहिए, नहीं मिल रहा है। माइग्रेन का रोगी अनुभव करता है कि उसे कुछ न कुछ प्राप्त करना है। प्रारम्भ में उसमें उत्तेजना रहती है परन्तु बाद में सक्रियता कम हो जाती है। अस्थमा का रोगी स्वयं को तिरस्कृत, अस्वीकृत तथा पृथक समझता हैं। वह एकान्तवासी होता हैं। हृदय रोगी खतरा अधिक अनुभव करता है तथा भयपूर्ण स्थिति की अधिक कल्पना करता है।

अनेक अध्ययनों ने यह सिद्ध कर दिया है कि व्याधिकीय पारिवारिक तरीकों व मनोदैहिक विकृतियों में घनिष्ठ सम्बन्ध होता है। उदाहरण के लिए दमा के रोगियों सें सम्बन्धित किये गयें है। उदाहरण के लिए दमा के रोगियों से सम्बन्धित कियें गयें अध्ययनों से पता चलता है कि अधिकांश रोगियों की मातायें बच्चें के प्रति लगाव नहीं रखती थी। वे तिरस्कृत कर दियें गयें थें। इन रोगियों के पिता निष्क्रिय तथा अपूर्ण पुरुष भूमिका अदा करने वाले होते है।

दबाव के कारण भी मनोदैहिक विकृतियाँ उत्पन्न हो जाती है। अप्रसन्नता, आंतरिक संघर्ष, तनाव आदि प्रतिक्रियायें शारीरिक विरोध करने की शक्ति में ह्रास ला देती है। अनेक अध्ययनों[4] से यह स्पष्ट हो गया है कि व्यक्ति के जीवन

3.	ग्राहमः, डी0 टी0	सम रिसर्च आन साइको फिजियोलोजिक स्पेसिफिसिटी ऐण्ड इट्स रिलेशन टु साइकोसीमेटिक डिजीज, इन आरोजलर ऐण्ड एन0 एस0 ग्रीनफील्ड (इडिटेड) फिजियोलोजिकल कोरिलेट्स आफ साइकोलोजिकल डिसआर्डर, सिकानसिन प्रेस माडिसिन, 1962, पृ0 221—238
4.	वाहसन सी0 ए0	साइकोफिजियोलोजिक कम्प्लीमेंटरिटी इन मेलंगनेन्सीज पास्ट वर्क ऐण्ड फ्यूचर विस्टाज, अनाल्स आफ न्यूयार्क एकेडेमी, साइंस, 1969, 164 पृ0 319—33
	इंजेल, जी0 एल0 तथा एडलर आर0	साइकोलोजिकल फैक्टर्स इन आर्गनिक डिजीज, मेंटल हेल्थ प्रोग्रेस रिपोर्ट, यू0 एस0 डिपार्टमेंट आफ हेल्थ एजुकेशन ऐण्ड वेलफेयर, 1967, पृ0 1—23
	सालोमन जी0 एफ0	इमोशन, स्ट्रेस दि सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम ऐण्ड इम्यूनिटी, एनाल्स आफ न्यूयार्क ऐकेडेमी साइंस, 1969, 164 (2) पृ0 335—343

में जब भी शारीरिक रोग उत्पन्न हुये तब दबाव एवं तनाव की स्थिति अवश्य विद्यमान थी।

व्यक्ति अपने उत्तरदायित्वों को न पूरा करने के लिए भी शारीरिक रोगों का सहारा लेता है। जब उसमें संवेगों की अभिव्यक्ति न होकर दमन हो जाता है परन्तु संवेग का शारीरिक प्रतिक्रिया में अंश बना रहता है जिसके कारण संरचनात्मक विघटन होता है।

सीखने के तरीकों का भी मनोदैहिक विकृतियों से सम्बन्ध होता है। वह किस प्रकार मनोवैज्ञानिक कारकों एवं संवंगों पर नियन्त्रण रखता है, यह निर्भर करता है कि उसको किस प्रकार का प्रशिक्षण दिया गया है। लैंग[5?] (Lang) ने स्पष्ट किया है कि मनोदैहिक विकृतियों की उत्पत्ति आकस्मिक सम्बद्ध प्रत्यावर्तन पुष्टीकरण से होती है।

सामान्य कारक

अर्थराइटिस प्रायः निम्न आय वर्ग में होती है कोलाइटिस, रेशेज तथा हे फीवर उच्च वर्ग में होता है। अल्सर तथा कार्डिक समस्याएँ प्रशसकीय कार्यों में विशेषकर दबाव एवं असुरक्षा के पर्यावरण में होती है।

सामान्यतः जीवन की समस्यायें, तनावपूर्ण स्थितियाँ, असुरक्षा का वातावरण तथा कुंण्ठात्मक प्रवृति मनोदैहिक विकृतियों को उत्पन्न करती है। स्कैवाब[6] (Schwab) के अनुसार सामाजिक शक्तियों के परिवर्तन के साथ–साथ मनोदैहिक रोगों में भी वृद्धि हो रही है इसके रूपों में विस्तार हो रहा है तथा रोगों के लिए व्यक्ति अधिक अनुकूल बनता जा रहा है।

5. उपचार

मनोदैहिक विकृतियों के उपचार के लिए चिकित्सकीय तथा मानेवैज्ञानिक दोनों प्रकार की सेंवाओं की आवश्कता होती हैं।

5.	लैंग, पी0	आटोनामिक कंट्रोल, साइक्याट्री टुडे 1970, 4 (5) पृ0 37–41
6.	स्केवाब, जे0 जे0, मैकजिनिस, एन0एच0, नोरिस, एल0 वी0 तथा स्केवाब, आर0 वी0	साइकोसोमेटिक मेडिसिन ऐण्ड दि कान्टेम्परेरी सोशल सीन, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री 1970, 126 (II) पृ0 108–118

22

बालकों में व्यवहारिक विकृतियाँ

1. प्राक्कथन

बालकों के असमायोजित व्यवहार के अन्तर्गत अनेक प्रकार की विकृतियां आती है। इन व्यवहारिक विकृतियों में उत्तरोत्तर वृद्धि के कारण सामाजिक समस्याओं की वृद्धि हो रही है। यही कारण है कि आज बालकों के व्यवहार को सामान्य बनाये रखने के लिए अधिकाधिक ध्यान दिया जाने लगा है। व्यवहारिक विकृतियों का भी पृथक रूप में अध्ययन प्रारम्भ हुआ है। 19 वीं शताब्दी में इस ओर बहुत कम ध्यान दिया जाता था तथा बाल मानसिक विकृतियों को सामान्य वर्गीकरण के आधार पर ही वर्गीकृत किया जाता था । सन् 1897 ई0 में विटमर ने प्रथम मनोवैज्ञानिक क्लिनिक की स्थापना पेनसिलवानिया विश्वविद्यालय में की जहाँ पर बालकों, किशोरों तथा युवकों को मनोवैज्ञानिक संवायें प्रदान की जाती थीं। सन् 1906 ई0 में टिमर ने एक पत्रिका "दि साइकोलाजिकल क्लीनिक" निकाली जिसमें विभिन्न प्रकार की व्यवहारिक विकृतियों से ग्रसित बालकों का व्यक्तिगत इतिहास प्रकाशित किया।

सन् 1909 ई0 में बाल अपराधी मनोव्याधिकीय संस्थान (Juveneil Psychopathic Institute) की स्थापना शिकागों में विलियम हीली (William Healy) मनोविकार चिकित्सक के तत्वावधान में की गयी। इस संस्थान ने यह सिद्ध किया कि समाजविरोधी व्यवहार करने वाले बालकों को मनोवैज्ञानिक तरीकों से सुधारा जा सकता है। सुधार की इस दिशा में संस्थान ने महत्वपूर्ण कार्य करना प्रारम्भ किया। इस प्रकार हीली तथा विटमर के प्रारम्भिक कार्यो के परिणमस्वरूप बाल निर्देशन केन्द्रों की स्थापना होने लगी।

2. व्यवहारिक विकृतियों के प्रकार

बालकों की निम्न प्रकार की व्यावहारिक विकृतियाँ प्रमुख हैं–

1 स्वतः प्रेम (Autism)

2 अतिसक्रियता (Hyper Kinetic)

3 असामाजीकृत आक्रामक प्रतिक्रियायें (Unsocialised Aggressive Reaction)

4 अतिचिंतित तथा प्रत्याहार प्रतिक्रियायें (Over anxious and Withdrawal Reaction)

5 भगोड़ापन (Runaway Reactions)

6 हकलाना (Stutteting)

7 विकासात्मक विकृतियाँ (Developmantal)

1— स्वतः प्रेम
(Autism)

बालपन के स्वतः प्रेम (Autism) को प्रथम कानर (Kanner) ने सन् 1943 ई0 में वर्णित किया था। इस व्यावहारिक विकृति में बालक वर्तमान स्थिति एवं अवस्था से पूर्व अवस्था एवं स्थिति में प्रतिगमन करता है। वह एकाकी हो जाता है। सामाजिक अन्तःक्रिया में कम या बिल्कुल भाग नहीं लेता है। वह न तो किसी बात पर प्रसन्न होता है और न ही किसी प्रकार की प्रतिक्रियायें एवं प्रत्युत्तर वाह्य पर्यावरण के प्रति करता है। वह बहुत ही कम बोलता है। यदि बोलने की क्षमता रहती भी है तब भी वह बहुत ही कम 'हां' 'ना' के रूप में प्रत्युत्तर करता है। ये बालक श्रवण उत्तेजक (Auditor stimuli) के प्रति सक्रिय उत्तेजना प्रदर्शित करते हैं। वे अपनी ही आवाज के प्रति भी उग्र हो जाते हैं। विचित्र प्रकार का व्यवहार तथा गतियों (movements) की पुनरावृत्ति करते हैं।

इन बालकों की कार्यक्षमता में ह्रास आ जाता है। वे किसी प्रकार का व्यवधान सहन नहीं कर पाते है। उदाहरण के लिए यदि बालक किसी खिलौने के साथ खेल रहा है और यदि उसको उस स्थान से उठाकर दूसरे स्थान पर रख दिया जाता है तो बालक अत्यन्त क्रोधित हो जाता है। वह इस अवस्था में जोर जोर से चिल्लाने भी लगता है।

मनोविदलता से ग्रसित बालक तथा स्वतः प्रेमी बालक में अन्तर होता है। प्रथम प्रकार के बालक का सामान्य विकास होता है। वह 'सम्बन्ध ' में भाग लेता है तथा सामाजिक अन्तःक्रिया का समुचित विकास करता है। उसमें प्रत्याहार विचार व्यवधान, सांवेगिक विकृतियाँ बाद में उत्पन्न होती हैं। स्वतःप्रेमी बालक प्रारम्भिक अवस्था से ही सामाजिक पर्यावरण के प्रति विस्मृतिपूर्ण (Oblivious) होता है। वेटेलहीम (Bettalheim) के अनुसार मनोविदल बालक दुनियाँ से

प्रत्याहार करता है जबकि स्वतःप्रेमी बालक इसमें प्रवेश करने में ही असफल होता है।[1]

स्वतःप्रेमी व्यवहार के कारण

दस व्यावहारिक विकृति का मस्तिष्क विकार से कोई सम्बन्ध नहीं होता है।[2?] यह विकृति, इस प्रकार, वंशानुगत नहीं होती हैं परन्तु यह सम्भव होता है कि किसी प्रकार दोषपूर्ण पैतृक (Genes) जब मिलते है। तो उसके प्रभाव के परिणामस्वरूप उस बालक में इस प्रकार के व्यवहार की उत्पत्ति होती है। कान्नेर (Kanner)[3] के अनुसार यह जन्मजात व्यावहारिक विकृति शीतल तथा अप्रत्युत्तरदायी माता (Cold and Unresponsive) के कारण उत्पन्न होती है। पहली विशेषता के कारण बालक का सामाजिक प्रत्याहार होता है और दूसरी विशेषता के कारण प्रथक्ता (Isolation) के लक्षण स्थायी हो जाते हैं।

पैतृक तिरस्कार का भी बालक के व्यवहार पर प्रभाव पड़ता है। परन्तु इस सम्बन्ध में कोई स्पष्ट सम्बन्ध अभी तक स्थापित नहीं किया जा सका है। अतः न तो पूर्णरूप से प्रजनन सम्बन्धी दोषों के कारण यह विकृति उत्पन्न होती है और नही अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धें के कारण,बल्कि दोनों का प्रभाव पड़ता है।

उपचार

व्यवहार परिवर्तन प्रविधि (जैसे प्रारूपण (Modeling) आकृति निर्माण पुष्टीकरण) के द्वारा स्वतः प्रेमी व्यवहार को बदला जा सकता है। परन्तु इन बालकों के लिए लम्बी अवधि के प्रशिक्षण एवं शिक्षण की अवश्कता होती है। सामाजिक सम्बन्धों में भाग लेने के प्रशिक्षण के द्वारा उनमें परिवर्तन लाया जा सकता है।

2. अतिसक्रियतात्मक प्रतिक्रियायें
(Hyper kinetic)

इस प्रकार की व्यावहारिक विकृति 8 वर्ष की आयु के पूर्व ही उत्पन्न होती है तथा धीरे–धीरे समाप्त हो जाती है। इस विकृति में अति अथवा

---

1. बेटेलहीम वी, लउराई — साइक्याट्री टुडे, 1962, 2 (12) पृ0 21
2. ट्रफर्ट, डी0 ए0 — इपिडेमिओलोजी आफ इनफैन्टाइल आटुइज्म, आर्काइव आफ जर्नल साइक्याट्री 1970, 22, पृ0 431–438
3. कान्नेर, एल0 — आटुइज्म डिसटरवेन्सस आफ एफक्टिव कानटैन्ट नर्वस चाइल्ड 1943, 2, पृ0 217–240

अतिरंजित मांसपेशियों की क्रियात्मकता होती है। इस के अतिरिक्त ध्यान केन्द्रीकरण की कमी, उलझन, व्यग्रता, मूलप्रवृत्यात्मकता, गत्यात्मक सहयोग की कमी, असहिष्णुता सांवेगिक अस्थिरता परिवर्तनशील विचार, अतिसंवेदनशीलता, आदि प्रमुख लक्षण हैं । ये बालक बहुत अधिक बातचीत करते हैं सामजिक मान्यताओं एवं निषेधों का ध्यान नहीं रखतें हैं। वे चिंतातुर नहीं होते हैं। केचल कभी कभी वाह्य व्यवहार से चिंता के लक्षण प्रतीत होते हैं। स्कूल में उनकी उपलब्धि बहुत कमजोंर होती है। कार्य सीखने में अधिक समय लगाते हैं तथा पढ़ाई में मन नहीं लगता है।

कारण

अतिसक्रियात्मक व्यवहार प्रजनन दोष अथवा वंशसूत्र दोष के कारण नहीं उत्पन्न होता है। जिन बालकों में यह विकृति प्रारम्भिक अवस्था में प्रारम्भ हो जाती है उसका कारण मस्तिष्क की अकार्यात्मकता होती है। मस्तिष्क में आघात के कारण भी व्यावहारिक विकृति हो जाती है। जब व्यवहारिक विकृति बाल्यावस्था में उत्पन्न होती है तो इसका कारण पारिवारिक तथा अन्य सम्बन्धित दबाव एवं तनावपूर्ण स्थितियाँ होती है। जिसके कारण सांवेगिक अस्तव्यस्तता हो जाती है।

उपचार

अतिसक्रियात्मक व्यंवहार विकृति में उपचार के लिए शिक्षा कार्यक्रम की अत्यन्त आवश्यकता होती है। माता पिता को बालक के साथ उचित व्यवहार करने की शिक्षा प्रदान करना महत्वपूर्ण कार्य होता है। बालकों में भी सकारात्मक पुष्टीकरण द्वारा व्यवहारिक परिवर्तन लाया जा सकता है। व्यवहार परिवर्तन प्रविधियों का उपयोग भी अर्थपूर्ण होता है।

3– असमाजीकृत उग्रात्मक प्रतिक्रियायें

बालकों की असमाजीकृत उग्रात्मक प्रतिक्रियाओं के अन्तर्गत प्रत्यक्ष अथवा अप्रत्यक्ष उग्रता, अवज्ञा, शारीरिक एवं मौखिक आक्रामकता, लड़ाई झगड़े की प्रवृत्ति, ध्वन्सात्मकता, आदि विशेषतायें आती हैं। चोरी करना, झूठ बोलना, अपराध तथा लैंगिक अपरारध करना भी ऐसे बालकों की आदत होती है। आग लगाना तथा हत्या करना भी विशेष परिस्थिति में बालक के व्यवहार का अंग बन जाता है।

कारण

ऐसे व्यवहार के लिए परिवार का वातावरण मुख्य रूप से उत्तरदायी होता है। माता पिता की अस्वीकृति बालक के लिए कठोर नियंत्रण, अत्यधिक

अनुशासन, शरीरिक दण्ड प्रणाली का अत्यधिक उपयोंग आदि अनेक अवांछनीय विशेषताओं के कारण बालक सामान्य व्यवहार का विकास नहीं कर पाता हैं जब माता–पिता में सम्बन्ध तनावपूर्ण होते हैं तो बालक को उचित प्रेम, वात्सल्य निर्देशन, स्वीकृति तथा प्रदर्शन नहीं मिल पाता है। इस अभाव के कारण बालक में प्रतिशोध की भावना उत्पन्न हो जाती है। उसकी क्रियाओं में आक्रामकता होती है। धीरे–धीरे यह प्रवृति व्यवहार का अंग बन जाती है।

उपचार

जब तक बालक की जीवन शैली व्यवस्था में परिवर्तन नहीं लाया जायेगा–तब तक कोई भी उपचार असमाजीकृत आक्रामक बालकों लिए उपयुक्त एवं प्रभावकारी सिद्ध नहीं होगा। उन बालकों के साथ उपचार कार्य और भी कठिन होगा जिनके माता पिता में असमायोंजन के तत्व विद्यमान हैं। जिन माताओं के पास अत्यधिक कार्य होता है जिसके कारण बालक पर ध्यान नहीं दे सकती हैं उनके साथ भी उपचार कार्य कठिन है। सबसे पहले बालक का घर से किसी संस्था में हस्तांतरण आवश्यक होता है जहाँ पर वह तनावपूर्ण स्थिति की उपस्थिति अनुभव न करें। परन्तु घर वापस जाने की स्थिति में घर का वातावरण परिवर्तित अवश्य होना चाहिए। बालक का पुनर्प्रतिस्थापन होना अत्यन्त आवश्यक होता है। सुधारात्मक एवं मनोवैज्ञानिक तरीकों द्वारा बालक के व्यवहार में परिवर्तन जाया जा सकता है। व्यवहारिक चिकित्सा के उपयोग द्वारा अधिक अनुकूल स्थिति को उत्पन्न किया जा सकता है। व्यावहारिक चिकित्सा न केवल बालक के लिए महत्वपूर्ण एवं आवश्यक है बल्कि माता पिता के लिए भी आवश्यक हैं।

4– भगोड़ापन

(Runaway Reactions)

व्यवहार विकृत बालक प्रायः घर से भाग जाते हैं और बाहर जा कर दुर्गुणों का शिकार हो जाते हैं। वे कभी कम समय के लिए तथा कभी अधिक समय के लिए घर के वातावरण से दूर होकर दूसरे परिववार वालों के साथ रहतें हैं, जीविका कमाने का कार्य करते हैं, साथ साथ अनैतिक एवं समाजविरोधी कार्यो को भी करते हैं । ऐसे बालकों को चाहे जितना समझाया जाय वे घर में रहकर सामान्य जीवन करने में असमर्थ होते हैं।

भगोड़ेपन का कारण

जेनकिन्स के अनुसार असामाजीकृत आक्रामक व्यवहार तथा भगोडापन एक ही सिक्के के दो पहलू हैं। दोनों दशाओं में बालक अपने माता पिता के द्वारा

तिरस्कृत होता है। उसकी जीवन स्थिति दुःखदायी होती है। एक स्थिति में बालक अपनी भग्नाशा को असमाजीकृत आक्रामक व्यवहार द्वारा तथा दूसरी स्थिति में घर से भाग कर प्रतिक्रिया प्रदर्शित करता है।

प्रायः भगोडेपन के विशेषीकृत कारण अस्पष्ट हैं। परन्तु मुख्य निम्न कारण हैं : घर की प्रतिकूल स्थितियाँ, संघर्षपूर्ण जीवन, कटु सम्बन्ध, कठोर नियंत्रण, प्यार एवं वात्सल्य का अत्यन्त अभाव तिरस्कार, आदि। भगोड़ेपन की समस्या प्रायः वास्तविकता से दूर जाने अथवा वास्तविकता को न स्वीकार करने की स्थिति होती हैं।

उपचार

भगोडेपन के लिए भी उसी प्राकर की उपचार प्रक्रिया की आवश्यकता होती है जिस प्रकार अन्य बालक की व्यवहार विकृतियों में होती है। परिवार चिकित्सा एक महत्वपूर्ण साधन है जिसके द्वारा बालक की इस प्रतिक्रिया में परिवर्तन लाया जा सकता है।

5– अतिचिंतात्मक एवं प्रत्याहार प्रतिक्रियायें

अतिचिंतात्मक तथा प्रत्याहार प्रतिक्रिया में निम्नलिखित लक्षण प्रकट होते हैं :–

1–अतिसंवेदनशीलता

2–अवास्तविक भय

3–शर्म तथा संकोच

4–अपूर्णता की भावना

5–निद्रा व्यवधान

6–विद्यालय का भय

इस प्रकार के बालक दूसरों पर आश्रित होने की आदत रखते हैं तथा हर प्रकार के कार्य में सहायता की आकांक्षा करते हैं। अतिचिंतात्मक प्रतिक्रिया की स्थिति में अवास्तविक भय, अति संवेदनशीलता आत्मकेंद्रीकरण, भयानक स्वप्न तथा अतिचिंता आदि लक्षण प्रकट होते हैं । बालक में आत्म विश्वास की कमी होंती है जिसके कारण अपरिपक्वता के लक्षण प्रकट होते हैं। वे बालक माता पिता पर अतिनिर्भर रहतें है। प्रत्याहार प्रतिक्रिया में बालक वाह्य वातावरण से सम्बन्ध विच्छेद कर लेता है।

कारण

निम्नलिखित कारक अतिचिंतात्मक एवं प्रत्याहार प्रतिक्रिया में अत्यन्त महत्वपूर्ण है :–

1–अप्रत्याशित संरचनात्मक संवेदना।

2–माता पिता द्वारा बालक की अति देख रेख, अति परवाह।

3–बालक को स्वतंत्र कार्य एवं विचार के कम अवसर।

4–माता पिता का बालक के साथ दोषपूर्ण व्यवहार।

5–अतिचिंतात्मक माता पिता।

6–दोषपूर्ण अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध तरीके।

उपचार

विकास के साथ साथ अनुभव बढ़ता है जिसके परिणाम स्वरूप वास्तविकता का ज्ञान होता है। अतः आवश्यक है कि बालक को ऐसे पर्यावरण में रखा जाय जिहाँ पर सहायता के साथ साथ उत्तरदायित्व ग्रहण करने की भी योग्यता विकसित हो। विद्यालय का पर्यावरण उत्साहवर्धक होना चाहिए। जिसमें बालक रुचि, लगाव, सत्बन्ध तथा आत्मीयता अनुभव कर सके। व्यवहारिक चिकित्सा ऐसे बालकों के लिए महत्वपूर्ण होती है।

6– हकलाना
(Stuttering)

हकलाना वाणी विकार है जिसमें बालक वाक्यों को पूरा करने में कठिनाई अनुभव करता है। उसकी जीभ समान कार्य नहीं करती हैं जिसके कारण शब्द अटपटे स्फुरित होते हैं। उसकी आवाज तथा वाक्य लड़खडातें हुये प्रकट होते हैं। यह वाणी विकार साधारण से लेकर गम्भीर अवस्था (गूंगापन) तक प्रकट होता है। साधारण विकृति (क क क कमल) में अर्ध वाक्य के प्रथम शब्द की कई बार पुनरावृत्ति होती है तथा गम्भीर अवस्था में बालक शब्द उच्चारण ही नहीं कर पाता है। कुछ बालक सामान्य स्थिति में तो स्पष्ट शब्द उच्चारण कर लेते हैं लेकिन जब दबाव एवं तनावपूर्ण स्थिति उत्पन्न होती है तो शब्द स्पष्ट नहीं निकलते हैं। हकलाना वाणी विकार प्रायः प्रारम्भिक काल से ही प्रकट होता है। यह अधिकांश घटनायें 2 से 4 वर्ष की आयु के अन्तर्गत ही प्रारम्भ होती हैं।

कारण

हकलाने में निम्नलिखित कारक महत्वपूर्ण होते हैं :–

1–प्रजनन सम्बन्धी तथा स्नयविक कारक :–जिन बालकों के माता पिता हकलाते हैं वे बच्चे भी अधिकांशतः हकलाने लगते हैं क्योंकि बालक सीखने की प्रक्रिया द्वारा इस विकृति का विकास करता है। शारीरिक व्याधियों विशेषकर स्नायुविक दोषों के कारण भी बालक हकलाने लगता है।

2–सीखा हुआ व्यवहार :– आज अधिकांश मनोवैज्ञानिक अन्वेषक इस बात पर सहमत हैं। कि हकलाना एक सीखा हुआ व्यवहार है। जो माता पिता बालक की वाणी विकास में अधिक रूचि लेते हैं, चिंतित रहते हैं साधारण से साधारण शब्द अशुद्धता पर समझाते एवं डाटते हैं उनके बालकों के मन में भय एवं चिंता के लक्षण स्पष्ट हो जाते हैं । वह बोलने के साथ ही साथ शुद्ध अशुद्ध का विन्यास करता है जिसके कारण शब्द एवं वाक्य तारतम्यता में स्पष्ट नहीं होते हैं।

3–दबाव एवं भूमिका व्यवहार :– प्रायः व्यक्ति जब भयानक एवं भयभीत स्थिति का सामना करता है तो उसमें वाणी विकार स्वतः उत्पन्न हो जाता है। इस स्थिति में दोषपूर्ण प्रत्युत्तर सामान्य रूप से प्रकट होते हैं । इस प्रकार यह सामान्यीकृत किया जा सकता है कि वे दबावपूर्ण स्थितियाँ जो अपूर्णता, आत्मचेतना, चिंता, भय तथा तनाव उत्पन्न करती हैं गत्यात्मक कार्यों में विघटन उत्पन्न कर देती हैं। अतः जिन बालकों की भूमिका सामान्य नहीं होती हैं वे बालक हकलाने लगते हैं।

उपचार

इस वाणी विकार को मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक चिकित्सा द्वारा दूर किया जा सकता है। प्रतिकूल सम्बद्ध प्रत्यावर्तन, असंवेदीकरण शब्द, वाक्य अभ्यास, प्रशिक्षण, सम्मोहन, वाक्य स्पष्टता के लिए पुष्टीकरण आदि तरीके प्रमुख है।

7– अन्य विकासात्मक विकृतियाँ

1) अनियंत्रित पेशाब

(Enuresis)

जब बालक पेशाब क्रिया पर नियंत्रण नहीं रख पाता है तो वह पहने वस्त्रों में ही पेशाब कर देता है। इस क्रिया को विकृति तभी माना जाता है जब 3 वर्ष की आयु के पश्चात बालक पेशाब पर नियंत्रण नही रख पाता है। यह व्यवहार प्रायः सोते समय होता है। बालक प्रायः स्वप्न देखता है कि वह पेशाबघर

में या नाली में पेशाब कर रहा है। कपड़े भीग जाने पर वह जागता है । इस प्रकार की क्रिया एक बार से लेकर कई बार एक ही रात में हो सकती है। सामान्य रूप से अनियंत्रित मूत्रत्याग सप्ताह में 2 से 5 बार तक होता हैं। बिस्तर पर पेशाब करने के कई कारण होते हैं। आंगिक दोष के कारण भी बालक बिस्तर पर पेशाब कर देता है। इसके अतिरिक्त दोषपूर्ण सीखने की पद्धति के कारण बालक में वांछित प्रत्युत्तर की क्षमताओं का विकास नहीं हो पाता है। जिससे अवरोधक अपना कार्य करने में समर्थ नहीं होते हैं। व्यक्तिगत अपरिपक्वता तथा सांवेगिक समस्याओं के कारण बालक अस्थिर एवं असंतुलित रहता है। परिवार की दोषपूर्ण संचार व्यवस्था एवं अपूर्ण अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध भी बालक पर विपरीत प्रभाव डालते हैं। कभी कभी जब नये शिशु का जन्म होता है तो बड़ा बालक प्रतिगमन करता है और इसके परिणामस्वरूप विस्तर पर पेशाब करने लगता है।

इस व्यवहारक वृत्ति को औषधि चिकित्सा तथा सम्बद्ध प्रत्यावर्तन द्वारा दूर किया जा सकता है। मनोवैज्ञानिक आलम्बन तथा मनोचिकित्सा का उपयोग अधिक लाभदायक होता है।

2) नाखून काटना

(Nail Biting)

लगभग 20 प्रतिशत बालक किसी न किसी समय नाखून काटने की व्यवहारिक विकृति का विकास करते हैं। यह आदत मुख्य रूप से चिंता के कारण उत्पन्न होती है और क्रिया के करने से चिंता में कमी आती है। बालक सोचता है कि उसे कुछ कार्य अपनी चिंता को दूर करने के लिए करना है। परन्तु जब उसकी समझ में नहीं आता है अथवा समझने में देर लगती हैं, तो वह इस बीच अँगुलियों के नाखून काटने लगता है और इस प्रकार अपनी चिंता में कमी लाता है।

इस विकृति को व्यवहारिक चिकित्सा के द्वारा दूर किया जा सकता है।

3) स्वतः स्पन्दन

(Tics)

इस विकृति में शरीर का कोई अंग स्वतः स्पन्दित होता है। माँस पेशियों में प्रायः इस प्रकार का स्पन्दन अधिक होता है। इसमें मुख्य रूप से पलकों को जल्दी जल्दी बन्द करना, मुँह ऐंठना, ओठ मोड़ना तथा उस पर जीभ घुमाना, गला साफ करने के लिए खखारना, नाक से जोर जोर साँस लेना आदि प्रतिक्रियायें सम्मिलित होती हैं। व्यक्ति प्रायः इस प्रकार का स्पन्दन बिना ज्ञान के करता है।

यद्यपि स्वतः स्पन्दन का आंगिक कारण भी हो सकता है परन्तु मुख्य रूप से इसके विकास के लिए मनोवैज्ञानिक कारक उत्तरदायी होते है। सामाजिक परिस्थिति में तनाव एवं दबाव के कारण विकृति का विकास होता है तथा बार बार दूसरों द्वारा आपत्ति किये जाने पर विकृति में विषमता आती हैं।

स्वतः स्पन्दन को औषधि मनोचिकित्सा तथा सम्बद्ध प्रत्यावर्तन प्रविधि द्वारा ठीक किया जा सकता है।

4) निद्रागमन

(Sleepwalking or Somnambulism)

इस विकृति के सम्बन्ध में कोई विश्वसनीय आंकड़े तो उपलब्ध नहीं है परन्तु अनुमान किया जाता है कि 5 प्रतिशत बालक नियमित अथवा यदा कदा सोते सोते चलने की आदत रखते हैं। प्रायः बालक सामन्य अवस्था में सोने के लिए बिस्तर पर जाता है परन्तु दो या 3 घंटे के बाद वह सोते सोते उठ कर चलने लगता है। वह एक कमरे से दूसरे कमरे अथवा घर के बाहर भी चला जाता हैं इस स्थिति में यह अनेक क्रियायें भी करता है और कुछ समय पश्चात वापस बिस्तर पर आकर फिर यथावत् लेट जाता है। प्रातः जागने पर उसे इस प्रकार के व्यवहार का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता है।

निद्रागमन के निश्चित कारणों की खोज अभी तक नहीं की जा सकी है परन्तु चिंता उत्पन्न करने वाली परिस्थितियाँ जो हुई है अथवा घटित होने की सम्भावना है मुख्य रूप से निद्रागमन के लिए उत्तरदायी होती हैं यह विकृति प्रायः समय की गति के साथ स्वतः ठीक हो जाती है।

23

लैंगिक विकास एवं लैंगिक विकृतियाँ

1. लैंगिकता का अर्थ

व्यक्ति के व्यक्तित्व का विकास लैंगिक विकास पर निर्भर होता हैं। फ्रायड ने लिंग के महत्व को लिविडो के रूप में कहकर विश्लेषित किया है । उन्होनें इसका प्रयोग लैगिक चालकों तथा लैंगिक मूल प्रवत्तियों के लिए किया है। उन्होंने लैंगिक चालकों को मानव व्यवहार में केन्द्रीय स्थान प्रदान किया है। लैंगिक (Sexual) के अन्तर्गत सभी चालकों (Drives) **को** सम्मिलित किया जाता है जो कि जैविक स्रोतों पर आधारित होते हैं एवं जिनसे सुखद अनुभव प्राप्त होता है तथा जिनका उद्देश्य लोगों से किसी प्रकार का सम्बन्ध निर्माण करना होता है। इस प्रकार लैंगिक चालकों की दो विशेंषतायें है जोकि अन्य चालकों से उन्हें पृथक करती हैं। लैंगिक चालकों से सम्बन्धित क्रियाओं में चाहे मुँह तथा होठ का उपयोग हो जैसे खाने चूसने तथा चुम्बन लेने में, अथवा लैंगिक अंगों का उपयोग जैसे सम्भोग, सभी स्थितियों में तनाव का अति शीघ्र समापन होता है। तथा व्यक्ति को सुखद अनुभव प्राप्त होता है। सम्बद्धता (Affiliation) में भी लैंगिक चालक उत्पन्न होते हैं। वे मानव मात्र की अन्तःक्रिया के मुख्य स्रोत हैं जिनसे एक दूसरे के प्रति सकारात्मक सांवेगिक भावनाओं की अभिव्यक्ति होती हैं। लैगिक चालकों का सम्बद्धता (Affiliative) तत्व शैशव काल तथा बालपन (Childhood) में स्पष्ट नहीं होता है क्योंकि इन स्तरों में शिशु स्वयं या अपने किसी भाग से सम्बन्धित लैंगिक आनन्द प्राप्त करता है। आत्म उत्तेजना के द्वारा वह सुख का अनुभव करता है।

लैंगिक चालकों के सम्बद्धात्मक तत्व को लैंगिक चालकों की कैथेक्सिस (Cathexis) के रूप में समझा जा सकता है। लैंगिक चालकों की अभिव्यक्ति किसी उद्देश्य (Object) के प्रति, चाहे उसका अपना शरीर हो, चाहे अन्य व्यक्ति का शरीर हो अथवा कोई वस्तु या स्थिति हो होती है। लैंगिक चालक सामान्य मानवीय दशाओं में महत्वपूर्ण होते हैं क्योकि वे सभी प्रकार के मानवीय सम्बन्धों, बालक तथा उसके स्वयं के मध्य, बालक तथा उसके साथियों के मध्य, पुरुष तथा स्त्री के मध्य, आदि के आधार होते हैं तथा जब व्यक्ति सम्बन्ध स्थापित

करने में असफल हो जाता है तो उसमें व्यवधान उत्पन्न हो जाते हैं तथा लैंगिक समायोजन विघटित हो जाता है।

लैंगिक चालक 3 कारकों के कारण महत्वपूर्ण होतें हैं:–

1–वे मानवीय सम्बन्धों के आधार का निर्माण करते हैं।

2–वे सदैव व्यक्ति के साथ तथा उसमें अन्तर्निहित रहते हैं। लैंगिक चालकों की उत्पत्ति दैहिक होती है अतः वे सदैव विद्यमान रहते हैं। व्यक्ति इनसे दूर नहीं जा सकता है। उनकी निरन्तर अभिव्यक्ति होती है। इसके साथ ही साथ तीव्रता की विशेषता भी होती है। अर्थात लैंगिक चालकों की संतुष्टि तीव्र तथा प्रभावात्मक तरीके से होना सामान्य कार्यात्मकता के लियें आवश्यक होती है।

3–लैंगिक चालक अतिरिक्त शक्ति (Surplus power) प्रदान करते हैं।

2. जन्म प्रक्रिया का महत्व (Importance of birth process)

आटो रैंक ने सर्वप्रथम व्यक्तित्व विकास में जन्म प्रक्रिया को महत्व दिया[1] । नवजात शिशु जब प्रथम बार माता से पृथक होता है तो उसको अत्यन्त कष्ट एवं असुरक्षा की भवना का सामना करना पड़ता है। उसमें भग्नाशा के लक्षण उत्पन्न होते हैं। चिंता प्रतिक्रिया का प्रारम्भ यहीं से होता है। फ्रायड[2] ने भी कहा है कि जन्म की प्रक्रिया प्रथम विषम एवं खतरनाक स्थिति उत्पन्न करती है जिससे चिन्ता प्रतिक्रिया की नींव स्थिर होती है। ग्रीनक्रे (Greenacre)[3] ने अपने प्रयोगाात्मक अध्ययनों एवं आंकड़ों का विश्लेषण करके कहा कि चिंता प्रत्युत्तर जो कि प्रजनन क्रिया से निश्चित होता हैं सर्वप्रथम प्रत्यावर्तित स्तर (Reflex level) का अवयव के चिड़चिड़ापन के प्रत्युत्तरों से प्रारम्भ होता हैं गर्भावस्था में स्थिति की विभिन्नता तथा जन्म प्रक्रिया की भिन्नता के कारण अवयव की चिंता प्रतिक्रिया बढ़ जाती है तथा चिंता उत्पन्न करने की क्षमता में वृद्धि होती है जिससे भविष्य के जीवन में विषम प्रत्युत्तर होते हैं। अपरिपक्व शिशुओं (पूर्ण अवधि के नहीं) में चिंता के लक्षण अधिक होते हैं क्योंकि ऐसे शिशु

1. रैंक, ओटो — दि ट्रूमा आफ बर्थ, हरकोर्ट ब्रेस, न्यूयार्क 1979
2. फ्रायड सिगमण्ड — दि प्राबुलम आफ एन्जाइटी, नार्टन, न्यूयार्क 1936
3. ग्रीन क्रे0 पी0 — दि प्रीडिसपोजीशन टु एन्जाइटी, चैप्टर इन टाम्पकिन्स एस0एस0 (इडिटेड) कन्टमपोररी साइकोपैथालोजी, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैम्ब्रिज, 1943

दैहिक कारणों से उत्पन्न चिंता को शारीरिक सुरक्षात्मक तरीकों से दूर करने में समर्थ नहीं होते है। गर्भावस्था में माता की सांवेगिक एवं मनोवैज्ञानिक स्थिति का भी बालक की चिंता प्रतिक्रिया पर प्रभाव पड़ता हैं। यह प्रभाव अत्यन्त विषम एंव महत्वपूर्ण होता है।

3. लैंगिक विकास के स्तर
(Stages of Sexual Development)

लैंकिग विकास को मनोवैज्ञानिकों ने 5 स्तरों में वर्गीकृत किया है जिसमें भिन्न–भिन्न लैंगिक लक्षण बालक में उत्पन्न होते हैं परंतु ये अवस्थायें एक दूसरे से अत्यधिक सम्बन्धित हैं और उनको पूर्णतया पृथक नहीं किया जा सकता है। लैंगिक विकास को स्पष्ट करने के लिए निम्न अवस्थाओं का वर्णन करना आवश्यक प्रतीत होता हैं।

1–मौखिक अवस्था (Oral Stage)

2–गुदा अवस्था (Anal Stage)

3–शैस्नावस्था (Phallic Stage)

4–अव्यक्त अवस्था (Latency Stage)

5–जननेन्द्रिय अवस्था (Genital Stage)

1–मौखिक अवस्था

मौखिक अवस्था को दो स्तरों में विभाजित किया जा सकता है।

(अ) चूषण स्तर
(Sucking Stage)

चूषण अवस्था जन्म से लेकर 8 माह मी आयु तक चलती है। जन्म के समय वह अत्यन्त असहाय होता है। जिसके कारण चिंता के लक्षण उत्पन्न होते हैं। नवजात शिशु को श्वसन स्वतन्त्रता तथा उसके उत्तरदायित्व को ग्रहण करने के कारण भग्नाशा का अनुभव होता है। उसमें आत्म, अहं तथा पराहं, वास्तविकता का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। उसकी अवश्यकतायें सीमित होती है। जब भूखा होता है तो भोजन की आवश्यकता होती है। वस्त्रों की आवश्यकता उसे स्वयं नहीं अनुभव होती हैं। उसके भूख की संतुष्टि माता के स्तनपान से होती है। जब वह भूखा होता है अथवा मलमूत्र त्यागने में कोई कठिनाई अनुभव करता है उस समय उसको मनोवैज्ञानिक दुखद परिस्थिति का सामना करना पड़ता है। माता के स्तनपान से भूख की संतुष्टि करना बालक की मनोवैज्ञानिक

एवं शारीरिक महत्वपूर्ण क्रिया होती है। इसी कारण मनोवैज्ञानिकों ने इस स्तर को मौखिक चूषण स्तर कहा कहा है। इस स्तर में स्तनपान से ही लैंगिक सुख प्राप्त होता है जिसके कारण मुँह तथा मौखिक क्षेत्र लैंगिकता के स्रोत होतें है। बालक को अपनी उग्रात्मक इच्छाओं का चेतन स्तर पर ज्ञान नहीं होता हैं। वह कामुकावस्था (Erotic) के चालक से संप्रेरित होता हैं जो मुँह में केन्द्रित होता है। मूल प्रवृत्यात्मक जीवन उभयामुखी होता है क्योंकि उसको अपने तथा अपनी माता के विषय में पृथक–पृथक ज्ञान नहीं होता है। उसको लैगिक संतोष त्वचा तथा शारीरिक अंगों से प्राप्त होता है लेकिन उसको ज्ञान नहीं होता है कि वह अपने को प्रेम कर रहा है। लैंगिक सन्तोष को स्वतः पूर्ण कामावस्था (Auto-erotic stage) कहते हैं। उसका सम्पूर्ण दृष्टिकोण निष्क्रिय परतंत्रायक (Passive Dependence) होता हैं।

यद्यपि कुछ बालक इस स्तर से कभी अधिक विकास एवं उन्नति नहीं करतें है (मानसिक मंदित बालक) सामान्य बालक स्तनपान के अलगाव से उत्पन्न भग्नाशा के कारण भिन्न वैयक्तिक संरचना का विकास करता है। लगभग 8 माह की अवस्था में स्तनपान का अलगाव (Weaning) बालक के जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाने लगता है। उसको दूध के अतिरिक्त अन्य भोज्य पदार्थ भी दिया जाने लगता है। बालक के लिए यह आघात्मक अनुभव (Traumatic experience) होता है। इस स्थिति में उसे चूषण के अतिरिक्त अन्य आत्म निर्देशित क्रियाओं कों अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि के लिए करना आवश्यक हो जाता है। इस समय से वाह्य वास्तविकता तथा अपने विषय में ज्ञान होते हैं जो कि उग्रात्मक व्यवहार के प्रदर्शन के लिए यंत्र का कार्य करते हैं। बालक अपने दाँतों द्वारा असंतोष की स्थिति में काटता है। इस संघर्षात्मक स्थिति में आडिपस का प्रारम्भ होता हैं। बालक सम्पूर्ण चूषण काल में सुखवादी सिद्धांत से नियंत्रित एवं निर्देशित होता है। इदम का प्रमुख एवं पूर्ण प्रभुत्व होता है। मौखिक चूषण काल के अन्तिम समय में अहं का विकास प्रारम्भ हो जाता है तथा उसको वास्तविकता का ज्ञान भी होना प्रारंभ होता है। परन्तु इससे यह अनुमान नहीं लगाना चाहिए कि अहं तथा वास्तविकता का विकास ठीक जन्म के 8 माह बाद प्रारम्भ होता है। वास्तव में यह एक निरन्तर चलने वाली प्रक्रिया है।

(ब) मौखिक काटने का स्तर
(Oral biting Stage)

बालक में दाँत निकलने प्रारम्भ होते हैं तब वह उग्रात्मक व्यवहार प्रदर्शन करने में समर्थ हो जाता है जिससे वह विकास के नये स्तर में प्रवेश

करता है। यह अवस्था 8 महीने से 18 महीने तक रहती है। इस स्तर पर शिशु दाँतों से काट कर आनन्द प्राप्त करता है। अतः भोजन तथा भोजन की रुचि मौखिक विशेषताओं का प्रतिनिधित्व करती हैं। ओठों से चूमकर आनन्द प्राप्त करने की संवेदना का प्रारम्भ यहीं से होता हैं।

इस स्तर मे सुख प्राप्त करने का माध्यम काटना, निगलना तथा चूसना होता हैं। दाँत काटने की क्रिया से एक ओर बालक को सुख प्राप्त होता है तथा दूसरी ओर आक्रामक इच्छा की भी पूर्ति होती है। इस प्रकार बालक न केवल स्वतः कामेच्छित आवश्यकताओं से निर्देशित होता है बल्कि तोड़फोड़ करने की आक्रामक इच्छायें भी (Aggressive urges of destroying) बालक को सम्प्रेरित करती है। वह अपनी माता के प्रति उभयामुखी हो जाता है अर्थात वह प्रेम तथा घृणा दोनों प्रदर्शित करता है। वह उससे घृणा करता है क्योंकि उसकी सभी इच्छाओं की संतुष्टि नहीं होती है। उसमें आत्मप्रेम का विकास होता है। वह स्वयं को प्रेम करने लगता है। इस स्तर में बालक को भोजन प्राप्त करने की प्रक्रिया भूमिका निभानी आवश्यक हो जाती है। इसके अतिरिक्त व्यक्तिगत सफाई पर भी महत्व एवं ध्यान देना प्रारम्भ होता है। इस समय उसमें अहं का भी प्रादुर्भाव होता है जिसके द्वारा अपने तथा दूसरों के अस्तित्व का ज्ञान होने लगता है।

2–गुदा अवस्था
(Anal Stage)

गुदा अवस्था को भी दो कालों (Periods) में विभाजित कर सकतेहैंः (अ) गुदा परित्यागात्मक काल (Oral Expulsive Period) (ब) गुदा धारणात्मक काल (Oral Retentive Period)

(अ) गुदा परित्यागात्मक काल

इस काल में बालक मल मूत्र त्यागने में लैंगिक आनन्द प्राप्त करता है क्योंकि भोजन की प्राप्ति के साथ साथ उत्पन्न मल के एकत्रीकरण से धीर में तनाव उत्पन्न होता है। इस तनाव को मलमूत्र त्यागने से ही बालक दूर करता है जिससे उसे सुख की अनुभूति होती है। बालक को निर्देश दिया जाता है कि सर्वप्रथम कोई कार्य करने से पहले मलमूत्र का परित्याग कर दे। इस व्यवहार से उसे ज्ञात होता है कि मल मूत्र कोई गंदा पदार्थ है जिससे छुटकारा पाना आवश्यक है। दूसरी ओर जब बालक के माता पिता मलमूत्र निष्कासन के लिए बाध्य करते हैं तो वह समझता है कि इस क्रिया का विशेष महत्व है। इस अवस्था में अहं तथा वास्तविकता का काफी विकास हो जाता हैं अतः बालक इस सम्बन्ध

में काफी शक्तिशानी अनुभव करता है। प्रातः काल मलमूत्र निष्कासन पर जोर देने तथा पुरस्कृत करने की प्रक्रिया के कारण आदत का विकास होता है। जब बालक के प्रतिकूल स्थिति होती है तो वह आक्रामक प्रवृति के कारण अधिक मलमूत्र करने लगता है। बालक में सुखद सिद्धान्त का महत्व घटने लगता है। वास्तविकता के सिद्धान्त का विकास होता है जिसके कारण स्थितियों का निर्धारण हो जाता है। जिनसे सुखद अनुभव की अनुभूति होती है। पराहं का भी विकास इस अवस्था में प्रारम्भ होता है। लैंगिक भिन्नता का भी आभास होता हैं परन्तु आडिपस स्थिति संघर्ष की मुख्य स्थिति रहती है। बालक माता पिता की सफाई सम्बन्धी शिक्षा का उचित पालन नहीं कर पाता है जिसके कारण नैराश्य की भावना उत्पन्न होती है। यह बालक के लिए मनोवैज्ञानिक आघात होता है।

(ब) गुदा धारणात्मक काल
(Anal Retentive period)

गुदा परित्यागन काल में बालक मलमूत्र का परित्याग अपने तनाव को कम करने के लिए करता है। गुदा धारणात्मक काल में वह मलमूत्र रोकने, उस पर नियंत्रण करने तथा धारण करने में, सामाजिक मूल्य को समझता है। यह काल 12 वें महीने से लेकर 4 वर्ष की अवस्था तक रहता है। बच्चा वैयक्तिक सफाई का अर्थ समझने लगता हैं। गुदा व्यवहार की अन्तिम भग्नाशा चौथे वर्ष घटित होती है। इस अवस्था में ही दूसरी प्रकार की सक्रियता होने लगती है जिसको जननीयता (Genitality) कहते हैं। उसको वास्तविकता परीक्षण का अवसर मिलता है जिसके कारण वह समझता है कि उसकी अपनी वैयक्तिकता है तथा उसे अपने आप खड़ा होना है। वह यह भी समझता है कि ध्यान का केंन्द्रबिन्दु वह अब नहीं है बल्कि माता पिता आपस में ही अधिक रुचि रखते हैं। यह बालक के लिए अत्यन्त कष्टकर मनोवैज्ञानिक आघात होता हैं।

3–शैश्नावस्था
(Phallic Stage)

इस अवस्था का प्रारम्भ 3–4 वर्ष की अवस्था से प्रारम्भ होता है । इस काल में बालक की रुचि जननेन्द्रियों के सम्बन्ध में उत्पन्न होती है। वह सुख की प्राप्ति जननेन्द्रियों द्वारा करता है । वह जननेन्द्रियों को स्पर्श करने में सुख की अनुभूति करता है। उसमें जननेन्द्रियों की प्रतिक्रियायें जैसे दृढ़ीकरण (Erection) आदि उत्पन्न होती हैं।

इस अवस्था में बालक में प्रदर्शन प्रवृत्ति (Exhibitionistic Tendency) होती है जिसके कारण नंगा रहना पसन्द करता है। इससे उसे सुख प्राप्त होता है।

इस अवस्था में बालक यौन क्रिया को समझने लगता है क्योंकि बलिकायें बालक को देखकर ईर्ष्या करने लगती हैं कि वे बालक नहीं हैं। इनमें इसी कारण शिश्न–ईष्या (Penis envy) से हीन भावना उत्पन्न हो जाती है। इस अवस्था में दो बातें मुख्य रूप से जिज्ञासा का केन्द्र होती हैं (1) लड़कियाँ लड़कों से भिन्न क्यों हैं तथा (2) इनका क्या उपयोग एवं महत्व है इस अवस्था की प्रमुख निराशा माता पिता अथवा अन्य बड़ों द्वारा बालक में लिंग काटने के भय से होती है। यदि उसे बार–बार जननेन्द्रियों से खेलने के लिए मना किया जाता है तो उसमें अपराध भावना दमित होकर कभी कभी भविष्य के जीवन में विकृतियों का रूप ग्रहण कर लेती है। मातृ–मनोग्रन्थि का विकास होता है। लड़का माता की ओर अधिक आकर्षित होता है। क्योंकि माता को लैंगिक संगिनी के समान मानता है। वह हस्तमैथुन करता है। इस प्रकार लैंगिक अंगों के छूने, रगड़ने तथा प्रदर्शित करके वह सुख की अनुभूति करता है। इस अवस्था में बालक अपनी ही जननेन्द्रिय में रुचि रखता है। बालकों को अपने तथा अन्य बालको के लिंगों में भी भेद ज्ञात होता है।

बालक अपने लैंगिक प्रेम का विषय माता को बनाता है। वह सोचता है कि जिससे उसे प्रेम है वह पिता के अधिकार में हैं अतः पिता के प्रति घृणा करने लगता है। वह पिता के गुणों का अन्तर्क्षेपण माता पर अधिकार करने के उद्देश्य से करता है। अतः उसमें पराहं का विकास होता है बालक के समान ही बालिकाओं में भी ईर्ष्या उत्पन्न हो जाती है । वह माता कों अपना दुश्मन अथवा रोड़ा समझती हैं जिसके कारण पिता से प्रेम नहीं कर सकती है। इस प्रकार लड़कियों में (Electra Complex) पितृमनोग्रन्थि का विकास होता है।

मातृ मनोग्रन्थि या आडिपस कम्पलेक्स (Oedipus Complex) की धारणा का विकास फ्रायड ने किया था यह शब्द यूनानी भाषा का है जिसकी व्यख्या से ज्ञात होता है कि आडिपस नामक युवक ने अपने पिता की हत्या करके माता से विवाह कर लिया था। अतः मातृमनोग्रन्थि का तात्पर्य पुत्र की माता से कामेच्छा तथा पिता के प्रति घृणा की भावना से होता हैं। पितृमनोग्रन्थि (Electra Complex) का तात्पर्य पुत्री का पिता से प्रेम तथा माता के प्रति घृणा की भावना होती है। फ्रायड का मत है कि लड़की पहले अपनी माँ को अधिक पसन्द करती है परन्तु समलिंग होने से रुचि कम हो जाती है और विषमलिंगी जो कि पिता होता है, की ओर आकर्षित हो जाती है।

मातृ मनोग्रन्थि के सम्बन्ध में अन्य मनोवैज्ञानिकों ने अलग अलग विचार प्रस्तुत कियें हैं। एडलर[4] का मत है कि बालक का माता द्वारा अत्यधिक लाड़

---

4. एडलर, आलफ्रेड — दि थियरी ऐण्ड प्रेक्टिस आफ इंडिविजुअल साइकोलाजी

प्यार एवं भरण पोषण मातृ मनोग्रन्थि का विकास करता है। युंग[5] के विचार से अधिकार की प्रवृत्ति के कारण इस ग्रन्थि का विकास होता है। माता बालक की अधिक चिंता करती है तथा सहायक भूमिका निभाती है अतः वह उससे मुक्त नही होना चाहता है। पिता नियंत्रण का कार्य करता है अतः उससे मुक्ति चाहने के कारण घृणा करने लगता है। फेनिकल[6] का विचार है कि मातृ मनोग्रन्थि पर पारिवारिक, सामाजिक, व सांस्कृतिक पर्यावरण का प्रभाव पड़ता है।

4—अव्यक्त अवस्था

(Latency Stage)

बालक पांचवें से सातवें वर्ष की अवस्था में शैशव कामुकता (Infantile sexuality) का सामाजिक परिणाम समझने लगता है जिसके कारण उसकों दमित करना प्रारम्भ कर देता है। धीरे—धीरे वह चेतन स्तर पर लैंगिक मामलों के सम्बन्ध में रुचि समाप्त करता जाता है। यह कार्य धीरे—धीरे होता है। अव्यक्त अवस्था में ही पूर्ण नहीं हो पाता है। इसके अतिरिक्त पूर्ण दमन की स्थिति कभी भी नहीं आती हैं। सभी व्यक्तियों को 13 —14 वर्ष की अवस्था में लैंगिकता का पुनः विकास होता है। इस अवस्था में जनन आयु (Puberty Age) प्रारम्भ होती है। अव्यक्त काल में प्रतिक्रिया निर्माण दमन को अधिक प्रभावशाली बना देते हैं जिससे लैंगिकता सुप्तावस्था में चली जाती है। बालक वाह्य पर्यावरण के प्रति अधिक से अधिक ज्ञान प्राप्त करना चाहता है। इस प्रवृत्ति एवं इच्छा के कारण समूह का सदस्य बनता हैं। तथा खेल कूद, भागने दौड़ने, आदि क्रियायें करता है। उसमें पराहं का विकास होता है। वह उन्हीं कार्यो को करता है जिनसे लोग उसकी प्रशंसा करते हैं। अतः सामाजिकता का विकास प्रारम्भ हो जाता है जिसके कारण मातापिता से प्रेम कम होने लगता है।

इस अवस्था में लैंगिक इच्छा का उदात्तीकरण हो जाता है और शिक्षा के रूप के इसका विकास होता है। बालक पढ़ने में रुचि एवं शिक्षा के कार्यो में अधिक रुचि दिखाता है। तथा समान विद्यार्थियों के साथ सम्पर्क स्थापित करने का प्रयास करता है। भिन्न—भिन्न व्यवहारों का अर्थ एवं महत्व यहाँ सीखता है।

---

5. युंग, सी0 जी0 — साइकोलाजी आफ अवकान्सियस
6. फेनिकल, ओ0 — दि साइकोएनालिटिव थियरी आफ न्यूरोसिस केगन पाल लि0 लंदन, 1946

5–जनन अवस्था

(Genital Stage)

तरुण अवस्था (Puberty) के प्रारम्भ से ही शैशव कामुकता का पुनः विकास होने लगता है। बालक बालिकाओं में लैंगिक भावना एवं इच्छा पुनः जागृत होकर चेतन अवस्था में आ जाती है। वे लिंग को जनन के रूप में देखने लगते है। तथा एक दूसरे के प्रति आकर्षित होते है। साथ ही साथ दूसरे के प्रति आकर्षित करने का प्रयत्न करते हैं। मुख कामुकता तथ गुदा कामुकता का विकास होता है। हस्तमैथुन का कार्य विशेष रूप से उल्लेखनीय हो जाता है। परन्तु लड़के लड़कियों में सामजिक दूरी होने के कारण समलिंगी विचार उत्पन्न होते हैं। किशोरों में लिंग प्रधान बातों की बाहुल्यता होती है। इस अवस्था में शारीरिक व मानसिक तनाव अधिक होता है। लड़कियों में शारीरिक परिवर्तन तीव्र गति से होता है तथा लैंगिकता उत्तेजित होती है और लैंगिक संबंध स्थापित हो जाते है।

किशोरावस्था में बालक बालिकायें अपने लैंगिक अंगों के कार्यो व बनावट में अधिक रूचि लेते हैं। उन अंगों से वे व्यवहारिक ज्ञान प्राप्त करने के लिए बेचैन रहते है। इस बेचैनी को प्रेम कल्पनाओं तथा लैंगिक कहानियों एवं बातों से दूर करते हैं। लड़कियों को जब मासिक धर्म होता है वे अधिक चिंतित एवं परेशान होती हैं उनकों अपने स्त्रीत्व का ज्ञान होता है।

इस अवस्था की मुख्य विशेषता यह है कि दोनों लिंग के व्यक्ति एक दूसरे से संभोग करना चाहते हैं। यह भावना अत्यन्त प्रबल हो जाती है। सामाजिक नियमों को यद्यपि ध्यान में रखा जाता है परन्तु कभी–कभी असामान्य व्यवहार का प्रदर्शन भी होता है। विवाह का होना इस अवस्था में आवश्यक होता है।

4. लैंगिक विकृतियाँ या लैंगिक विचलन

सामान्य लैंगिक विकास होने पर व्यक्ति भिन्न लिंगी व्यक्ति से संभोग करके अपनी कामेच्छा के तनाव को कम करता है। लैंगिक संतुष्टि प्रक्रिया अत्यन्त जटिल तथा महत्वपूर्ण होती है। क्योंकि उसकी सामान्य संतुष्टि पर ही व्यक्तित्व का विकास निर्भर होता है। सामान्य व्यक्ति (स्त्री–पुरूष) एक दूसरे के जननेन्द्रिय अंगों का उपयोग आनन्द प्राप्त करने के लिए करते हैं। तथा दोनों को आनन्द की अनुभूति होती है। परन्तु ऐसे भी व्यक्ति देखे जाते हैं जो अपने काम अंग को रगड़कर दूसरों के गुदा द्वार का उपयोंग करके, पशुओं से रति करके अथवा अन्य किसी प्रकार से कामेच्छा की संतुष्टि करते हैं। ऐसे भी व्यक्ति होते हैं जो स्त्रियों के प्रजनन अंगों को देखकर ही संतुष्ट हो जाते हैं और उनमें वीर्यपात हो जाता हैं। कुछ स्त्रियाँ भी ऐसी होती हैं

जिनमें कामेच्छा की संतुष्टि बहुत कम होती है। अतः वे अत्यधिक लैंगिक व्यवहार में संलग्न रहती है। इसके विपरीत ऐसे भी स्त्री पुरुष होतें हैं जिनमें कामेच्छा तो होती है परन्तु सम्भोग करने में असमर्थ होते हैं।

फ्रायड ने लैंगिक विकृतियों को दो भागों में बाँटा है (1) लैंगिक आलम्बन में परिवर्तन (2) लैंगिकंता के उद्देश्य में परिवर्तन। पहली श्रेणी में वे लोग आते हैं जो सम्भोग के लिए जननेन्द्रियों के स्थान पर दूसरे व्यक्ति के किसी अंग जैसे योनि के स्थान पर गुदाद्वार का उपयोग करते हैं। दूसरी श्रेणी में वे लोग आतें हैं जो जनेन्द्रियों का उपयोग लैंगिक कार्यो (सम्भोग) के लिए न करके अन्य कार्यों के लिए करते है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि जो व्यक्ति सामान्य लैंगिक व्यवहार नहीं करता है। इस प्रकार से हम देखते हैं कि जो व्यक्ति यामान्य लैंगि व्यवहार नहीं करता है, लैंगिक अंगों का उचित उपयोग नहीं करता है तथा काम संतुष्टि में सामाजिक नियमों की अवहेलना करता हैं, वह लैंगिक रूप से विकृत माना जाता है।

5. लैंगिक विकृतियों (विचलन) के प्रकार

अभी तक कोई संतोषप्रद लैंगिक विचलन का वर्गीकरण नहीं प्राप्त किया जा सका है। समान्यतः निम्न प्रकार का व्यवहार लैंगिक विचलन माना जाता है–

1– सामान्य लैंगिक विचलन

इस प्रकार की विकृति के अन्तर्गत हस्थमैथुन तथा पूर्व विवाह सम्भोग को सम्मिलित किया जाता है। इस प्रकार के व्यवहार को हमारे समाज में घृणा की दृष्टि से देखा जाता है परन्तु इससे कोई अधिक विचलन नहीं होती है।

2– असामान्य लैंगिक विचलन

इसके अन्तर्गत उस लैंगिक व्यवहार के तरीकों को रखा जाता है जिनसे सम्बन्धित व्यक्ति को तो शारीरिक व मानसिक हानि होती ही है दूसरों पर भी इसका कुप्रभाव पड़ता है। इसके अन्तर्गत निषिद्ध सम्भोग (Sexual commerce within the forbidden circle) बाल संभोग (Pedophilia) तथा बलात्कार (Rape) सम्मिलित किया जाता है। इन लैंगिक व्यवहारों लिए कठोर निषेध होते हैं।

3– सामाजिक रूप से सम्बन्धित एवं संगठित लैंगिक विचलन

इस प्रकार के व्यवहार में एक समूह कार्य करता है तथा उसको किसी न किसी श्रेणी में स्वीकृति प्राप्त होती है। यदि स्वीकृति नहीं भी होती है तो भी

उसके सम्बन्ध में कोई विशेष निषेध नहीं होते हैं। परन्तु ये लैंगिक व्यवहार व्यक्ति के व्यक्तित्व को असामान्य बना देते हैं। इन व्यवहारों में वेश्यावृत्ति, समलैंगिकता, प्रतिजातीय वस्त्रधारण, आदि प्रमुख हैं।

लैंगिक विचलन

वर्गीकरण	तरीके (Patterns)	परिभाषा
सामान्य लैंगिक विचलन	हस्तमैथुन (Masturbation)	अपनी जनेन्द्रियों को लैंगिक सुख के लिए उपयोग, अपने यौन अंगों द्वारा ही कामेच्छा की संतुष्टि
	पूर्व वैवाहिक संभोग (Pre maritalcoitus)	विवाह से पूर्व लैंगिक संबंध (सम्भोग)
	अतिरिक्त वैवाहिक संभोग (Extramarital coitus)	अपनी पत्नी अथवा पति के अतिरिक्त अन्य किसी व्यक्ति के साथ संभोग
	अनियमित संभोग (Promiscuity)	बिना किसी चयन के विभिन्न व्यक्तियों के साथ संभोग
असामान्य लैंगिक विचलन	नपुंसकता (Impotency) शीतलता (Frigidity)	दृढ़ीकरण का अभाव, लैंगिक इच्छा का विघटन, लैंगिक संतुष्टि प्राप्त करने की अयोग्यता
	प्रदर्शनवृति (Exhibitionism)	लैंगिक सुख की प्राप्ति के लिए लैंगिक अंगों का प्रदर्शन
	गुप्त अवलोकन (Voyeurism)	लैगिक कार्यो में रत अथवा नंगेपन का लुक छिपकर अवलोकन
	भिन्न वस्तु माध्यम (Fetishism)	किसी वस्तु अथवा कार्य को लैंगिक संतुष्टि के लिए उपयोग करना जैसे विपरीत लिंग के कपड़े पहनना, या आग लगाना
	बाल संभोग (Pedophilia)	लैंगिक संतुष्टि के लिए बालक के साथ संभोग
	बलात्कार (Rape)	शक्ति अथवा भय प्रदर्शित कर लैंगिक संबंध स्थापित
	निषिद्ध संभोग (Incest)	धनिष्ठ सम्बन्धियों में लैंगिक संबंध
	परपीड़न (Sadism)	दूसरों को कष्ट या पीड़ा पहुंचाकर लैंगिक संतुष्टि

	आत्मपीड़न (Mesochism)	स्वयं को कष्ट पहुंचाकर कामेच्छा की संतुष्टि
सामाजिक रूप से संगठित	वेश्यावृत्ति (Prostitution)	आर्थिक लाभ के लिए विभिन्न व्यक्तियों के लैंगिक संबंध
तथा संबंधित लैंगिकविचलन	समलैंगिकता (Homosexuality)	समान लिंग के व्यक्ति से लैंगिक व्यवहार, पुरूष–पुरूष, स्त्री–स्त्री के साथ सम्भोग
	प्रतिजातीय वस्त्र धारण	दूसरे लिंग के वस्त्रों को धारण करके संतुष्टि

1–हस्तमैथुन
(Masturbation)

हस्तमैथुन वह लैंगिक विचलन है जिसमें काम वासना की संतुष्टि अपनी जननेन्द्रियो को उत्तेजित कर हाथों द्वारा की जाती है। किन्से[7] तथा उनके साथियों की खोज के अनुसार 62 प्रतिशत स्त्रियाँ तथा 92 प्रतिशत पुरूष किसी न किसी आयु में हस्तमैथुन करते हैं। इन खोजों से पता चलता है कि पुरूषों में विवाह से पूर्व होने वाला यह लैंगिक व्यवहार उच्च श्रेणी में होता है तथा स्त्रियों में यह व्यवहार द्वितीय श्रेणी (विषम लिंगी प्रथम) में होता है। गागनन तथा सिमन[8] ने यह सिद्ध किया है कि प्रारम्भिक अवस्था में हस्तमैथुन का प्रयोग लड़कियों में अधिक होता है।

इस प्रकार के लैंगिक व्यवहार के तरीके में हाथ के माध्यम से जननेन्द्रियों को उत्तेजित कर लैंगिक तनाव को कम किया जाता है। इस तरीके की धार्मिक नैतिक तथा शारीरिक आधार पर निन्दा की जाती है। इससे शरीरिक कमजोरी आती है, मानसिक विघटन होता है, हीन भावना पनपती है तथा अपराध भावना की शुरूआत होती है। हस्तमैथुन के कई कारण होते हैं। कुछ लोगों को कुसंगति के कारण हस्तमैथुन की आदत पड़ जाती है तथा कुछ लोग अकेलापन दूर

7. किन्से, ए0सी0 तथा पोयेराय सेक्सुअल विहैवियर इन ह्यूमन फीमल, डब्लू0 वी0 तथा मार्टिन सी0ई0 डब्लू0 वी0 सान्डर्स, फिलेडेल्फिया, 1953
8. गागनन, जे0एच0 ऐण्ड सिमन डब्लू0 सेक्सुअल डीवियेन्स इन कन्टेम्पोरेरी अमेरिका, एनल्स आफ अमेरिकन अकेडेमी,1968, पृ0 106–122

करने के लिए मनोरंजन के उद्देश्य से हस्तमैथुन का सहारा लेते हैं। यद्यपि इस क्रिया को यदा कदा करने से कोई शारीरिक व मानसिक व्यवधान नहीं होता है परन्तु सामाजिक निन्दा के कारणमनोवृत्ति दूषित हो जाती है तथा हीन भावना विकसित होती है। उनमें पलायन की प्रवृत्ति विकसित होती है तथा साहस में कमी आती है।

2–पूर्व वैवाहिक सम्भोग

(Premarital coitus)

किशोरावस्था में संभोग की इच्छा अत्यन्त प्रबल हो जाती है परंतु तब तक विवाह का कोई प्रबन्ध नहीं होता है इसलिए लैंगिक संतुष्टि एक समस्या बन जाती है। किन्से[9] के अनुसार 83 प्रतिशत पुरुष तथा 50 प्रतिशत स्त्रियाँ विवाह से पूर्व लैंगिक संबंध स्थापित कर लेते हैं। यद्यपि इस संबंध में आंकड़ों को एकत्रित नहीं किया जा सकता है परन्तु यह अनुमान लगाया जाता है कि नगरीकरण, औद्योगीकरण तथा सामाजिक विकास के साथ–साथ इस प्रकार के लैंगिक संबंधों में वृद्धि हो रही है। परिवार नियोजन के साधनों ने इस दिशा में सहायक भूमिका अदा की है। इस प्रकार के संबंधों से यद्यपि संबंधित व्यक्ति को कोई हानि नहीं होती है परन्तु सामाजिक स्वीकृति नही दी जाती हैं क्योकि इससे समाज पर बुरा प्रभाव पड़ता है, दूसरे वैवाहिक जीवन सुखी नहीं रह जाता है।

3– अनियमित सम्भोग तथा बाल अपराध

(Sexual Promiscuity and Delinquency)

वे लड़कियाँ जो 18 वर्ष से कम आयु की अनियंत्रित लैंगिक सम्भोग करती है उन्हें प्रायः लैंगिक बाल अपराधी कहा जाता है। प्रायः यह कार्य व्यवसाय के रूप में अथवा लाभ के लिए नहीं किया जाता है। यद्यपि इस प्रकार के व्ययवहार को समाज द्वारा स्वीकृति नहीं प्राप्त है परन्तु बहुत कम संख्या में ऐसी घटनायें प्रकाश में आ पाती है। निम्नलिखित तरीके लैंगिक बाल अपराध को विकसित होने में सहायता करतें हैं।

1. पारिवारिक तरीके (Family Patterns) अधिकांश बाल अपराधी लड़कियाँ इस प्रकार के व्यवहार को अपने माता पिता द्वारा सीखती हैं । ऐसी लड़कियों के माता पिता दोषपूर्ण प्रारूप प्रस्तुत करते हैं। माता पिता द्वारा प्रेम में कमी, अस्वीकृति तिरस्कृति आदि के कारण भी आधात तथा कुंठा को कम करने के लि लड़कियाँ लैंगिग बाल अपराध करने लगती हैं।

---

9. किन्से, ए0सी0 ऐण्ड अदर्स सेक्सुअल बिहैवियर इन ह्यूमन मेल, डब्लू0 वी0 सांडर्स, फिलेडेल्फिया, 1948

जब माता पिता द्वारा अत्यधिक कठोरता का व्यवहार लड़के लड़कियों के प्रति किया जाता है तो वे प्रतिशोध की भावना से जलने लगते हैं जिसके परिणामस्वरूप वे लेंगिक अपराध करतें हैं। गिबेन (Gibben) के अनुसन्धानों से पता चलता है कि लड़कियाँ लड़कों के सामान ही पारिवारिक समस्यायें अनुभव करती हैं परन्तु किशोरावस्था तक इन समस्याओं को अन्तःकरण में छिपा लेती है परन्तु जब समस्यायें प्रभावशील हो जाती हैं तो अनियमित लैंगिक व्यवहार के रूप में प्रकट होती हैं।

2– प्रमाण (Proving) व्यवहार:– कोई–कोई लड़की अपनी लैंगिकता के प्रति शंकाकुल होती है। वह सिद्ध करना चाहती हैं कि उसमें लैंगिकता है या नहीं। इस कारण लैंगिक सम्भोंग करती है। परन्तु इस सम्भोग सें उसे शारीरिक सांवेगिक संतुष्टि प्राप्त होती है अतः बार–बार करने की आदी हो जाती है। इस प्रकार का व्यवहार केवल लड़कियों में ही नहीं पाया जाता है बल्कि लड़कों में भी प्रदर्शित होता है।

3– मित्र समूह प्रारूप तथा दबाव (Peer Models and Pressures) लैंगिक बाल अपराध व्यवहार प्रायः मित्र समूह प्रारूप तथा दबाव के परिणाम–स्वरूप विकसित होता है। उदाहरण के लिए कुछ लड़कियाँ बाल अपराधी लड़कों के समूह से सम्बन्धित होती हैं तथा उनको प्रत्येंक सदस्य की सेवा करनी पड़ती है। कभी–कभी सामूहिक रूप से भी लैंगिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं एवं संभोग होते हैं।

मानसिक मंदता, मनोविदलता तथा व्यक्तित्व विकृति के कारण भी अनियमित लैंगिक सम्बन्ध स्थापित होते हैं।

4– अतिरिक्त वैवाहिक सम्भोग (Extra- marital coitus)

हमारे समाज में अतिरिक्त वैवाहिक सम्भोग के विषम प्रकार का लैंगिक विचलन समझा जाता है। इस प्रकार के व्यवहार में लड़की विवाह के पश्चात भी अनियमित संभोग में रत रहती है। इस पृष्ठभूमि के आधर पर तलाक तथा पृथक्कीकरण होता है। अनेक अध्ययनों से यह ज्ञात हुआ है कि इस प्रकार का व्यवहार महिलाओं में लगरीकरण, पारिवारिक बन्धनों का ढीलापन तथा नवीन गर्भनिरोधक तरीकों के कारण बढ़ता जा रहा है। आर्थिक स्वतंत्रता तथा स्वतन्त्र कार्य के कारण भी महिलायें अन्य व्यक्तियों से लैंगिक संबंध स्थापित करती है। औद्योगीकरण के परिणमस्वरूप अतिरिक्त वैवाहिक संबंध एक प्रकार का फैशन होता जा रहा है तथा मानसिक स्वास्थ्य एवं पारिवारिक सुख के लिए आवश्यक समझा जाने लगा है।

5– नपुंसकता तथा शीतलता या लैंगिक अपर्याप्तता
(Impotency and Frigidity or Sexual inadequacy)

नपुंसकता पुरूषों में होती है। ऐसी अवस्था में उनमें लैंगिक संतुष्टि नहीं होती है। कभी–कभी लिंग में दृढ़ीकरण भी नहीं होता है। यदि दृढ़ता आती भी है तो भी बहुत शीघ्र वीर्य पतन हो जाता है। औरतों में शीतलता होती है उनमें कामेच्छा जागृत नहीं होती हैं। इस प्रकार की दशा प्रायः लैंगिक अंगों में चोट, रोग, थकान अथवा दवा के प्रभाव के कारण होती है। लैकिन 55 वर्ष से पूर्व पूर्ण नपुंसकता का आधार प्रायः मनोवैज्ञानिक कारकों के कारण होता है। निम्न प्रकार की नपुंसकता पुरुषों में पायी जाती है।

1. **प्राथमिक नपुंसकता** (Primary Impoteney):– इस प्रकार की नपुंसकता में पुरूष कभी भी सफल संभोग के लिए लिंग–दृढता प्राप्त नहीं करता है।

2. **द्वितीयक नपुंसकता** (Secondary Impotency):– इस प्रकार की अवस्था में पुरूष अधिक समय तक वीर्यपतन पर स्त्री की संतुष्टि के लिए नियंत्रण नहीं रख पाता है तथा वीर्यपतन शीघ्र हो जाता है।

स्त्रियों में निम्न प्रकार की शीतलता अथवा लैगिक अपर्याप्तता होती है।

1. **वेजाइनिज्मस** (Vaginisms):– इस प्रकार की शीतलता में योनि का वाह्य भाग उस समय बिलकुल बन्द हो जाता है जब शिस्न को अन्दर प्रवेश कराने का प्रयत्न किया जाता है।

2. **कामेच्छा की उत्पत्ति में विघटनः**– इस प्रकार की शीतलता में कामेच्छा का विकास बहुत कम होता है।

नपुंसकता के अनेक मनो–सामाजिक कारक होते हैं । वे कारक शीतलता के सम्बन्ध में भी महत्वपूर्ण होते हैः–

अ– दोषपूर्ण प्रारम्भिक शिक्षा :– यद्यपि हम सभी लैंगिक व्यवहार के महत्व को स्वीकार करते हैं परन्तु इसके सम्बन्ध में उचित शिक्षा व्यवस्था का कोई प्रबन्ध नहीं है। इसके परिणाम स्वरूप युवा व्यक्ति प्रायः दोषपूर्ण आशाओं के साथ तथा आवश्यक सूचनाओं के अभाव में ऐसा व्यवहार करना प्रारंभ कर देता है जिससे लैंगिक अपर्याप्तता उत्पन्न होती हैं। कभी–कभी दोषपूर्ण शिक्षा के कारण लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने में अपराध की भावना जागृत होती है जिसके कारण सामान्य लैंगिक सम्बन्ध स्थापित नही हो पाते हैं। इसके अतिरिक्त प्रायः लड़यों को यह सिखाया जाता है कि उनका कार्य पुरुषों की कामेच्छा को

शान्त करना है अतः वे अपनी भावनाओं एवं इच्छाओं को दबा लेती हैं जिससे शीतलता बढ़ती हैं । यास्टर्स तथा जानसन्स[10] (1970) ने इस प्रकार की दोषपूर्ण शिक्षा को शीतलता का प्रमुख कारण बताया है। उन्होंने बताया कि पुरुषों में अपरिपक्व वीर्यपतन का कारण सम्बद्ध प्रत्यावर्तन है। जब वे किसी वेश्या अथवा प्रेमिका के साथ अथवा खुले स्थान पर लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं और उनमें भय की भावना बनी रहती हैं तो ऐंसी स्थिति में वीर्यपतन शीर्घ हो जाता हैं भविष्य में इस प्रकार के व्यवहार की नियमतता बन जाती हैं।

ब– भय, चिन्ता तथा अपर्याप्तता की भावनाः– सेनाउसी, कोलमैन तथा ताउवेर ने 25 से 58 वर्ष के 50 पुरूष नपुंसकों का अध्ययन किया और पाया कि भय के कारण वे पुरूष भूमिका निभाने में असमर्थ थे। कूपर[11] (Cooper) ने 49 युवा पुरुषों का अध्ययन किया और चिन्ता को प्रमुख कारण लैंगिक बाधा के रूप में पाया।

स– लैंगिक सहभागी से सांवेगिक घनिष्ठता की कमीः– सांवेगिक घनिष्ठता के अभाव में भी नपुंसकता व शीतलता उत्पन्न होती है। एक दूसरे के प्रति लगाव न होने के कारण एक दूसरे को संतुष्ट करने की इच्छा प्रबल नही हो पाती हैं जिसके कारण अंग ठीक प्रकार से कार्य नहीं करते है।

4– लैंगिक चालकों का निम्न स्तर : कूपर ने अपने अध्ययन में पाया कि जिन व्यक्तियों में नपुंसकता अथवा शीतलता की समस्या बाद में उत्पन्न हो जाती है उसका कारण लैंगिक क्रियाओं में रुचि न रखना होता हैं । ऐसे व्यक्ति काफी दिनों तक लैंगिक सम्बन्ध में कोई रुचि नही प्रदर्शित करते हैं तथा महीनों सम्भोग नहीं करते है।

5– अव्यक्त अथवा समलैंगिकता

समलैंगिकता के कारण भी लैंगिक चालकों की उत्पत्ति समान लिंग के प्रति अधिक होती है जिससे वे विषम लिंगी के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में भय एवं चिंता अनुभव करते हैं। ऐसे व्यक्तियों को समलिंगी सें ही काम संतुष्टि होती है।

---

10. मास्टर्स, डब्लू0 एच0 ऐण्ड जानसन, वी0ई0 — ह्यूमन सेक्सुअल इनएडीक्वसीज, लिटिल ब्रोन, वास्टन, 1970
11. कूपर, ए0 जे0 — ए क्लिनिकल स्टडी आफ 'कोइटल एंजाइटी' इन मेल पोटेन्सी डिसआर्डर्स, जर्नल आफ साइकोसोमेटिक रिसर्च, 1963, 13 (2) पृ. 143–147

6. प्रदर्शन वृत्ति
(Exhivitionism)

इस प्रकार के लैंगिक विचलन में लैगिक अंगों के प्रदर्शन मात्र से ही सुख की अनुभूति हो जाती है। प्रदर्शन वृत्ति वाले व्यक्ति अपने लैंगिक अंगों को जन–स्थानों पर विषम लिंग के व्यक्तियों को दिखाते है। कभी–कभी वे इस प्रदर्शन के साथ सम्भोग की अवस्था का शारीरिक चित्रण एवं हस्तमैथुन भी करते है। परन्तु मुख्यतः प्रदर्शनवृत्ति ही मुख्य होती है। यह प्रदर्शन पार्क, सिनेमा स्थलों, मन्दिरों के बाहर, स्कूल के बाहर, प्रायः होता है। यह प्रदर्शन वृत्ति प्रायः युवा व्यक्तियों में अधिक होती है।

सामान्यतया प्रदर्शनवृत्ति व्यवहार में आक्रामकता नहीं पाई जाती है परन्तु समाज चूंकि मान्यता प्रदान नहीं करता है अतः वह लैंगिक अपराधी समझा जाता है। लड़कियों के अंगों का प्रदर्शन प्रत्यक्ष रूप से न होकर अप्रत्यक्ष रूप से होता है। वे चुस्त कपडों को पहनकर अंगों को प्रदर्शित करने में अत्यन्त सुख की अनुभूति करती हैं। प्रदर्शनवृत्ति वाले व्यक्ति 3 प्रकार के होते हैं :–

1–व्यक्तिगत अपरिपक्वता से सम्बन्धित : विटजिग,[12] (Witzig) ने पाय कि 60 प्रतिशत प्रदर्शन वृति के अपराधियों में अपरिपक्वता होती है। उनमें शर्महीन भावना होती है। वे अपने को वास्तविक सम्भोग के लिए अयोग्य समझते हैं। वे विषम लिंग कों आकर्षित करने में आयोग्य होते है। उनमें अपनी लैंगिक शक्ति पर भी विश्वास नहीं होता है।

2– अन्तर्व्यक्तिगत दबाव तथा निराकरण : प्रायः अधिकाश विवाहित प्रदर्शनवृत्ति वाले व्यक्तियों को विवाह में दबाव एवं तनाव अनुभव ओता है जिसके कारण वे प्रतिक्रिया करते हैं तथ प्रतिगमन करके पूर्व अवस्था में चले जाते है।

3– अन्य मनाव्याधियों से सम्बन्धित : मानसिक मंदता की अवस्था में भी प्रदर्शनवृत्ति होती है जिसका उसे कम या बिल्कुल ही ज्ञान नहीं होता है। मानसिक विकृति के कारण भी इस प्रकार का लैंगिक व्यवहार उत्पन्न हो जाता है।

7. गुप्त अवलोकन
(Voyeurism)

लुक–छिपकर लैंगिक कार्यों में रत व्यक्तियों को अथवा नग्न अवस्था में

---

12. विटामिन जे0 एस0 — दि ग्रुप ट्रीटमेन्ट आफं मेल इक्जहिविसनिस्ट्स, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्यात्री 1968, 125 पृ0 75–81

देखने के लिए तीन शब्दों का प्रयोग होता है। वायेरिज्म (Voyeurism) स्कोटोफिलिया (Scotpohilia) तथा इन्सपेक्सनिज्म (Inspectionism)। प्रायः इस प्रकार के व्यवहार में बच्चे अधिक कार्यरत होते है। परन्तु कभी–कभी युवक भी ऐसा व्यवहार करने लगते है। ऐसे व्यक्ति प्रायः स्त्रियों को नंगेपन की अवस्था में छिपकर देखते हैं तथा समय की खोज करते हैं कि कब वे लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करें जिससे वह छिपकर देख सकें । प्रायः ऐसे व्यक्ति गुप्त अवलोकन के समय हस्तमैथुन भी करते हैं इस प्रकार के गुप्त अवलोकन के कई कारण होते हैं। इससे लैंगिक भावना को उत्तेजना प्राप्त होती है। दूसरे लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करने का ज्ञान होता है। तीसरे लैंगिक संतुष्टि होती है। जो व्यक्ति विषम लिंग से सम्बन्ध स्थापित करने में अपने को अपर्याप्त समझतें हैं उनके लिए यह कार्य सहयोगी का कार्य करता है। जब विवाहित अथवा अधिक आयु का व्यक्ति गुप्त अवलोकन करता है उसका भी कारण हीनभावना को दूर करना होता है।

8. लैंगिक उत्तेजना के लिए भिन्न वस्तु माध्यम (Fitishism)

इस प्रकार के लैंगिक व्यवहार में व्यक्ति शरीर के किसी भाग को अथवा निर्जीव वस्तु को लैंगिक उत्तेजना का माध्यम बनाता है। वह विषम–लिंगी के वस्त्रों के धारण से भी संतुष्टि प्राप्त करता है। इस प्रकार के व्यवहार में पुरुष ही अधिक कार्यरत होते है। इन माध्यमों में विषमलिंगी के बाल, कान, हाथ, नीचे पहनने वाले कपड़े, जूते, सुगंधित तेल आदि का उपयोग लैंगिक सुख के लिए किया जाता है। यद्यपि लैंगिक उत्तेजना के लिए इन माध्यमों का उपयोंग भिन्न–भिन्न प्रकार से किया जाता है। परन्तु सामान्यतया चुम्बन लेकर, प्यार कर तथा सूँघ कर उत्तेजना की अनुभूति करता है। इन माध्यमों तथा वस्तुओं को प्राप्त करने के लिए वे चोरी करते हैं, डाका डालते हैं तथा हत्या भी कर देते हैं।

9– बाल सम्भोग (Pedophilia)

बाल सम्भोग में बालक के साथ सम्भोग किया जाता है। स्त्री बालक के लिंग को उत्तेजित कर लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करती है तथा पुरुष लड़की के साथ लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करता है। मुखलिंग सम्बन्ध भी कभी–कभी घटित होता है। इस प्रकार की घटनायें दिन प्रतिदिन सामने आती हैं जिनमें बालिका का उपयोंग लैंगिक सम्भोग के लिए होता है। इस प्रकार के व्यवहार का मुख्य

कारण असंतोषप्रद समलिंगी अथवा विषमलिंगी के साथ लैंगिक सम्बन्ध होना होता है। कभी--कभी प्रतिशोध की भावना अथवा परिपूर्ति के कारण भी ऐसा सम्भव होता हैं । उग्र, आक्रामक तथा बाल अपराधी व्यक्तियों में प्रायः इसी प्रकार के व्यावहारिक लक्षण प्रकट हो जाते है।

10— बलात्कार
(Rape)

इस प्रकार का लैंगिक सम्बन्ध असामाजिक दशाओं में हेता है। बलात्कार में प्रायः पुरूष ही अपराधी होता है परन्तु कभी--कभी विपरीत भी घटित होता है। बलात्कार 2 प्रकार का होता है।

(1) स्टैटुयुटरी बलात्कार (Statutory Rape) :– इस प्रकार के बलात्कार में 18 वर्ष से कम आयु की लड़कियों के साथ सम्भोग किया जाता है। (2) शक्ति प्रयोग द्वारा बलात्कार (Forcible Rape) अनिच्छित, 18 वर्ष से अधिक स्त्री के साथ सम्भोग होता है। बलात्कार कभी—कभी उद्देश्यहीन होता है। जिन अपराधियों की बलात्कार करने की आदत पड़ जाती है वे किसी भी स्त्री के साथ जब इच्छा उत्पन्न होती है शक्ति प्रयोग कर सम्भोग करते हैं। इस प्रकार के व्यवहार के कई कारण होते हैं। अपूर्णव्यक्तित्व, व्यधिकीय व्यक्तित्व तथा प्रतिशोधात्मक कार्य के कारण बलात्कार होता है। मानसिक विकृतियों के रोगियों में भी इस प्रकार का व्यवहार उत्पन्न हो जाता है। मानोविदलता, उत्साह प्रतिक्रिया तथा अन्य आंगिक मनोविकृतियों में आन्तरिक नियन्त्रण की कमी हो जाती है। मूलप्रवृतियों के कारण भी अपराधी बलात्कार करता है। लैंगिक अथवा आक्रामक भावनाओं का बहुत कम सम्बन्ध होता है। बलात्कार प्रायः असामाजिक कार्यो जैसे डाका डालना, चोरी करना, अदि के साथ किया जाता है।

11— निषिद्ध सम्भोग
(Incest)

जिन व्यक्तियों के मध्य लैंगिक सम्बन्धों को सांस्कृतिक रूप से निषिद्ध माना जाता है ऐंसे सम्बन्धों को स्थापित करने से लैंगिक विचलिन होता है। यह प्रायः भाई—बहन, पिता—पुत्री तथा अन्य घनिष्ठ व्यक्तियो के बीच समझा जाता हैं इस प्रकार के निषेध में संस्कृति में भिन्नता होती है। हिन्दुओं में एक परिवार तथा समगोत्री से विवाह निषिद्ध होता है जबकि मुसलमानों में केवल सगे भाई बहनों में विवाह नहीं हो सकता है। निषिद्ध सम्भोग की घटनायें बहुत कम तथ असामान्य परिस्थितियों में ही होती हैं। जब भाई बहन किशोरावस्था में एक ही बिस्तर पर

लेटते हैं तो उनमें लैंगिक कामना पनपती है तथा वे प्रयोग के तौर पर लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। जो परिवार विघटित होते हैं तथा जिनमें नैतिक मूल्यों की अत्यन्त कमी होती है उनमें भी ऐसा लैंगिक व्यवहार प्रदर्शित होता है।

12. परपीड़न रति

(Sadism)

इस प्रकार की लैंगिक विकृति में दूसरों को कष्ट पहुंचाकर लैंगिक सुख प्राप्त किया जा सकता है। इससे उनके लैंगिक तनाव में कमी जाती है। योनि पर चोट करना, स्तन काटना, शरीर केअन्य अंगों में चुभोना तथा विषम विकृतियों में हत्या कार्य भी इन कार्यो के अन्तर्गत सम्मिलित हो जाता है।

किन्हीं–किन्हीं व्यक्तियों में इस प्रकार की लैंगिक सन्तुष्टि सम्भोग के साथ परपीड़न क्रियाओं में होती है। तथा कुछ व्यक्ति बिना सम्भोंग किये परपीड़ा पहुंचाकर संतुष्ठ हो जाते हैं।

इस प्रकार के व्यवहारके कई कारण होते हैं। एडलकर के विचार से व्यक्ति परपीड़न रति अपनी हीन भावना को दूर करने के लिए करता है। यह विकृति प्रायः पुरुषों में पायी जाती है। वह अपनी श्रेष्ठता को प्रदर्शित करने के लिए इस प्रकार का व्यवहार करता है। परन्तु इसका मुख्य कारण मानसिक अस्वस्थता होता है। फ्रायड के विचार से परपीड़ारति व्यवहार ध्वंसात्मक मूलप्रवृत्ति (Death Instinct) का विस्थापन होता है। प्रारम्भिक अवस्था में बालक काटता, मारता, पीटता तथा नोचता है। उस समय जब माता द्वारा दण्ड दिया जाता है तो उसमें यह मूल प्रवृति दमित हो जाती है और लैंगिकता की परिपक्वता में पुनः जागृत हो जाती है।

13 आत्मपीड़न रति

(Mesochism)

इस प्रकार की विकृति में व्यक्ति अपने को ही कष्ट पहुंचाकर सुख की अनुभूति करता है। इस प्रकार आत्मपीड़न के 3 प्रमुख प्रकार है।–

(1) कामोत्तेजक आत्मपीड़न रति (Erotogenic Mesochism) इस अवस्था में पुरूष अपने को शारीरिक कष्ट देकर लैंगिक सुख प्राप्त करता है।

(2) नारी सूलभ स्वपीड़न रति (Feminine mesochism) स्त्रियां अपने को कष्ट देकर आनन्द प्राप्त करती है।

(3) नैतिक स्वपीड़न रति :— जैसे सन्यास, तपस्या आदि । इस प्रकार के लैंगिक व्यवहार का कारण हीनभावना तथा प्रतिक्रिया निर्माण होता है।

14. स्पर्श आसक्ति

(Frotteurism)

इस प्रकार की लैंगिक विकृति में व्यक्ति लैंगिक आनन्द स्पर्श मात्र से प्राप्त करता है। ऐसे व्यक्ति का योनि को लिंग द्वारा स्पर्श करने अथवा हाथों से स्पर्श करने, अथवा स्तनों को स्पर्श करने मात्र से ही वीर्यस्खलन हो जाता है। कभी–कभी साधारण इच्छित स्पर्श से ही अत्यधिक लैंगिक सन्तोष प्राप्त होता है। इस प्रकार के व्यवहार का कारण अन्तर्द्वन्द्व, मानसिक दुर्बलता तथा हीन भावना होती है।

15. मुख लैंगिकता

(Sexual oralism)

इस प्रकार की विकृति में लैंगिक अंगों को मुंह से चूमकर आनन्द प्राप्त किया जाता है। यह विचलन दो प्रकार का होता है। पुरूष लैंगिकता:— इस स्थिति में स्त्री पुरूष का शिश्न मुँह में रखती है जिससे उसे अत्यधिक सुख प्राप्त होता है। स्त्री मुख लैंगिकता:— पुरूष स्त्री की योनि में मुँह लगाकर आनन्द प्राप्त करता है । इस प्रकार की लैंगिकता का मुख्य आधार व्यक्ति की मौखिक अवस्था का दोषपूर्ण होना होता है।

16. गुदा लैंगिकता

(Sexual Analism)

इस प्रकार की विकृति में कामेच्छा की संतुष्टि योनि के स्थान पर गुदा से की जाती है। इस प्रकार की विकृति का कारण सम्बद्ध प्रत्यावर्तन होता है। जब किसी कारण योनि के स्थान पर गुदा का प्रयोग करना आवश्यक हो जाता है तो उससे आनन्द प्राप्त होने लगता है।

17. पशु कामुकता

इस प्रकार की विकृति में पशु के साथ सम्भोग किया जाता है। पुरुष पशु के मुख, कान, नाक योनिमार्ग अथवा गुदा में शिस्न का प्रवेश करके आनंद प्राप्त करता है। स्त्री पशु के लिंग द्वारा आनन्द प्राप्त करती है।

18. वैश्यावृत्ति

(Prostitution)

वेश्यावृति एक प्रकार का अवैध यौन सम्बन्ध है जो विभिन्न व्यक्तियों के साथ धन अर्जित करने के लिए स्थापित किया जाता है। ऐसे यौन सम्बन्ध में प्रेम

संवेग का अभाव होता हैं । भारत में तीन प्रकार की वेश्यावृत्ति पाई जाती है। (1) कुछ ऐसी वेश्यायें होती हैं जिनको दूसरे व्यक्ति इस व्यवसाय में रहने के लिए बाध्य करते है एवं पैंसा कमाते हैं (2) कुछ वेश्याओं का पूर्ण–रूपेण यही पेशा होता है तथा आय का स्रोत भी होता हैं (3) कुछ वेश्यायें ऐसी भी हैं जिनको आय का साधन तो कोई दूसरा है परन्तु अतिरिक्त आय के लिए तथा यौन इच्छा की तृप्ति के लिए इस व्यवसाय को अपनाती हैं। जो पुरूष वेश्यागमन करते हैं वे 3 प्रकार के होते हैं:– (1) जिनकी यौन इच्छा तृप्ति प्रधान उद्देश्य होता है अथवा जिनकी यौन इच्छा प्रबल होती है (2) जिनकी मानसिक स्थिति सामान्य नहीं होती है तथा किसी कारण विवाह नहीं कर सकते है।(3) वे जिनका विवाह नहीं होता है अथवा वे घर से दूर रहते हैं तथा पत्नी से भेंट नहीं होती है।

वेश्यावृत्ति के निम्न प्रधान कारण हैं:–

1– अधिकांश औरते वेश्यावृत्ति आर्थिक कठिनाइयों के कारण करती है। वेश्यावृति का व्यवसाय जीविकोंपार्जन के लिए किया जाता है।

2– धार्मिक तथा सांस्कृतिक प्रथा जैसे देवदासी प्रथा द्वारा विधवा का बढ़ावा मिलता है।

3–गन्दा पड़ोस होने से उसका प्रभाव पड़ता है। जिस बस्ती में वेश्यावृति की घटनायें मद्यपान जुआ आदि होता रहता है वहाँ इसका प्रत्यक्ष प्रभाव लड़कियों पर पड़ता है।

4– नष्ट घरों से अधिकांश वेश्यायें सम्बन्धित होती हैं। इन घरों से सम्बन्धित लड़कियों पर सामान्य नियन्त्रण नहीं होता है जिससे वे इस व्यवसाय में फँस जाती है।

5– मंद बुद्धि की लड़कियां प्रायः वेश्यावृत्ति का शिकार हो जाती है।

6– कुछ स्त्रियों की काम इच्छा बहुत होती है जिसकी संतुष्टि एक व्यक्ति से नहीं होती है।

19. समलैंगिकता

(Homosexuality)

इस प्रकार की लैगिक विकृति में दो सामन या एक ही लिंग के व्यक्ति लैंगिक सम्बन्ध स्थापित करते है। समलैंगिकता में पुरुष–पुरुष तथा स्त्री–स्त्री से लैंगिक व्यवहार करता है। पुरुष–पुरुष की गुदा में शिश्न प्रवेश कराकर आनन्द प्राप्त करता है। जबकि स्त्री भग शिश्न (Clitoris) को दूसरी स्त्री के भग शिश्न से रगड़कर

लैंगिक संतुष्टि प्राप्त करती है। समलैंगिकता कि कई तरीके होते हैं। चुम्बन, पारस्परिक हस्तमैथुन, मुह में जनन अंगों को रखना तथा रगड़ना आदि।

समलैंगिकता के कई कारण होते हैः–

(1) प्रारम्भिक समलैंगिक अनुभव के कारण वे अपने व्यवहार का अंग बना लेते हैं जिसके कारण इस प्रकार का व्यवहार प्रदर्शित होता है।

(2) जब विषम लिंगी व्यवहार को नकारात्मक पुष्टीकरण प्राप्त होता है तो इस प्रकार के व्यवहार को प्रोत्साहन मिलता है। उदाहरण के लिए यदि लड़की लड़के के साथ खेलने के लिए मना की जाती है तो लड़की के साथ सम्बन्ध स्थापित करने में सुरक्षा अनुभव करती है। ऐसा करने में उसे दण्ड मिलने की सम्भावना नहीं रहती है।

(3) व्याधिकीय पारिवारिक तरीकों के कारण भी समलैगिकता को प्रोत्साहन मिलता है।

(4) लैंगिक अभिव्यक्ति में बाधा होने पर भी समलैंगिकता पनपती है। उदाहरण के लिए अनाथालयों, कारागारों तथा सुधार गृहों में यह विकृति अधिक पायी जाती है।

20. परलिंगीय वस्त्रधारण आसक्ति (Transvestism)

इस प्रकार की लैंगिक विकृति में पुरूष स्त्री के वस्त्रों व स्त्री पुरूषों के वस्त्रों को धारण करके लैंगिक सुख की अनुभूति करते है। यद्यपि इसके कारण सम्बन्ध में विद्वानों में मतभेद है परन्तु अधिकांश विद्वानों का मत है कि यह विकृति माँ बाप द्वारा पालन–पोषण के आधार पर निर्भर होती है। जब इच्छित लड़का या लड़की उत्पन्न नहीं होता है तो वह लड़की को लड़का अथवा लड़के को लड़की मान कर उसी प्रकार के वस्त्र धारणकराते हैं। कालान्तर में वह इस विकृति के शिकार हो जाते है। आजकल यह वेशभूषा फैशन के रूप में प्रचलित हो गयी है। जिसमें आकर्षण के कारण प्रायः ऐसा व्यवहार किया जाता है।

उपर्लिखित विवरण से स्पष्ट है कि लैंगिक विकृतियों का क्षेत्र बहुत व्यापक है लैंगिकता का जब समुचित विकास नही हो पाता है तो बालक का लैंगिक समायोजन अस्तव्यस्त हो जाता है। और किशोरावस्था एवं युवावस्था में अनेक विकृतियाँ भी प्रदर्शित होती है। लैंगिक विघटन से व्यवहारिक एवं मानसिक विघटन भी होता है।

24

मानसिक मन्दता

मनोविदलता के समान ही मानसिक मन्दता भी प्राचीन समय से हमारे समाज में विद्यमान है परन्तु इसकी लेखों में चर्चा यदा कदा मिलती है। इसका कारण यह है कि उस समय व्यक्ति का जीवन अति सरल तथा सीधा सादा था, कम बुद्धि का व्यक्ति भी अपनी आवश्कताओं की पूर्ति सामान्य ढंग से कर लेता था, सम्पर्क स्थापित करने में कठिनाई नहीं अनुभव करता था तथा समायोजन के तरीके प्रत्यक्ष एवं सरल थे। औद्योगिक उन्नति एवं सामाजिक विकास के साथ साथ जीवन जटिल होता गया तथा व्यक्ति को समायोजन स्थापित करने में अधिक बुद्धि एवं योग्यता का सहारा लेना अनिवार्य हो गया । जो व्यक्ति मानसिक रूप से अविकसित अथवा कम विकसित थे उनके लिए जीवन निर्वाह करना कठिन हो गया। ऐसे व्यक्ति मानसिक मन्दित समझे जाने लगे। मानसिक मन्दता एक ऐसा मस्तिष्क विकार है जिसमें विकास के किसी स्तर पर रुकावट उत्पन्न हो जाती है और यह रुकावट स्थायी रूप गहण कर लेती है। इस रुकावट एवं विलम्बना के कारण शरीर, बुद्धि एवं मन में मन्दता उत्पन्न हो जाती है और व्यक्ति का सम्पूर्ण जीवन अपूर्ण एवं दुर्बल रहता है। अतः मानसिक मन्दित व्यक्ति में सोचने, विचारने, ध्यान देने, निर्णय करने याद करने तथा याद रखने, समझने तथा समायोजन करने की दुर्बलता होती है। उसमें शारीरिक, बौद्धिक, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक तथा ज्ञानात्मक हीनता एवं मंदता होती है।

(I) परिभाषा

मानसिक मंदित व्यक्ति का मानसिक विकास अपूर्ण एवं अवरूद्ध होता है जिसके परिणाम स्वरूप वह न तो अपने पर नियंत्रण रख पाता है और न ही जीविकोपार्जन करने में समर्थ होता है। उसमें परिपक्वता के लक्षण प्रकट नही होने पाते इसलिए वह दूसरों के मार्गदर्शन पर निर्भर होता है। उसको पथ प्रदर्शन, निर्देशन, निरीक्षण तथा आश्रय की सदैव आवश्यकता होती है।

अमरीकन साइक्याट्रिक एसोशियेशन (1968)

मानसिक मंदता अर्ध सामान्य बौद्धिक कार्यात्मकता है जो विकासात्मक काल में प्रारम्भ होती है और जिसका सम्बन्ध सीखने तथा सामाजिक समायोजन अथवा परिपक्वता या दोनो के विघटन से होता है।[1]

ट्रेडगोल्ड (Tredgold)

मानसिक मंदता मस्तिष्क विकास की वह सीमित अवस्था है जिसके फलस्वरूप व्यक्ति परिपक्व होने पर अपने पर्यावरण में समायोजित होने या समुदाय की माँगों की पूर्ति करने में असमर्थ होता है तथा वाह्य आलम्बन या मार्गदर्शन के बिना अपने अस्तित्व का निर्वाह नहीं कर पाता है।[2]

पेज

मानसिक मंदता मानसिक विकास की वह असाधारण अवस्था है जो व्यक्ति में या तो जन्म से ही विद्यमान होती है या प्रारम्भिक अवस्था में उत्पन्न होती है, जिसकी प्रमुख विशेषता सीमित बौद्धिक स्तर व सामाजिक अपर्याप्तता है।[3]

मानसिक मंदता की अनेक परिभाषायें प्रस्तुत की गयी है। लेकिन सभी परिभाषाएं विवादास्पद है क्योंकि बुद्धि की परिभाषा भी सदैव से विवादास्पद रही है। मन्दित बालक जो विकास के क्षेत्र में न्यून है उसके लिए आवश्यक नहीं है कि उसकी परिभाषा विघटित सीखना या अन्य किसी प्रकार से की जाय। लेकिन सीमावर्ती बुद्धि के बालक के सम्बन्ध में परिभाषा करना महत्वपूर्ण होता है। क्योकि इस प्रकार के बालक, सामान्य बालकों के समान ही निपुणताओं में भिन्न–भिन्न होते हैं। कुछ साधारण मानसिक मंदित बालकों में सामाजिक निपुणताएं प्रचुर होती है परन्तु शैक्षिक कार्यात्मकता का ह्रास होता है। कुछ बालक पढ़ने में तो तेज होते है परन्तु नौकरी करने में सफल नहीं होतें है। अतः

---

1. (Mental retardation as "Subnormal general intellectual functioning which originalises during the developmental period and is associated with impairment of either learning and social adjustment or maturation, or both)
2. ट्रेडगोल्ड ए0 एफ0 ऐण्ड अदर्स — टेक्स्ट बुक आफ मेन्टल डिफीसेन्सी, विलेयर, टिनडाल, लंदन, 1952
3. (Mental deficiency is a condition of subnormal mental development, present at birth or early childhood and characterized mainly by limited intelligence and social inadequacy.)
   पेज, जे0 डी0 — अबनार्मल साइकालोजी, पृ0 354

यदि मंदता का तात्पर्य सम्बन्धों की स्थिरता एवं निर्वाह से है तो इसके अन्तर्गत बौद्धिक क्षमता वाले समूह से पृथक बालक आते हैं। इस महत्व को ध्यान में रखकर अमरीकन मानसिक मंदता संघ (American Association of Mental deficiency) ने मानसिक मंदता को निदानात्मक आधार पर वर्गीकृत किया है। बुद्धिलब्धि को वर्गीकरण का आधार माना गया है। इस अर्थ में अधिकांश व्यक्ति उच्च और निम्नलब्धि बुद्धि के मध्य आते है। केवल कुछ ही ऐसे व्यक्ति हैं जो सामान्य बुद्धिलब्धि से निम्न श्रेणी में आते है। ऐसे व्यक्तियों को मानसिक मकदित कहा जाता है।

(II) मानसिक मंदता सम्बन्धी विभिन्न दृष्टिकोण

मानसिक मंदता के अर्थ को समझने के लिए विभिन्न दृटिकोणों का समझना आवश्यक प्रतीत होता है।

1–सामाजिक दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार जो बालक प्रारम्भ से ही सामूहिक समायोजन नहीं प्राप्त कर पाता है। क्योंकि उसमें मानसिक दुर्बलता हौती है, उसे मानसिक मंदिता कहा जाता है। ऐसा बालक अपनी समस्याओं का समाधान नहीं कर पाता है।

2–शैक्षिक दृष्टिकोण

शिक्षा के क्षेत्र में जो बालक दुर्बल पाये जातें हैं तथा कक्षा के स्तर के अनुरूप विकास नहीं कर पाते हैं उन्हें प्रायः मानसिक मंदित कहा जाता है।

3–वैधानिक दृष्टिकोण

यह प्राचीन दृष्टिकोण है। इस दृष्टिकोण के अनुसार मानसिक दुर्बलता या मंदिता का अर्थ उस व्यक्ति से होता है जिसको नैतिक–अनैतिक उचित–अनुचित, भले बुरे आदि का कुछ भी ज्ञान नहीं होता है। बुद्धि हीनता के अभाव में उसे किसी व्यवहार के लिए उत्तरदायी नहीं ठहराया जा सकता है।

4–चिकित्सकीय दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण के अनुसार मस्तिष्क का किसी बाधा के कारण मानसिक विकास सामान्य रूप से नहीं हो पाता है। इस अवस्था में वह सामाजिक–व्यक्तिगत संतुलन नही स्थापित कर पाता है।

5–मनोवैज्ञानिक दृष्टिकोण

इस दृष्टिकोण का आधार बुद्धिलब्धि माना जाता है। जिस व्यक्ति की बुद्धिलब्धि 70 से कम होती है।, उसे मानसिक मंदित माना जाता है। यह दृष्टिकोण ही अधिकांशतः अध्ययन का आधार समझा जाता है।

(III) मानसिक मंदता के लक्षण

मानसिक मंदित व्यक्ति में निम्नलिखित विशेषतायें पाई जाती है–

1–बुद्धि लब्धि की कमी

मानसिक मंदित व्यक्ति की बुद्धिलब्धि सामान्य से कम होती है। इसमें बुद्धि के विकास की गति अत्यन्त मंद होती है जिसके कारण वह आयु के अनुरूप बुद्धि का विकास नहीं कर पाता है। ऐसे व्यक्तियों की बुद्धि लब्धि 70 से कम होती है। युवावस्था में भी इनकी मानसिक आयु 7 वर्ष अथवा इससे कम आयु के बालक के समान होती है। पढ़ने, लिखने़ समझने तथा सुरक्षा करने की सीमित क्षमता होती है।

2–शिक्षात्मक अयोग्यता

मानसिक मंदित बालक की मानसिक क्षमता कम होने के कारण कल्पना एवं चितन शक्ति कमजोर होती है। शिक्षा के ग्रहण में वह बहुत मंद होता है। बौद्धिक कार्यो को करना अत्यधिक कठिन होता है। ऐसे बालक अध्यापकों तथा अभिभावकों के लिए समस्या बन जाते हैं। वे समझते हैं कि बालक अच्छी प्रकार से अध्ययन नहीं करता है तथा मेहनत नहीं करता जितनी उसे करनी चाहिए। अतः उस पर जोर दबाव डाला जाता है। परन्तु इसका परिणाम विपरीत होता है। अतः आवश्यकता इस बात की रहती है कि माता पिता तथा अभिभावकों को बालक की अयोग्यता का उचित ज्ञान हो तथा इसके लिए उचित शिक्षा की व्यवस्था हो ।

3–शारीरिक न्यूनता

मानसिक व्यक्तियों का शारीरिक गठन सामान्य से भिन्न होता है। उनका सर चौड़ा, बड़ा, चपटा, अथवा गुम्मदाकार होता है। कद नाटा होता हैं, होठ मोटे भद्दे तथा विशेष आकृति के होते हैं मुखाकृति विशेष प्रकार की होती है। जिसे देखकर ही अनुमान लगाया जा सकता है कि ऐसा व्यक्ति मानसिक मंदित है।

4—अपरिपक्व व्यक्तित्व

मानसिक मंदित व्यक्ति में परिपक्व व्यक्तित्व के गुण नहीं पाये जाते हैं। वह किसी भी स्थिति को न तो वास्तविक एवं सही रूप में मुल्यांकन कर पाता है और न ही अपनी योग्यताओं का प्रदर्शन समयानुसार कर पाता है जिसके कारण व्यक्ति अर्धविकसित अथवा विकास की प्रारम्भिक अवस्था में ही रहता है।

5—सामाजिक अयोग्यता

बालक प्रारम्भ में पूर्ण जैविकीय होता है। उसमें अवश्यकताओं, संतुष्टि के साधन तथा स्रोत सामजिकता का विकास करते है। परन्तु मानसिक मंदित बालक में चूंकि अनुभव से सीखने की क्षमता नहीं होती हैं अतः वह साधनों को अपने जीवन का अंग नहीं बना पाता है। वह समूह में अपने को व्यवस्थित नहीं कर पाता है। अतः सामूहिक स्वीकृति उसे नहीं प्राप्त होती है।

6—सीमित प्रेरणायें

सम्प्रेरणायें व्यक्ति को कार्य करने, तथा व्यवहार की दिशा निर्धरित करने में अभूतपूर्व भूमिका निभाती हैं। सामान्य व्यक्ति में जन्मजात तथा अर्जित दोनों प्रकार की सम्प्रेरणायें होती है। अन्य प्रेरणायें सरल रूप में होती है।

7—अविकसित संवेग

संवेग व्यक्ति की आन्तरिक भावनाओं की अभिव्यक्ति है जिसके प्रकट हाने पर ही व्यक्ति आन्तरिक तनावों को कम करता है। सुख,दुख, भय, आक्रोश, दया आदि संवेग मानसिक मंदित व्यक्ति में सामान्य रूप से कार्य नही करते है। वह दुखदायी स्थिति में कष्ट नहीं अनुभव करता है तथा खुशखबरी पर प्रसन्नता नहीं प्रकट करता है।

8—गत्यात्मक चालकों में कम समन्वय

मानसिक मंदित व्यक्ति में गत्यात्मकता तो होती है परन्तु उसमें समन्वय की कमी पाई जाती है। वह अपने कार्यो को समन्वित प्रकार से नहीं कर पाता है क्योंकि संवेग सम्प्रेरणा ओर स्मरण में कोई विशेष सम्बन्ध नहीं होता है।

9—आर्थिक अयोग्यता

मानसिक मंदित व्यक्ति किसी लाभप्रद कार्य को नहीं कर पाता है क्योकि न तो कार्य वी विशेषता को समझता है और न ही कार्य करने की क्षमता का विकास कर पाता है। अपने भरण पोषण के लिए दूसरों पर निर्भर होता है। अतः इन व्यक्तियों के लिए विशेष संस्था कि आवश्यकता होती है।

10—ध्यान शक्ति की कमी

ध्यान शक्ति के कारण ही व्यक्ति किसी स्थिति विशेष का अध्ययन करके उसका मूल्यांकन करता है तथा अपनी प्रतिक्रियाओं को अग्रसारित करके कार्य में संतुष्टि प्राप्त करता है। मानसिक मंदित व्यक्ति किसी स्थिति एवं वस्तु पर ध्यान केन्द्रित नहीं कर पाता है अतः मूलयांकन करना भी उसके लिए कठिन होता है।

11—स्मरण शक्ति की कमी

मनुष्य मात्र में स्मरण शक्ति की विशेषता के कारण ही वह पशुओं से भिन्न होता है। वह अपनी इच्छाओं एवं कार्यो का सम्पादन इसी शक्ति की सहायता से करता है। मानसिक मंदित व्यक्ति में स्मरण शक्ति बहुत क्षीण होती है। वह विगत घटनाओं को याद नही कर पाता है।

12—अव्यवहारिकता

व्यवहारिकता व्यक्ति का एक अर्जित गुण है जो अनुभव द्वारा सीखी जाती है। मानसिक मंदित व्यक्ति में अनुभव से लाभ उठाने एवं सीखने की क्षमता का अभाव होता है अतः वह व्यवहारिकता का विकास नहीं कर पाता है।

(IV) मानसिक मंदता का वर्गीकरण

प्रायः मानसिक मंदता का वर्गीकरण बुद्धि लब्धि के आधार पर किया जाता है। निम्न चार्ट बुद्धि लब्धि के अंक के आधार पर मानसिक विशेषतायें प्रदर्शित करता है।

बुद्धि लब्धि			श्रेणी
140	से	ऊपर	प्रतिभाशली (Genius)
120	से	140	अतिउत्कृष्ट (Very Superior)
110	से	120	उत्कृष्ट (Superior)
90	से	110	मंद (Dull)
80	से	90	निर्बलबुद्धि (Subnormal)
70	सें	80	मानसिक मंदित
70	से	नीचे	
50	से	70	मूर्ख (Moron)
25	से	50	मूढ़ (Imbecile)
25	से	नीचे	जड़ (Idiot)

उपर्लिखित तालिका से स्पष्ट होता है कि जिन बालकों की बुद्धिलब्धि 70 से नीचे होती है वे मानसिक मंदित होते है।

मूर्ख
(Moron)

मूर्ख व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 50 से 70 के मध्य होती है। यह श्रेणी मानसिक मंदित की प्रथम श्रेणी है अतः भेद करना भी कभी–कभी कठिन होता है। ऐसे व्यक्ति सामाजिक समायोजन स्थापित नहीं कर पाते है। क्योंकि बुद्धि का स्तर निम्न होता है। पढ़ने में उनका मन अधिक नहीं लगता हैं प्रत्येक विषय उनके लिए कठिन होता है। अतः पढ़ाई छोड़कर असामाजिक एवं तोड़फोड़ के कार्य करने लगते हैं। ऐसे बालको में पराहं का सामान्य विकास नहीं हो पाता है। जिसके करण नैतिक–अनैतिक, उचित–अनुचित का भेद सामान्य प्रकार से नहीं कर पाते है। यद्यपि इन मन्दितों में सम्प्रेरणाएँ तथा संवेग सामान्य प्रकार के लगभग होते हैं परन्तु अपने व्यवहार एवं प्रत्युत्तर पर नियन्त्रण नहीं रख पाते है। इस वर्ग के मानसिक मंदित चोरी करना, गुण्डागर्दी करना, वेश्यवृत्ति एवं वेश्यागमन तथा अन्य समाजविरोधी कार्य करना सीख लेते है।

मूढ़
(Imbecile)

मूढ़ प्रकार के मानसिक मंदित बालकों एवं व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 25 से 50 के बीच होती है। इन मंदितों की मानसिक आयु 3 से 7 1/2 वर्ष के बालक के बराबर होती है। इनमें आत्मनियन्त्रण एवं आत्मसंयम की क्षमता नहीं होती है। इनमें मानसिक दुर्वलता इनती अधिक होती है कि वे अपने आप को कार्य अथवा स्थिति में संतुलित नहीं कर पाते हैं। इनमें किसी प्रकार की पढ़ने लिखने की क्षमता नहीं होती है। ऐसे बालको पर किसी प्रकार के संवेग का प्रभाव नहीं होता है। गुमसुम रहते हैं तथा पूर्ण उदासीनता का प्रदर्शन करते हैं। गत्यात्मक क्षमता का विकास बहुत ही मंद गति से होता है। 5 वर्ष की अवस्था तक कहीं वे बोलना (शब्द उच्चारण) सीख पाते हैं। इन बालकों को किसी मानसिक मंदित संस्था में रखना अनिवार्य होता है क्योंकि घर में इनकी स्थिति सुधरने के बजाय बिगड़ती जाती है। संस्था में रहकर वे सामान्य कार्य सीख सकते हैं। उनको खाने का ढंग, कपड़े पहनने का ढंग तथा साधारण प्रकार के व्यवहारिक तरीकों को सिखाया जा सकता है। साधारण आपत्तियों जैसे आग, पानी, रेलगाड़ी इत्यादि से बचना भी सीख लेते है। जीविका उपार्जन सम्बन्धी कार्यो में पत्थर तोड़ना, झाड़ू देना, कपड़े धोना आदि साधारण प्रकार के कार्य करने में समर्थ हो सकते हैं।

जड़
(Idiot)

यह मानसिक मंदता का सबसे निम्न स्तर है। ऐसे बालक न तो सुनने अथवा देखने का प्रदर्शन करते हैं और न ही अन्य शारीरिक अंगों जैसे हाथ, पैर, जीभ, मुंह, आदि का प्रयोग करते हैं। उनमें किसी प्रकार की संवेदना नहीं होती है। ज्ञान का बिल्कुल अभाव होता है। वे पूर्ण रूप से दूसरों पर निर्भर होते हैं। खाने तक की भी वे परवाह नहीं करते। इनमें वाक्य उच्चारण क्षमता बहुत कम होती है। टूटे–फूटे शब्द बोलते हैं अपने पर बिलकुल नियन्त्रण नहीं रखते हैं। ऐसे व्यक्ति किसी भी प्रकार के खतरे से रक्षा करने में समर्थ नहीं होते है। आग में कूद सकते हैं रेलगाड़ी की पटरी पर लेट जाते हैं पानी में कूद पड़ते है तथा नंगे घूमते है। सारांश में, ऐसे व्यक्ति पशु से गिरी दशा में होते है।

कोलमैन ने मानसिक मंदता की 5 श्रेणियां बतायी हैः–

1– सीमावर्ती मानसिक मंदता (Borderline mental retardation)

2–सरल मानसिक मंदता (Mild mental retardation)

3– साधारण मानसिक मंदता (Moderate mental retardation)

4–विषम मानसिक मंदता (Severe Mental retardation)

5–अत्यधिक मानसिक मंदता (Profound Mental retardation)

सीमावर्ती मानसिक मंदता

इस श्रेणी के व्यक्ति मानसिक मंदित प्रायः नहीं कहे जाते हैं। बुद्धिलब्धि 68 से 83 के मध्य होती है। ये व्यक्ति सीखने की प्रक्रिया में मंद होते हैं। जटिल विचारों तथा विषयों को समझने में प्रायः असमर्थ होते हैं। गत्यात्मक कार्यो में विघटन बहुत ही कम होता है। सामान्यतः सीखने की मंद गति के अतिरिक्त अन्य कोई विषमता तथा असामान्यता नहीं पाई जाती है। इस वर्ग में आने वाले व्यक्ति समुदाय से अपना समायोजन ठीक प्रकार से कर लेते हैं।

सरल मानसिक मंदता

इस श्रेणी में आने वाले व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 52 से 67 के मध्य होती है। यद्यपि इनमें प्रत्यक्ष मस्तिष्क विकार अथवा शारीरिक दोष नही होते हैं। लेकिन इनके लिए परिवेक्षण की विशेष आवश्यकता होती है। इनमें पर्याप्त प्रत्यक्षीकरण की क्षमता नहीं होती है तथ मानसिक क्षमता 8 से 11 वर्ष के बालक के समान होती है। यदि प्रारम्भिक अवस्था में निदान हो जाता है तो माता–पिता

की सहायता एवं विशेष शिक्षात्मक कार्यक्रमों के द्वारा साधारण प्रकार की मानसिक एवं हस्तनिपुणता सीख जाते है।

साधारण मानसिक मंदता

जिन व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 36 से 51 के मध्य होती है वे इस श्रेणी में आतें हैं। ऐसे व्यक्तियों की मानसिक क्षमता 4 से 7 वर्ष के बालक की मानसिक क्षमता के बराबर होती है। इस समूह में व्यक्तियों में सीखने की क्षमता अत्यधिक मंद होती है। केवल कुछ ही व्यक्ति साधारण पढ़ना एवं लिखना सीख पाते हैं। गत्यात्मक कार्यो में सामन्जस्य नहीं होता है। शारीरिक दोष भी अनेक होते हैं।

माता–पिता की सहायता एवं विशेष प्रशिक्षण व्यवस्था के द्वारा प्रतिदिन के कार्यो में अर्ध स्वतन्त्रता प्राप्त हो सकती है। परन्तु अर्थिक कार्यो के लिए वह पूर्ण रूप से दूसरों पर निर्भर होता है।

विषम मानसिक मंदता

इस श्रेणी में वे व्यक्ति आते हैं जो शारीरिक व मानसिक रूप से अत्यन्त विघटित होते हैं। चालक शक्ति, वाक शक्ति तथा श्रवण शक्ति पूर्ण शिथिल होती है। इन व्यक्तियों की बुद्धिलब्धि 20 से 35 के मध्य होती है। ऐसे व्यक्ति आत्मरक्षा का बहुत कम ध्यान रखते हैं। व्यक्तिगत स्वास्थ्य का ध्यान नहीं रखतें, तथा सभी प्रकार के कार्यो के लिए दूसरों पर निर्भर होते हैं। प्रशिक्षण एवं व्यक्तिगत सहायता द्वारा सामान्य दैनिक कार्यो को कर सकतें हैं।

अत्यधिक मानसिक मंदता

शारीरिक व मानसिक रूप से ऐसे व्यक्ति पूर्ण रूप से विचित्र एवं उनमें व्यवहार का लेशमात्र भी अंश नहीं होता है। वे किसी भी शारीरिक व मानसिक कार्य को नही कर सकते हैं। शारीरिक दोष, स्नायुविक विघटन, विकासात्मक विघटन तथा गत्यात्मक विघटन तथा वाणी एवं श्रवण शक्ति का पूर्ण विघटन हो जाता है। वे चुपचाप पड़े रहते हैं। उनकों खाने, पीने के लिए दूसरों की सहायता आवश्यक होती है।

शारीरिक लक्षण के आधार पर प्रकार

लक्षणों के आधार पर मानसिक मंदितों को निम्न वर्गों में वर्गीकृत किया जाता है :–

(1) क्रीटिनिज्म

(Cretinism)

यह दोष शैशवकाल में ही प्रकट हो जाता है और लक्षणों की अभिव्यक्ति भी प्रकट रूप में होती है। इन बालकों की शारीरिक रचना विचित्र प्रकार की होती है। इन बालकों का कद बहुत छोटा, गर्दन मोटी तथा छोटी, हाथ–पैर मोटे परन्तु छोटे, नाक मोटी, ओठ मोटे तथा जीभ इतनी मोटी कि प्रायः मुहं के बाहर निकली रहती है । इनका मस्तक चौड़ा होता है, आँखों में कोई चमक नहीं होती है।पलके सूजी सी लगती है। इनका प्रत्येक कार्य बहुत सुस्त होता है, शारीरिक अंगों का भी प्रयोग धीरे–धीरे करते है। इन बालकों में 80 प्रतिशत मूर्ख या मूढ़ होते हैं।

इस मंदता को मुख्य कारण थाइराइड ग्रन्थि से निकलने वाले रस की कमी बताई जाती है। जब इस ग्रन्थि से रस आवश्यक मात्रा में नहीं निकलता है तो शारीरिक वृद्धि रुक जाती है। इस मंदता को प्रारम्भिक अवस्था में रोका जा सकता है यदि उपचार कार्य सुचारु रूप से किया जाय।

(2) मंगोलियन मूढ़

(Mongolian Imbecile)

इन मानसिक मंदितों की मुखाकृति मंगोल ऐसी होती है। इनकी खोपड़ी छोटी, गोल तथा पीछे से चपटी होती है, आँखें नीचे तथा अन्दर की ओर धँसी होती हैं, कुछ लम्बाई कम होती है, वजन भी कम होता है। हाथ मोटे तथा छोटे होते हैं अंगुलियां भी मोटी तथा छोटी होती हैं। जीभ पर मोटी एवं गहरी लकीरें होती हैं जो स्पष्ट दिखाई देती हैं। नाक चपटी तथा छोटी होती है। कान बड़े–बड़े होते हैं तथा होठ मोटे होते हैं। इनका उपचार सम्भव नहीं होता है।

(3) हाइड्रोसिफैली

(Hydrocephaly)

इस प्रकार के मानसिक मंदित बालकों की खोपड़ी बहुत बड़ी होती है क्योंकि मस्तिष्क में पानी भरा रहता है, इनका भी शारीरिक विकास रुक जाता है। शारीरिक विषमता के लक्षण स्पष्ट होते हैं।

मानसिक मंदता के शारीरिक एवं मनोसामाजिक कारण

कुछ समय पहले यह समझा जाता था कि मानसिक मंदता वंशानुगत होती है। विभिन्न अनुसन्धानों तथा अध्ययनों से अब ज्ञात हुआ है कि विशेष

प्रकार की मस्तिष्क विकृति एवं दोष के कारण मानसिक मंदता विकसित हो जाती है। वर्तमान समय में यह समझा जाने लगा है कि वंशानुगत, जैवकीय, शारीरिक कारकों के अतिरिक्त पर्यावरणीय कारक भी मानसिक मंदता के विकास में सहायक होते हैं।

1. वंशानुक्रमण सम्बन्धी कारक

मानसिक मंदता वंशानुगत चलती है। यह सरल प्रकार की मानसिक मंदता में पूर्ण रूप से सिद्धान्ततः लागू होती है क्योंकि प्रजनन कारकों द्वारा पैतृक सन्तान में हस्तांतरित हो जाते हैं। गोडार्ड ने कालिकाक परिवार का अध्ययन करके यह सिद्ध कर दिया कि बुद्धिमान माता–पिता की सन्तान बुद्धिमान तथा मंद माता–पिता की संतान मन्द बुद्धि की होती है।

2. जन्म आघात

जन्म के समय अथवा गर्भ में ही बालक को जब कोई विषम आघात पहुँचता है तो मस्तिष्क दूषित हो जाता है। जन्म के उपरान्त भी 2 वर्ष तक यदि मस्तिष्क को आघात लगता है तो मानसिक मंदता की सम्भावना रहती है।

3. संक्रमण रोग

संक्रामक रोग भी मानसिक मंदता के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाते हैं। गर्भ के समय यदि माता को संक्रामक रोग हो जाता है तो उसका प्रभाव भ्रूण पर पड़ता है। चेचक तथा टाइफाइड संक्रामक रोग भ्रूण में मंदता के गुण उत्पन्न कर देते हैं।

4. उपदंश

जो माता–पिता उपदंश (Syphilis) से पीड़ित होते हैं उनकी संतानों पर बौद्धिक अक्षमता का प्रभाव पड़ता है।

5. मदिरापान

मदिरापान करने वाले माता–पिता की संतानें निम्न बुद्धि की होती हैं।

6. अन्तः स्रावी ग्रन्थियाँ

थाइराइड ग्रन्थि की गड़बड़ी से बालक का सामान्य विकास नहीं हो पाता है। क्रिटिनिज्म इसी कारण होता है।

7. अपरिपक्वता

विभिन्नअध्ययनों से (कनेडी, 1963[4], रोथचाइल्ड 1967[5]) पता चला है जो बालक पूर्ण अवधि से पूर्व जन्म ले लेते हैं उनमें से अधिकांश मानसिक मंदित होते हैं।

8. कुपोषण

बचपन में विटामिन तथा प्रोटीन की कमी के कारण शारीरिक एवं मानसिक विकास अवरुद्ध हो जाता है। गर्भ धारण के समय माता में प्रोटीन की कमी तथा जन्म के उपरान्त बालक के भोजन में विटामिन तथा प्रोटीन की अपर्याप्तता बौद्धिक अक्षमता का कारण होती है।[6]

8. मनोसामाजिक क्षति

साधारण एवं सामान्य प्रकार की मानसिक मंदता के लिए मनोसामाजिक तथा सांस्कृतिक कारक अधिक उत्तरदायी होते हैं। अविकसित समाजों के बालक अधिकांश मानसिक मंदित होते हैं। गन्दी बस्ती के बालक भी मानसिक रूप से पिछड़े होते हैं। विघटित परिवार भी मानसिक मंदता के लिए उत्तरदायी होते हैं।

मानसिक मंदता की चिकित्सा

मानसिक मंदता का उपचार कार्य अत्यन्त दुष्कर है क्योंकि इसमें कोई ऐसे लक्षण नहीं होते जिनको औषधि द्वारा दूर किया जा सके। सामाजिक प्रशिक्षण एवं शिक्षा के द्वारा इन व्यक्तियों को साधारण कार्य करने तथा आत्म नियंत्रण के योग्य बनाया जा सकता है। विषम प्रकार के मंदितों के अतिरिक्त अन्य व्यक्तियों को जीविकोपार्जन के योग्य भी बनाया जा सकता है। दो प्रकार

---

4. कनेडी, जे0 एफ0 — मेसेज फ्राम दि प्रेसीडेन्ट आफ यूनाइटेड स्टेट्स रिलेटिव टु मेंटल इलनेस ऐण्ड मेंटल रिटार्डेशन, अमेरिकन साइकालोजिस्ट, 1963, 13, पृ0 282–289
5. रोथचाइल्ड, वी0एफ0 — इनक्यूवेटर आइसोलेशन ऐज ए पासिबुल कन्ट्रीब्यूटिंग फैक्टर टु दि हाई इन्सीडेन्स आफ इमोशनल ढिसटबैंन्स एमांग प्रीमिच्योरली बार्न परसन्स, जर्नल आफ जेनिटिक साइकालोजी, 1967, 110 (2) पृ0 287–304
6. डोबिंग, जे0 — ग्रोथ आफ दि ब्रेन, साइंस जर्नल, 1967, 3(5) पृ0 81–86

की प्रविधियों द्वारा मानसिक मंदता पर नियंत्रण लगाना सम्भव हो सकता है : (1) उपचारात्मक (Curative) (2) निरोधात्मक (Preventive)।

उपचारात्मक प्रविधियाँ

इस श्रेणी में वे प्रविधियाँ आती हैं जिनके द्वारा मानसिक मंदित व्यक्तियों को प्रशिक्षण के माध्यम से दिन प्रतिदिन के कार्यों को करने योग्य बनाया जा सकता है।

(1) गृह प्रशिक्षण (Home training)

मानसिक मंदित बालक घर में रहकर अपने क्रिया कलापों को करता है। अन्य सदस्य सामान्य मानसिक अवस्था के होने से उसकी उपेक्षा करना प्रारम्भ कर देते हैं, अतः उसकी स्थिति दिन प्रतिदिन बिगड़ती जाती है। शिक्षा के द्वारा परिवार के सदस्यों को विशेष प्रोत्साहात्मक व्यवहार करने के लिए प्रशिक्षित किया जा सकता है। मानसिक मंदित बालकों को घर के छोटे–छोटे कार्यों को करने तथा सामान्य स्वास्थ्य नियमों का पालन करने की शिक्षा तथा प्रशिक्षण अनुकूल परिणाम प्रदर्शित करता है।

अतः मानसिक मंदित बालक के परिवार के सभी सदस्यों को प्रशिक्षण देना आवश्यक होता है कि ऐसे बालक के साथ किस प्रकार व्यवहार किया जाय, कैसी शिक्षा दी जाय, क्या–क्या कार्य करने को प्रोत्साहित किया जाय, क्यो पढ़ने लिखने के लिए कहा जाय आदि। यदि व्यवहार का पर्यावरण बालक के अनुकूल होता है तो मंदता की सीमा को कम किया जा सकता है।

प्रशिक्षण विद्यालय

(Training School)

मानसिक मंदित बालकों के लिए विशेष विद्यालयों की अत्यन्त आवश्यकता होती है जहाँ पर विशेष प्रकार का प्रशिक्षण उपलब्ध कराया जा सके। यद्यपि इस प्रकार की सरकार द्वारा व्यवस्था की जा रही है परन्तु आवश्यकता एवं संख्या की दृष्टि से पर्याप्त नहीं है। उनका प्रबन्ध भी अधिक आशातीत नहीं है। इन विद्यालयों में निम्न सेवाओं की अत्यन्त आवश्यकता होती है :

1. मनोवैज्ञानिक सेवायें
2. मनोविकार चिकित्सात्मक सेवायें
3. व्यवसायिक शिक्षा सेवायें

4. सामान्य ज्ञान सम्बन्धी सेवायें

5. मनोचिकित्सकीय सामाजिक सेवायें

6. व्यवहार समायोजन प्रशिक्षण

मानसिक क्षमता के अनुरूप बालकों को विभिन्न वर्गों में वर्गीकृत करके सेवाओं को उपलब्ध कराने से मंदित बालक अधिक कार्यक्षमता का विकास करने में सफल होते हैं।

निरोधात्मक प्रविधियाँ

इन प्रविधियों द्वारा मानसिक मंदता, के विस्तार को रोका जा सकता है। इस प्रकार की निम्न प्रविधियाँ हैं :–

1–गर्भपात (Abortion) : मंदित स्त्रियाँ यदि गर्भवती हो जाती हैं तो गर्भपात कराने से मंदता को बढ़ने से रोका जा सकता है।

2–बन्ध्याकरण (Sterilisation) : जो व्यक्ति मानसिक मंदित हो उसका बन्ध्याकरण अत्यन्त आवश्यक होता है क्योंकि मंदित महिलाओं को विशेषकर अनैच्छिक लैंगिक सम्बन्ध का शिकार होना पड़ता है। मंदित स्त्री–पुरुष दोनों का बन्ध्याकरण होने से भावी मंदित सन्तान को रोका जा सकता है।

3–विवाह प्रमाण–पत्र : विवाह के पूर्व वर–वधू दोनों का मनोवैज्ञानिक परीक्षण किया जाना आवश्यक होता है। यदि इस प्रकार की व्यवस्था की जाय तो मंदित युवक व युवतियों को पृथक किया जा सकता है और मानसिक मंदितों की संख्या को नियंत्रित किया जा सकता है।

4–विलग्नीकरण (Segregartion) : मानसिक मंदित बालकों को सामान्य बालकों से पृथक रखना दोनों वर्गों के लिए लाभदायक होता है। क्योंकि ऐसा करने से मंदित बालकों को हतोत्साहित नहीं होना पड़ता है तथा सामान्य बालक इनके प्रभाव से बच जाते हैं।

5–संरक्षण : मानसिक मंदित बालकों तथा व्यक्तियों को संरक्षण प्रदान करना आवश्यक होता है। ऐसा करने से वे किसी असामाजिक तत्वों के हाथ में नहीं पड़ते हैं तथा कुत्सित भावना का शिकार नहीं होते हैं।

25

मानसिक स्वास्थ्य

1 स्वास्थ्य का प्रत्यय

स्वास्थ्य मनुष्य की अमूल्य निधि है। यह उसकी समस्त क्रियाओं को प्रभावित करता है तथा उसके भाग्य का निर्माण करता है। यह वह ठोस आधारशिला है जिस पर उसकी पूर्ण प्रसन्नता निर्भर होती है। परन्तु स्वास्थ्य के अर्थ को भिन्न–भिन्न प्रकार से स्पष्ट किया जाता है। स्वास्थ्य का तात्पर्य रोग विमुक्त होना नहीं बल्कि सर्वांगीण समायोजन एवं कल्याण से है। स्वास्थ्य की परिभाषा है शरीर, मन और आत्मा से स्वस्थ होना। विश्व स्वास्थ्य संघ (1948) के अनुसार ''स्वास्थ्य रोगों एवं शारीरिक निर्बलताओं की अनुपस्थिति मात्र ही नहीं बल्कि शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक कल्याण की सम्पूर्ण अवस्था है।''

विश्व स्वास्थ्य संघ की परिभाषा से ज्ञात होता है कि स्वास्थ्य के 3 पहलू हैं : शारीरिक, मानसिक तथा सामाजिक। परन्तु इन तीनों पहलुओं का अलग–अलग कोई अर्थ नहीं है। वे संयुक्त रूप से कार्य करते हैं और व्यक्ति को समान्य व्यवहार करने को प्रेरित करते हैं।

1. शारीरिक स्वास्थ्य

शारीरिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति को आसानी से समझा जा सकता है। वह साथ–सुथरा होता है, त्वचा ठीक होती है, शरीर सामान्य होता है, स्वांस क्रिया ठीक कार्य करती है, आमाशय ठीक होता है, उसे गहरी नींग आती है, टट्टी पेशाब ठीक होती है, तथा शरीर के सभी अंग सहयोगिक रूप से कार्य करते हैं।

2. मानसिक स्वास्थ्य

मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य केवल मानसिक रोगों की अनुपस्थिति से नहीं होता है। मानसिक रूप से स्वस्थ व्यक्ति में निम्न विशेषतायें होती हैं:

1. वह स्वयं आराम का अनुभव करता है, वह अपने को सुरक्षित एवं

पूर्ण समझता है। अपनी क्रियाओं एवं शक्तियों को न तो अति और न निम्न मूल्यांकित करता है। वह अपनी कमियों को स्वीकार करता है। वह आन्तरिक रूप से समायोजित होता है। वह आत्मविश्वासी, आन्तरिक द्वन्दों से मुक्त तथा तनाव रहित होता है।

2. वह दूसरों से कदम से कदम मिलाकर चलता है, समूह का सदस्य समझता है तथा दूसरों से संतोषप्रद एवं मधुर व्यवहार करता है।

3. वह पूर्ण रूप से समायोजित होता है तथा अपने जीवन की माँगों को पूरा करने में समर्थ होता है। भय, क्रोध, अपराध भावना तथा प्रेम पर नियंत्रण रखता है।

3. सामाजिक स्वास्थ्य

सामाजिक खुशहाली एवं प्रसन्नता के विषय में विद्वानों में मतभेद है। साधारण रूप से सामाजिक स्वास्थ्य का तात्पर्य उन योग्यताओं से लगाया जाता है जिससे मित्रता स्थापित हो सके, सामूहिक उत्तरदायित्वों को पूरा कर सके, संतोषप्रद सम्बन्ध बने रहें तथा दिन प्रतिदिन के कार्यों में कोई स्थायी बाधा न उत्पन्न हो।

2. मानसिक स्वास्थ्य–विज्ञान आन्दोलन का विकास

सन् 1900 में 24 वर्षीय क्लीफोर्ड वियर्स ने अपने मकान की चौथी मंजिल की खिड़की से कूदकर आत्महत्या का असफल प्रयास किया। अपनी मानसिक संतुलन स्थिति के कारण उन्हें 3 वर्ष तक विभिन्न मानसिक संस्थाओं में बन्द रहना पड़ा जिसमें उन्हें अनेक दुखद एवं नवीन अनुभव हुए। उन्होंने चिकित्सालय में किया जाने वाला अमानुषिक अत्याचार पर गहरा रोष प्रगट किया और अपने मित्रों की सहायता से 1908 ई0 में 'ए माइन्ड दैट फाउन्ड इटसेल्फ', शीर्षक पुस्तक में अपने अनुभवों को निबन्धित किया। इस पुस्तक के प्रकाशन के द्वारा मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन का सूत्रपात हुआ। एडोल्फ मेयर ने इस आन्दोलन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई तथा उन्होंने ही इस कार्य को मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान नाम रखने की सलाह दी।

सन् 1908 ई0 में अपने प्रयत्नों के परिणामस्वरूप कनक्टीकट में राष्ट्रीय कमेटी की स्थापना की। इसके बाद 1909 ई0 में नेशनल कमेटी फार मेंटल हाइजीन जिसको कि अब नेशनल एसोसियेशन फार मेंटल हेल्थ के नाम से जाना जाता है, स्थापना हुई। इसका प्राथमिक उद्देश्य रोगियों की चिकित्सा

एवं सेवा करना था। परन्तु बाद में इसके उद्देश्य में विस्तार आया तथा स्वास्थ्य सम्बन्धी कार्यक्रम भी सम्मिलित हो गये। आज इसकी कई शाखायें कार्य कर रही है और मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान एक निश्चित शास्त्र बन गया है तथा मानसिक स्वास्थ्य समस्या के समाधान के लिए नियमित सेवाओं का उपयोग किया जा रहा है।

3. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का अर्थ

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान (मानसिक स्वास्थ्य) एक विज्ञान है जो मानव कल्याण से सम्बन्धित है तथा मानव सम्बन्धों के सभी क्षेत्रों को संतोषप्रद बनाती है। इसके 3 मुख्य उद्देश्य हैं :

1. मानसिक एवं सांवेगिक विकृतियों की रोकथाम करना। यह कार्य सम्पूर्ण व्यक्तित्व विकास तथा जीवन अनुभवों में संतोषप्रद सम्बंधों को विकसित करके किया जाता है।
2. व्यक्ति समूह के मानसिक एवं सांवेगिक स्वास्थ्य को बनाये रखना।
3. मानसिक रोगों के उपचार के लिए चिकित्सात्मक उपायों का उपयोग करना तथा नवीन उपायों की खोज करना।[1]

मानसिक स्वास्थ्य चिकित्सा के रूप में उन सभी मानसिक व सांवेगिक समायोजन के सिद्धान्तों का उपयोग करता है जिनको व्यवहारिक विज्ञानों की वैज्ञानिक विधियों से प्राप्त किया गया है। यदि कोई भी परिवर्तन व उन्नति इन क्षेत्रों में होती है तो मानसिक रोगों के उपचार पद्धति में भी परिवर्तन आ जाता है। रोकथाम तथा संरक्षण (Preservation) के रूप मे मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति को उन अवसरों को प्रदान करता है जिनसे इच्छित मनोवृत्तियों का विकास होता है और जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में उचित समायोजन सम्भव होता हैं उसको संघर्ष की स्थिति में आने से रोका जाता है तथा रचनात्मक रूप से समायोजन सम्बन्धी समस्याओं का समाधान किया जाता है।

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को ठीक–ठीक परिभाषित करना कठिन है। परन्तु किसी भी कार्यात्मक परिभाषा में रोकथाम, संरक्षण तथा उपचार इन तीनों प्रत्ययों का होना आवश्यक होता है। वालिन (Wallin) ने इन तीनों प्रत्ययों को

1. क्रो, लेस्टर डी उल्लिखित, पृ0 430

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान को स्पष्ट करने मे उद्धधृत किया है। उनके अनुसार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान उन स्वास्थ्य सम्बन्धी सूचनाओं एवं प्रविधियों के उपयोग का प्रतिनिधित्व करता है जो मनोविज्ञान, बाल अध्ययन, शिक्षा, समाजशास्त्र, मनोविकार विज्ञान, औषधि शास्त्र तथा जीवन शास्त्र से प्राप्त हुये हैं। इसका उद्देश्य (1) व्यक्ति व समुदाय के मानसिक स्वास्थ्य को बढ़ाना एवं उसकी रक्षा करना। (2) प्रमुख तथा गौण मानसिक, शिक्षात्मक व सामाजिक असमायोजन के दोषों का उपचार तथा रोकथाम करना।[2]

जब हम मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की परिभाषाओं का विश्लेषण करते हैं तो ज्ञात होता है कि विभिन्न परिभाषायें भिन्न--भिन्न पहलुओं पर जोर देती हैं।

1. स्वास्थ एवं संतुलित समायोजन

मानसिक समायोजन विज्ञान का उद्देश्य एवं अनुपयुक्त समायोजन का निरोधात्मक विज्ञान है जिसका कार्य अनुपयुक्त समायोजन को रोकना है। यह एक ऐसा विज्ञान है जिसके सहयोग से मानसिक विकृति एवं असंतुलित व्यक्ति अपनी सामान्य स्थिति को प्राप्त कर लेता है। समायोजन एक व्यापक शब्द है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान समायोजन सम्बन्धी उपायों की खोज करता है तथा व्यक्ति को ऐसे अवसर प्रदान करता है जिससे वह अपनी स्थितियोंका सुचारु रूप से अध्ययन कर विजय प्राप्त कर सकें। बालकों के समुचित विकास के अवसर प्रदान करना मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का प्रमुख ध्येय है जिससे वे समायोजित व्यक्तित्व का विकास कर सके। यह उन प्रविधियों एवं प्रणालियों का उपयोग करता है जिनके द्वारा व्यक्ति अस्वस्थ्य एवं अहितकर समायोजन से मुक्त होकर फिर से समान्य मानसिक स्वास्थ्य प्राप्त कर लेता है। इस प्रकार इस अर्थ में मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान समायोजन पर अधिक जोर देता है।

2. सर्वांगीण विकास

कुछ परिभाषायें व्यक्ति के सर्वांगीण विकास पर जोर देती हैं। मानसिक स्वास्थ्य, विज्ञान ज्ञान, संवेग एवं क्रिया इन तीनों पक्षों के समुचित विकास को निश्चित करना, सम्भाव्य विकारों, व्याधियों तथा असामान्यताओं से बचने के लिए सलाह देना है।

---

2. विलिन वालेस, जेई0 — पर्सनाल्टी माल एडजस्टमेंट ऐण्ड मेंटल हाइजीन, मैकग्राहिल कं0, न्यूयार्क, 2 संस्करण, 1949 पृ0 32

3. उपचार कार्य करना

तीसरे प्रकार की श्रेणी में वे परिभाषायें आती हैं जिनका लक्ष्य मानसिक विकृतियों का उपचार करना है। यह एक ऐसा विज्ञान है जिसके उपयोग द्वारा मानसिक एवं व्यवहारिक असमायोजनात्मक समस्या का निराकरण किया जाता है। मनोस्नायुविकृतिः, मनोविकृति, व्यक्तित्व विघटन, मानसिक मंदता तथा व्यवहारिक विकृतियों का अध्ययन एवं उपचार इस विज्ञान की सहायता से किया जाता है।

उपर्लिखित तीनों क्षेत्रों को जब हम सम्मिलित करते हैं तो हमें ज्ञात होता है कि मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान संतुलित एवं व्यवस्थापित व्यक्तित्व का निर्माण करता है।

4. मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान की प्रकृति एवं क्षेत्र

मानसिक स्वास्थ्य–विज्ञान एक विस्तृत क्षेत्र है जिसकी सीमाओं को अनुचित रूप से परिभाषित किया गया है।[3] जैसा कि नाम से ही प्रतीत होता है मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का सम्बन्ध मानसिक स्वास्थ्य एवं कार्य क्षमता को बनाये रखने के सम्बन्धित है। मानसिक स्वास्थ्य को दुर्बल बनाने के अनेक कारक है और वे प्रायः, अत्यन्त जटिल हैं। इसके अन्तर्गत न केवल उन कारकों को ही सम्मिलित किया जाता है जिनसे कि मस्तिष्क कोशिकाओं में रोग उत्पन्न हो जाता है बल्कि वे कारक भी सम्मिलित होते हैं जिनसे व्यक्तित्व का विकास अवरुद्ध हो जाता है। इनमें न केवल मस्तिष्क आघात व दुर्बल व्यक्तित्व को सम्मिलित करते हैं बल्कि दुष्ट माता, तानाशाही पिता, सामाजिक विचलन, ईर्ष्या, धार्मिक संघर्ष, आदि अनेकों कारकों को सम्मिलित किया जाता है। अतः मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान पूर्ण रूप से चिकित्सकीय विषय नहीं है। यह चिकित्सालय की परिधि से बाहर भी घर, विद्यालय, धार्मिक संस्थान, न्यायालय, कारखाना तथा अन्य मानव सम्बन्धों से सम्बन्धित संस्थाओं में कार्य करता है।

इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के क्षेत्र में मनोविकार विज्ञान, स्नायु विज्ञान, जनन विज्ञान, अर्थशास्त्र, नीति शास्त्र, धर्म मनोविज्ञान, समाज शास्त्र, समाज कार्य आदि विषयों का अध्ययन किया जाता है। जिस प्रकार से सामान्य औषधिशास्त्र में शरीर रचना शास्त्र, भौतिक शास्त्र, जीवाणु शास्त्र आदि विषयों को सम्मिलित किया जाता है उसी प्रकार मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान अनेकों क्षेत्रों का एक सम्मिलित रूप है।

---

3. क्लीन, डी0बी0 मेन्टल हाइजीन, हेनरी हाल्ट ऐण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1956 पृ0 2

मनोविकार चिकित्सा विज्ञान
(Psychiatry)

मनोविकार चिकित्सा मानसिक रोगों के निदान एवं उपचार में दक्ष होता है। वह मानसिक रोगियों को देखता है, उनके लक्षणों को लिखता है, उसका जीवन इतिहास प्राप्त करता है, उसके परिवार के सदस्यों से साक्षात्कार करता है, प्रयोगशाला की रिपोर्ट का अध्ययन करता है और इन सूत्रों के आधार पर रोग का निदान करता है। वह प्रत्यक्ष तथा अप्रत्यक्ष दोनों प्रकार के कारणों की खोज करता है। मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से मानसिक रोगों के कारणों की खोज आवश्यक होती है क्योंकि इसका अधिकांश कार्य मानसिंक विघटन की रोकथाम करना है। बिना कारणों के ज्ञात किये रोकथाम सम्बन्धी आन्दोलन को नहीं चलाया जा सकता है।

स्नायु विज्ञान
(Neurology)

यद्यपि स्नायु विज्ञान तथा मनोविकार विज्ञान के अत्यधिक सम्बन्ध हैं परन्तु दोनों एक नहीं हैं। स्नायु विज्ञान चिकित्सक का मुख्य सम्बन्ध स्नायु मण्डल में होने वाले विकारों तथा उपचार से होता है। वह स्नायु मण्डल की विकृतियों का अध्ययन करता है, विकृति का निदान करता है तथा उपचार पद्धति निर्धारित करता है।

जनन शास्त्र
(Genetics)

वंशानुक्रम का मानसिक स्वास्थ्य से गहरा सम्बन्ध है। कुछ विकृतियाँ वंशानुगत होती हैं तथा अन्य विकृतियों का अप्रत्यक्ष सम्बन्ध होता है। जब एक बार वंशानुक्रमण तथा मानसिक विकृतियों में सम्बन्ध स्थापित हो जाता है मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान कार्यकर्ता को लाभकारी तथ्य ज्ञात होता है। उदाहरण के लिए वह मिर्गी के रोगी को विवाह करने के लिए हतोत्साहित करता है और इस प्रकार भविष्य मे होने वाली मिर्गी की घटनाओं को कम करने का प्रयास करता है।

मनोविश्लेषण
(Psycho-analysis)

मनोविश्लेषण एक प्रविधि है जिसके द्वारा व्यक्ति के मानसिक अचेतन एवं चेतन की खोज की जाती है जिसके माध्यम से स्नायुविकृति, मनोविकृति तथा व्याधिकीय व्यक्तित्व का उपचार किया जाता है। मनोविश्लेषण प्रत्यय का विकास

फ्रायड ने किया था। इस विज्ञान के अनुसार व्यक्तिगत विघटन, असमायोजन, अकार्यात्मकता तथा स्थायी चिन्ता का मुख्य कारण व्यक्ति की सम्प्रेरणायें तथा संघर्षात्मक मूल प्रवृतियाँ होती हैं। रोगी व्यक्ति को अपनी चिन्ता के कारणों का पता नहीं होता है। अचेतन रूप से इच्छायें एवं सम्प्रेरणायें इसे कष्ट पहुँचाती रहती हैं। इस दृष्टि के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य एक दशा है जिसमें सम्प्रेरणाओं में मधुर सम्बन्ध होता है। उद्देश्यों एवं शक्तियों में संतुलन होता है तथा कम से कम आन्तरिक भिन्नता होती है। इसके विपरीत मानसिक अस्वस्थता में विभिन्न आन्तरिक कारकों में संघर्ष होता है तथा जिसकी प्रकृति के सम्बन्ध में रोगी को प्रायः ज्ञान नहीं होता है।

दर्शनशास्त्र तथा नीतिशास्त्र
(Philosophy and Ethics)

दर्शन का अभिप्राय व्यक्ति व समाज से सम्बन्धित तथ्यों तथा मूल्यों के समन्वय से है। इसमें व्यक्ति तथा आदर्शों की व्याख्या की जाती है। यह उन आदर्शों को प्रस्तुत करता है जिसके आधार पर सामाजिक सम्बन्धों का मूल्यांकन सम्भव होता है। इस प्रकार दर्शनशास्त्र के अध्ययन से ज्ञात होता है कि सामान्य व्यवहार क्या है। वे कौन से आदर्श हैं जिनकी प्राप्ति मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होती है। नीतिशास्त्र व्यक्ति के उचित व अनुचित व्यवहार के बारे में विवेचना करता है। व्यक्ति में नैतिकता का विकास सामाजिक पृष्ठभूमि के अनुरूप होता है। जो व्यवहार एक समाज में सामान्य होता है वही व्यवहार दूसरे समाज में असामान्य समझा जाता है। सामाजिक व्यवहार के आधार पर नैतिकता सम्बन्धी विचारों का विकास होता है। नीतिशास्त्र यह बतलाता है कि नैतिक नियम व्यक्ति के व्यवहार को किस प्रकार प्रभावित करते हैं। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के लिए नैतिक नियमों की जानकारी आवश्यक होती है क्योंकि बहुत सी मानसिक विकृतियाँ नैतिकता के आधार पर निश्चित की जाती है।

समाजशास्त्र
(Sociology)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान समाज शास्त्र पर आधारित है क्योंकि व्यक्ति तथा समाज एक दूसरे से घनिष्ठ सम्बन्धित हैं। समाज ही व्यक्ति के जीवन का आधार है। समाजशास्त्र सामाजिक सम्बन्धों के नियमों का अध्ययन करता है। समाजशास्त्र के अध्ययन से पता चलता है कि जिस समूह व समुदाय में मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन चलाना है उसकी क्या–क्या विशेषतायें हैं, कौन–कौन सी समस्यायें हैं तथा किस प्रकार की पृष्ठभूमि है। बिना सामाजिक विशेषताओं को ज्ञात किये कोई भी कार्यक्रम नहीं चलाया जा सकता है।

मानवशास्त्र
(Anthropology)

मानवशास्त्र में समूह के व्यवहार की विवेचना की जाती है तथा व्यवहार के वंशानुगत लक्षणों को निर्धारित किया जाता है। व्यक्ति के शारीरिक स्वरूप, प्रजातीय विशेषताओं तथा सांस्कृतिक पृष्ठभूमि का मानवशास्त्र में अध्ययन किया जाता है। सांस्कृतिक मानवशास्त्र के विकास के पूर्व व्यक्ति के व्यवहार को कुछ मूल प्रतियों का परिणाम माना जाता था परन्तु इस विज्ञान की खोजों ने इस भ्रम को दूर कर दिया है। व्यक्ति जैवकीय तथा सांस्कृतिक तत्वों का सम्मिलित रूप है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान के लिए संस्कृति का ज्ञान होना आवश्यक होता है क्योंकि की व्यवहार संबन्धी भिन्नताओं के लिए सांस्कृतिक परिवेश को समझना महत्वपूर्ण होता है।

अर्थशास्त्र
(Economics)

अर्थशास्त्र जीवन के सामान्य क्रियाकलापों के संदर्भ में व्यक्ति का अध्ययन करता है। यह इस बात को ज्ञात करना है किस प्रकार वह धन कमाता है, किस प्रकार खर्च करता है, किस प्रकार आर्थिक व्यवहार करता है आदि। आर्थिक दशायें व्यक्ति की सामाजिक अन्तः क्रिया को प्रभावित करती हैं। अनेक मानसिक व सांवेगिक समस्यायें आर्थिक होती हैं। हड़ताल, तालेबन्दी, औद्योगिक वाद–विवाद तथा गृह–कलह प्रायः आर्थिक संकट के कारण होती है।

सांवेगिक सुरक्षा पूर्णरूपेण आर्थिक सुरक्षा पर निर्भर होती है अतः किसी भी मानसिक स्वास्थ्य कार्यक्रम के लिए आर्थिक पहलू का अध्ययन करना आवश्यक होता है। यद्यपि मानसिक स्वास्थ्य को खरीदा नहीं जा सकता है लेकिन धन के द्वारा ही आधुनिक समाज में आवश्यक दशाओं को उत्पन्न किया जा सकता है। यदि परिवार की प्राथमिक आवश्यकताओं जैसे भोजन, वस्त्र, मकान, चिकित्सा सुविधाओं की पूर्ति नहीं होती है तो मानसिक स्वास्थ्य की आवश्यक दशाओं को प्राप्त नहीं किया जा सकता है। जो बालक इस प्रकार के परिवार में पलते हैं उनमें उचित मानसिक व सांवेगिक विकास नहीं हो पाता है।

मनोविज्ञान
(Psychology)

मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का मनोविज्ञान मुख्य स्रोत एवं सहयोग देने वाला विज्ञान है। इसकी प्रणालियों, प्रत्ययों, सिद्धान्तों तथा प्रविधियों को मनोविज्ञान की

विभिन्न शाखाओं से प्राप्त किया गया है। बाल मनोविज्ञान स्वस्थ मानसिक दशाओं का ज्ञान कराती है। शिक्षा मनोविज्ञान मानसिक स्वास्थ्य पर विद्यालय के महत्व को स्पष्ट करती है, असामान्य मनोविज्ञान सामान्य असामान्य में अन्तर स्पष्ट करती है। औद्योगिक मनोविज्ञान कार्य सम्बन्धी दशाओं एवं मानसिक स्वास्थ्य में सम्बन्ध स्पष्ट करता है तथा क्लिनिकल मनोविज्ञान चिकित्सात्मक पहलुओं पर विचार करता है।

समाज कार्य
(Social Work)

समाज कार्य एक सहायताकारी व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की सहायता अकेले अथवा समूह व समुदाय के माध्यम से की जाती है। व्यक्ति की मनोसामाजिक समस्याओं का समाधान विभिन्न प्रणालियों द्वारा सम्भव होता है। मानसिक स्वास्थ्य विज्ञान का कार्य भी स्वस्थ जीवन पद्धति का विकास करना है अतः दोनों में घनिष्ठतम सम्बन्ध है।

5. मानसिक स्वास्थ्य
(Mental Health)

मानसिक स्वास्थ्य व्यक्ति के सम्पूर्ण व्यक्तित्व की समन्वित क्रिया है। व्यक्ति में बहुंत सी प्रेरणायें लालसायें, इच्छायें मनोविकृतियाँ तथा रुचियाँ होती हैं जिनकी पूर्ण अभिव्यक्ति एवं उचित समन्वय आवश्यक होता है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य के लिए 3 बातें प्रमुख हैं :–

1. पूर्ण अभिव्यक्ति
2. एकीकरण
3. मूल तथा अर्जित प्रेरणाओं का सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशन

व्यक्ति में अनेक मूल प्रवृतियाँ होती हैं और यदि उनका दमन किया जाता है तो व्यक्तित्व का समुचित विकास नहीं होता और स्नायुविक रोग उत्पन्न हो जाते हैं। अतः मूल प्रवृत्तियों के दमन को रोकना मानसिक स्वास्थ्य को बनाये रखने की दिशा में एक आवश्यक कदम है। उदाहरण के लिए यदि हम जब क्रोधित होते हैं और उस क्रोध को दमित कर देते हैं तो यह अधिक समय तक कष्ट पहुँचाता रहता है। अतः मूल–प्रवृतियों को दबाने से व्यक्ति अशक्तिवान, कमजोर इच्छा शक्ति वाला तथा विकृति व्यक्तित्व वाला बन जाता है।

प्रायः मूलप्रवृतियों के अलग–अलग कार्य एवं उद्देश्य होते हैं अतः उनमें संघर्ष होने की सम्भावना रहती है। यद्यपि उन्हें कार्य करने की पूर्ण

स्वतंत्रता सामान्य मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक होती है परन्तु यदि वे व्यक्तित्व के उद्देश्य को बिना ध्यान दिये कार्य करती हैं तो मानसिक अस्वस्थता के लक्षण उत्पन्न होने की अधिक सम्भावना रहती है। क्योंकि इससे मानसिक द्वन्द होता है, मानसिक दुर्बलता बढ़ती है, मानसिक शक्ति क्षीण होती है एवं व्यक्तित्व विघटित होता है। अतः प्रेरणाओं, इच्छाओं, मूलप्रवृतियों आदि में समन्वय एवं एकीकरण आवश्यक होता है।

व्यक्तित्व की सभी विशेषताओं, लक्षणों एवं गुणों को एक सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशित होना आवश्यक होता है। जब तक वे एक सामान्य लक्ष्य की ओर निर्देशित नहीं होते हैं तब तक उनमें सामंजस्य नहीं हो पाता है। उदाहरण के लिए यदि संघर्ष की भावना का उद्देश्य समाज में रहना है तो ये दोनों भावनायें एवं मूल प्रवृतियां एक दूसरे के विपरीत हो जायेंगी। परन्तु यदि इनका एकीकरण एक सामान्य लक्ष्य की ओर केन्द्रित कर दिया जाता है तो व्यक्ति सामाजिक हो जाता है वह सामाजिक कुरीतियों के प्रति संघर्ष करना उचित समझता है। इस प्रकार मानसिक स्वास्थ्य एक अस्थिर और चल तत्व है जो सम्पूर्ण अंगों की क्रियाशीलता से बनता है। हम मानसिक स्वस्थ व्यक्ति उसी को कहते हैं जिसमें सम्पूर्ण अर्जित व वंशानुगत गुण पूर्ण रूप से विकसित होते हैं तथा उद्देश्य को सामने रखते हुए इनमें सामंजस्य स्थापित करता है।

मानसिक स्वास्थ्य का तात्पर्य व्यक्ति के व्यक्तित्व एवं सांवेगिक मनोवृतियों के संतुलित विकास से होता है जो साथी व्यक्तियों के साथ संतोषप्रद रूप से रहने के लिए प्रोत्साहित करता है।[4]

मानसिक स्वास्थ्य का सम्बन्ध पूर्ण रूप से व्यक्तियों से ही नहीं होता है बल्कि इसका अभिप्राय व्यक्ति का समुदाय से भी सम्बन्धं होता है जिसमें वह रहता है, समाज जिसका समुदाय एक भाग होता है तथा सामाजिक संस्थायें जो उसके अधिकतर जीवन को निर्देशित करती हैं, जीवन शैली, कार्यपद्धति, धनोपार्जन के तरीके, व्यय के तरीके, प्रसन्नता प्राप्त करने के तरीके, स्थायित्व तथा सुरक्षा निश्चित करती हैं।[5]

---

4. पार्क, जे0 ई0 — टैक्स्ट बुक आफ प्रिवेन्टिव ऐण्ड सोशल मेडिसिन बनारसीदास मैनोट, जबलपुर, इण्डिया, 1972 पृ0 583
5. विश्व स्वास्थ्य संघ — मेन्टल हेल्थ ऐण्ड मेन्टल इलनेस इन दि वर्ल्ड आफ टुडे, फीचर सेरीज, 7, अप्रैल, 1959

क्लीन के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य एक दशा है जिसमें मधुर एवं संतोषप्रद सम्प्रेरणात्मक तरीके होते हैं। उनमें कम से कम योग्य तथा अयोग्य मूलप्रवृत्तियों में क्षणिक इच्छाओं तथा दीर्घकालीन उद्देश्यों तथा व्यक्तिगत आदर्शों तथा उपलब्धियों के तथ्यों में कम से कम संघर्ष होता है।[6]

6. मानसिक स्वास्थ्य का स्तर

सन् 1968 के अगस्त के महीने में मानसिक स्वास्थ्य पर एक अन्तर्राष्ट्रीय कान्फ्रेन्स सम्पन्न हुई जिसमें यह निष्कर्ष निकाला गया कि मानसिक अस्वस्थता दिनोंदिन बढ़ रही है और इसका कारण वर्तमान जीवन शैली की नवीन विशेषतायें हैं। इस बात पर इस कान्फ्रेन्स में सहमति हुई कि तीव्र परिवर्तनीय औद्योगिक दुनियाँ में पुरानी पीढ़ी अजनबी हो गयी है। युवक औषधि, तथा बाल नृत्य एवं संगीत द्वारा भ्रम को दूर करते हैं। धार्मिक उत्साह, दुख, चिन्ता तथा विषाद उत्पन्न करता है, वर्तमान समाज असुरक्षा की भावना उत्पन्न करता है जिसके कारण चिन्ता एवं सरल प्रकार का स्थिर व्यामोह उत्पन्न हो रहा है।[7]

प्रायः चिकित्सालय में भर्ती हुए रोगियों की संख्या से अनुमान लगाया जाता है कि किसी समुदाय में मानसिक रोगों का क्या अनुपात है। परन्तु यह कथन उस दशा में सत्य है जब चिकित्सालय की सुविधायों पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। गोल्ड हैमर तथा मार्शल[8] ने प्रथम प्रवेश दर का अध्ययन किया। परन्तु वे इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि यद्यपि मानसिक रोगियों की संख्या में लगातार तीव्रता आ रही है परन्तु सुविधाओं की कमी के कारण ठीक–ठीक अनुमान लगाना कठिन है। ब्रेमर[9] (Bremer) ने बताया है कि 34 प्रतिशत मनोविकृत चिकित्सालय में कभी भर्ती नहीं होते हैं तथा उनकी गणना रोगियों में नहीं हो पाती है।

6.	क्लीन, डी0 वी0	मेंटल हाईजिन, हेनरी होल्ट ऐण्ड कं0, न्यूयार्क 1956 पृ0 5
7.	जर्नल आफ इन्डियन मेडिकल ऐसोसिएशन, 1968	
8.	गोल्ड सेमर, एच0 तथा मार्शल ए0	साइकोसिस ऐण्ड सिविलाइजेशन लेनकोई, 1953
9.	ब्रेमर, जे0	ए सोशलसाइक्याट्रिक इनवेस्टीगेशन आफ ए स्माल कम्यूनिटी इन नार्दन नार्वे, एक्टस साइक्याट्री, सप्लीमेन्टरी, 1951

भारत में मानसिक रोगियों की संख्या का और भी अनुमान लगाना कठिन है क्योंकि कोई भी रिकार्ड अभी तक तैयार नहीं हो पाया है। दुबे[10] ने मानसिक विकृतियों की संख्या का अध्ययन कर इस निष्कर्ष पर पहुंचे कि इस प्रकार की सूचनायें कहीं भी भारत में उपलब्ध नहीं हैं। हैल्थ सर्वे ऐण्ड डेवलेपमेंट कमेटी (1946) ने यह स्पष्ट किया कि मानसिक रोगों की घटना के सम्बन्ध में चिकित्सालय में भर्ती रोगियों की संख्या के आधार पर अनुपात स्पष्ट नहीं किया जा सकता है। सन् 1966 ई0 में भारत सरकार की मेंटल हैल्थ ऐडवाइजरी कमेटी 1000 में 20 मानसिक रोगी शहरों में तथा 1000 में 18 व 14 अर्ध ग्रामीण व ग्रामीण में होने का अनुमान लगाया।

वर्तमान समय में भारत में राजनैतिक, सामाजिक आर्थिक सभी क्षेत्रों में तीव्र परिवर्तन हो रहे हैं जिसके कारण व्यक्तियों के मस्तिष्क में अनिश्चितता व संघर्ष के बीज उत्पन्न होते हैं। सांवेगिक व्यवधानों का प्रयोग बढ़ता जा रहा है। प्रौद्योगिक, औद्योगिक तथा सामाजिक आर्थिक परिवर्तन से न केवल शारीरिक रोगों में वृद्धि हो रही है बल्कि व्यक्तित्व विकृतियों, बाल अपराधों, अपराधों तथा स्नायु विकृतियों में उत्तरोत्तर वृद्धि हो रही है। स्थान परिवर्तन, नगरीकरण तथा आधुनिक जीवन शैली के कारण परिवर्तन टूट रहे हैं। माता–पिता का नियंत्रण कम हो रहा है, वृद्धावस्था की समस्यायें बढ़ रही हैं तथा मानसिक मंदता के लक्षण अधिक प्रकट हो रहे हैं।[11] विश्व स्वास्थ्य संघ (1959) के अनुसार मानसिक स्वास्थ्य की दुर्घनायें परिवर्तनशील एवं विकासोन्मुख देशों में अधिक हो रही हैं। इस दृष्टि से भारत में मानसिक रोग की घटनायें दिनोदिन बढ़ रही है अतः मानसिक स्वास्थ्य आन्दोलन की अत्यन्त आवश्यकता है जिससे बढ़ती विकृतियों को रोका जा सके। प्रसाद[12] के अनुसार उत्तर प्रदेश में ही 1.5 लाख मानसिक रोगी हैं तथा पूरे देश में 8.5 लाख ऐसे मानसिक रोगी हैं जिनको चिकित्सालय में भर्ती करने की आवश्यकता है।

निम्नांकित तालिका से मानसिक रोगों के अनुमानित घटनाचक्र का ज्ञान होता है।

---

10. दुबे, के0 सी0 — सर्वे आफ मेंटल मारविडिटी इन इण्डिया ऐट मेंटल हास्पिटल आगरा, इण्डियन जर्नल साइक्याट्री 6, 98, 1964
11. ब्रोकिगटन, एफ0 — मेंटल हेल्थ एण्ड दि वर्ल्ड कम्युनिटी, वर्ल्ड फेडरेशन फार मेंटल हेल्थ, लंदन, 1954
12. प्रसाद वी0 जी0 — सम थाट्स आन मेंटल हेल्थ इन इंडिया, इंडियन जर्नल आफ साइक्याट्री, 3, 1961, पृ0 100

अनुमानित मानसिक रोगों की दर

वर्ष	अनुसंधान कर्त्ता	देश	मनोविकृति	मनोस्नायु विकृति	मनो–विदलता	उत्साह विवाद	मानसिक मंदता
1938	स्लेटर	यूनाइटेड किंगडम	–	–	–	0.76	–
1946	ओडेगार्ड	नार्वे	–	–	1.85	0.70	–
1948	स्जोग्रेन	स्वीडन	3.50	–	1.00	0.80	0.90
1948	मेयरग्रास	स्काटलैण्ड	–	–	0.42	0.35	1.56
1948	स्टोमग्रेन	डेनमार्क	–	–	0.65	0.36	–
1951	ब्रेमर	नार्वे	3.00	–	–	–	–
1952	स्टेनस्टेट	स्वीडन	–	–	–	1.00	–
1953	बुक	स्वीडन	5.00	–	2.66	0.07	–
1954	लारसन एण्ड स्जोग्रेन	स्वीडन	5.20	–	1.60	1.05	–
1956	इसेन, मोलर	स्वीडन	–	–	1.10	–	0.87
1959	नोरिस	यू0के0	–	–	1.00	1.10	–
1962	गारोन	स्वीटजरलैण्ड	–	–	2.40	–	–
1964	दुबे	इन्डिया	–	–	5.51	2.65	3.99
1964	हेलगासन	आइसलैण्ड	–	–	0.73	2.15	–
1966	हागनेल	स्वीडन	1.70	–	–	–	1.20
1970	दुबे	इन्डिया	–	–	6.00	3.6	–

तालिका : मानसिक रोग, घटनाक्रम प्रति 1000
(कुछ अमेरिकन तथा यूरोपियन सर्वे)

वर्ष	अनुसंधानकर्ता	देश	जनसंख्या	कुल मानसिक रोग	मनोविकृति
1929	ब्रेजर	जर्मनी	37561	12.80	3.80
1930–31	ब्रेजर	जर्मनी	8628	59.90	5.60
1935	स्ट्रांगग्रेन	डेनमार्क	45930	15.60	10.90
1936	कालिला	फिनलैण्ड	418472	7.20	6.00
1936	लेमकू	अमेरिका	55129	60.50	6.70
1938	रोथऐण्डल्यूटन	अमेरिका	24804	69.40	6.30

1944	स्जोगरन	स्वीडन	8736	45.40	9.80
1944	ब्रीमर	नार्वे	1325	195.50	14.30
1956	इसेन–मूलर	स्वीडन	–	पुरुष 14.00	–
				स्त्री 23.00	–
1957	लोगेन एंड ब्रौक	इंगलैण्ड	–	पुरुष 6.50	–
				स्त्री 16.30	–
1957	पासामानिक	अमेरिका	1200	100.00	–
1962	श्रोल	अमेरिका	–	233.00	–
1963	लिंगटन	अमेरिका	–	200.00	–

तालिका : मानसिक रोग घटनाक्रम प्रति 1000
(एशिया के कुछ देशों का सर्वे)

वर्ष	अनुसंधानकर्ता	देश	जनसंख्या	कुल मानसिक रोग	मनोविकृति
1940	यूचीमूरा	जापान	8330	6.80	6.20
1941	अक्मिोटो	जापान	5207	26.50	8.50
1941	टुसुवागा	जापान	2712	30.80	9.80
1946–48	लिन	चीन	19931	10.80	3.80
1954	काटो	फारमूसा	23993	15.00	5.00
1963	काटो	जापान	44092	13.00	6.00
1960	जया सुन्देरा	जापान	2506	10.00	–
1961	"	श्रीलंका	2212	5.00	–
1962	"	श्रीलंका	1519	6.00	–
1964	"	श्रीलंका	2497	4.00	–
1964	दुवे	भारत	7479	18.32	6.55
1969	इलनागर	भारत	1383	27.00	–
1970	दुवे	भारत	29468	23.79	–

7. मानसिक स्वास्थ्य की सुरक्षा

अब प्रश्न उठता है कि मानसिक रोगों से किस प्रकार बचा जा सकता है एवं सांवेगिक स्थायित्व किस प्रकार बना रहे। एक स्वस्थ, प्रसन्न, तथा संतुष्ट व्यक्ति सांवेगिक तथा स्नायुविक तनाव, संघर्ष तथा असंयमितता से स्वतंत्र होता है। वह परिवर्तनों का स्वागत करता है तथा अपनी ऐसी मनोवृति का विकास

करता है जिससे परिवर्तित शक्तियों एवं स्थितियों से समायोजन करना आसान हो जाता है। अतः आवश्यकता इस बात की है कि हम उचित मनोवृति का विकास करें। जिससे व्यवहार में परिवर्तन समय की माँग के अनुसार हो सके। निम्नलिखित शक्तियों द्वारा उचित मनोवृति का विकास किया जा सकता है–

1. मूल प्रतिक्रियाओं तथा समायोजन समस्याओं के सम्बन्ध में अन्तर्दृष्टि
2. जीवन के विषय में सामान्य ज्ञान
3. उचित आकांक्षा का स्तर
4. शक्तियों के अनुरूप इच्छायें
5. वास्तविक उद्देश्य का निर्धारण
6. अनुभव से सीखने की क्षमता
7. इच्छाओं व आकांक्षाओं की समाजिक स्वीकृति
8. सामाजिक स्थितियों का आसानी से ग्रहण
9. कार्य के प्रति व्यक्तिगत सामान्य–चालक
10. अपने तथा दूसरों के लिए लाभकारी आदतों का विकास

8. मानसिक स्वास्थ्य सुरक्षा के कुछ व्यावहारिक नियम

यहाँ पर कुछ व्यावहारिक सुझाव दिये जा रहे हैं जिनको पालन करने से मानसिक स्वास्थ्य को सुरक्षित रखा जा सकता है।

1. समस्याओं का सामना दृढता, योग्यता तथा आत्मा विश्वास के साथ किया जाय, पूर्व घटनाओं पर विशेष बल एवं महत्व न दिया जाय, तथा भविष्य का पुल तब तक न पार किया जाय जब तक उस तक न पहुँचा जाय।
2. यदि कोई परिस्थिति परिवर्तित करने की स्थिति में न हो तो हम उसको स्वीकार करें। समस्या का सामना सर्वांगीण प्रयत्नों से करें। या तो समस्या का समाधान करें अन्यथा उसको भूल जायं। दुखी स्थिति के चारों ओर चक्कर न काटें। कष्ट में रहना शान्ति से सीखें तथा स्वीकार करें।
3. दूसरों में रुचि रखें। पड़ोसियों से अच्छे सम्बन्ध बनावें तथा भ्रमों को दूर करने का भरसक प्रयत्न करें। प्रसन्नता साबुन के फेने के समान है यदि पकड़ने की कोशिश करेंगे तो वह नष्ट हो जायेगी न छूने से ही उसका आनन्द लिया जा सकता है। अधिकांशतः वे

ही व्यक्ति असंतुष्ट, अप्रसन्न तथा दुखी हैं जो प्रसन्नता तथा संतुष्टि को प्राप्त करना चाहते हैं।

4. जीवन को हम स्वयं बनाते हैं। प्रायः हम वही प्राप्त करते हैं जिसकी आशा रखते हैं। अतः लक्ष्य का निर्धारण शक्ति, स्रोत एवं साधनों के अनुसार निश्चित होना चाहिए यदि आप अप्राप्य लक्ष्यों को बनायेंगे तो स्वयं तो दुखी होंगे ही साथ ही साथ दूसरों को भी दुख देंगे।
5. उन आदतों का निर्माण किया जाय जिससे आनन्द प्राप्त हो।
6. कभी भी अधिक गम्भीर न हों। उन्हीं कार्यों को करें जिनकी सामर्थ्य हो। हम यह मानें कि हम ईश्वर नहीं है अतः सभी कुछ सम्भव नहीं हो सकता है। अगर आप अपनी स्थिति पर दुख प्रकट करेंगे तो आप को कष्ट होगा, दूसरा व्यक्ति भाग नहीं लेगा।
7. यह सदैव ध्यान रखना चाहिए कि इस जीवन में पूर्ण प्रसन्नता प्राप्त करना असम्भव है। सफलता का तात्पर्य कठिनाईयों के न रहने से नहीं है बल्कि उनको उचित प्रकार से ग्रहण करने में ही है।
8. सदैव उच्च आदर्शों का निर्माण करें।
9. आराम अवश्य करें।
10. संवेग उत्पन्न होने पर तुरन्त कार्य करें।
11. कार्य में रुचि का विकास करें तथा अच्छी आदतों का निर्माण करें।
12. किसी न किसी व्यक्ति से विश्वसनीय सम्बन्ध अवश्य बनायें जिससे सुरक्षात्मक तरीके से अपनी भावनाओं को स्पष्ट कर सकें।

9. मानसिक स्वास्थ्य के लिए कार्यक्रम

मानसिक स्वास्थ्य का उचित अर्थ एवं मानसिक रोगों के ज्ञान को लोगों तक पहुँचाने के लिए निम्नलिखित उपायों का अपनाना आवश्यक प्रतीत होता है–

1. जनशिक्षा

जन साधारण में आज भी मानसिक रोगों के सम्बन्ध में गलत धारणायें विद्यमान हैं। उनको इनके कारणों के विषय में अब भी ज्ञान नहीं है। लोग यह समझते हैं कि मानसिक रोग की उत्पत्ति देवी देवताओं के प्रकोप से होती है। अब भी रोगी को दण्ड तथा उसके साथ कठोर व्यवहार करने की व्यवस्था है।

अतः जनशिक्षा के कार्यक्रम को चलाना अत्यन्त आवश्यक है। जब तक लोग मानसिक रोगों के सम्बन्ध में समझेगे नहीं तब तक यह समस्या दिन प्रतिदिन बढ़ती ही जायेगी। जनशिक्षा के लिए सामूहिक कार्यप्रणाली तथा सामुदायिक क्रिया का उपयोग किया जा सकता हैं। भाषण, व्याख्यान, चलचित्र प्रदर्शिनी, स्फुट पत्र, परिसंवाद, सोसियोड्रामा आदि के द्वारा जन समूह को मानसिक रोगों के विषय में अवगत कराया जा सकता है।

बाल निर्देशन गृहों की स्थापना

जैसे–जैसे समस्या की गम्भीरता को समझा जा रहा है वैसे–वैसे बाल निर्देशन गृहों की स्थापना की जा रही है परन्तु भारत में अब तक इस दिशा में बहुत ही कम प्रयास किया गया है। इन गृहों की स्थापना से बालकों की समस्याओं को समझने, उन्हें दूर करने तथा भविष्य में सुरक्षित रखने में सहायता मिलती है। औद्योगिकरण तथा नगरीकरण के कारण बाल अपराधों एवं बाल व्यवहार विकृतियों में अत्यन्त वृद्धि हुई है। ऐसी दशा में गृहों की अत्यन्त आवश्यकता है।

सामाजिक सेवा केन्द्र एवं मंत्रणा केन्द्र

सामाजिक सेवा केन्द्रों के द्वारा व्यक्ति को अपनी समस्या का उचित प्रत्यक्षीकरण प्राप्त करने, सुलझाने तथा समायोजन प्राप्त करने में सहायता मिल सकती है। इन केन्द्रों में प्रशिक्षित वैयक्तिक कार्यकर्ता होने के कारण संघर्षयुक्त व्यक्ति की आन्तरिक एवं वाह्य कठिनाइयों को भली–भांति समझकर सहायता पहुँचायी जाती है जिससे उसकी स्थिति गम्भीर नहीं होती है। मंत्रणाकेन्द्र भी सामाजिक एवं मानसिक समस्याओं को सुलझाने में सहायता करते हैं। परन्तु खेद है कि इन केन्द्रों के महत्व को अभी समझा नहीं गया है।

विद्यालय समाज सेवा

परिवार के पश्चात समाजीकरण की प्रक्रिया में विद्यालय का दूसरा महत्त्वपूर्ण स्थान है। व्यक्ति का प्रारम्भिक जीवन विद्यालयों में गुजरता है। विद्यालय का वातावरण तथा अध्यापकों का चरित्र बालक की मनोवृति को प्रभावित करता है। आज विद्यालयों की स्थिति सोचनीय है। आज आवश्यकता इस बात की है कि बालकों की मनोवैज्ञानिक आधार पर शिक्षा दी जाय। माँ, बाप को बालक की समस्याओं से अवगत कराया जाय तथा ऐसी व्यवस्था की जाय जिससे बालक का सर्वांगीण विकास सम्भव हो सके। विद्यालय समाज सेवा इस दिशा में अतुलनीय सहयोग कर सकता है। अमरीका में इस प्रकार की

सेवा की व्यवस्था विद्यालयों में है। वहाँ सामाजिक कार्यकर्त्ता विद्यालयों के स्टाफ में नियुक्त किया जाता है और वह उन बालकों की सहायता करता है जो सामाजिक एंव सांवेगिक कारणों से अपने वातावरण से समायोजन स्थापित नहीं कर पाते हैं।

मनोरंजन केन्द्र का विकास

आज व्यक्ति मशीन की भांति काम में लगा रहता है। उसकी आवश्यकतायें इतनी बढ़ गयी हैं कि समय का अभाव उसे लगने लगा है। मनोरंजन के लिए समय ही नहीं मिलता है परन्तु मनोरंजन करना उतना ही आवश्यक है जितना कि मशीन को ठंढा करना। मनोरंजन से व्यक्ति की शारीरिक थकावट दूर होती है, मानसिक कष्ट कम होते हैं तथा चिन्ताओं का दमन होता है। व्यक्ति स्वस्थ महसूस करता है। भारत मे जहाँ एक ओर प्रौद्योगिक प्रगति होती जा रही है वहीं दूसरी ओर इस दिशा में बहुत कम प्रयास किया जा रहा है। गाँवों की समस्या तो और भी गम्भीर है। उनके पास मनोरंजन के कोई साधन नहीं है।

व्यक्ति जन्म से लेकर ही ऐसी स्थितियों का सामना करता है जो मानसिक स्वास्थ्य को विघटित करने का प्रयत्न करती है। जीवन की प्रत्येक अवस्था में वह इच्छाओं तथा आवश्यकताओं का अनुभव करता है जिनकी पूर्ति करना समायोजित जीवन के लिए आवश्यक होता है। व्यक्ति में शारीरिक सांवेगिक तथा सामाजिक आवश्यकताओं के अतिरिक्त अहं आवश्यकतायें भी होती हैं। अहं आवश्यकतायें दो प्रकार की होती हैं। प्रथम आवश्यकता विश्वास, स्वतंत्रता तथा उपलब्धि से संबन्धित होती है तथा दूसरी परिस्थिति, स्वीकृति तथा प्रशंसा की होती है। पहली आवश्यकता आत्म सम्मान की तथा दूसरी ख्याति प्राप्त करने की होती है।

व्यक्ति इन्हीं आवश्यकताओं की पूर्ति के लिए संघर्ष करता है। परन्तु आवश्यकता इस बात की है कि वह वास्तविक जीवन लक्ष्यों का निर्धारण कर समस्या की गम्भीरता को कम करे तथा मानसिक स्वास्थ्य बने रहने के उपायों का उपयोग करे। मानसिक स्वस्थ व्यक्ति ही परीक्षा की कसौटी पर सफल हो सकता है।

10. मानसिक रोगों की रोकथाम

मनोविज्ञान, मनोविकार विज्ञान तथा सम्बन्धित विज्ञानों ने अपने ज्ञान का विकास करने एवं उसको परिष्कृत कर असामान्य व्यवहार के निदान, उपचार तथा रोकथाम मे अतुलनीय सफलता प्राप्त की है। जिस प्रकार से

चिकित्सकीय विज्ञानों ने चेचक, डिप्थीरिया, पोलियो आदि रोगों की रोकथाम एवं उपचार के लिए अनेक औषधियों का विकास किया है उसी प्रकार आधुनिक सामाजिक विज्ञान असामान्य व्यवहार के लक्षणों को दूर करने के लिए तथा सामान्य मानसिक स्वास्थ्य स्थायी रखने के लिए एक निश्चित सूत्र का विकास कर रहे हैं। इस प्रकार के प्रयत्न अन्तर्राष्ट्रीय, राष्ट्रीय तथा स्थानीय स्तर पर सरकारी एवं ऐच्छिक संस्थाओं द्वारा किये जा रहे हैं।

पूर्व अध्यायों में वर्णित किया जा चुका है कि किस प्रकार मानसिक रोग उत्पन्न होते हैं तथा उनके क्या लक्षण होते हैं, इस विस्तृत वर्णन के आधार पर इन मानसिक विकारों की रोकथाम समभव हो सकती है। लेकिन कुछ ऐसे मानसिक रोग हैं जैसे आंगिक मनोविकृति इनके विषय में अभी तक ज्ञान नहीं प्राप्त हो पाया है। अतः इनकी रोकथाम करना कठिन है। वर्तमान समय में इस क्षेत्र में भी अनुसंधान किये जा रहे हैं तथा विभिन्न साधनों द्वारा मानवीय उत्पीडन एवं अमानुषिक रोगों को रोकने का प्रयास जारी है। आज अधिकांश मानसिक रोगों का उपचार सम्भव है तथा मानसिक मंदता के भी विस्तार को कम करना सम्भव होता जा रहा है।

मानसिक विकृतियों की रोकथाम के सम्बन्ध में दो मुख्य कार्य हैं– मानसिक रोगों का पता लगाना तथा इसके कारणों को दूर करना, तथा मानसिक स्वास्थ्य की दशाओं को विकसित करना। रोकथाम के अन्तर्गत 3 स्तरों का प्रायः उपयोग किया जाता है।

1. प्राथमिक रोकथाम
2. द्वितीयक रोकथाम
3. सीमावर्ती रोकथाम

1. प्राथमिक रोकथाम

प्राथमिक रोकथाम के अन्तर्गत वे समस्त उपाय सम्मिलित हैं जिनके द्वारा स्वस्थ विकास एवं जैवकीय, मनोवैज्ञानिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक समायोजन सम्भव हो सके।

(1) शारीरिक स्वास्थ्य तरीके

मानसिक स्वास्थ्य के लिए शारीरिक स्वस्थता आवश्यकता होती है। अतः आज स्वास्थ्य शिक्षा एक आवश्यक कार्यक्रम हो गया है। अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य संगठन ने स्वास्थ्य शिक्षा के 3 महत्वपूर्ण उद्देश्य बताये हैं। प्रथम उद्देश्य लोगों को स्वास्थ्य की आवश्यकता एवं महत्व को समझाना है। जब

तक इस क्षेत्र में व्यक्तियों को ज्ञान नहीं होगा तक तक स्वास्थ्य शिक्षा का उद्देश्य सफल नहीं हो सकता है। दूसरा उद्देश्य उन तरीकों को बताना है जिससे वे अपने स्वास्थ्य स्तर को ऊँचा उठा सकें। इस बात का ज्ञान कराना होगा कि वे स्वयं अपने प्रयत्नों व कार्यों को कर सकते हैं। तीसरा महत्व पूर्ण उद्देश्य अज्ञानता एवं गलत धारणाओं को दूर करना तथा इस प्रकार के ज्ञान को प्रदान करना है जिससे व्यक्ति की आदतों व्यवहार तथा दृष्टिकोण में परिवर्तन हो सके। स्वास्थ्य शिक्षा स्वास्थ्य कार्यक्रमों तथा स्वास्थ्य उन्नति के बीच की कड़ी है। इसके द्वारा व्यक्तियों में सक्रिय भाग लेने की भावना जाग्रत की जा सकती है।

निम्न प्रकार की शिक्षा स्वास्थ्य रक्षा के लिए आवश्यक होता है–

1. मानव शरीर सम्बन्धी ज्ञान

व्यक्ति में किस प्रकार अनेक अंग कार्य करते हैं, भोजन किस प्रकार पचता है तथा किन–किन कारणों से उसमें दोष उत्पन्न हो जाते हैं, रक्त संचार किस प्रकार होता है, किन–किन दशाओं में हम व्यवहार को असामान्य मानते हैं, किस प्रकार शरीर की असामान्य अवस्था होती है, आवेगों एवं संवेगों का इस पर क्या प्रभाव पड़ता है इत्यादि बातों का ज्ञान उसके लिए आवश्यक होता है। सोने, रहने, विश्राम करने की आवश्यकता एवं महत्व की जानकारी भी आवश्यक होती है। रोगों के विषय में ज्ञान, शराब तथा धूम्रपान से हानियाँ तथा प्राथमिक उपचार का साधारण ज्ञान कराना महत्वपूर्ण होता है।

2. पोषण सम्बन्धी शिक्षा

पोषण एक आर्थिक समस्या ही नहीं है बल्कि यह एक सामाजिक समस्या है। इस समस्या का समाधान करने के लिए शिक्षात्मक प्रयास किया जाना अत्यन्त आवश्यक है। व्यक्तियों को इस बात का ज्ञान कराना होगा कि वे किस प्रकार का भोजन करें, किस प्रकार अधिक से अधिक पोषण तत्वों का उपयोग करें, किस प्रकार संतुलित आहार बनाये रखें तथा किस प्रकार संतुलित आहार की अनुपस्थिति में शारीरिक एवं मानसिक बाधा उत्पन्न होती है।

3. व्यक्तिगत तथा वातावरण सम्बन्धी ज्ञान

स्वास्थ्य रक्षा विज्ञान के दो पहलू हैं– पहला व्यक्तिगत तथा दूसरा वातावरण सम्बन्धी। पहले प्रकार के ज्ञान में आवश्यक है कि व्यक्तिगत सफाई का पूरा–पूरा ज्ञान हो तथा उससे होने वाली हानियाँ एवं लाभों से अवगत हो। वातावरण सम्बन्धी ज्ञान के दो पहलू हैं। घरेलू ज्ञान तथा सामुदायिक स्वास्थ्य ज्ञान। घरेलू स्वास्थ्य ज्ञान एवं उसकी शिक्षा न होने से स्वास्थ्य में काफी गिरावट

आ जाती है। जहाँ घरों में रोशनी, स्वच्छ हवा का अभाव होता है, साफ पानी नहीं मिलता है कुओं की सफाई नहीं होती है, गंदगी फैली रहती है वहाँ रोगों का प्रकोप स्वाभाविक हो जाता है। अतः व्यक्तिगत स्वास्थ्य के साथ–साथ सामुदायिक स्वास्थ्य शिक्षा की भी आवश्यकता होती है।

4. माँ के लालन पालन की शिक्षा

यह कथन सत्य है कि एक माँ को शिक्षित करने का मतलब होता है पूरे परिवार को शिक्षित कर देना। यदि उसे स्वास्थ्य के विषय में ज्ञान है तो वह इस बात का ध्यान रखती है कि किस प्रकार परिवार के स्वास्थ्य को ऊँचा रखा जाय। परन्तु हमारे यहाँ माताओं को साधारण ज्ञान तक तो होता नहीं फिर वे किस प्रकार परिवार के सदस्यों की देखभाल कर सकती है बच्चों का किस प्रकार पालन–पोषण कर सकती हैं, गर्भावस्था में कैसे सामान्य आहार–विहार कर सकती है, तथा किस प्रकार संतुलित आहार तैयार कर सकती हैं। माताओं को शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के विषय में ज्ञान होना आवश्यक होता है। बच्चों को भोजन, लालन–पालन, पारिवारिक स्वास्थ्य तथा दुर्घटनाओं के विषय में शिक्षा देना आवश्यक होता है। परिवार नियोजन की आवश्यकता एवं महत्व का भी ज्ञान कराना लाभकर होता है।

5. संसर्ग रोगों की रोकथाम

भारत में ऐसी बहुत सी परिस्थितियाँ हैं जिनको थोड़ा ध्यान देने से रोका जा सकता है क्योंकि वे बीमारियाँ अज्ञान तथा लापरवाही के कारण अक्सर हो जाती है तथा फैलती हैं। अनेक रोगों के सामाजिक कारण भी होते हैं और जब तक ये कारण दूर नहीं होती हैं तब तक इन बीमारियों को रोका नहीं जा सकता है।

6. मानसिक स्वास्थ्य शिक्षा

औद्योगिकीरण के कारण आज जीवन में बहुत सी अच्छाइयों के साथ–साथ कठिनाइयाँ भी आ गयी हैं और इन कठिनाइयों के कारण मानसिक रोगों में वृद्धि हुई है। आज परिवर्तन की दिशा इतनी तेज है कि प्रत्येक व्यक्ति को इसके साथ–साथ चलना असम्भव नहीं तो कठिन अवश्य हो गया है। पहले लोग गाँवों में रहते थे, पर अब शहरों की तरफ अधिक आकर्षित हो रहे हैं। गाँवों में पाया जाने वाला प्रेम, सोहार्द, सहिष्णुता तथा घनिष्ठता का शहरों में अभाव होता है।

शहरों में व्यक्ति अकेलापन महसूस करता है तथा मानसिक, शारीरिक

एवं सामाजिक सुरक्षा की कमी अनुभव करता है। अतः स्वास्थ्यवर्धक कार्यक्रमों की यहाँ पर अत्यन्त आवश्यकता है जिससे नीरस जीवन को सरस बनाया जा सके। मंत्रणा एवं सलाहकार केन्द्रों की स्थापना से समस्या को सुलझाया जा सकता है।

7. दुर्घटनाओं को रोकना

शहरों में दुर्घटनाओ का निरन्तर विस्तार हो रहा है। एक सेकेन्ड की असावधानी से जीवन का फैसला हो जाता है। दुर्घटनाओं से कई समस्यायें खड़ी हो जाती हैं। कहीं शरीर का एक अंग खराब हो जाता है और कहीं वह काम के योग्य नहीं रहता। इस कारण एक ओर तो व्यक्तिगत विघटन होता है और दूसरी ओर समाज को उसका भार वहन करना पड़ता है। यदि कहीं मृत्यु हो जाती है और परिवार में रोटी कमाने वाला अन्य कोई नहीं होता है तो सारे परिवार का जीवन कष्टमय हो जाता है। अतः दुर्धनाओं को रोकना आवश्यक हो गया है।

8. सुविधाओं का ज्ञान कराना

यद्यपि सरकार स्वास्थ्य की उन्नति के लिए काफी प्रयत्नशील है परन्तु जनता का अपेक्षित सहयोग नहीं प्राप्त हो पा रहा है क्योंकि जनता को इस बात का ज्ञान ही नहीं है कि उसे क्या–क्या सुविधायें उपलब्ध हैं। उदारहण के लिए मानसिक रोगों के चिकित्सालय, कुष्ठ रोग की उपचार व्यवस्था, भिखारियों के लिए रहने का प्रबन्ध, इत्यादि सुविधायें उपलब्ध हैं। परन्तु जनता इनका पूर्ण उपयोग नहीं कर रही है। अतः शिक्षा के प्रसार की इस दिशा में विशेष आवश्यकता है।

9. मानसिक तनाव को कम करना

प्रायः शहरों में रहने वाले व्यक्तियों को अत्यधिक कार्य करना पड़ता है। सुबह से शाम तक मशीन की भाँति वह कार्य करता रहता है। इस व्यस्तता के बावजूद भी वह अपनी आवश्यकताओं की संतुष्टि नहीं कर पाता है जिससे क्षोभ उत्पन्न होता है। संयुक्त परिवार में प्रायः, ईर्ष्या द्वेष की भावना पनप जाती है जिससे आंतरिक संघर्ष चला करता है। घर में बच्चों की देखभाल दिनोंदिन बढ़ती मंहगाई तथा सामाजिक समस्यायें व्यक्ति को चिंतित किये हुये हैं। परन्तु चिन्ता व भय को मन में रखने से मानसिक तनाव बढ़ता है। अतः इसके लिए आवश्यक है कि मन के बोझ को कम किया जाय तथा मन की बात को किसी विश्वसनीय व्यक्ति से कही जाय। इससे मस्तिष्क का तनाव कम होता है।

आज व्यक्ति को इच्छित कार्य एवं व्यवसाय नहीं मिल पाता है इससे

उसे निराशा होती है एवं नीरसता उत्पन्न होती है। मन का यह असंतोष कुण्ठा उत्पन्न करता है जो कुछ समय बाद स्नायुक्तओं को दुर्बल कर देता है और जरा सा क्रोध आते ही मानसिक तनाव का दौरा पड़ता है। अतः कार्य को सरल बनाना आवश्यक होता है। मानसिक परेशानियों एवं तनावों से बचने के लिए सबसे जरूरी बात है कि व्यक्ति को चाहिए कि वह जीवन के प्रत्येक पहलू में रस लें। सहनशीलता, संयम तथा धीरज के साथ जीना सीखें।

सामान्य मानसिक विकास सीखने की प्रक्रिया पर निर्भर होता है। शारीरिक, बौद्धिक, सांवेगिक तथा सामाजिक सीखने के पर्याप्त अवसर विकास के लिए आवश्यक होते हैं। व्यक्ति जब अपेक्षित क्षमता का विकास नहीं कर पाता है तो वह समस्या समाधान करने में असफल हो जाता है, सांवेगिक अभिव्यक्ति उचित नहीं हो पाती है: तथा जीवन में स्थापित होने वाले अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध सामान्य नहीं हो पाते हैं। अतः सीखने के सामान्य अवसर एवं सुविधाओं का होना आवश्यक होता है।

जैसे–जैसे सामाजिक दशाओं का महत्व मानसिक विकृतियों के संदर्भ में बढ़ रहा है वैसे–वैसे इस ओर ध्यान देने की आवश्यकता भी बढ़ रही है। आज यह सर्व सिद्ध हो गया है कि सामान्य मानसिक व शारीरिक विकास के लिए सामाजिक दशाओं का अनुकूल होना अत्यन्त आवश्यक होता है। जनशिक्षा, सामाजिक सुरक्षा तथा आर्थिक नियोजन ये तीनों तरीके इस समस्या का समाधान करने में सहयोगिक भूमिका अदा करते हैं। परन्तु जिस प्रकार का कार्य होना चाहिए वैसा अभी तक सम्भव नही हो पाया है।

10. द्वितीयक रोकथाम

द्वितीयक रोकथाम के अन्तर्गत मानसिक रोगों की खोज एवं उसकी चिकित्सा सम्मिलित होती है। जितनी ही जल्दी रोग का पता लग जाता है उस पर उतनी ही जल्दी नियंत्रण पाया जा सकता है अतः सर्वप्रथम कार्य उन परिवारों एवं समुदायों का पता लगाना होता है। जिनमें असामान्य व्यवहार के लक्षणों की अधिकता होती है। तदोपरान्त मानसिक स्वास्थ्य की सुविधाओं की अधिकाधिक उपलब्धि कराना होता है। तथा ऐसा पर्यावरण तैयार करना होता है जिसमें लोग उन सुविधाओं का उपयोग शीघ्र अतिशीघ्र कर सकें।

विज्ञान ने यह सिद्ध कर दिया है कि शारीरिक रोगों को उतनी ही जिल्दी नियंत्रण में लाया जा सकता है जितनी जल्दी उनके वितरण एवं संचार साधनों का पता लग जाता है। इस प्रकार के अध्ययन एवं क़ार्य असामान्य व्यवहार के संदर्भ में भी महत्वपूर्ण होते हैं।

11. सीमावर्ती रोकथाम

कुछ रोगी वास्तव में भर्ती होने के योग्य होते हैं अतः उनके लिए चिकित्सालय की तुरन्त सुविधाओं की उपलब्धि होनी चाहिए। सीमावर्ती रोकथाम का उद्देश्य रोग का प्राथमिक चरण पर ही उपचार कर लेना होता है। जिससे रोगी शीघ्र ठीक होकर पुनर्समायोजित हो सके।

12. मानसिक स्वास्थ्य के अन्तर्राष्ट्रीय प्रयत्न

मानसिक स्वास्थ्य की समस्या सम्पूर्ण विश्व की प्रमुख समस्या है क्योंकि नगरीकरण और औद्योगीकरण प्रत्येक देश में बढ़ रहा है। जिससे समस्या में विषमता उत्पन्न होती जा रही है। इसी कारण अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर समस्या समाधान करने के लिए संगठनों का विकास ही हुआ है। प्रमुख संगठन निम्न हैं :–

(1) विश्व स्वास्थ्य संगठन (World Health Organization)

(2) संयुक्त राष्ट्र शिक्षा विज्ञान तथा सांस्कृतिक संगठन (United Nations Educational, Scientific and Cultural Organization)

(3) मानसिक स्वास्थ्य विश्व संघ (The World Federation for Mental Health)

13. विश्व स्वास्थ्य संघ

द्वितीय विश्व–युद्ध के बाद जब संयुक्त राष्ट्र संघ की स्थापना हुई तो उसी के साथ सन् 1948 ई0 से विश्व स्वास्थ्य संघ का भी जन्म हुआ। इसका प्रधान कार्यालय योरोप में कोपेनहेग में तथा मध्यपूर्वी क्षेत्र का एलेक्जेड्रिया तथा पश्चिमी प्रशान्त महासागर का मनीला में है। यह विश्व का सबसे महानतम् संघ है जो जन–स्वास्थ्य सुधार के लिए जन धन सामग्री, विशेषज्ञ द्वारा वास्तविक कार्य कर रहा है। इसका प्रमुख कार्य संयुक्त राष्ट्रों की शारीरिक व मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित संस्तुतियों को व्यवहार में लाना है। प्रथम डाइरेक्टर जनरल ब्रोक चिशोलम (Brock Chisholm) ने कहा था कि इस समय सबसे महत्वपूर्ण आवश्यकता व्यक्तियों में शान्तिपूर्वक रहने की है। वे ऐसे उपायों की खोज कर सकें जिससे शान्तिपूर्वक रहना सीख लें। उन्होंने मनोवैज्ञानिक दशाओं के अध्ययन पर बल दिया जो शारीरिक तथा मानसिक स्वास्थ्य के मार्ग में बाधक थी।[13]

---

13. चिशोल्म, वी0 — दि फ्यूचर आफ साइक्याट्री, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 1948, 104 पृ0 543

सन् 1949 ई0 में मानसिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित प्रथम विश्व स्वास्थ्य संघ दक्ष कमेटी की मीटिंग हुई जिसमें विश्व स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यों पर प्रकाश डाला गया। परन्तु अपेक्षित सुविधाओं एवं व्यावसायिक व्यक्तियों के अभाव में कमेटी ने यह निर्णय लिया कि सम्पूर्ण विश्व को मानसिक स्वास्थ्य सुविधाओ को उपलब्ध नहीं कराया जा सकता है। अतः कमेटी ने शारीरिक रोगों जैसे मलेरिया, सिफलिस, हृदयरोग आदि को रोकने पर बल दिया। कमेटी ने शारीरिक स्वास्थ्य से सम्बन्धित कार्यक्रमों एवं सुविधाओं को उलब्ध कराने की सिफारिश की। परन्तु समय–समय पर मानसिक रोगों के सम्बन्ध में भी चर्चा विश्व स्वास्थ्य संघ में होती रही। सन् 1968 ई0 में मानसिक विकृतियों का अन्तर्राष्ट्रीय वर्गीकरण प्रकाशित हुआ जिसके आधार पर आज सभी देशों में विभिन्न मानसिक रोगों के रूपों को समझा जाता है।

विश्व स्वास्थ्य संघ के कार्य

विश्व स्वास्थ्य संघ के निम्न प्रमुख कार्य हैं :–

1. किसी भी सदस्य, देश या राष्ट्र के लिए अनुभवी विशेषज्ञों की मंत्रणा, सेवा और प्रसाधन उपस्थित करना।
2. स्वास्थ्य सम्बन्धी ज्ञान को बढ़ाने और तत्सम्बन्धित प्रशिक्षण के लिए प्रदर्शक एवं प्रशिक्षक टीम की व्यवस्था करना।
3. पिछड़े और अविकसित देशों में चल रहे टी0बी0 नियंत्रण और चिकित्सा, रति रोग निवारण, मलेरिया उन्मूलन, कुष्ठ निवारण, शिशु स्वास्थ्य सम्बन्धी आयोगों को विकसित करने में सभी प्रकार की सहायता प्रदान करना।
4. अन्तर्राष्ट्रीय स्वास्थ्य सम्बन्धी नियमों का परीक्षण एवं नियंत्रण करना।
5. विश्व भर में औषधि और वैक्सीन का वितरण करना।
6. चिकित्सा और स्वास्थ्य सम्बन्धी पुस्तकालय की व्यवस्था करना।
7. औषधि कारखानों एवं प्रशिक्षण संस्थाओं को आर्थिक सहायता प्रदान करना।

विश्व स्वास्थ्य संघ का कार्य क्षेत्र

1. मलेरिया उन्मूलन
2. फैलने वाले रोग सम्बन्धी सेवा

3. जन स्वास्थ्य सेवा एवं व्यवस्था
4. वातावरण सम्बन्धी सफाई
5. शैक्षणिक सेवा
6. व्यापक रोग और स्वास्थ्य सम्बन्धी आँकड़ों का संग्रह और सम्पादन
7. सम्पादकीय और निदेशन सेवा तथा अन्तर्राष्ट्रीय समझौते।
8. विश्व स्वास्थ्य संघ की सदस्यता प्रदान करना।

संयुक्त राष्ट्र शिक्षा, विज्ञान तथा सांस्कृतिक संघ (यूनिस्को)

द्वितीय विश्व युद्ध की समाप्ति के तत्काल बाद सन् 1946 ई0 मे इस संस्था का निर्माण पाश्चात्य देशों की माताओं तथा शिशुओं के कल्याण के लिए किया गया था। परन्तु सन् 1950 ई0 से यह संस्था विश्व के समस्त अविकसित देशों को अपनी सहायता एवं सेवा प्रदान कर रही है। यूनिस्को के संविधान में स्पष्ट लिखा है कि चूंकि युद्ध का प्रारम्भ व्यक्तियों के मस्तिष्क से होता है अतः व्यक्ति में शान्ति की रचनाओं का विकास होना आवश्यक है।

यूनिस्को का मुक्त कार्य राष्ट्रों में शान्ति एवं सुरक्षा सम्बन्धी योगदान शिक्षा विज्ञान तथा संस्कृति के द्वारा करना है जिससे न्याय, कानून एवं मानवीय अधिकारों एवं स्वतंत्रताओं की रक्षा सम्भव हो सके।[14]

यूनिस्को के कार्यक्रमों को 4 क्षेत्रों में विभाजित किया जा सकता है–

1. शिक्षा
2. नैसर्गिक विज्ञान
3. सामाजिक एवं मानवीय विज्ञान संस्कृति
4. संचार

यूनिस्को ने बहुत से अध्ययन एवं लघु योजना प्रस्तुत की है जो मानसिक स्वास्थ्य की दृष्टि से अत्यधिक महत्वपूर्ण हैं–

1. अन्तर्राष्ट्रीय तनाव सम्बन्धी अध्ययन
(Studies on International Tensions)

इन अध्ययनों में हेडले कैनट्रिल का 'टेन्सन्स दैट काज वार्स' ओटो क्लाइनवर्ग "दि ह्यूमन डाइमेन्सन्स इन इण्टरनेशनल रिलेशन्स" गार्डनर मफी का "माइन्डस आफ मेन", प्रमुख हैं।

---

14. यूनिस्को, कान्स्टीट्यूशन, पेरिस, 1945

2. प्रजातीय भेदभाव एवं प्रजातीय तनाव सम्बन्धी अध्ययन

इन अध्ययनों का प्रतिपादन 'प्रजाति तथा समाज' शीर्षक के अन्तर्गत किया गया। 'दि रेस क्वश्चन्स इन मार्डन साइन्स' तथा रेस क्वश्चन्स ऐण्ड मार्डन थाट' आदि महत्वपूर्ण हैं।

3. राष्ट्रीय संस्कृतियों की भिन्नताओं तथा मनोविकृति निर्माण परिवर्तन सम्बन्धी अध्ययन

पूर्वाग्रहों सम्बन्धी अध्ययन तथा सहयोगिक भावना उत्पन्न करने से सम्बन्धित अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है।

4. मनोवृति, जीवन शैली, मूल्य तथा सहयोगिक भावना उत्पन्न करने से सम्बन्धित अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण हैं।

5. यात्रा, आवागमन कार्यक्रम, अनुदान तथा अन्य साधनों द्वारा व्यक्तियों में बृहद ज्ञान के विकास सम्बन्धी कार्यक्रम भी सम्मिलित हैं।

यूनिस्को विकसित होने वाले देशों में शिक्षा के प्रसार के लिए भी काफी प्रयत्नशील है। विशेष कर प्राथमिक शिक्षा के विषय में तो हर सम्भव प्रयत्न कर रहा है।

मानसिक स्वास्थ्य विश्व संघ

मानसिक स्वास्थ्य विश्व संघ की स्थापना सन् 1948 ई0 में हुई थी। इसमें यह एक गैर सरकारी संघ है जिसका उद्देश्य अन्तर्राष्ट्रीय स्तर पर सरकारी व गैर सरकारी मानसिक स्वास्थ्य संस्थाओं में सहयोग उत्पन्न करना है। इसके अन्तर्गत निम्न संस्थायें प्रमुख है–

1. अन्तर्राष्ट्रीय सहयोगिक संस्था (International Cooperation Agency)
2. अमेरिका वैदेशिक कार्यक्रम संस्थान (America Foreign Program Institute)
3. टी0सी0एम0
4. कोलम्बों प्लान–यह योजना कामनवेल्थ देशों के लिए हैं। इस योजना के अनुसार प्रावैधिक व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जाता है।
5. राकफेलर संस्था (Rockfeller Foundation)
6. फोर्ड संस्था (Ford Foundation)

26

मनोचिकित्सा

मनोवैज्ञानिक विधियों से व्यक्तित्व के व्यवधानों की चिकित्सा करना ही मनोचिकित्सा है। मनोचिकित्सा का मुख्य उद्‌देश्य सेवार्थी एवं उसके पर्यावरण के बीच उचित समायोजन स्थापित करना है। मनोचिकित्सा द्वारा सेवार्थी को एक सामान्य व्यक्ति बनाने, समस्याओं को सुलझाने, विकारों को दूर करने, उसे सामाजिक समायोजन के योग्य बनाने एवं सुरक्षा की भावना का विकास करने का प्रयत्न किया जाता है। सेवार्थी में दमित इच्छायें होती हैं जिनको वह समझने में अपने को असमर्थ पाता है। मनोचिकित्सा द्वारा सेवार्थी को पूर्व चेतन प्रत्ययों (Preconscious Concepts), मूलप्रवृतियों तथा प्रभावों जिनका सामना करने तथा प्रतिदमित (Repressed) करने में भी असमर्थ रहा है, अभिज्ञान प्राप्त होता है।[1]

सामान्यतया मनोचिकित्सा का उद्‌देश्य परिपक्वता, दक्षता तथा आत्म कार्यान्वयन की दिशा में व्यक्तित्व का विकास करना है।[2] इस सामान्य कार्य में निम्नलिखित में से एक या अनेक विशिष्ठ उद्‌देश्य निहित हैं–

1. समस्या तथा व्यवहार के संदर्भ में अन्तर दृष्टि में वृद्धि करना,
2. आत्म ज्ञान कराना,
3. मानसिक संघर्ष के कारणों का समाधान करना,
4. अवांछनीय आदतों तथा प्रतिक्रिया तरीकों में परिवर्तन लाना।

---

1. कोलमैन, जूल्स0 बी0 — डिस्टिंग्विशिंग बिटवीन साइकोथिरैपी ऐण्ड केसवर्क, कोरा कासियस, प्रिंसपिल्स ऐण्ड टेकनिक्स इन केसवर्क, फैसिली सरविस आफ अमेरिका, न्यूयार्क, 1950, पृ0 388
2. कोलमैन, जेम्स सी0 — अवनार्मल साइकालोजी ऐण्ड माडर्न लाइफ, डी0वी0 तारापोरवाला ऐण्ड संस कं0, बाम्बे, 1972 पृ0 663

1. परिभाषा

वोलवर्ग

(Wolberg)[3]

मनोचिकित्सा सांवेगिक प्रकृति की समस्याओं के उपचार का एक तरीका है जिसमें प्रशिक्षित व्यक्ति व्यवधानात्मक व्यवहारिक तरीकों को सुधारने, परिवर्तित करने, लक्षणों को दूर करने तथा सकारात्मक व्यक्ति विकास एवं वृद्धि करने के लिए रोगी से जानबूझकर व्यवसायिक सम्बन्ध स्थापित करता है।

इन्धाम

(Ingham)[4]

मनोचिकित्सा शब्द सांवेगिक व्यवधानों के विभिन्न प्रकार के मनोवैज्ञानिक उपचारों को वर्णित करने के लिए प्रयोग करते हैं। इसमें मानव प्रयत्नों का विस्तृत क्षेत्र सम्मिलित होता है जो समय, स्थान, रोगी, चिकित्सक की भिन्नता के कारण भिन्न–भिन्न होता है। यह प्रायः अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों नैतिक मूल्यों व समाज की मांगों को निपटाता है। ये सभी चिकित्सा प्राप्त करने वाले रोगी की सांस्कृतिक पृष्ठभूमि से विशेष प्रभावित होते हैं।

डाइथल्म

(Diethelm)[5]

मनोचिकित्सा के अन्तर्गत लाभकारी मनोजैविकीय परिवर्तन लाने वाले सभी मनोवैज्ञानिक तरीकों एवं प्रकारों को सम्मिलित किया जाता है।

रोजर्स

(Rogers)[6]

मनोचिकित्सा असमायोजित व्यक्ति की अधिक संरचनात्मक परिणाम की ओर मनोवृति को परिवर्तित करने तथा व्यवहार को बदलने का प्रयास है।

---

3. वोलवर्ग, लेविस आर0 — दि टेकनिक्स आफ साइकोथैरैपी, ग्रने ऐण्ड स्ट्रैटन न्यूयार्क, 1954 पृ0 32
4. इनथाम हरिंगटन वी0 ऐण्ड लव लियोनार आर0 — दि प्रोसेस आफ साइकोथैरैपी, मैकग्रांहिल, न्यूयार्क, 1954 पृ0 1
5. डाइथेल्म ओस्कर — ट्रीटमेन्ट इन साइक्याट्री, थर्ड एडीशन, थामस स्प्रिगफील्ड, 1955, पृ0 59
6. रोजर्स, कार्ल, आर0 — कौशिलिंग ऐण्ड साइकोथिरैपी, हफटन मिफलिन वास्टन, 1942 पृ0 59

मास्लो[7]

यह (मनोचिकित्सा) उपचार का एक तरीका है जिसका उद्देश्य विघटित व्यक्ति की सांवेगिक प्रक्रियाओं को प्रभावित करके, उसका तथा दूसरों का मूल्यांकन करके अपने जीवन की समस्याओं का सामना करने के तरीकोंको प्रभावित एवं परिवर्तित करके और इस प्रकार समस्या को बदल कर वह एकीकरण एवं पूर्ण ज्ञान की क्षमता में वृद्धि करने का प्रयास करता है।

2. मनोचिकित्सा के उद्देश्य

मनोचिकित्सा का उद्देश्य सहायता के लिए आये हुये व्यक्ति की समस्या, उसके जीवन परिस्थितियों, व्यक्तित्व संगठन तथा इच्छित सहायता के रूप पर निर्भर होता है। चिकित्सक के प्रशिक्षण एवं व्यक्तित्व, शक्ति और समय, सम्भावित परिवर्तन तथा निदान व उपचार के ज्ञान पर भी मनोचिकित्सा का उद्देश्य निर्भर करता है। जब चिकित्सक यह निश्चित कर लेता है कि रोगी में कितनी क्षमता है, क्या–क्या कमियाँ हैं, रोगी किस प्रकार की सहायता आवश्यक समझता है तथा किस प्रकार के कार्य में वह सहायता के लिए तत्पर है, तब वह मनोचिकित्सा के उद्देश्य जो निर्धारित करता है। अतः रोगी की भिन्नता, चिकित्सा की भिन्नता, तथा समस्या की भिन्नता के साथ–साथ मनोचिकित्सा के उद्देश्य में अन्तर आ जाता है।

सामान्यतः मनोचिकित्सा का उद्देश्य समायोजन प्रान्त करने में व्यक्ति की सहायता करना है। कभी–कभी इस उद्देश्य का अर्थ लक्षणों को दूर करने या इसके प्रभाव को कम करने के रूप में लगाया जाता है। यद्यपि परिवर्तन का मूल्यांकन करना तथा यह पता लगाना आवश्यक होता है कि व्यक्ति को इससे लाभ हो रहा है अथवा नहीं, लेकिन बिना कारण तथा उद्देश्य सोचे लक्षण निवारण कार्य खतरनाक हो सकता है। क्योंकि मूल समस्या बनी रहती है। जिससे अतिरिक्त लक्षणों के उत्पन्न होने की आशंका हो जाती है। मनोचिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति में अन्तर्दृष्टि तथा उसके कारणों के प्रति अन्तर्द्वष्टि उत्पन्न करना होता है जिससे वह अपनी संघर्ष की जटिलता को कम कर सके। मनोचिकित्सक इस प्रकार के रोगी की सहायता मनोचिकित्सा द्वारा करता है कि रोगी में सांवेगिक तनाव कम होता है तथा दबाव एवं तनावपूर्ण स्थितियों का सामना दृढ़ता से कर लेता है।

---

7. मास्लो, ए0 एच0 ऐण्ड मिटलमैन, वेला — प्रिन्सिपिल्स आफ एबनार्मल साइकालोजी, हारपर, न्यूयार्क, 1951, पृ0 179

मनोचिकित्सा उपचार का एक तरीका जिसका अस्तित्व जैविकीय तथा सामाजिक दोनों प्रकार की विज्ञानों में है। मनोचिकित्सक इसके महत्व को अपने अनुभव तथा दृष्टिकोण के आधार पर प्रकट करते हैं। मनोविकार चिकित्सक तथा अन्य चिकित्सक शारीरिक तत्वों एवं कारकों पर अधिक जोर देते हैं। इस कारण मनोचिकित्सा को औषधि शास्त्र का एक अंग समझते हैं। उनके अनुसार मनोचिकित्सा का उद्देश्य मानसिक रोगों का उपचार करना है। मनोवैज्ञानिकों के विचार से मनोचिकित्सा का सम्बन्ध व्यक्तित्व परिवर्तन तथा व्यवहारिक समायोजन से है। इसके द्वारा प्रत्यक्षीकरण तथा गत्यात्मक प्रत्युत्तरों को पुनः शिक्षण प्रदान किया जाता है। इसीलिए मनोचिकित्सा में मंत्रणा, समायोजन, 'मनोवृत्ति परिवर्तन' आदि शब्दों का प्रयोग करते हैं। सामाजिक कार्यकर्ता तथा समाजशास्त्री अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों पर महत्व देते हैं तथा मनोचिकित्सा को सामाजिक विकास (Social growth) के रूप में मानते हैं। धर्माचार्य मनोचिकित्सा का उद्देश्य आत्मिक विकास तथा आध्यात्मिक परिवर्तन बताते हैं। विभिन्न प्रत्ययों एवं उद्देश्यों के आधार पर मनोचिकित्सा के निम्न मुख्य उद्देश्यों का वर्णन कर सकते हैं।

1. चिकित्सात्मक उद्देश्य

इस दृष्टिकोण के अनुसार मनोचिकित्सा का उद्देश्य रोगी को चिन्ता, अन्तर्द्वन्द तथा दबाव एवं तनाव के लक्षणों को दूर करना है।

2. विकासात्मक उद्देश्य

मनोचिकित्सा का दूसरा उद्देश्य आत्मा का समुचित विकास, भावनाओं का यथेष्ठ विकास, आत्म एकीकरण एवं व्यक्तिगत परिपक्वता उत्पन्न करना है।

3. सम्बन्धों की दृढता

मानोचिकित्सा का तीसरा महत्वपूर्ण उद्देश्य पारिवारिक एवं सामूहिक सम्बन्धों को अर्थपूर्ण एवं संतोषप्रद बनाना है।

4. समायोजनात्मक उद्देश्य

मनोचिकित्सा का उद्देश्य व्यक्ति को समाज में समायोजित करना भी है। व्यक्ति को कानूनों, नियमों, विधियों तथा मान्यताओं को स्वतः मानने के लिए तैयार करना है।

3. मनोचिकित्सा के सम्बन्ध में मिथ्या धारणायें

मनोचिकित्सा के सम्बन्ध में अनेक मिथ्या धारणायें है जिनको समझना आवश्यक प्रतीत होता है :–

1. मनोविश्लेषण के रूप में

प्रायः यह समझा जाता है कि मनोविश्लेषण तथा मनोचिकित्सा समान उद्देश्य तथा समान कार्य करते हैं। इन दोनों में कोई अन्तर नहीं है। यद्यपि अनेक कारक दोनों में समान होते हैं। लेकिन मनोविश्लेषण मनोचिकित्सा का एक विशेष प्रकार है। मनोचिकित्सा शब्द का उपयोग उन सभी मनोवैज्ञानिक सहायताओं के लिए उपयोग किया जाता है जिनके द्वारा एक प्रशिक्षित चिकित्सक व्यक्ति अथवा समूह का प्रभावात्मक समायोजन प्राप्त करने में सहायता करता है। इस प्रकार मनोचिकित्सा एक व्यापक शब्द है।

2. विकृतियों के कारणों की खोज एवं सलाह के रूप में

मनोचिकित्सा का अर्थ उन कारणों से लगाया जाता है कि जिनके द्वारा चिकित्सक पता लगाता है कि रोगी में क्या–क्या कमियाँ हैं, रोग के क्या कारण हैं तथा उन कारणों को दूर करने के लिए उसे क्या करना है। यद्यपि कुछ चिकित्सक इस उद्देश्य को लेकर कार्य करते हैं, परन्तु मनोचिकित्सा का यह उद्देश्य नहीं है। मनोचिकित्सा का उद्देश्य मनोवैज्ञानिक आलम्बन प्रदान करना है जिससे रोगी अपना खोया हुआ समायोजन प्राप्त कर सके।

3. व्यक्तित्व परिवर्तित करने के रूप में

कुछ लोगों का विचार है कि मनोचिकित्सा में रोगी के व्याक्तित्व का परिवर्तन चिकित्सक अपनी इच्छानुसार करता है। वह जैसा चाहता है उसी प्रकार रोगी को परिवर्तन के लिए बाध्य करता है। इस अवधारणा के सम्बन्ध में कई त्रुटियाँ हैं। इस मनोचिकित्सा में दूसरी शिक्षात्मक क्रियाओं के समान ही रोगी की सम्प्रेरणाओं एवं इसके सहयोग को महत्व दिया जाता है। अतः चिकित्सा में सक्रिय भाग लेने के लिए रोगी को किसी न किसी प्रकार से अवश्य तैयार करें। सहयोग के द्वारा ही रोगी में विकास एवं परिवर्तन लाया जाता है। इस प्रकार मनोचिकित्सा चिकित्सा तथा रोगी का संयुक्त प्रयत्न है।

4. मनोचिकित्सा केवल मनोस्नायु विकृत व्यक्तियों के लिए

कुछ लोगों का विचार है कि मनोचिकित्सा की आवश्यकता केवल मनोस्नायु रोगियों के लिए ही होती है। वे ही इस प्रकार की सहायता के लिए आते हैं। परन्तु यह अवधारणा गलत है। बहुत से विद्यार्थी, कारखाने में कार्य करने वाले तथा अन्य व्यक्ति जो मानसिक विकृतियों के शिकार नहीं होते हैं वे भी मनोचिकित्सा की सहायता प्राप्त करते हैं। वे सांवेगिक समायोजन को प्रभावकारी बनाने के लिए सहायता के आकांक्षी होते हैं।

4. मनोचिकित्सा की प्रविधियाँ

मनोचिकित्सा की प्रायः 2 प्रकार की प्रविधियाँ होती हैं:

1. आलम्बनात्मक प्रविधयाँ (Supportive)
2. पुनर्रचनात्मक प्रविधियाँ (Reconstructive)

वे तरीके एवं प्रविधियाँ जिनका उद्देश्य सम्प्रेरणा, दमन, अहं दृढ़ीकरण तथा पुनर्शिक्षण द्वारा मानसिक विकृतियों के लक्षणों को दूर करना है उन्हें आलम्बनात्मक तरीके एवं प्रविधियाँ कहते हैं। रोगी के मूल व्यक्तित्व संरचना में इन प्रविधियों द्वारा परिवर्तन नहीं किया जाता है। निम्नलिखित प्रविधियाँ आलम्बनात्मक कही जाती है। यद्यपि उनमें भी पुनर्संरचनात्मक तत्व सम्मिलित होता है।

1. पर्यावरण में सुधार
2. मंत्रणा
3. स्थानान्तरण
4. मनोवैज्ञानिक आलम्बन
5. स्पष्टीकरण
6. अन्तर्दृष्टि
7. प्राख्या
8. रक्षात्मक क्रियायें तथा अवरोध
9. सामाजिक सेवा
10. व्यवसायिक चिकित्सा
11. संकेत
12. पुरआश्वासन
13. प्रवृत्यायन
14. पुनर्शिक्षण
15. विश्राम चिकित्सा
16. निद्रा चिकित्सा
17. संगीत चिकित्सा
18. नृत्य चिकित्सा
19. भोजन चिकित्सा

पुनर्संरचनात्मक प्रविधियों के द्वारा मानसिक रोग के लक्षणों को अप्रत्यक्ष ढंग से दूर करने का प्रयास किया जाता है। रोगी की मूल मनोवृत्तियों को इस प्रकार पुर्नगठित किया जाता है कि वह दूसरों के साथ उचित सामंजस्य स्थापित कर लेता है। यह प्रक्रिया चिकित्सक तथा रोगी के अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्धों पर

निर्भर होती है। इन प्रविधियों में भी सहायताकारी तत्व विद्यमान होते हैं। निम्न प्राविधियाँ है–

1. मनोविश्लेषण
2. संशोधन तथा मनोविश्लेषणात्मक चिकित्सा की भिन्नता
3. विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान
4. संकल्प चिकित्सा
5. सम्बन्ध चिकित्सा
6. सेवार्थी निर्देशित चिकित्सा
7. प्रयोगात्मक मनोचिकित्सा
8. वैयक्तिक मनोविज्ञान
9. मनोजैविक विज्ञान
10. रचनात्मक विकल्प
11. सम्मोहन विश्लेषण
12. खेल चिकित्सा
13. मनोअभिनय
14. सामूहिक चिकित्सा (रचनात्मक)
15. प्रोजैक्टिव चिकित्सा
16. गेस्टाल्ट चिकित्सा

पर्यावरण में सुधार
(Environmental manipulation)

पर्यावरण में सुधार का तात्पर्य सेवार्थी की समाजिक परिस्थितियों में ऐसे परिवर्तन लाना है जिससे उस पर दबाव कम हो सके। इस प्रकार के सुधार में किसी भी प्रकार की शक्ति का उपयोग नहीं किया जाता है। इसके अन्तर्गत सेवार्थी को सलाह देते हैं कि कौन–कौन चरण समस्या समाधान में सहायक अथवा बाधक हो सकते हैं। सांवेगिक, व्यवसायिक तथा मनोरंजनात्मक क्रियाओं के लिए योजनायें बना सकते हैं, इसके पर्यावरण के अन्तर्गत सदस्यों की उचित सलाह ले सकते हैं या समायोजनात्मक परिवर्तन के लिए सेवार्थी में उपयुक्त सांवेगिक मनोवृतियों को जानबूझकर उद्दीप्त कर सकते हैं।[8]

---

8. बिवरिंग, गेट ली0 साइक्यात्रिक प्रिन्सिपिल्स इन केस वर्क, कोरा कासियस, प्रिन्सिपिल्स ऐण्ड टेकनिक्स इन केस वक, फेमिली सर्विस ऐशोसिएसन आफ अमेरिका न्यूयार्क, 1950 पृ0 372

चिकित्सा की इस प्रणाली में भी सम्बन्ध तथा साक्षात्कार का उपयोग किया जाता है जिससे सेवार्थी परिवर्तन में भाग ले सके। परन्तु मुख्य प्रधानता परिस्थितियों के परिवर्तन को दी जाती है।

जब सामाजिक स्रोत तथा व्यवस्थित परिस्थितियाँ (Arranged situation) मुख्य साधन के रूप में प्रयोग की जाती है– जैसे गृह निर्माण सेवायें, कैम्प्स, सामूहिक अनुभव, रोजगार सम्बन्धी तथा अन्य समायोजन सम्बन्धी कार्यक्रम, वहाँ उसको सामाजिक चिकित्सा (Social treatment) या उपचार (Therapy) कहा जाता है। पर्यावरण में परिवर्तन अथवा सुधार के अन्तर्गत जो भी कार्यक्रम आते हैं उनका उद्देश्य तनाव को कम करना होता है। उदाहरण के लिए असमर्थ व्यक्ति के लिए ऐसे कार्यक्रमों को आयोजित करना जिससे वे बच्चे लाभान्वित हो सकें जो अधिक आयु के होते हुए भी अभी छोटी कक्षा में पहुँच पाये हैं। इसमें ऐसे भी कार्यक्रम सम्मिलित होते हैं जिनके द्वारा ऐसी सामाजिक परिस्थितियाँ और अनुभव उपलब्ध कराये जायें जिनसे व्यक्ति का विकास तथा समायोजन सम्भव होता है। इस प्रणाली में व्यवहारिक साधनों को भी उपलब्ध किया जा सकता है परन्तु प्राथमिकता परिस्थितियों में परिवर्तन को ही दी जाती है। इस प्रणाली में सेवार्थी के प्रति दूसरे व्यक्तियों की मनोवृत्तियों में होने वाले परिवर्तन भी सम्मिलित होते हैं। इसके अन्तर्गत माता–पिता का वैवाहिक साथी अथवा विद्यालय के अध्यापकों की मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाना या सेवार्थी के सेवाधिकारी मित्रों या सम्बन्धियों से साक्षात्कार करना तथा उनकी मनोवृत्तियों में परिवर्तन लाना भी सम्मिलित होता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी से साक्षात्कार निम्न उद्देश्यों की प्राप्ति के लिए करता है :–

1. सेवार्थी को कोई ठोस योजना प्रदान करना।

2. सेवार्थी या उसके परिवार से कुछ निश्चित उपायों के लिए अनुमति लेना।

3. वर्तमान सेवाओं तथा कार्यक्रमों का समन्वय करना, उसका स्पष्टीकरण करना तथा सुझाव देना।

4. संवेगात्मक सहायता प्रदान करना।

इस प्रणाली द्वारा कभी–कभी पर्यावरण के दबाव को कम कर देने से सेवार्थी को काफी आराम मिलता है परन्तु अहं को दृढ़ करने तथा आत्मज्ञान के लिए एवं उचित प्रत्यक्षीकरण के लिए कर्ता सेवार्थी सम्बन्ध को सुदृढ़ बनाने की आवश्यकता होती है।

मंत्रणा

मंत्रणा प्रत्यक्ष साक्षात्कार उपचार की प्रमुख सामान्य अभिव्यक्ति है। मन्त्रणा एक व्यक्ति की तार्किक आधार पर उसकी परिस्थिति सम्बन्धी विवादी विषय को पृथक करना उसकी समस्या तथा उसकी वास्तविकता के बीच संघर्ष को स्पष्ट करना, क्रिया (Action) की विभिन्न मार्गों की व्यावहारिकता पर तर्क–वितर्क करने और इच्छाओं के चुनने के उत्तरदायित्व के ग्रहण करने में सेवार्थी को यथार्थता में स्वतंत्र कर देना है।[9]

एक पूर्ण मनोवैज्ञानिक समझ एक प्रक्रिया है जो कि स्वाभाविक रूप से चिकित्सकीय संरचनात्मक स्वरूपों में उपयोग करने की निपुणता है। इसके लिए आन्तरिक महत्व की प्रशंसा करते हुए इसमें वाह्यीकृत समस्या पर प्रकाश डालने की क्षमता मन्त्रणा के लिए आवश्यक होती है।[10]

मन्त्रणा की प्रमुख परिधि स्पष्टीकरण (Clarification) है। स्पष्टीकरण का तात्पर्य रोगी को निश्चित मनोवृत्तियों व भावनाओं के प्रति जागृत करना या इसके विषयात्मक (Subjective) प्रत्यय के विरुद्ध वास्तविकता को स्पष्ट करना है जिससे वह स्वयं तथा पर्यावरण को अधिक वस्तुगत (Objective) देखता है और जिससे नियंत्रण की मात्रा बढ़ती है।[11]

मन्त्रणा के अन्तर्गत सूचना देना, व्यवस्था (Regime) की तथा इसके विषयों की व्याख्या करना तथा एक क्रिया कार्य में निहित चरणों को स्पष्ट करना सम्मिलित होता है। मंत्रणा के द्वारा स्वार्थी की समस्या को स्पष्ट करके उसके अहं को सुदृढ़ बनाने का प्रयत्न किया जाता है।

वास्तव में मंत्रणा मनोवैज्ञानिक पहलू है। मंत्रणा को बिना संस्था के माध्यम से भी सम्पन्न किया जा सकता है। इसके लिए रिलीफ फन्ड्स, फास्टर होम या होममेकर की आवश्यकता नहीं होती है। मंत्रणा के अन्तर्गत सेवार्थी को कोई ठोस सेवा न प्रदान करके केवल मार्ग दर्शन करने का प्रयत्न किया जाता है। परन्तु वैयक्तिक सेवा कार्य में जब कार्यकर्ता तथा सेवार्थी समस्या समाधान के

---

9. हैमिल्टन गार्डन — थियरी ऐण्ड प्रेक्टिस आफ सोशल केसवर्क, कोलम्बिया, यूनिवर्सिटी प्रेस, कोलम्बिया, 1951, पृ0 250
10. एप्टेकर, हरवर्ट एच0 — दि यूज ऑफ प्राइवेट साइक्याट्रीस्ट्स वाई0 ए0 सोशल एजेन्सी, जेविस सोशल सर्विस, क्वार्टली, 1949, पृ0 388

लिए मिलते हैं तो ठोस सेवा की उपलब्धि का पुट अवश्य होता है। अतः मंत्रणा को बिना ठोस सेवा के वैयक्तिक सेवा कार्य समझा जा सकता है।

मन्त्रणा के कार्यकर्ता का ध्यान सेवा पर न होकर केवल समस्या पर ही रहता है। मंत्रणा दाता की वैयक्तिक कार्यकर्ता की भांति संस्था में नियुक्ति आवश्यक नहीं होती है। परन्तु यदि सामाजिक संस्था का अनुभव उसके पास है तो उसको समस्या का ज्ञान तथा लोगों को सहायता प्राप्त करने की कठिनाइयों का आभास हो जाता है। मंत्रणादाता किसी एक विशेष समस्या से सम्बन्धित सहायता करने में निपुण होता है। जैसे विवाह मंत्रणा, व्यवसाय मंत्रणा, परिवार मंत्रणा, विद्यालय मंत्रणा आदि। उसका ज्ञान, दक्षता, निपुणता, योग्यता तथा समझ, विशिष्ट सहायता प्रदान करने में ही उपयोग में लायी जाती है। मंत्रणा दाता कभी भी कोई भी या सभी समस्याओं का समाधान करने का प्रयत्न नहीं करता है। वह केवल उसी समस्या से सम्बन्ध रखता है जिसमें वह दक्ष होता है। इस प्रकार मंत्रणा का केन्द्र बिन्दु विशिष्ट प्रकार की समस्या होती है। परन्तु यदि सामाजिक समस्या में दूसरा व्यक्ति माता, पिता, बालक, पत्नी या अन्य घनिष्ठ संबन्धी निहित होता है तो मंत्रणा मनोचिकित्सा की दिशा में मुड़ जाती है।[12]

स्थानान्तरण

फ्रायड जिस समय उन्माद के रोगियो की चिकित्सा प्रक्रिया में संलग्न थे उन्हीं दिनों उन्होंने अनुभव किया कि रोगी अपनी वास्तविक भूमिका को भूल कर बच्चों जैसा व्यवहार करते है और चिकित्सक से पिता की भूमिका निभाने की आशा करते हैं।[13] अपने अनुभव के आधार पर उन्होंने इस बात की पुष्टि की कि इस प्रकार की स्थिति से रोगी को लाभ पहुँचाया जा सकता है यदि उसका रचनात्मक उपयोग किया जाय। इस प्रत्यय को मनोविश्लेषण में विशेष महत्व दिया गया। मनोविश्लेषण के प्रारम्भिक दिनों में ही यह मान्यता प्रदान की गयी कि बिना संबंध स्थापना के रोगी की चिकित्सा नहीं की जा सकती है[14] और इस सम्बन्ध में ही मूल भावनाओं का स्पष्टीकरण संभव है। रोगी चिकित्सक पर

---

11. हैमिल्टन मार्डन — उल्लिखित पृ0 251
12. हैमिल्टन मार्डन — उल्लिखित पृ0 251
13. वर्न0 ई0 — इगो स्टैट्स इन साइकोथेरेपी, 1957, 7, पृ0 433
14. आप्टेकर, एच0एच0 — दि डायनमिक्स आफ केसवर्क ऐण्ड कोन्शिलिंग, हघटन मिफलिन कं0 न्यूयार्क, 1955 पृ0 29

भावनाओं का प्रक्षेपण करता है और चिकित्सक मूल व्यक्ति की भूमिका को ग्रहण करता है। इस प्रकार रोगी की मूल भावनायें या वास्तविक लक्ष्य व्यक्ति से हस्तांतरित होकर चिकित्सक पर केन्द्रित हो जाती है। इस स्थिति में रोगी का सम्पूर्ण आत्म (Self) निहित होता है क्योंकि जिस आत्म का विकास माता–पिता के साथ हुआ था वह पुनः अपनी संपूर्ण शक्ति के साथ प्रकट हो जाता है और मूल संबंध का रूप चिकित्सक रोगी के संबंध में प्रकट होता है। आप्टेकर[15] के विचार से स्थानान्तरण में तादात्म्य (शाब्दिक अर्थ में जैसे का तैसा बनाना) निहित होता है। टामस साज[16] के अनुसार स्थानांतरण को प्राचीन खेल खेलने के विशेष अवसर के रूप में देखा जा सकता है।

स्थानांतरण में सेवार्थी की दमित एवं अचेतन भावनाओं की अभिव्यक्ति कार्यकर्ता के प्रति होती है। व्यक्ति की समस्त प्रतिक्रियाओं पर उन मनोवृत्तियों का रंग चढ़ा हुआ होता है जो उसने बाल्यावस्था में ग्रहण की है और जिनका प्रयोग वह अपने वर्तमान सम्बन्धों में करता है। अर्थात बाल्यावस्था की मनावृत्तियों के आधार पर ही प्रौढ़ावस्था में अन्य व्यक्तियों से सम्बन्ध स्थापित करता है। इन्हीं घटनाओं को भावनात्मक हस्तांतरण प्रक्रिया कहते हैं। साधारण अर्थों में इसका तात्पर्य एक परिस्थिति की मनोवृत्तियों का दूसरी परिस्थिति में हस्तांतरित होना है। इसके द्वारा जो संबंध स्थापित होते हैं उनका आधार सेवार्थी के अवास्तविक आत्मचेतात्मक प्रत्यक्षीकरण पर निर्भर होता है।

कार्यकर्ता स्थानांतरित घटनाओं को समझने का प्रयास करता है और जहाँ तक सम्भव होता है उन्हें कम करने की चेष्टा करता है। वह सेवार्थी की समस्या के वास्तविक कारकों पर प्रत्यक्ष रूप से विचार विमर्श करता है और सेवार्थी को वास्तविकता का परिचय कराता है।

4. मनोवैज्ञानिक आलम्बन

(Psychological Support)

मनोवैज्ञानिक आलम्बन के अन्तर्गत सेवार्थी को निम्न सहायता प्रदान की जाती है :–

1. सेवार्थी को बिना किसी बाधा के अपनी भावनाओं को व्यक्त करने को प्रोत्साहन देना।

---

15. आप्टेकर, हरवर्ट — उल्लिखित पृ0 224
16. साज, टामसन एस0 — दि मिथ आफ मैन्टल इलनेस, पाल वी होइवर कं0, न्यूयार्क, 1961, पृ0 284

2. सेवार्थी की भावनाओं को सहिष्णुता के साथ समझना तथा उसके व्यवहार को स्वीकृति प्रदान करना।
3. सेवार्थी में रुचि प्रकट करना।
4. सहायता का रूप प्रकट करना।
5. समस्या समाधान करने की दक्षता में सेवार्थी की स्वीकृति प्राप्त करना।
6. सेवार्थी को अपना निर्णय लेने के लिए प्रोत्साहित करना।
7. सेवार्थी में समस्या समाधान की योग्यता उत्पन्न करना।
8. सेवार्थी द्वारा किये गये प्रयासों के प्रति सम्मान प्रदर्शित करना।
9. जहाँ पर आवश्यक हो वहाँ योजना तैयार करना।

उपर्लिखित प्रयत्नों से सेवार्थी की ग्लानि भावना में कमी आती है और चिंता दूर होती है। उसमें परिस्थिति से निपटने की अपनी योग्यता पर विश्वास उत्पन्न होता है तथा अपनी योजना को कार्यान्वित करने का समुचित प्रयत्न करता है। मनोवैज्ञानिक आलम्बन से सेवार्थी को प्रत्यक्ष उत्साह प्राप्त होता है जिससे वह अधिक वास्तविकता एवं सुखदायी तरीके से कार्य करने में समर्थ होता है। इसके अन्तर्गत सलाह को भी सम्मिलित किया जाता है।

जब मनोवैज्ञानिक आलम्बन चिकित्सा का मुख्य साधन होता है उस स्थिति में कर्ता तथा सेवार्थी के मध्य घनिष्ठ तथा पिता पुत्र ऐसे सम्बन्ध स्थापित होते हैं। मनोवैज्ञानिक आलम्बन का सेवार्थी द्वारा ज्ञान विकास करने पर बल न होकर निर्देशन, पुनर्विश्वासीकरण द्वारा तनाव को दूर करके उसके अहं शक्ति को पुष्टीकरण पर बल होता है।[17]

5. स्पष्टीकरण

(Clarification)

स्पष्टीकरण से भी सेवार्थी को मनोवैज्ञानिक सहायता प्राप्त होती है। इस विधि द्वारा सेवार्थी को स्वयं अपने, अपने पर्यावरण तथा संबन्धित व्यक्तियों के प्रति समझ उत्पन्न हो जाती है। वह समस्या के सभी पहलुओं को वस्तुगत रूप से सोचने तथा समझने लगता है। स्पष्टीकरण से सेवार्थी के अहं में वाह्य वास्तविकता को देखने की क्षमता में वृद्धि होती है और वह (सेवार्थी) अपने

17. होलिस, फ्लारेंस — दि टेकनिक्स आफ केसवर्क, कोरा कासियस बुक उल्लिखित पृ0 461

संवेगों, मनोवृत्तियों तथा व्यवहार को पहले से अधिक अच्छी प्रकार से समझने लगता है।

साधारण शब्दों में स्पष्टीकरण एक बौद्धिक प्रक्रिया है। इसका सम्बन्ध सचेत विषयवस्तु तथा मामले में होता है जिसको स्पष्ट व्यक्त करना सहज एवं सुलभ होता है तथा सांवेगिक अवरोध नहीं उत्पन्न होते हैं। सेवार्थी अपने वर्तमान विचारों तथा प्रतिक्रियाओं का स्पष्टीकरण प्राप्त करता है जिनसे उसे भ्रम उत्पन्न होता है अथवा उसकी समझ में नहीं आते हैं। परन्तु यहाँ पर कार्यकर्ता का सम्बन्ध केवल चेतन विषय से होता है। प्रतिदमित (Repressed) मानसिक विषयवस्तु को वह नहीं छूता है।

कार्यकर्ता सेवार्थी सम्बन्ध की प्रगाढ़ता समस्या की प्रगाढ़ता एवं जटिलता पर निर्भर होती है। साधारण प्रकार की व्याख्या के लिए मित्रवत सम्बन्ध की ही आवश्यकता होती है परन्तु जब जटिल सांवेगिक विषय होता है तब सम्बन्ध घनिष्ठ होने आवश्यक होते हैं, परन्तु स्थानान्तरण बहुत कम होता है।

स्पष्टीकरण में पर्यावरण अथवा व्यक्तियों के सम्बन्ध में उन सूचनाओं को दिया जाता है जिनका सेवार्थी में अभाव होता है तथा जिनके बिना उनको कार्यवाही करने का स्पष्ट ज्ञान नहीं हो सकता है। इससे निर्णय लेने में मदद मिलती है। सेवार्थी दूसरे व्यक्तियों की अपने प्रति मनोवृत्तियों को उचित प्रकार से मूल्यांकित करता है। उन उद्दीपनों के प्रति ज्ञान प्राप्त करता है जिनके कारण उसकी आलोचना होती है। दूसरे व्यक्ति की आवश्यकताओं को समझता है तथा अपनी क्रियाओं के प्रभावों का ज्ञान प्राप्त करता है।

6. अन्तर्दृष्टि
(Insight)

अन्तर्दृष्टि के विकास के लिए स्पष्टीकरण से बहुत अधिक समझ उत्पन्न करने की आवश्यकता होती है कभी–कभी संघर्षात्मक भावनायें तथा उत्तेजक संवेग वास्तविकता को समझने की शक्ति को नष्ट कर देते हैं जिसके कारण बिना अतिअन्तर्प्रत्यक्षीकरण के व्यक्ति निर्णय नहीं ले सकता है। इसी प्रकार की स्थिति में कार्यकर्ता सेवार्थी की सहायता

1. आंतरिक आवश्यकताओं के प्रत्यक्षीकरण को सुलझाने में करता है।
2. वाह्य वातावरण के प्रति विषयात्मक प्रत्युत्तरों को समझने में करता है।

3. घृणा व प्रेम की भावनाओं की वास्तविकता से अवगत कराता है।
4. बिना अधिक तार्किक वातावरण के चिंता तथा उग्रता की प्रतिक्रिया का ज्ञान करता है।

अन्तर्दृष्टि की विषयवस्तु प्रतिदमित विषय (Repressed material) होती है तथा उसका स्तर चेतन से नीचे होता है। अन्तर प्राप्त करने के लिए वर्तमान तथा पूर्व संवेगों को चिकित्सात्मक पर्यावरण से करना आवश्यक होता है। जिससे संवेगों का प्रभाव कम हो सके तथा अतार्किकता को स्पष्ट कर वास्तविकता को समझा जा सके।

अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करने का उद्देश्य सेवार्थी की अपने तथा अपनी परिस्थितियों के प्रति ज्ञान में वृद्धि करना है जिससे वह अपने जीवन को और अधिक वास्तविकता से व्यवस्थिति कर सके तथा विनाशकारी मनोरक्षणात्मक उपायों को उपयोग में न लाये। उदाहरण के लिए मनोस्नायुविक व्यक्ति अपने पूर्व अनुभवों के आधार पर वर्तमान समय मे प्रतिक्रिया करता है तथा इस वर्तमान प्रतिक्रिया में पूर्व विचारों तथा दूषित अवधारणाओं का प्रक्षेपण करता है। वह वर्तमान को तभी उचित ढंग से समझ सकता है जब उसे पूर्व भावनाओं तथा अवधारणाओं का पूर्ण ज्ञान प्राप्त हो। अन्तर्दृष्टि में जिन भावनाओं तथा संघर्षों को दूर करने का प्रयत्न किया जाता है ये प्रायः प्रतिदमित (Repressed) होते हैं। अतः घनिष्ठ सम्बन्धों की आवश्यकता होती है। स्थानान्तरण प्रतिक्रियाओं का उभारना अन्तर्दृष्टि के लिए अति आवश्यक होता है जिससे सकारात्मक एवं नकारात्मक दोनों प्रकार की भावनाये स्पष्ट होती हैं। स्थानान्तरित भावनाओं का उचित चालन अन्तर्दृष्टि को विकसित करता है।

अन्तर्दृष्टि विकास में स्पष्टीकरण तथा मनोवैज्ञानिक आलम्बन का उपयोग अवश्य होता है। जब तक रोगी बहुत अधिक रोग ग्रस्त नहीं होता है तब तक उसका वास्तविकता से पर्याप्त सम्बन्ध बना रहता है अतः स्पष्टीकरण का सहारा लिया जाता है। मनोवैज्ञानिक आलम्बन से रोगी की अन्तर्दृष्टि तक पहुंचने में सहायता की जाती है।

मनोविश्लेषण तथा अन्तर्दृष्टि विकास में अन्तर होता है। यह अन्तर 3 आधारों पर स्पष्ट किया जा सकता है–

1. स्थानान्तरण की गम्भीरता (Depth)
2. कार्यकर्ता की टिप्पणी की गम्भीरता
3. सेवार्थी द्वारा विषय के पुनर्विलोकन की गम्भीरता

अन्तर्दृष्टि में केवल स्थानान्तरित भावनाओं का अध्ययन करते हैं तथा इन्हीं से सम्बन्ध होता है जबकि मनोविश्लेषण में हस्तांतरण की गम्भीरता से सम्बन्ध होता है तथा इसमें हस्तांतरित मनोस्नायुविकृति को सम्मिलित किया जाता है। यद्यपि दमित तथ्य जो अचेतन स्तर में पहुँच जाता है उससे अन्तर्दृष्टि से सम्बन्ध होता है परन्तु वही विचार और भावनायें सम्मिलित होती हैं जो चेतन स्तर के नजदीक होती हैं तथा पूर्णरूप से दमित नही होती हैं।

अन्तर्दृष्टि विकास प्रविधि उन सेवार्थियों के लिए उपयोग की जाती है जो किसी क्षीणता या परिवारिक सम्बन्धों में असमायोजन से पीड़ित होते हैं। जिससे उनमें व्यवधान उपस्थिति हो जाता है। अतः उनकी मनोवैज्ञानिक सहायता, स्पष्टीकरण, प्राख्या, सलाह, आदि द्वारा सहायता की जाती है। सेवार्थी कठिनाइयों को समझता है परन्तु अहं की शक्ति क्षीण हो जाने से कठिनाई दूर करने में असमर्थता प्रकट करता है। मनोविश्लेषण में सेवार्थी को कठिनाई का ज्ञान नहीं होता है।

7. प्राख्या

किसी भी समस्या में वाह्य तत्वों, निहित बातों, मनोवृत्तियों, अर्धचेतन भावनाओं तथा वास्तविकता में अन्तर, व्यवहार के तरीकों आदि की व्याख्या करना सेवार्थी में आत्म ज्ञान उत्पन्न करने के लिए आवश्यक होता है।

8. रक्षात्मक क्रियायें तथा अवरोध

.रक्षात्मक समाधान के लिए सेवार्थी की मनोरक्षात्मक क्रियाओं तथा चिकित्सा में अवरोध की गहनता को समझना आवश्यक होता है। वैयक्तिक कार्यकर्ता का सम्बन्ध अहंशक्ति को बढ़ाना तथा अन्तर व्यक्तिगत तनाव को कम करना होता है। परन्तु व्यक्ति का मनो चिकित्सा में सेवार्थी का सहयोग होना भी आवश्यक होता है। अतः अवरोध का ज्ञान कार्यकर्ता को होना आवश्यक समझा जाता है। अवरोध का यहाँ पर तात्पर्य उन मनोरक्षात्मक क्रियाओं से है जिनको सेवार्थी चिकित्सा न अपनाने में उपयोग करता है। यह अवरोध सेवार्थी को संस्था के विषय में ज्ञान न होने, कर्ता की शक्ति में विश्वास न होने, तरीकों की अभिज्ञान होने अथवा अन्य किसी कारण से हो सकता है। अतः इनको समझना तथा सेवार्थी को समझाना भी एक प्रकार से सेवार्थी की समस्या का समाधन करना है।

9. सामाजिक सेवा

सामाजिक सेवा कार्य एक व्यवसाय है जिसके द्वारा व्यक्ति की

मनोवैज्ञानिक एवं सामाजिक समस्याओं का निराकरण किया जाता है। सेवा प्रदान करने की 6 प्रणालियाँ है : जैसे (1) सामाजिक वैयक्तिक सेवा कार्य (2) सामाजिक सामूहिक कार्य (3) सामुदायिक संगठन (4) सामाजिक प्रशासन (5) सामाजिक अनुसंधान (6) सामाजिक क्रिया। प्रथम 3 प्रणालियाँ सामाजिक सेवा कार्य की प्राथमिक प्रणालियाँ है तथा अन्य 3 प्रणालियाँ सामाजिक सेवा कार्य में सहायता प्रदान करती हैं। सामाजिक सेवा कार्य निम्न क्षेत्रों में सहायता प्रदान करता है। चिकित्सा, मनोवैज्ञानिक चिकित्सा, परिवार कल्याण, बाल कल्याण, श्रम कल्याण, बाल अपराध एवं सुरक्षात्मक सेवायें, विद्यालय कल्याण, उत्तर रक्षा सेवायें, पुनर्स्थापन, आदि। वैयक्तिक सेवा कार्य द्वारा एक व्यक्ति विशेष की समस्याओं का निराकरण किया जाता है। इसके विपरीत सामूहिक कार्य द्वारा समूह के माध्यम से व्यक्ति की सहायता की जाती है।

10. व्यावसायिक चिकित्सा

व्यावसायिक चिकित्सा का महत्व दिनों दिन बढ़ रहा है। इससे एक ओर तो रोगी के संवेगों की अभिव्यक्ति होती है तथा आत्मबल बढ़ता है एवं दूसरी और कार्यकुशलता की क्षमता बढ़ती है। इस प्रविधि में रोगी को विभिन्न छोटे–छोटे उद्योग धन्धों तथा कार्यों में लगा दिया जाता है जिससे उन्हें सोचने विचारने का अधिक समय नहीं मिलता है और अपनी अप्रत्यक्ष मनोग्रन्थियों का स्पष्टीकरण भी करता है। चित्रकारी, लुहारगीरी, बढ़ईगीरी, मिट्टी के काम, खिलौने निर्माण तथा अन्य छोटे–छोटे व्यवसायों को करने का प्रशिक्षण रोगी को दिया जाता है।

11. संकेत

संकेत (Suggestion) पद्धति उपचार की प्राचीन प्रणाली है जिसके द्वारा रोगी को साधारण प्रकार के कुछ सुझाव दिये जाते हैं। चिकित्सक रोगी के सामने कुछ प्रस्ताव तथा सुझाव रखता है और उन विचारों, प्रस्तावों तथा सुझावों का मानना रोगी पर निर्भर होता है। संकेत पद्धति का प्राचीन समय से ही विशेष महत्व रहा है। झाड़फूक, जादू टोना, मंत्र, ताबीज आदि सभी संकेत के अंग है। इस विधि से रोगी के विश्वासों तथा क्रियाओं को प्रभावित किया जाता है। संकेत पद्धति से प्रायः निम्न लाभ होते हैं :

1. चिन्ता तथा अवसाद की स्थिति में रोगी को मनोवैज्ञानिक आलम्बन की अत्यन्त आवश्यकता होती है और यदि उस समय वाह्य सहायता सुझाव के रूप में प्राप्त होती है तो रोगी को बड़ी राहत मिलती है।

2. शारीरिक कष्टों में भी संकेतो से लाभ होता है। संवेगों को सुलझाने तथा अप्रभावी बनाने के लिए उसका उपयोग किया जाता है।
3. असंगत आदतों को दूर करने के लिए इस पद्धति का उपयोग किया जाता है।
4. दीर्घकालीन चिकित्सा पद्धति में रोगी को संकेत से काफी आराम मिलता है।
5. वृद्धावस्था, आर्थिक संकट तथा लाभ हानि की स्थिति में संकेत सहारे का कार्य करते हैं।

12. पुनर्आश्वासन

इस प्रविधि का उपयोग मनोचिकित्सा के अन्तर्गत बहुत महत्वपूर्ण होता है क्योंकि जब तक रोगी को चिकित्सा के प्रति तथा अपने रोग के प्रति विश्वास नहीं हो जाता है तब तक चिकित्सा प्रक्रिया में भाग नहीं लेता है। अतः मनोचिकित्सा विभिन्न तरीकों द्वारा रोगी को रोगमुक्त होने का आश्वासन देता है। पुनर्आश्वासन के लिए मनोचिकित्सक दो प्रकार के तरीके अपनाता है (1) प्रत्यक्ष तथा (2) अप्रत्यक्ष। प्रत्यक्ष तरीके में वह रोगी को बताता है कि उसके रोग के लक्षण क्या हैं तथा वे किस प्रकार दूर हो सकते हैं। वह रोग के कारणों को स्पष्ट करता है। अप्रत्यक्ष तरीके द्वारा अन्य सामान तथा उससे विषम प्रकार के रोगियों के वैयक्तिक इतिहास का विश्लेषण करता है। इस प्रकार रोगी की सहायता प्राप्त करने का पूरा–पूरा प्रयत्न करता है।

13. प्रवृत्यायन
(Persuation)

इस पद्धति द्वारा मनोचिकित्सक रोगी को एक विशेष प्रकार की जीवन–शैली अपनाने के लिए विवश करता है। परन्तु वह कार्य रोगी की पूर्ण सहमति से किया जाता है। रोगी को विश्वास दिलाया जाता है कि निर्देशित प्रकार की अभिवृत्ति से उसके रोग को दूर किया जा सकता है।

14. पुनर्शिक्षण

रोगी के अचेतन अन्तर्द्वन्द को जान लेने के पश्चात् मनोचिकित्सक उचित समय पर उसको रोग के कारणों तथा असामान्य लक्षणों से अवगत कराता है क्योंकि इन बातों का ज्ञान कराने से रोगी को बड़ी राहत प्राप्त होती है तथा उनको दूर करने की स्थिति में भी वह आ जाता है। पुनर्शिक्षण में

चिकित्सक दो कार्य करता है (1) रोग के लक्षणों एवं कारणों को स्पष्ट करता है। (2) चेतन मनोरचनाओं के उपयोग एवं उनसे होने वाली हानियों की चर्चा करता है। अतः इस विधि से रोगी को ज्ञात हो जाता है कि उसका व्यवहार किन कारणों से असामान्य हो गया है।

15. विश्राम चिकित्सा

अत्यधिक तनाव, अनिद्रा, कमजोरी आदि स्थिति में विश्राम से रोगियों को काफी लाभ होता है। उनकी शारीरिक तथा मानसिक तनाव में कमी आती है तथा आराम अनुभव करते हैं। विश्राम चिकित्सा मनोस्नायु विकृति रोगियों के लिए अत्यन्त महत्वपूर्ण होती है क्योंकि इसकी सहायता से समायोजन की कठिनाइयों का समाधान किया जा सकता है। विश्राम का तात्पर्य पूर्ण निष्क्रियता से नहीं होता है बल्कि पूर्ण शान्ति से होता है। रोगी को तनावपूर्ण स्थितियों से दूर रखा जाय, सम्बन्धियों तथा मित्रों से न मिलने दिया जाय क्योंकि इससे पुराना आघात ताजा होता है, ताजी हवा प्रदान की जाय, एकान्त स्थान पर रखा जाय, संवेगात्मक स्थितियों का अधिकाधिक बहिष्कार किया जाय तथा पौष्टिक भोजन एवं मनोरंजन के साधन उपलब्ध कराये जायें।

16. निद्रा चिकित्सा

अधिकांश मनोस्नायुविकृतियों का कारण तथा लक्षण अनिद्रा होती है क्योंकि उत्तेजनाओं, तनावों एवं दबाव की परिस्थितियों के कारण रोगी सोने में असमर्थ हो जाता है। जब उसे नींद नहीं आती है तो दिनोदिन उसके कष्ट में वृद्धि होती है। इस अवस्था में यदि रोगी को औषधि द्वारा सुला दिया जाता है तो उसे मनोवैज्ञानिक एवं शारीरिक दोनों प्रकार से आराम मिलता है।

यह एक सहायक चिकित्सा पद्धति है जिसका उपयोग अन्य तरीकों से साथ तथा उन्हें प्रभावकारी बनाने के लिए किया जाता है।

17. संगीत चिकित्सा

संगीत के माध्यम से रोगी की दबी हुई इच्छाओं एवं संवेगों को चेतन स्तर पर लाने का प्रयास किया जाता है। वह नयी आशा एवं उत्साह के साथ समस्या निराकरण का प्रयास करता है। उसको संगीत से नयी स्फूर्ति प्राप्त होती है तथा संवेगों का दबाव कम होता है। संगीत से रोगी में आशा का संचार होता है, दुःख में कमी आती है तथा शारीरिक क्रियायें सामान्य रूप से कार्य करने लगती हैं।

18. नृत्य चिकित्सा

नृत्य को चिकित्सा के रूप में उपयोग करने से रोगी के शरीर व मन का तनाव कम होता है। वह कुछ समय के लिए अपनी दुखद दुनियां को भूलकर सुख की अनुभूति करता है तथा संवेगों का स्पष्टीकरण भी होता है।

19. भोजन चिकित्सा

पौष्टिक तथा संतुलित भोजन प्रदान करने से भी शारीरिक व मानसिक शान्ति प्राप्त होती है। औषधिशास्त्र के विचार से शारीरिक व मानसिक कष्ट तभी पनपते हैं जब व्यक्ति को पौष्टिक एवं संतुलित भोजन नहीं मिल पाता है। अतः रोगी को संतुलित भोजन की परम आवश्यकता होती है।

20. मनोविश्लेषण

(Psycho-analysis)

मनोविश्लेषण एक मनोवैज्ञानिक चिकित्सा है जिसका विकास फ्रायड ने किया था। फ्रायड ने अचेतन को अत्यधिक महत्व दिया। उनके अनुसार मन का अधिकांश भाग अचेतन स्तर में रहता है जिसकी कार्य विधियाँ छद्मवेश में चेतन स्तर की ओर अनेकानेक क्रियाओं को संचालित करती रहती हैं। इसीलिए फ्रायड ने अचेतन मन को ढूंढने के लिए इस प्रविधि का विकास किया। व्यक्ति के मन में ऐसे अनुभव होते है जो कष्टकारी होने के कारण दमित कर दिये जाते हैं परन्तु उनका व्यवहार पर अप्रत्यक्ष रूप से प्रभाव पड़ता है।

फ्रायड ने मनोचिकित्सा के लिए 3 विधियों को अपनाया :

1. स्वप्न विश्लेषण (Dream Analysis)
2. मुक्त सहचर्य (Free Association)
3. स्थानान्तरण (Transference)

स्वप्न विश्लेषण

दि इण्टरप्रेटेशन आफ ड्रीम में फ्रायड ने स्वप्न सिद्धान्त का विवेचन किया है।

फ्रायड ने स्वप्नों को मानसिक स्वास्थ्य के लिए आवश्यक बताया है। उनका विचार है कि यदि व्यक्ति को स्वप्न न दिखायी दे तो वह सो नहीं सकता है। स्वप्न इच्छापूर्ति के साधन होते हैं। इस प्रकार स्वप्नों के विश्लेषण से अचेतन मन की इच्छाओं एवं कार्यविधियों का पता चलता है। चेतन अवस्था में इदं, अहं

तथा पराहं में संतुलन होता है.। इदं पर इतना अधिक दबाव होता है कि अनैतिक, अनुचित, अव्यवहारिक, लैंगिक मूल प्रवृतियाँ चेतन में प्रकट नहीं हो पाती हैं। इस कारण उनकी स्वप्न में अभिव्यक्ति होती है क्योंकि निद्रा अवस्था में कोई बंधन एवं दबाव नहीं रहता है।

स्वप्न के सिद्धान्त में फ्रायड ने निम्नलिखित रूप रेखा प्रस्तुत की है–

1. स्वप्न की व्याख्या
2. स्वप्न क्रिया
3. स्वप्न इच्छा पूर्ति का साधन
4. स्वप्न में कामुक भावनाओं का महत्व।

फ्रायड ने स्वप्नों की व्याख्या सहचर्य एवं प्रतीकों के आधार पर की है। स्वप्न देखने वाला सर्वप्रथम जो अर्थ लगाता है, वही महत्वपूर्ण माना जाता है। प्रतीकों एवं विभिन्न मूल प्रवृत्तियों के व्यवहार को सम्बन्धित किया जाता है। उदाहरण के लिए : वृक्ष, मीनार, शिवलिंग, पहाड़ की चोटी पर चढ़ना, यात्रा, मृत्यु, पानी, जन्म, राजा, पिता, कपड़ा, नग्नावस्था, योनि आदि प्रतीकों को मैथुन से सम्बन्धित माना है।

फ्रायड के विचार से अतृप्त इच्छा ही स्वप्न का अव्यक्त विषय है। वह विकृत रूप प्रतिरोध के कारण प्रकट होता है। इस प्रकार अचेतन मन के दर्शन स्वप्नों के माध्यम से होते हैं। परन्तु प्रतिबंधक के कारण स्वप्न का अव्यक्त होता है अतः निम्न प्रणालियों का उपयोग करता है :–

(1) संक्षेपण (2) विस्थापन (3) नाट्यीकरण (4) प्रतीकीकरण (5) परवर्ती विस्तार।

संक्षेपण (Condensation) में पहले से ही अव्यक्त विषय की अनेक बातें लुप्त हो जाती हैं तथा संक्षिप्त रूप से व्यक्त होती हैं। विस्थापन में अव्यक्त विषय की मुख्य बातें गौण और गौण प्रधान हो जाती हैं। नाटकीय रूप में इच्छाओं का, प्रकटन स्वप्न में होता है। वे प्रतीकों के रूप में स्वप्न में प्रकट होती हैं। व्यक्ति जागने पर स्वप्न को वास्तविक रूप में स्पष्ट नहीं कर पाता है, उसका विस्तार करता है।

फ्रायड ने काम सम्बन्धी इच्छाओं को बहुत अधिक महत्व दिया है। इन इच्छाओं को सबसे अधिक शक्ति होती है और वे प्रायः अतृप्त ही रहती हैं। क्योंकि नैतिकता के नियमों की रक्षा करना व्यक्ति अपना प्रथम कर्तव्य समझता

है। इस कारण इदम व पराहं में संघर्ष होता है और लैंगिक इच्छाओं की पूर्ति स्वप्नों के अव्यक्त रूप में होती है। फ्रायड ने स्वप्नों को इच्छापूर्ति का एक साधन मरना है। परन्तु आघात एवं कष्टकर स्वप्नों का इच्छापूर्ति का क्या सम्बन्ध है इस प्रश्न के उत्तर में फ्रायड ने 3 प्रकार के स्वप्नों की व्याख्या की है:–

1. चिन्तास्वप्न
2. दण्ड स्वप्न
3. इच्छा स्वप्न

इस प्रकार स्वप्नों की व्याख्या से रोगी में होने वाले अन्तर्द्वन्द का पता चल जाता है।

मुक्त सहचर्य

मुक्त सहचर्य मानसिक रोगों के उपचार की एक महत्वपूर्ण प्रविधि है। इस विधि द्वारा रोगी के अन्तर्द्वन्द का पता लगाया जाता है। जब रोगी से साधारण साक्षात्कार हो जाता है और विचार विनिमय के उपरान्त चिकित्सक रोगी का वैयक्तिक इतिहास ज्ञात करता है। परन्तु वर्तमान समस्या में संबंधित घटनाओं को रोगी स्पष्ट नहीं कर पाता है अतः चिकित्सक शान्ति एंव एकांत कमरे में रोगी को आराम से बिठाता है और उससे कहता है कि जो भी बातें उसके मन में आवें बिना किसी झिझक के कहें। उन पर कोई प्रतिबन्ध न लगावें। इस प्रकार के निर्देशन से चिकित्सक अचेतन की दमित इच्छाओं को जानने का प्रयास करता है। इस प्रकार की क्रिया से रोगी को एक ओर लाभ पहुँचना है, उसके अहं का दबाव कम होता है, दूसरी ओर रोग के निदान व उपचार में सहायता मिलती है।

कभी–कभी रोगी मुक्त सहचर्य में भी अन्तर्मन की बातों को प्रकट नहीं करना चाहता है। क्योंकि सुरक्षात्मक अहं इन बातों को स्पष्ट करने से रोकता है। चिकित्सक बड़ी कुशलता से इस प्रतिरोध को दूर करता है और सहचर्य में तारतम्यता स्थापित रखता है।

स्थानान्तरण
(Transference)

कर्ता तथा सेवार्थी के बीच स्थापित संबंध में सांवेगिक भाव आ जाने से सेवार्थी की भावनाओं का हस्तांतरण प्रायः हो जाता है। कार्यकर्ता स्थानान्तरण सम्बन्ध को समझ कर यदि सेवार्थी की पिता के प्रति उग्रता तथा अस्वीकृति की भावना है तो

अच्छे पिता के सम्बन्धों को प्रदर्शित करता है। इस प्रकार सेवार्थी के लिए कार्य करना सम्भव हो जाता है। यद्यपि पिता के प्रति उग्र एवं संघर्ष की भावनायें तथा परिणामस्वरूप आत्म आवमूल्यन की भावना बनी रहती है वास्तव में प्रारम्भिक अवांछनीय सम्बन्धों के विकार सम्बन्धी प्रभाव को चिकित्सकीय पृष्ठभूमि समान सांवेगिक संघर्ष द्वारा कार्य करके प्रतिकारित (Counteracted) किया जाता है।[18]

21. स्टेकल की सक्रिय विश्लेषणात्मक मनोचिकित्सा

स्टेकल विलहैल्म[19] के विचार से मनोविश्लेषण विशेष रूप से विश्लेषण के व्यक्तित्व पर निर्भर करता है। स्वतन्त्र सहचर्य से कोई विशेष लाभ नहीं होता क्योंकि स्वतंत्र सहचर्य एक बहुत बड़ा कार्य है जो कभी ही पूरा होता है। अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करना ही मनोविश्लेषक का प्रमुख कार्य है। उसके द्वारा रोगी अपनी समस्याओं का समाधान कर लेता है। स्वप्न का उपयोग अन्तर्दृष्टि के विकास के लिए आवश्यक होता है। अचेतन तत्वों की प्रत्यक्ष व्याख्या से रोगी को लाभ होता है परन्तु चिकित्सा पद्धति लघुकालीन अवधि की होनी आवश्यक होती है।

22. संशोधनात्मक मनोचिकित्सा प्रणाली

इस प्रणाली के अन्तर्गत विभिन्न प्रविधियों का उपयोग किया जाता है:

1– सुलीवान अन्तर्वैयक्तिक सम्बन्ध दृष्टिकोण

सुलीवान ने अपनी इस चिकित्सा पद्धति का विश्लेषण अपनी पुस्तक इण्टरपरसनल थियरी आफ साइक्याट्री में किया है। व्यक्तित्व का विकास प्रारम्भिक सम्पर्कों एवं सम्बन्धों द्वारा होता है। इसकी विकृतियों के आधार भी सम्बन्धित नहीं होते हैं। सामान्यतः व्यक्ति की दो मूलभूत आवश्यकतायें होती हैं : संतोष (Satisfaction) तथा सुरक्षा। वह इन आवयकताओं की पूर्ति सम्बन्ध द्वारा पूरा करता है। यदि इनमें किसी प्रकार की अस्वस्थता उत्पन्न होती है तो मानसिक अस्वस्थता प्रकट होती है। सामान्य विकास उस समय अवरुद्ध हो

18.	कोलमेन जेम्स सी0	अबनारमल साइकालोजी ऐण्ड माडर्न लाइफ, डीवी तरापुरवाला ऐण्ड सन्स, बाम्बे, 1970 पृ0 665
19.	स्टेकेल, विलहेल्म	साइको एनालिसिस ऐण्ड सजेशन थिरेपी, यार्ड ऐण्ड कम्पनी, न्यूयार्क, 1923
अ)	″ ″	दि इन्टरप्रेटेशन आफ ड्रीम्स, लिवराइट, न्यूयार्क, 1943

जाता है जब उसका सम्बन्ध असमायोजित व्यक्ति से होता है। सुलीवान ने अन्तर्वैयक्तिक संचार प्रक्रिया में सुधार तथा परिवर्तन के द्वारा मानसिक रोगों के उपचार पर बल दिया है।

2– फ्रोम का सांस्कृतिक दृष्टिकोण

इरिच फ्रोम ने सांस्कृतिक कारकों के महत्व को विस्तार में वर्णन किया है। फ्रोम का विचार है कि व्यक्ति के चालकों का विकास समाज द्वारा होता है, वे जन्मजात नहीं होते हैं। इसके विपरीत समाज की रचना व्यक्तियों द्वारा की जाती है। सभ्यता का जैसे–जैसे विकास होता है वैसे–वैसे व्यक्ति की मूल आकृति धूमिल होती जाती है और नवीन आवरण व्यक्तित्व को ढकता जाता है। परन्तु इस प्रकार के परिवर्तन से अकेलेपन (Loneliness) की भावना जागृत होती है। सम्बन्धों में आन्तरिक सुख नहीं प्राप्त होता है। विभिन्न प्रकार के अरचनात्मक सम्बन्धों, विचारों की उड़ान तथा एकाकीपन के द्योतक होते हैं:

फ्रोम के विचार से मानसिक रोगों को तभी दूर किया जा सकता है जब मानवतावादी समाज की स्थापना हो। रोगी के साथ चिकित्सा प्रणाली में मनोचिकित्सक अपनी स्थिति को भुलाकर समता का व्यवहार करता है और समानता के आधार पर सम्बन्ध स्थापित करता है। इस प्रकार की चिकित्सा का उद्‌देश्य प्रेम की क्षमता में वृद्धि तथा रचनात्मक कार्यों के प्रति लगाव को उत्पन्न करना है।

3– हार्नी का मनोविश्लेषणात्मक दृष्टिकोण

हार्नी के विचार में आवश्यकतायें आन्तरिक संघर्ष का कारण होती हैं। प्रेम की मनोस्नायुविक आवश्यकता की संतुष्टि कभी नहीं होती है। जितना ही अधिक वह प्राप्त करता है उतना ही अधिक आकांक्षा का स्तर बढ़ता जाता है। इसके परिणामस्वरूप वह कभी भी संतुष्ट नहीं होता है। इसी प्रकार आत्म निर्भरताकी इच्छा कभी संतुष्ट नहीं होती है क्योंकि उसके व्यक्तित्व का दूसरा पहलू प्रेम एवं प्रशंसा की इच्छा रखता है। वे इन इच्छाओं को मनोस्नायुविकृतियों का कारण मानती हैं।

ब)	स्टेकेल, विलहेल्म	कन्डीशन्स आफ नर्वस एंग्जाइटी ऐण्ड देयर ट्रीटमेन्ट, लिवराइट, न्यूयार्क, 1950
स)	″ ″	टेकनिकल आफ एनलिटिकल साइकोथिरैपी, लिवराइट, न्यूयार्क, 1950
द)	″ ″	पिक्युलियरिटी आफ विहैवियर, लिवराइट, न्यूयार्क, 1924

सामान्य रूप से जो भी तत्व बालक की सुरक्षा को खतरा उत्पन्न करता है वह मूल चिंता का कारण होता है। असुरक्षित बालक अनेक प्रकार की रचनाओं का प्रयोग करता है जिनसे अपनी एकाकी भावनाओं तथा असहाय स्थिति का सामना करता है।[20] (1937) वह उग्र भी हो सकता है तथा नम्र भी। उग्र बदला लेने की भावना से होता है तथा नम्र प्यार को पुनः प्राप्त करने के लिए। इस कारण हीनभावना[21] (1950) का विकास होता है। हार्नी ने पहले अध्ययन (1942)[22] में 10 आवश्यकताओं की चर्चा की थी परन्तु बाद में इन आवश्यकताओं को 3 वर्गों (1945)[23] में विभाजित किया (1) लोगों के प्रति लगाव (प्रेम की इच्छा) (2) लोगों से दूरी (अलगाव) (3) लोगों से विरोध (शक्ति)।

हार्नी के अनुसार इन संघर्षों को दूर करने के लिए सुरक्षा, विश्वास, प्रेम, सम्मान, सहिष्णुता, आदि की आवश्यकता होती है।

4— मोरर का द्विकारक सीखने का सिद्धान्त

(Mowrer's two Factor Learning Theory)

मोरर[25] ने दो प्रकार के सीखने का उल्लेख किया है :—

1. समाधान सीखना (Solution Learning)
2. चिह्नात्मक सीखना (Sign Learning)

पहले प्रकार के सीखने में व्यक्ति के केन्द्रीय स्नायु संस्थान का प्रमुख कार्य क्षेत्र होता है। शरीर के विभिन्न अंग समस्या समाधान के लिए स्वतः कार्य करना सीख लेते हैं। इस प्रकार के सीखने में व्यक्ति अपने पर्यावरण को बदल लेता है। चिह्नात्मक सीखने का सम्बन्ध स्वतः स्नायु व्यवस्था से होता है। इससे प्रत्युत्तरों, मनोवृत्तियों, भावनाओं तथा अर्थों का विकास होता है। यह सीखना सम्बद्ध प्रत्यावर्तन तथा सहचर्य सीखने द्वारा सम्भव होता है। चिह्नात्मक सीखने

21.	हार्नी कैरेन	न्यूरोटिक पर्सनाल्टी आफ आवर टाइम्स, नार्टन, न्यूयार्क, 1937
22.	,, ,,	न्यूरोसिस ऐण्ड ह्यूमन ग्रोथ, नार्टन, न्यूयार्क, 1950
23.	,, ,,	सेल्फ एनालिसिस नार्टन, न्यूयार्क, 1942
24.	,, ,,	अवर इनर कनफ्लिक्ट, नार्टन, न्यूयार्क, 1945
25.	मोरर, ओ0 होवार्ड	लर्निंग थियरी ऐण्ड पर्सनाल्टी/डायनमिक्स, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क, 1950
,,	,, ,,	साइकोथेरेपी—थियरी ऐण्ड रिसर्च रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क, 1953

से समस्या का ज्ञान प्राप्त करते हैं तथा समाधान के तरीके मालूम होते हैं। द्वितीयक चालक जैसे भय, विरोध आदि उत्पन्न होते हैं। इस प्रकार के सीखने में व्यक्ति पर्यावरण द्वारा परिवर्तित होता है। मनोव्याधिकीय लक्षण उस समय उत्पन्न होते हैं जब समाधान सीखने तथा चिह्नात्मक सीखने में परस्पर विरोध ाभास उत्पन्न हो जाता है। मोरर ने स्थानांतरण पद्धति को मनोव्याधिकीय लक्षणों को दूर करने के लिए आवश्यक बताया है। सामाजिक सीखने, पराहं को स्पष्ट करने तथा परिपक्वता वृद्धि के द्वारा लक्षणों को दूर करना सम्भव होता है।

5– डोलार्ड तथा मिलर का मनोविश्लेषण तथा सीखने के सिद्धान्त का एकीकरण

डोलार्ड तथा मिलर [26–27] ने सीखने के 4 मूलभूत कारक बताये हैं :– (1) चालक (2) प्रत्युत्तर (3) संकेत (4) पुष्टीकरण। इन कारकों की सहायता से सीखने की प्रक्रिया बढ़ती है। जब चालक की शक्ति में कमी आती है तो पुष्टीकरण होता है और यदि चालक होता है तो पुष्टीकरण का कोई प्रश्न नहीं उठता है। पुष्टीकरण के उपरान्त चालक शून्य शक्ति पर स्थित हो जाता है। इस कारण पुनः पुष्टीकरण नहीं होता है। भय भी सीखा जाता है क्योंकि इसको तठस्थ संकेतों से सम्बन्धित कर सकते हैं।

मनोविश्लेषण सिद्धान्त तथा सीखने के सिद्धान्त में सम्बन्ध है। दमन संकेत उत्पन्न करने वाले प्रत्युत्तरों का निषेध होता है जो विचार तथा तर्क समझौता कराता है।मनोस्नायुविकृति का विकास दोषपूर्ण सीखने के कारण होता है। अपरिपक्व (मनोस्नायु विकृति) तात्कालिक प्रत्युत्तर पुष्टीकृत हो जाते हैं। अतः मनोचिकित्सा का शुद्ध रूप पूर्ण सीखना प्रक्रिया है। मनोचिकित्सक का कार्य इस प्रकार की शिक्षा देना है जिससे वह अपनी विचार प्रक्रिया को समस्या के स्तर का बना सकें और समाधान के उपायों की खोज कर सकें।

23– विश्लेषणात्मक मनोविज्ञान

यद्यपि जुंग व्यक्तित्व सिद्धान्त को मनोविश्लेषणात्मक सिद्धान्त के अन्तर्गत ही सम्मिलित करते हैं परन्तु यह निम्न कारणों से भिन्न है :–

26.	डोलार्ड, जान ऐण्ड मिलर नील ई0	पर्सनाल्टी ऐण्ड साइकोथेरेपी,, मैग्राहिल बुक कं0, न्यूयार्क, 1950
27.	डोलार्ड जान आउल्ड फ्रेक तथा ह्वाइट एलाइस मार्सडेन	स्टैप्स इन साइकोथिरैपी, मैकमिलन कं0, न्यूयार्क, 1953

1. इस सिद्धान्त को व्यक्ति के उद्देश्यों एवं आकांक्षाओं को कार्यकारण से सम्बन्धित कर दिया गया है। व्यक्ति का व्यवहार न केवल व्यक्तिगत एवं प्रजातीय इतिहास से बनता है बल्कि उसके उद्देश्य एवं आकांक्षायें भी महत्वपूर्ण कार्य करती हैं।
2. विगत वास्तविकता के रूप में तथा भविष्य क्षमता के रूप में वर्तमान व्यवहार को निर्देशित करता है।
3. व्यक्तित्व का निरन्तर विकास होता रहता है।

जुंग ने दो प्रकार के अचेतन बताये हैं : (1) व्यक्तिगत अचेतना (2) समूहिक अचेतना। व्यक्तिगत अचेतन में दमित व्यक्तिगत स्मृतियाँ, इच्छायें तथा अभिप्रेरणायें होती हैं। सामूहिक अचेतन में अनुवांशिक प्रेरणायें तथा इच्छायें होती हैं। मानवजाति के अनुभव सामूहिक अचेतन के मूल प्रारूप (Archetype) में रहते हैं।

मनोचिकित्सा का उद्देश्य सम्पूर्ण व्यक्ति का एकीकरण करना है जिससे उसके समस्त अनुभव आत्मा के विकास में कार्य कर सकें। चिकित्सा पद्धति में निम्नलिखित विधियाँ अपनायी जाती हैं।

1. रोगी तथा विश्लेषक आमने–समाने बैठते हैं।
2. एक सप्ताह में 2 या 3 बार साक्षात्कार होता है।
3. प्रारम्भ में रोगी से रोग तथा जीवन का इतिहास चिकित्सक प्राप्त करता है।
4. वर्तमान परिस्थितियों पर अधिक महत्व दिया जाता है, शैशवकालीन अनुभवों पर कम ध्यान दिया जाता है।
5. स्वप्न विश्लेषण तथा अन्य कल्पना तरंगों पर जोर दिया जाता है।
6. स्वप्नों को अचेतन की वास्तविक स्थिति माना जाता है।

जुंग ने उपचार प्रक्रिया में 4 चरणों की व्याख्या की है :–

1. स्वीकार करना (Confession)
2. व्याख्या करना (Explanation)
3. प्रशिक्षण (Training)
4. रूपान्तर (Transformation)

जुंग का विचार है कि व्यक्ति में मनोस्नायुविकृति की प्रवृति होने पर भी आवश्यक नहीं है कि वह इस रोग से ग्रसित हो ही जाय। जब तक वर्तमान जीवन में ऐसी परिस्थितियाँ जिनसे मस्तिष्क को अत्यधिक कठिनाई हो, सामने

न आवे तक तक वह रोगी नहीं होता है। मनोस्नायुविकृति उस समय उत्पन्न होती है जब कोई ऐसी समस्या उत्पन्न हो जाती है जिसको समाधान करने की शक्ति व्यक्ति में नहीं होती है। अतः यदि यथार्थ रूप में रोगी की वर्तमान समस्या को सुलझा दिया जाये तो रोग समाप्त हो जाता है क्योंकि शैशवावस्था की प्रणालियों की ओर अब उसका प्रतिगमन नहीं होता है।

सी0जी0 जुंग की निम्नलिखित कृतियाँ महत्वपूर्ण हैं–

1. साइकालोजी आफ अनकान्शस, मोफेट, यार्ड न्यूयार्क, 1916
2. कन्ट्रीव्यूशन्स टु एनालिटिक साइकोलोजी, राउटलेज ऐण्ड कंगन पाल लंदन 1923
3. कलेक्टैड पेपर्स आन एनालिटिकल साइकोलोजी, टिन्डाल लन्दन 1916

24. संकल्प चिकित्सा (Will Therapy)

आटोरैंक[28] ने संकल्प चिकित्सा का विकार किया। उनके अनुसार व्यक्ति में एकीकरण करने तथा विकास करने की अदभुत शक्ति है। व्यक्तित्व प्रायः दो प्रकार का होता है, कलात्मक या रचनात्मक मनोस्नायुविकृत तथा समाजविरोधी (अपराधी तथा मनोव्याधिकीय)। मनोस्नायुविकृत व्यक्तित्व का विकास उस स्थति में होता है जब कलात्मक प्रकार के व्यक्तित्व में रचनात्मक संकल्प अवरुद्ध हो जाता है। मनोस्नायुविकृति रोगी में एक ऐसी शक्ति होती है जो स्वतः स्फूर्ति (संकल्प) का विरोध करती है। अतः चिकित्सा का रूप रचनात्मक अभिव्यक्ति होती है न कि व्याख्यात्मक। चिकित्सा का सम्बन्ध संकल्प शक्ति को स्वतंत्र कराना है। चिकित्सक रोगी को स्वतः कार्य करने के लिए प्रेरित करता है। वह रोगी की शक्ति की ओर अधिक ध्यान देता है तथा रोगी को भी इन शक्तियों से अवगत कराता है। इस प्रकार चिकित्सा का रूप कलात्मक होता है। रोगी अपनी मूलप्रवृत्तियों को जानता है, पुनर्संगठन करता है तथा उन पर नियंत्रण करना सीखता है।

25. सम्बन्ध चिकित्सा

इस चिकित्सा के विकास करने का श्रेय ऐलेन[29] तथा ट्राफ्ट[30] को है।

29.	एलेन, एफ0 एच0	साइकोथेरेपी विद चिल्ड्रेन, नार्टन, न्यूयार्क, 1942
30	टाफ्ट, जेसीई0	डायनमिक्स आफ थेरेपी इन ऐ कन्ट्रोल्ड रिलेशनशिप, मैकमिलन, न्यूयार्क, 1936

यह चिकित्सा प्रायः बच्चों के साथ उपयोग में लायी जाती है। चिकित्सात्मक सम्बन्ध का मुख्य उद्देश्य रोगी की आत्मा का विकास में सहायता करना है। वह सम्बन्ध के माध्यम से अवरुद्ध आत्म (Self) को बंधन मुक्त करता है ओर भविष्य में उन्नति के लिए सही दिशा प्रदान करता है। रोगी सम्बन्ध में ही विकास का अनुभव करता है। मनोचिकित्सक का मूल उत्तरदायित्व होता है कि वह सम्बन्ध की आवश्यकता एवं प्रकार को समझे तथा रोगी को सम्बन्ध में भाग लेने के लिए तत्पर करें। जब रोगी में आत्म विश्वास, तथा आत्म निर्भरता उत्पन्न हो जाती है तो सम्बन्ध को समाप्त कर दिया जाता है और इस प्रकार चिकित्सा समाप्त होती है। इस प्रकार की चिकित्सा संस्था के माध्यम से की जाती है। संस्था संरचना का उपयोग सम्बन्ध के रूप में किया जाता है।

26. रोगी केन्द्रित चिकित्सा या अनिर्देशात्मक चिकित्सा
(Client-Centered Therapy or Non Directive Therapy)

इस प्रकार की चिकित्सा पद्धति का विकास कार्ल रोजर्स[31] ने किया था। इस प्रकार की चिकित्सा में मनोचिकित्सक रोगी की सभी बातों को ध्यानपूर्वक सुनता है। उन बातों को विश्लेषित करता है, स्पष्ट करता है परन्तु किसी प्रकार का सुझाव अथवा परामर्श नहीं देता है। रोगी का उत्तरदायित्व होता है कि वह स्वयं अपनी समस्या के समाधान के लिए प्रयोग में लाये जाने वाले तरीके के विषय में निर्णय ले। यह चिकित्सा पद्धति इस बात में विश्वास रखती है कि प्रत्येक व्यक्ति में आत्म एकीकृत करने की आवश्यक क्षमता होती है। वह अपनी जीवन की समस्याओं को संरचनात्मक रूप से सुलझाने की क्षमता रखता है। कुछ ऐसी परिस्थितियाँ आ जाती हैं जब उसकी इन शक्तियों पर पर्दा पड़ जाता है। अतः चिकित्सक का कार्य समस्या से सम्बन्धित इस पर्दे को हटाना होता है। उसके पश्चात् रोगी स्वयं कठिनाइयों को समझकर निर्देशन व समाधान करने में समर्थ होता है।

रोगी जब चिकित्सक के पास जाता है तो वह इतना सौहार्दपूर्ण व्यवहार करता है, ऐसा पर्यावरण तैयार करता है जिसमें रोगी अपनी भावनाओं, आन्तरिक इच्छाओं तथा अचेतन मन की ग्रन्थियों को खोलता है। चिकित्सक का यह कर्तव्य होता है कि वह इन विशेषताओं को समझे तथा रोगी को भी समझने

---

31. रोजर्स, कार्ल, आर0 — कौंशिलिंग ऐण्ड साइकोथेरेपी, हफ्टन मिफलिन कं0, वास्टन, 1942

" " — क्लाइन्ट सेन्टर्ड थेरेपी, हफ्टन मिफलिन कं0 वास्टन, 1951

के अवसर प्रदान करे। रोगी को वह प्रोत्साहित करता है जिससे वह कष्ट पहुँचाने वाले तथ्यों को अवश्य ही स्पष्ट करे।

रोगी केन्द्रित चिकित्सा में चिकित्सक सक्रिय रूप से उपचार कार्य में भाग नहीं लेता है। वह किसी भी समाधान उपाय की ओर इंगित भी नहीं करता है। वह केवल रोगी में समस्या से सम्बन्धित अन्तर्दृष्टि का विकास करता है जिससे उसे वास्तविकता का ज्ञान होता है तथा रोगी स्वयं समस्या समाधान का प्रयास करता है। उपचार की सफलता रोगी की इच्छा शक्ति पर निर्भर होती है वह जितना ही अधिक समस्या समाधान के लिए इच्छुक होगा उतना ही अधिक प्रयास करेगा।

इस प्रकार की मनोचिकित्सा की निम्न विशेषतायें हैं :–

1. चिकित्सक रोगी के आन्तरिक मानस पटल को ज्ञात करता है।
2. रोगी तथा वाह्य जगत को चिकित्सक उसी प्रकार प्रत्यक्षीकृत करता है जिस प्रकार रोगी स्वयं करता है।
3. चिकित्सक सक्रिय रूप से भाग नहीं लेता है।
4. रोगी स्वयं अपनी सफलता के लिए उत्तरदायी होता है।
5. रोगी स्वयं समस्या समाधान का मार्ग निश्चित करता है।
6. चिकित्सक सौहार्द्रपूर्ण एवं समता का वातावरण तैयार करता है।
7. वह ऐसी अन्तर्दृष्टि उत्पन्न करता है जिससे रोगी को समस्या के प्रति ज्ञान उत्पन्न हो जाता है।

27. प्रयोगात्मक मनोचिकित्सा

इस प्रकार की मनोचिकित्सा के विकास का श्रेय व्हिटेकर (Whitaker) तथा मालोन (Malone)[32] को है। व्यक्ति में जैविक परिवर्तन होते रहते हैं। इन परिवर्तनों में विकास, अनुकूलन, शक्ति आदि प्रमुख क्षेत्र हैं। विकास की प्रक्रिया तनावपूर्ण स्थिति से अनुकूलन के परिणाम स्वरूप होती है। जब विकास प्रक्रिया में किसी प्रकार की बाधा उत्पन्न हो जाती है तो व्याधि उत्पन्न होती है। मनोचिकित्सा पुनर्गठित (Repair) कार्य के रूप में देखी जाती है। इस चिकित्सा की निम्न प्रक्रिया हैं–

---

32. व्हिवटेकर, कार्ल ए0 ऐण्ड मालेन थामस पी0 — दि रूट्स आफ साइकोथिरेपी, ब्लैकस्टोन, न्यूयार्क, 1953

1. रोगी पहले सामाजिक उपचारात्मक साक्षात्कार करता है।
2. व्यवसायिक कार्यकर्ता दूसरे स्तर पर साक्षात्कार सूचनायें एकत्रित करता है। साक्षात्कार के तीन स्तर होते हैं :– पूर्व सांकेतिक स्तर (Pre-symbolic stage) सांकेतिक स्तर तथा अन्तिम चरण।

पूर्व सांकेतिक स्तर में रोगी की समस्या तथा वैयक्तिक इतिहास का आलेखन किया जाता है। चिकित्सक तथा रोगी परस्पर मनोवैज्ञानिक सम्बन्ध स्थापित करते हैं। सांकेतिक स्तर पर दोनों एक दूसरे को समझते हैं, रोगी प्रत्यागमन भी करता है, प्रक्षेपण करता है परन्तु अन्त में एक मत दोनों हो जाते हैं। रोगी पहले पिता के रूप में चिकित्सक को देखता है परन्तु बाद में यह स्थिति समाप्त होती है। अन्तिम स्तर पर चिकित्सक रोगी को स्वतंत्र कर देता है तथा अपने सहयोग को बन्द कर देता है।

28. वैयक्तिक मनोविज्ञान

एल्फ्रेड एडलर[33] ने वैयक्तिक मनोविज्ञान सिद्धान्त का प्रतिपादन किया। एडलर ने सामाजिक चालकों पर जोर दिया। उनका मत था कि व्यक्ति कामुक प्राणी न होकर सामाजिक प्राणी है। उसमें हीनभावना प्रारम्भ से ही विकसित हो जाती है। इसी कारण हीनभावना ग्रन्थि का विकास होता है। परन्तु उसका व्यवहार हीनभावना के कारण विकसित होता है। एडलर ने आंगिक हीनता का भी उल्लेख किया है। बालक लिंग के छोटा होने से तथा लड़की लिंग न होने के कारण हीन अनुभव करती है। इसी हीन भावना के कारण श्रेष्ठ बनने की भावनायें विकसित होती हैं।

एडलर के मतानुसार सभी प्रकार की मनोस्नायु विकृतियों का कारण हीन भावना होती है। हीन भावना के कारण काल्पनिक एवं असाधारण उद्देश्यों का चयन करता है जिसके कारण वह आत्मकेन्द्रित हो जाता है, सामाजिक भावना कमजोर हो जाती है तथा असफलता से बचने के लिए बहाने बनाता है। एडलर की चिकित्सा का प्रमुख उद्देश्य रोगी को उसकी जीवन शैली से

---

33. एडलर, एलफ्रेड — दि प्रेक्टिस ऐण्ड थियरी आफ इंडिविजुअल साइकालोजी, हरकोर्ट, प्रेस, न्यूयार्क, 1929
दि न्यूरोटिक कान्सीट्यूशन मोफैट, यार्क न्यूयार्क, 1917
अन्डर स्टैन्डिग आफ ह्यूमन नेचर, गार्डेन सिटी, न्यूयार्क, 1927

परिचित कराना होता है। वह रोगी को काल्पनिक लक्ष्यों एवं उद्देश्यों का अर्थ समझाता है तथा उसके व्यवहार की व्याख्या करता है। वह उसे आवश्यक निर्देश एवं प्रोत्साहन देता है।

29. मनोजैविकी चिकित्सा
(Psychobiology Therapy)

इस चिकित्सा पद्धति का विकास एडाल्फ मेयर[34] ने किया था। इस चिकित्सा पद्धति द्वारा रोग के जैविक, सामाजिक तथा मनोवैज्ञानिक कारणों का अध्ययन किया जाता है। रोग का निदान करने के लिए चिकित्सकीय एवं सामाजिक इतिहास का पूर्व विवरण ज्ञात किया जाता है। रोगी से प्राप्त सूचना एवं विवरण के आधार पर जीवन चार्ट का निर्माण करता है और रोगी के लक्षणों को समझने का प्रयास करता है। चिकित्सक जैविकीय तथा मनोवैज्ञानिक दोनों प्रकार के कारकों पर बल देता है। मनोवैज्ञानिक चिकित्सा की निम्न विशेषतायें हैं–

1. इसमें व्यवहारिक तथा सामान्य अर्थ पर जोर दिया जाता है।
2. चिकित्सक शरीर रोग ज्ञाता तथा मनोरोग ज्ञाता दोनों होता है।
3. रोगी की कार्यात्मकता के सम्बन्ध में शारीरिक, मनोवैज्ञानिक तथा सामाजिक सभी तत्वों को समान महत्व दिया जाता है।
4. रोगी की सम्पूर्ण कार्यात्मकता पर बल दिया जाता है।
5. रोगी के पर्यावरण को समझने का अधिक प्रयास होता है।
6. मनोचिकित्सा का रूप गत्यात्मक होता है।
7. आवश्यकतानुसार चिकित्सा पद्धति में परिवर्तन कर लेते हैं।

30. रचनात्मक विकल्प
(Constructive Alternativism)

इस चिकित्सा पद्धति का विकास जार्ज ए केली[35] ने किया था। इस सिद्धान्त के अनुसार एक व्यक्ति की मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें उसी आधार पर कार्य करती हैं जिस प्रकार वह घटनाओं की सम्भावनाओं पर विचार करता है। चिन्ता की उत्पत्ति व्यक्तिगत संरचना (Personal Construction) की असफलता

---

34. मेयर, एडाल्फ — साइकोवाइलोजी, थामस, स्प्रिंग फील्ड, 1957
35. केली, जार्ज, ए0 — दि साइकोलाजी आफ परसनल कान्ट्रक्ट्स (2 वाल्यूम) नार्टन, न्यूयार्क, 1955

के कारण होती है। जब वह सम्भावनाओं को उचित प्रत्यक्षीकृत नहीं कर पाता है तो उसे धक्का पहुंचता है। प्रत्येक व्यक्ति अपनी घटनाओं के संरचनात्मक कार्य अर्थात् प्रत्यक्षीकरण में भिन्न–भिन्न होता है इसी कारण प्रत्येक व्यक्ति अपनी सुविधानुसार सम्भावित घटना के प्रति रचनात्मक व्यवस्था का संगठन करता है। वह इन रचनाओं में संतोषप्रद सम्बन्ध स्थापित करता है। वह उन्हीं एवं रचनाओं का उपयोग करता है जिनसे अधिक सफलता एवं संतोष की सम्भावना रहती है। एक रचना (Construct) केवल एक ही सम्भावित घटना के लिए लाभप्रद होती है।

एक व्यक्ति की रचनात्मक व्यवस्था बदलती जाती है जैसे–जैसे वह घटनाओं के प्रति रचना संगठित करने में सफलता प्राप्त करता है। वह प्रायः दूसरे व्यक्ति के समान ही रचनाओं का निर्माण करता है। अतः उसकी मनोवैज्ञानिक प्रक्रियायें दूसरे व्यक्ति के समान ही होती है। अतः सामाजिक प्रक्रिया में भाग लेने के लिए विवश हो जाता है। मनोव्याधिकी लक्षण उस समय उत्पन्न होते हैं जब रचनाओं में विकृति उत्पन्न हो जाती है अथवा रचनायें सम्भावित घटना के अनुरूप नहीं होती है। मनोचिकित्सा में चिकित्सक रोगी की शिकायतों को विस्तृत रूप में सुनता है, व्यक्तिगत व्यवस्था पर ध्यान देता है, अनुचित रचनाओं को समाप्त करने की सलाह देता है, रचनाओं के निर्माण में सहयोग प्रदान करता है तथा मनोचिकित्सात्मक प्रयोग करके प्रदर्शित करता है।

31. सम्मोहन चिकित्सा

सम्मोहन का सर्वप्रथम प्रयोग ऐन्टन मेस्मर ने किया था। उसने अनुभव किया कि यदि रोगी को चुम्बक की सहायता से स्पर्श किया जाय तो उसे आराम मिलता है। इसी आधार पर वे इस निष्कर्ष पर निकले कि चुम्बक से नहीं बल्कि व्यक्ति के निर्देशों द्वारा ऐसा सम्भव होता है। अतः प्रत्येक व्यक्ति में चुम्बकीय शक्ति होती है जिसका उचित प्रकार से प्रयोग करने पर उससे दूसरे व्यक्ति प्रभावित हो सकते हैं। इंग्लैण्ड के जेम्स ब्रेड ने मेस्मरेजिम को सम्मोहन का रूप दिया। क्षोभोन्माद को दूर करने के लिए सम्मोहन चिकित्सा का उपयोग किया जाने लगा।

इस विधि में रोगी को आराम कुर्सी पर बिठाया जाता है तथा एकाग्रचित की स्थिति एवं शान्त पर्यावरण उत्पन्न किया जाता है। जब रोगी मानसिक रूप से एकाग्रचित हो जाता है तो चिकित्सक कुछ संकेत देता है। उदाहरण के लिए

वह कहता है कि घड़ी की टिक--टिक बीस बार सुनने के पश्चात् तुम्हें नींद अवश्य आ जायेगी अथवा किसी वस्तु पर ध्यान केन्द्रित करवाता है तथा नींद की स्थिति उत्पन्न करता है। परन्तु उसे नींद नहीं आती बल्कि चिकित्सक के निर्देशों का पालन चेतन रूप से करता है। सम्मोहन अवस्था में रोगी पूर्णतया चिकित्सक के निर्देशों को मानता है।

सम्मोहन की उत्पत्ति को दो वर्गों में विभाजित कर सकते हैं: (1) अधिकार भाव (2) नम्र भाव। अधिकार भाव में चिकित्सक आदेशानुसार कार्य करने के लिए रोगी को सम्मोहित करते हैं। परन्तु वह स्थिति कठिन होती है क्योंकि रोगी आक्रामक व्यवहार को सहन नहीं करते और उसका विरोध करते हैं। नम्र भाव में चिकित्सक रोगी को अपने कार्य तथा पद्धति का पूरा परिचय देकर सहयोग देने के लिए निर्देश देता है।

सम्मोहन तथा निद्रावस्था मे अन्तर होता है। यद्यपि जिस प्रकार सम्मोहन की स्थिति में रोगी बातचीत एवं अन्य व्यवहार करता है उसी प्रकार निद्रा अवस्था में भी लोग ऐसा व्यवहार करते हैं। परन्तु सम्मोहन में चिकित्सक तथा रोगी (सम्मोहित व्यक्ति) के बीच का सम्बन्ध निद्रा अवस्था में नहीं होता है। सम्मोहित व्यक्ति चिकित्सक की इच्छा के अनुरूप कार्य करता है, उसके निर्देशों का पालन करता है तथा उसके प्रति विनम्रता का भाव रखता है।

सम्मोहन की स्थिति में किये गये व्यवहार के प्रति रोगी को कोई ज्ञान नहीं होता है। जागने पर उसको पूर्व घटित बातों का बिल्कुल ज्ञान नहीं रहता है। परन्तु कुछ मनोवैज्ञानिकों का विचार है कि पूर्ण विस्मृति सम्भव नहीं होती है। भविष्य में समान स्थिति उत्पन्न होने पर वह पहचान जाता है कि इस प्रकार की स्थिति उसके सामने कभी घटित हो चुकी है। उन क्रियाओं एवं व्यवहारों को सुगमता से सीख लेता है जिनका उपयोग सम्मोहन की स्थिति में करता है।

सम्मोहन विधि का उपयोग हिस्टीरिया के रोगियों के लिए लाभप्रद होता है। रोगी को खोई हुई बातों की याद समाप्त हो जाती है। परन्तु प्रत्येक प्रकार के रोगी में यह पद्धति नहीं अपनायी जा सकती है क्योंकि प्रत्येक को सम्मोहित करना सम्भव नहीं होता है। सम्मोहन से आन्तरिक संघर्ष को दूर नहीं किया जा सकता है। केवल वाह्य अथवा शारीरिक लक्षणों को दूर करने में सफलता मिलती है। अतः इसका प्रभाव स्थायी नहीं

होता है। कुछ विचारकों की धारणा है कि इससे मानसिक दोष उत्पन्न हो जाते हैं।

32. खेल चिकित्सा

मानसिक रोगों के उपचार कार्य में खेल चिकित्सा के महत्व को अनेक विद्वानों[36] ने स्वीकार किया है। खेल वह माध्यम होता है जिसके द्वारा बालक अपनी आन्तरिक इच्छाओं की अभिव्यक्ति करता है। भूमिका प्रदर्शन द्वारा व्यक्तित्व एवं व्यवहार का विकास करता है। खेल के माध्यम से वह सामाजिक व्यवहार करना सीखता है। बालकों के अतिरिक्त किशोरों तथा युवकों के लिए खेल आवश्यक होते हैं। मनोरोगियों को खेल क्रिया में लगाने से उनकी सांवेगिक कठोर स्थिति नम्र होती है, तनाव कम होता है तथा मानसिक बोझ हल्का होता है। खेल के माध्यम से समस्याओं एवं अन्तर्द्वन्दों की अभिव्यक्ति होती है। इससे उसके व्यक्तिगत जीवन में प्रवेश करने के अवसर प्राप्त होते हैं। खेल प्रक्रिया से संचार कार्य को प्रोत्साहन मिलता है तथा रोगी दूसरों से समायोजन करना तथा परिस्थिति का उचित प्रत्यक्षीकरण करना सीखता है।

33. मनोअभिनय

(Psycho-drama)

इस पद्धति का विकास जैकब एल मोटेनो[37] ने किया था। इस पद्धति में रोगी को नाटक में ऐसी भूमिकायें दी जाती हैं जिनके द्वारा रोगी अपनी

36.	एलेन, एफ0 एच0	साइकोथेरैपी विद चिल्ड्रेन, नार्टन न्यूयार्क, 1942
अ)	एक्सलाइन, विरजाइना, पी	प्ले थेरेपी हघटन मिफलिन, वास्टन, 1947
ब)	डोर्फमैन, इ0	प्ले थेरैपी इन क्लाथन्ट सेन्टर्ड थेरैपी, हघटन मिफलिन बास्टन, 1951
स)	गोनडोर, ईमरी, आई	आर्ट एण्ड प्ले थेपैरी, डवुलडे, गार्डनसिटी, न्यूयार्क 1956
द)	क्लीन, मेलानई	दि साइकोएनालिसिस आफ चिल्ड्रेन, एग्लो बुक्स, न्यूयार्क, 1952
37.	मोटेनो, जैकब, एल0	साइकोड्रामा, रैनडमहाउस, न्यूयार्क, 1946 साइकोड्रामा ऐण्ड थेराप्युटिक मोसन पिक्चर्स साइकोड्रमाटिक इंस्टीट्यूट, न्यूयार्क, 1945 दि थियेटर आफ स्पान्टेनियटी, वेकन हाउस, न्यूयार्क, 1947

आन्तरिक मानसिक स्थिति का उचित रूप से निरूपण करने में सफल होता है। रोगी नाटक में अपनी भूमिका का चयन स्वतः करता है तथा अपनी स्वेच्छा से क्रोध, हर्ष, संघर्ष, घृणा आदि संवेगों की स्पष्टीकरण करता है। इस प्रकार के अभिनय से रोगी के दमित संवेग अभिव्यक्त होते हैं तथा मन का बोझ हल्का होता है।

इस पद्धति का विश्वास है कि व्यक्ति की क्रियाओं तथा भावनाओं में अन्तर्सम्बन्ध होता है। भूमिका के माध्यम से वह अपनी मानसिक स्थिति को स्पष्ट करता है। अतः यदि चिकित्सा के रूप में इस पद्धति का उपयोग किया जाय तो रोगी अपनी मानसिक स्थिति को सुदृढ़ करने, समझने तथा सुधार करने में सफल होता है। चिकित्सक सर्वप्रथम नाटक के सम्बन्ध में समूह से बातचीत करता है, ऐसे पात्रों की भूमिकाओं को समझाता है तथा सदस्यों से भूमिका चयन के लिए कहता है। समूह स्वतंत्र रूप से अभिनय प्राप्त करता है तथा चिकित्सा द्वारा उसे आवश्यक निर्देश प्राप्त होते हैं। वह अथवा कोई रोगी की समस्या के विषय में सूचनायें देता है तथा सदस्यों को शारीरिक संवेगों तथा मानसिक विचारों को स्पष्ट करने का अवसर देता है। मनोअभिनय की प्रविधियों में आत्म प्रस्तुतीकरण, स्वप्न प्रस्तुतीकरण, नृत्य या शारीरिक चिकित्सा, सम्मोहन अभिनय आदि प्रमुख हैं।

34. सामूहिक चिकित्सा

मानसिक रोगियों के साथ सामूहिक चिकित्सा के महत्व को वाच[38], फाउलकेस[39], स्लाउसन[40] आदि विद्वानों ने स्पष्ट किया है। इस चिकित्सा पद्धति द्वारा एक से अधिक मानसिक रोगियों की चिकित्सा सम्भव होती है। समान रोगियों का एक समूह बना लिया जाता है तथा निश्चित कार्यक्रमों को सम्पन्न किया जाता है। प्रत्येक रोगी को आवश्यक भूमिका निभाने के लिए प्रोत्साहित किया जाता है। चिकित्सक उन्हीं पद्धतियों को प्रयोग में लाता है जो समूह के

---

38. वाच, जार्ज, आर0 — इनटेन्सिव ग्रुप साइकोथैरैपी, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क, 1954
39. फाउलकेस, एस0 एच0 — इन्ट्रोडक्शन टु ग्रुप एनालिटिक साइकोथेरैपी, ग्रूने ऐण्ड स्ट्रेटन, न्यूयार्क, 1948
40. स्लावसन, सैमुल आर0 — दि फील्ड आफ ग्रुप साइकोथेरैपी, इण्टरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1956

    ” ” — इन्ट्रोडक्सन टु ग्रुप थैरैपी, इण्टरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क, 1950

प्रत्येक रोगी के उपयुक्त होती हैं। इस प्रकार की चिकित्सा में रोगियों को एक दूसरे से मिलने, समझने तथा सम्बन्ध स्थापित करने का अवसर प्राप्त होता है। समूह कार्यक्रम के अन्तर्गत मनोरंजन, शिक्षा तथा मनोशारीरिक विकास की क्रियाओं को सम्मिलित किया जाता है। जब विषयवस्तु का चुनाव हो जाता है तो कार्यक्रम संचालन का माध्यम चुना जाता है। इन माध्यमों में नृत्य, संगीत, कहानी, ड्रामा, नाटक, खेलकूद, कला आदि सम्मिलित है। इन माध्यमों से रोगियों को न केवल सम्बन्ध, अनुभव प्रदान करते हैं बल्कि रचनात्मक अनुभव एवं ज्ञान का विकास भी करते हैं।

सामूहिक चिकित्सा तथा खेल चिकित्सा में अन्तर होता है। खेल चिकित्सा में खेलना ही महत्वपूर्ण कार्य होता है। परन्तु सामूहिक चिकित्सा में खेल अथवा अन्य कोई मनोरंजन के साधन माध्यम का कार्य करते हैं। इसमें प्रत्येक सदस्य का मनोवैज्ञानिक अध्ययन किया जाता है, सहायता पहुंचायी जाती है, समस्या का निरूपण किया जाता है, तथा समस्या को कम करने के लिए भूमिका अदा करने में सहायता की जाती है। कार्यकर्ता देखता है कि समूह में भाग लेने वाले रोगी सदस्य कितनी देर समूह क्रियाओं में भाग लेते हैं, उनका भाग लेने का क्या क्रम है तथा सक्रियता की क्या श्रेणी है। जो सदस्य कम भाग लेता है उसके कारणों का पता लगा कर सामूहिक चिकित्सक सहायता करता है।

सामूहिक चिकित्सा में रोगी को कई लाभ होते हैं। उसे अपने मन का बोझ हल्का करने का अवसर मिलता है। समस्या पर बातचीत खुले रूप से होती है, सम्बन्ध के माध्यम से रहना सीखता है, समायोजन शक्ति की कमी को दूर करता है तथा सांवेगिक मुक्ति पाता है।

सामूहिक चिकित्सा दो प्रकार की होती है– (1) क्रियात्मक सामूहिक चिकित्सा जिसमें विभिन्न कार्यक्रमों को सम्पन्न किया जाता है। (2) सामाजिक सहचर्य (Social Association) इस प्रकार की चिकित्सा में विभिन्न रोगी एक साथ भोजन करते, आमोद–प्रमोद करते तथा रहते हैं। परिवार पर्यावरण का विकास किया जाता है। जिससे सही सांवेगिक अनुभव होते है।। इस बात का सदैव प्रयत्न किया जाता है कि ऐसा पर्यावरण तैयार किया जाय जिसमें रोगी बिना अवरोध के अपनी बातों को कह सकें, समस्या पर चर्चा कर सकें तथा वास्तविकता ज्ञात कर सकें।

35. प्रक्षेपित मनोचिकित्सा
(Projective Psychotherapy)

प्रक्षेपण एक मानसिक रचना होती है[41] जिसके द्वारा क्लेक्शकर, आपत्तिजनक तथा कष्टकारी विचारों को वाह्य पर्यावरण के प्रति रोगी आरोपित करता है। इस विधि द्वारा रोगी दमित मानसिक भावनाओं को आरोपित करता है। इस अवस्था में रोगी अहितकर विचारों के लिए अपने को उत्तरदायी नहीं स्वीकार करता है। प्रक्षेपण द्वारा वह दो कार्य करता है :

1. अपनी त्रुटियों, कमियों तथा अकार्यों के लिए दूसरे को दोषी ठहराता है।
2. अपनी अस्वीकृत मूलप्रवृत्तियों को दूसरे पर आरोपित करता है।

प्रक्षेपित मनोचिकित्सा से दमित तत्व को वाह्यीकृत करने का अवसर मिलता है जिसके कारण आन्तरिक संघर्ष कम हो जाता है। यह तरीका उन व्यक्तियों के लिए अधिक उपयुक्त होता है जिनका विकास कठोर, नियंत्रित तथा दृढ़ नैतिक मूल्यों के बीच होता है तथा जिनमें लैंगिक इच्छा को अनैतिक तथा आत्म अवमूल्यित माना जाता है।

चिकित्सा के रूप में प्रक्षेपण को मनोवैज्ञानिक स्थिति को जानने के लिए प्रयोग करते हैं। इससे रोगी की आन्तरिक स्थिति का पता चलता है। इस प्रणाली में रोगी को लिखने, सुनाने तथा वाक्यों को पूरा करने अथवा कुछ चित्रण के लिए दिया जाता है।

36. जेस्टाल्ट चिकित्सा
(Gestalt therapy)

इस पद्धति का विकास फ्रेडरिक पर्लस् द्वारा (1967) किया गया था। गेस्टाल्ट का तात्पर्य (सम्पूर्णता) से है। यह चिकित्सा पद्धति मन तथा शरीर की एकता पर महत्व देती है। यद्यपि इस पद्धति का उपयोग सामूहिक स्थिति में किया जाता है परन्तु महत्व एक व्यक्ति पर स्थिर रहता है। कार्यकर्त्ता सेवार्थी के साथ उसको स्वयं अपने (सेवार्थी के) तथा दुनिया के तत्वों या कारकों जिन्होंने अवरोध उत्पन्न कर दिया है को प्रत्यक्षीकृत करने में सहायता करता है। चिकित्सकीय प्रक्रिया में समूह के समक्ष होने की स्थिति में भी सेवार्थी पूर्ण स्वतंत्र होता है। सेवार्थी को उसकी सम्पूर्ण स्थिति अर्थात सम्पूर्ण आत्म (Total self) तथा उसके पर्यावरण से अवगत कराया जाता है जिससे वह स्वयं मार्ग निर्देशन कर लेता है।

---

41. हारोअर, मोली — प्रोजेक्टिव कौंशिलिंग ए साइकोथेराप्यूटिक टेकनीक, अमेरिकन जर्नल आफ साइकोथैरेपी 10 : 74–86, जनवरी, 1956

37. अस्तित्ववादी चिकित्सा

(Existential therapy)

अस्तित्ववादी चिकित्सा के समर्थक कार्कगार्ड[42] सारट्रे[43], में तथा लाइंग[44] प्रमुख हैं। इस चिकित्सा पद्धति को कुछ मूल प्रत्ययों के आधार पर ही समझा जा सकता है। चिकित्सा का यह दृष्टिकोण अस्तित्व के महत्व को स्पष्ट करता है क्योंकि आधुनिक व्यक्ति का अस्तित्व खतरे में पड़ गया है। वह अपनी वास्तविकता से दूर होता जा रहा है। उसका दृढ निश्चित विश्वासों तथा मूल्यों पर से विश्वास उठता जा रहा है। अलगाव की मनोवृत्ति बढ़ती जा रही है, वैयक्तिकता समाप्त होती जा रही है, परम्परागत विचारों की अवहेलना की जा रही है। इन सभी कारणों से मानवीय अस्तित्व को पर्याप्त धक्का पहुँचा है। व्यक्ति स्वयं अपने लिए अजनबी हो गया है। इसी कारण मानसिक विकृतियाँ उत्पन्न हो रही हैं तथा घटना क्रम दिनोदिन बढ़ रहा है। परन्तु इस विचारकों की धारणा है कि मानवप्राणी ही एक ऐसा जीव है जिसमें समस्या को समझने विचार करने तथा अस्तित्व की रक्षा करने की शक्ति पाई जाती है। उसमें उच्च श्रेणी की स्वतंत्रता होती है अतः कठिन परिस्थितियों का अर्थ समझ लेता है। उसको स्वयं निश्चित करना होता है कि उसे किस प्रकार का व्यक्तित्व बनाना है, किन–किन योग्यताओं एवं क्षमताओं का विकास करना है।

अस्तित्ववादी चिकित्सक किसी निश्चित चिकित्सात्मक तरीकों को उपयोग नहीं करते हैं बल्कि वे जीवन के मूल्यों पर अधिक बल देते हैं जिनसे व्यक्ति अपने अस्तित्व को समझ कर उन मूल्यों का निर्माण करें जिनसे उसके संघर्ष का निवारण हो तथा जीवन पद्धति सुगम बन सके।

इस प्रकार जब हम चिकित्सा प्रविधियों की व्याख्या करते हैं तो ज्ञात होता है कि औषधि चिकित्सा का महत्व दिन प्रति दिन घटता जा रहा है तथा मनोसामाजिक विधियों का विकास हो रहा है। परन्तु किसी विधि से समरूप व्यवहारिक एवं मानसिक समस्याओं को दूर नहीं किया जा सकता है। उनमें सहयोग का होना आवश्यक प्रतीत होता है।

---

42. सारट्रे, जीनपाल — इक्जिस्टेन्सिलिज्म, फिलासफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क, 1947
43. में, रोलो ऐण्ड अदर्स — इक्जिस्टेन्स ए न्यू डायमेन्सन इन साइक्याट्री ऐण्ड साइकोलोजी, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क, 1958
44. लौइंग, आर0डी0 — सैनिटी, मैडनेस ऐण्ड दि फेमिली, टाविस्टाक, लंदन, 1964

सहायक ग्रन्थ सूची

1	अरोनसन, जे. ऐण्ड पोलगर, एम.	पैथोजेनिक रिलेशनशिप्स इन सीजोफ्रीनिया अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 119	1962
2	अरीटी, एस.	अमेरिकन हैण्ड बुक आफ साइक्याट्री, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क.	1959
3	अमेरिकन साइक्याट्रिक एसोशियन,	डाइगनोस्टिक ऐण्ड स्टेटिस्टिकल मैनुअल, वाशिंगटन	1968
4	अलवारेज, वाल्टर सी.	दि न्यूरोसिसः डायग्नोसिस ऐण्ड मेनेजमेन्ट आफ फेक्शनल डिसआडर्स ऐण्ड माइनर साइकोसिस, फिलेडेल्फिया,	1951
5	आइन्सवर्थ, एम. डी.	डिप्रीवियेशन आफ मैटरनल केयर, वर्ल्ड हेल्थ आर्गनाइजेशन,	1962
6	आउयेर वैक, ए.	सोजीफ्रीनिया, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क	1959
7	आलपोर्ट, जी. डब्लू.	पैटर्न ऐण्ड ग्रोथ इन पर्सनाल्टी, राइन हार्ट ऐण्ड विनस्टन–इंक, न्यूयार्क	1961
8	आलपोर्ट, जी.	पर्सनाल्टी–साइकोलोजिकल–इण्टरप्रेटेशन, हेनरी हाल्ट ऐण्ड कं., न्यूयार्क	1901
9	इनथाम हरिंगटन वी, लब लिओनोर आर.	दि प्रोसेस आफ साइकोथैरैपी, मैकग्राहिल बुक कं. न्यूयार्क	1954
10	इनजेल, जी. एल.	इन्जाइटी ऐण्ड डिप्रेशन विदड्राल, इण्टरनेशनलजर्नल आफ साइकोएनालिसिस, 43	1962
11	इंगलिस, ओ. ऐण्ड फिंच, एस. एम.	इन्ट्रोडक्शन टु साइक्याड्री, नार्टन, न्यूयार्क	1954
12	इलनागर, एम. एन. मैत्रा, पी. एण्ड राव एम. एन.	मेंटल हेल्थ इन एन रूरल कम्यूनिटी, ब्रिटिश जर्नल आफ साइक्याट्री, 118	1971
13	इडेलसन, एम.	इगोसाइकालोजी, ग्रुप डायनमिक्स ऐण्ड दि थेराप्यूटिक कम्यूनिटी, ग्रूने ऐण्ड स्टैटन इंक, न्यायार्क	1964

14	इलेन वर्गगर, एच. एफ.	दि डिसकवरी आफ अनकान्शस, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1970
15	इथेन वाल्ड, जे.	साइकोथेरेपी, मिथ ऐण्ड मैथेड, गूने ऐण्ड स्ट्राटन, न्यूयार्क	1966
16	इरिक्सन, इ. एच.	चाइल्डहूड ऐण्ड सोसायटी, नार्टन, न्यूयार्क	1950
17	इलिस, एच.	स्टडीज इन साइकालोजी आफ सेक्स, एफ. ए. डेविस, क. फिलेडल्फिया	1915
18	ईएटन, जे. डल्लू. ऐण्ड बेल आर. जे.	कल्चर ऐण्ड मेंटल डिसआडर्स, फ्री प्रेस ग्लेनकोई,	1955
19	ईसनेक, एच. जे.	विहैवियर थेरेपी ऐण्ड दि न्यूरोसिस, पेरगामेनं, लन्दन,	1960
20	ईसनेक, एच. जे.	दि डयनमिक्स आफ एन्जाइटी ऐण्ड हिस्टीरिया, राउटलेज ऐण्ड केगनपाल लि., लंदन,	1957
21	ईसनेक, एच. जे.	हैण्डबुक आफ एवनार्मल साइकालोजी, पिंटमैन, लंदन	1973
22	इसनेक, एच. जे.	दि इफेक्ट्स आफ साइकाथेरेपी, इण्टरनेशनल सांइटिफिक प्रेस, न्यूयार्क	1966
23	ईसनेक, एच. जे. ऐण्ड रचमैन, एस.	काजेज ऐण्ड क्योर्स आफ न्यूरोसिस, सान डाइगों, नाप,	1965
24	उल्पे. जे.	फार फोविया–ए हेयर आफ दि हाउन्ड साइकोलोजी टुडे,	1965
25	एडम्स, ई. डब्लू.	ड्रग एडिक्शन, आक्सफोर्ड मेडिकल पब्लिकेशन लंदन,	1937
26	एमोर, एम.	पैटर्नस् आफ फोर्सिवल रेप, यूनिवर्सिटी आफ शिकागों प्रेस, शिकागों,	1971
27	येट्स ए. जे.	फ्रस्ट्रेशन ऐण्ड कन्फिक्टस्, जान, विले ऐण्ड संस कं., न्यूयार्क	1962
28	एक्सलाइन, वरजाइना एम.	प्ले थेरैपी, हघटम मिफलिन, वास्टन	1947
29	एक्लेजेण्डर, एफ एण्ड एच. स्टाउन	दि क्रिमिनल, दि जज ऐण्ड दि पब्लिक मैकमिलन, न्यूयार्क,	1931
30	एप्लाई, एम. एच. ऐण्ड ट्रमवल, आर	साइकोलोजिकल स्ट्रेस इसूज इन रिसर्च इप्लेटन सेंचुरी क्रेप्ट्स, न्यूयार्क,	1967
31	एट्कीन्सन, जे. डब्लू	मेटिव्य इन फेन्टासी, एक्शन ऐण्ड सोसाइटी, वान नास्ट्रेंड, प्रिनसेट्न,	1958

33	एकरमैन, एन. डब्लू	दि साइकोडायनामिक्स आफ फामिली लाइफ, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1958
34	एब्राहमसेन, डी.	हू आर दि गिल्टी? राइन हार्ट, न्यूयार्क	1952
35	एरीइटी, एस.	इण्टरप्रेटेशन आफ सीजोफ्रीनिया, ब्रूनर, न्यूयार्क	1955
36	एडलर, ए.	दि न्यूरोटिक कान्स्टीट्यूशन, मोफैट यार्ड ए. कं., न्यूयार्क	1917
37	एलेक्जेण्डर एफ. ऐण्ड फ्रेंच, टी.एम.	साइकोएनालिटिक थिरैपी, रोनाल्ड, न्यूयार्क	1946
38	ओपलर, एम.के.	कल्चर ऐण्ड मेंटल हेथ्ल, दि मैकमिलन कं., न्यूयार्क	1959
39	ओ., नील, एम. ऐण्ड मेम्पलर, बी.	एप्रोच ऐण्ड एवाईडेंस रिसपान्सेस आफ दि हिस्टीरिकल पर्सनाल्टी हु सेक्सुअल स्टीमुली, जर्नल आफ एवनार्मल साइकोलोजी, 74	1969
40	किस्कर, जी. डब्लू.	दि डिसआर्गनाइज्ड पर्सनाल्टी, मैकग्राहिल कं., न्यूयार्क।	1964
41	क्राइसन, एम.	इलूजन ऐण्ड ऐन्जाइटी, दि मैकमिलन कं., न्यूयार्क,	1963
42	केमरन, एन. ऐण्ड मारग्रेट ए.	विहैवियर पैथालोजी, हघटन मिफलिन, वास्टन	1951
43	केमरन, एन.	पर्सनाल्टी डेवलेपमेंट ऐण्ड साइकोपैथा–लोजी, हघटन मिफलिन कं., वास्टन	1963
44	क्रो, एल.डी. ऐण्ड क्रो ए.	एडोलेसेन्ट डेवलपमेंट ऐण्ड ऐडजस्टमेंट, मैकग्राहिल इंक, न्यूयार्क,	1965
45	कार्फ, इ. बी.	दि साइकोलोजी ऐण्ड साइकोथेरेपी आफ आफ आटोरैक, फिलासफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क	1953
46	कोलवाई, केनेथ मार्क	इनर्जी ऐण्ड स्ट्रचर इन साइकोएनालिसिस, रोनाल्ड प्रेस न्यूयार्क	1955
47	कालिस, राबर्ट पोलमैन टाइर पी. सी. ऐण्ड	केशबुक आफ कौशिलिंग, एप्लेटन सेन्चुरी क्राफ्ट्स न्यूयार्क	1955

50	क्लापमैन, जे. डब्लू	ग्रुपसाइकोथेरेपी, ग्रूने ऐैण्ड स्ट्रेटन, न्यूयार्क	1946
51	कोहेन, ए. के.	डिलीक्वेन्ट व्वायज, फ्री प्रेस, न्यूयार्क	1955
52	केन्डेल, आर.	रिलेशनशिप विटबीन एग्रसन ऐण्ड डिप्रेशन, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 22,	1970
53	क्रस्चन, एच. ए.	साइक्याट्री फार प्रक्टीशनर्स आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी, प्रेस न्यूयार्क	1936
54	कौलमैन, जेम्स सी.	अवनार्मल साइकोलोजी एण्ड माडर्न लाइफ, डी. वी. लारपोरवाला एण्ड संस, बम्बई	1942
55	कोरसिनी, आर. जे.	मेथड्स आफ ग्रुप साइकोथेरेपी, विलियम जेम्स प्रेस, शिकागों, इल	1964
56	क्रोसेर, एल.	दि फक्शन्स आफ सोशल कन्फ्लिक्ट्स, फ्री प्रेस आफ ग्लेनकोई, न्यूयार्क	1964
57	काम्ब्स, ए. डब्लू. गेण्ड स्नाइग, डी.	इंडिविजुअल बिहैयर, हारपर, न्यूयार्क	1969
58	कारसन, आर.	इण्टरऐक्यान कन्सेप्ट्स आफ पर्सनाल्टी एलडाइन शिकागो	1969
59	कूपरस्मिथ, एस.	दि एन्डीसिडेन्ट्स आफ सेल्फ इस्टीम, फ्रीमैन, सेनफ्रांसिसको,	1939
60	कोरी, डी. डल्लू ऐण्ड लीरवाय जे. पी.	दि होमो सेक्सुअल ऐण्ड हिज सोसायटी दि सिटेडल प्रेस, न्यूयार्क	1963
61	कोरोल, एच. ए.	मेन्टल हाइजिन, इंगलैंउड क्लिफस, न्यूयार्क	1964
62	क्रिगलेन, इ.	हेरेडिटी ऐण्ड इनवाइरनमेंट इन दि फंक्शनल साइकोसिस, यूनिवर्सिटी फार लागेट ओसलों	1967
63	क्लीकले, एच. एम.	दि मास्क आफ सैनिटी, मासवाई, सेन्ट लूईस	1964
64	कान्नेर, एल.	आयुइज्म डिसटरवेन्सेस आफ एफेक्टिव कन्टेन्ट, नर्वस चाइल्ड, 2	1943
65	कैटेल, आर. वी. ऐण्ड सेइयर आर. एच.	दि मीनिंग ऐण्ड मीजरमेंट ऑफ न्यूरोसिज्म ऐन्ड इन्जाइटी, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क	1961
66	केसलर, जे.	साइकोपैथालोजी आफ चाइल्डहूड, इंगलैंण्ड क्लिफ्स, प्रेंन्टिस हाल, न्यूयार्क	1966
67	क्रेइनेस, एस. एच.	मेंटल डिप्रेशन एण्ड देयर ट्रीटमेंट, मैकमिलन, न्यूयार्क	1957
68	कोलमैन, जे.	पर्सनाल्टी डायनमिक्स एण्ड इफेक्टिव विहैवियर, फार्समैन एचड क.,शिकागो	1960
69	किन्से, ए. सी. पोमेरोई, डब्लू. वी. एण्ड मार्टिन सी.ई.	सेक्शुअल विहैवियर इन दि ह्युमन मेल, साउन्डर्स, फिलेडेल्फिया	1948

70	कोलमैन, एच.	हेल्पिंग, ट्यूपल, करेन हार्नीज साइकोएनालिटिक, एप्रोच साइन्स हाउस, न्यूयार्क	1971
71	कालमैन, एफ. जे.	दि जेनटिक्स आफ सीजोफ्रीनिया, जे. जे. अगस्टीन, न्यूयार्क	1938
72	केपरिओं, एम. एस.	फीमेल होमो सैक्सुअलटी, कोव प्रेस न्यूयार्क	1954
73	कमिंग, जे. एण्ड कमिंग ई.	इको ऐण्ड मिल्यू, एथेर्टन, न्यूयार्क	1962
74	कोसटेलो, सी. जी	सिम्पटम्स आफ साइकोपैथालोजी विले न्यूयार्क	1970
75	कप्लान, जी.	प्रिंन्सिपिल्स आफ प्रेवेन्टिव साइक्याट्री बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1964
76	कप्लान, एल.	फाउन्डेशन्स आफ ह्यूमन विहैवियर, हारपर एण्ड रो, न्यूयार्क	1965
77	गोनडोर, ई. आई.	आर्ट एड प्ले थैरेपी, डबुल डे, न्यूयार्क	1954
78	गिलफाडर, जे. पी.	पर्साल्टीख मैकग्राहिल बुक कं0,न्यूयार्क	1959
79	गारे, डब्लू. जे.	बेसिक एन्जाइटी, फिलासफिकल लाइब्रेरी, न्यूयार्क	1962
80	गिलरट, एच. जी.	ग्रुप साइकोथैरपी विद चिलड्रन–थियरी एण्ड प्रेक्टिस आफ प्ले थिरैपी	1961
81	ग्रिनकर, आर.	ऐन ऐसे आन सीजोफ्रिनिया एण्ड साइंस आर्चीव आफ जनरल साइक्याट्री	1969
82	ग्रे, के. सी. ऐण्ड हचिसन एच. सी.	दि साइकोपैथिक पर्सनाल्टी, कनैडियन साइक्याट्रिक एसोशियेसन, जर्नल,	1964
83	गागसन जे. एच. ऐण्ड सिमन डब्लू.	सेक्सुअल डीवियेन्स इन कन्टमपोरेरी अमेरिका एनल्स आफ अमेरिकन एकेडेमी पेलिटिकल सोसल साइंस,	1968
84	तलूइक, एस. ऐण्ड ग्लूइक, इ. टी.	फेमिली इनवाइरमेंट ऐण्ड डिलीनकतेन्सी, हघटन मिफलिन कं., वास्टन,	1962
85	गेरार्ड डी.एल. ऐण्ड साइगेल जे.	दि फेमिली बैकग्राउन्ड आफ सीजोफ्रीनिया, साइक्याट्री क्वार्टरली, 24	1950
86	गिब्सन, आर. डब्लू. कोहेन एम.वी. ऐण्ड कोहेन आर.ए.	आन दि डायनमिक्स आफ दि मेनिक डिप्रेसिव पर्सनाल्टी, अमेरिकल जर्नल आफ साइक्याट्री, 115	1959
87	ग्लूइक, एस. ग्लूइक ई.टी.	फिजिक ऐण्ड डिलीनक्वेसी, हासर, न्यूयार्क	1959
88	गार्डन, जे. इ.	पर्सनाल्टी एंण्ड विहैवियर, दि मैकमिलन कं.,न्युयार्क	1963
89	गोडार्ड, एच.	दिकालिकाक फेमिली, मैकमिलन, न्यूयार्क	1913

90	ग्लैड, डी.डी.	आपनेशनल वैलूज इन साइकोथेरैपी, आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क	1959
91	ग्रीन, ए. डब्लू.	सोशल वैलूज एंण्ड साइकोथैरपी, जर्नल आफ पर्सनाल्टी	1946
92	ग्रीनाक्र, पी.	एफक्टिव डिसआडर्स, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी न्यूयार्क	1953
93	जोन्स, मैक्सवेल	दि थेरा–प्यूटिक कम्यूनिटी, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1953
94	ज्वाइंट कमीशन आन मेन्टल हेल्थ	क्राइसेस इन चाइल्ड मेंटल हेल्थ, हारपर ऐण्ड रो, न्यूयार्क,	1970
95	जोन्स, ड्र.	दि लाइफ ऐण्ड वर्क आफ सिमग्रड फ्रायड, गार्डेन सिटी, डुबुलडें, न्यूयार्क	1963
96	जेलीनेक, इ. एम.	दि डिजीज कन्सेप्ट आफ एल्कोहलिज्म, कालेज ऐण्ड यूनिवर्सिटी न्यूहैवेन,	1960
97	जुंग, डब्लू, डब्लू, के.	इवैलुऐटिंग ट्रीटमेंट मैथेड्स फार डिप्रेसिव डिसआडर्स अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 124	1968
98	जाको, इ.जी.	दि सोशल इपिडेमिओलोजी आफ मेंटल डिस आर्डर्स, रसेल सेज फाउन्डेशन, न्यूयार्क	1960
99	जाहोडा, एम.	करेन्ट कन्सेप्ट्स आफ मेंटल हेल्थ, बेसिक बुक्स न्यूयार्क	1958
100	जोनेवस्की, डी.एस. लीफ एम. ऐण्ड इपस्टीन	प्लेइंग दि मैजिक गेम, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 22	1970
101	जार्डन, बी. ऐण्ड कम्पलर	हिस्ट्रीरिकल पर्सनाल्टी, जर्नल आफ एवनार्मल साइकालोजी, 75	1970
102	जेनकिन्स, आर. एल.	दि रन अवे रियक्सन, अमेरिकल जर्नल आफ साइक्याट्री, 128	1971
103	जेनकिन्स, आर. एल.	साइक्याट्रिक सिन्ड्रोम्स इन चिल्ड्रेन, इन रिलेशन टु फेमिली बैकग्राउन्ड, अमेरिकनजर्नल आफ आर्था साइक्याट्री, 36	1961
104	जेनकिन्स, आर. एल.	क्लासीफिकेशन आफ विहैवियर प्राबुलम्स अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 125	1969
105	जिलबुर्ग, जी. ऐण्ड हेनरी,जी. डब्लू	ए हिस्ट्री आफ मेडिकल साइकालोजी, नार्टन, न्यूयार्क	1941

106	चोडोफ, पी.	ए रिइक्जामिनेशन आफ सम एसपेक्ट्स आफ कनवर्जन हिस्ट्रीरिया, साइक्याट्री, 17	1954
107	जोन्स, एच.	विहैवियर थिरैपी ऐण्ड न्यूरोसिस, पर्गामिन, आक्सफोर्ड	1960
108	जैक्सन, डी. डी.	दि इटियालोजी आफ सीजोफ्रीनिया, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1960
109	जोउरार्ड, एम. एम.	परसनल एउजस्टमेंट, दि मैकमिलन कम्पनी, न्यमयार्क	1963
110	जालेनिक ए. ऐण्ड मूमेन्ट, डी.	दि डायनमिक्स आफ इंटर परसनल विहैवियर, विले ऐण्ड संस, न्युयार्क,	1964
111	जाहोडा मेरिई	दि मीनिंग आफ साइकोलाजिकल हेल्थ, सोशल वेलफयर फोरम,	1953
112	जोन्स, एम. आर.	नेम्ब्रास्का सेंम्पोजियम आन मोटीवेशन, यूनिवर्सिटी आफ नेम्ब्रास्का प्रेस, लिनकन,	1957
113	टाफ्ट, जेसाई	डायनमिक्स आफ थेरैपी इन कन्ट्रोल रिलेशनसिप, मैकमिलन, न्यूयार्क	1936
114	टेट, सी. डी. ऐण्ड वर्नस, जी. सी.	इनवोल्यूशनल इलनेसेस, अमेरिकन जर्नल साइक्याट्री,108	1951
115	ट्रेफर्ट्र, डी. ए.	इपिडेमिओलोजी आफ इन्फेन्टाइल आटुइज्म आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 22	1970
116	टौनेर, जे. एम.	स्ट्रेस ऐण्ड साइक्याट्रिक डिसआर्डर, ब्लैक वेल, आक्सफोर्ड,	1960
117	टायलर, ई. ए.	मीटिंग दि इनक्रीजिग स्ट्रेसेस आफ लाईफ, चार्ल्स वीं थामस कं. स्प्रिगफील्ड, इल	1963
118	टायलर, एल. ऐण्ड एस. क्वे	मेनटल हेल्थ ऐण्ड इनवायरोनमेंट, लिटिल ब्राउन ऐण्ड कम्पनी, बोस्टन, मास.	1964
119	डुवोइस, पाल,	दि साइक्याट्रिकट्रीसमेंट आफ नर्वस डिसआर्डर्स, फँक ऐण्ड बागनल्स, न्यूयार्क,	1909
120	डनटन, डब्लू. आर. ऐण्ड लिच, सिडनी	अकूपेशनल थेरैपी–प्रिन्सिपिल्स ऐण्ड प्रेक्टिस, थामस, स्प्रिगफील्ड,	1950
121	डइटहेल्म, ओस्कर,	ट्रीटमेंट इन साइक्याट्री, स्प्रिगफील्ड, थामस	1955
122	डोलार्ड, जे. ऐण्ड मिलर एन. ई.	पर्सनाल्टी ऐण्ड साइकोथेरैपी, मैकग्राहल बुक कम्पनी न्यूयार्क	1950
123	ग्लेगोडो, जे.एफ.आर.	साइक्याट्री, टुडे, 3	1970
124	डनवर, फलैन्डर्स	साइकोसोमेटिक डाइगनोसिस, हारपर ऐण्ड डनहम, न्यूयार्क	1943

125	डोरजाव, जे. बेकर, एम. काडोरेट, आर. विनोकुर, जी.	डिप्रेसिव डिजीज, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्यात्री, 127	1971
126	डूविन, आर.	दि वर्क आफ इन्ड्रस्ट्रियल सोसाइटी, ऐण्ड ह्यूमन रिलेसन्इंगलेउड क्लिफ्स प्रेस्न्टिस हाल, न्यूयार्क	1958
127	डेवाल्ड, पी. ए.	साइकोथेरैपी–ए. डायनमिक एप्रोच बेसिक बुक्सइंक न्यूयार्क	1964
128	ड्रैगर, आर. एम.	फाउन्डेशन्स आफ पर्सनाल्टी, जे. वी. लिपिनकाट कं. फिलेडेल्फिया,	1963
129	डोलार्ड जे. डूव, एल.डब्लू. मिलर एम. मोरर, ओ.एच. ऐण्ड सियर्स, आर. आर.	फ्रस्ट्रेशन ऐण्ड ऐग्रसन, मेल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हैपेन	1939
130	डोलार्ड, जे. ऐण्ड मिलर एन. ई.	पर्सनाल्टी ऐण्ड साइकोथिरैपी, मैकगाहिल बुक–कम्पनी, न्यूयार्क	1965
131	डेसपर्ट, जे. एल.	दि इमोशनली डिसटर्ब्ड चाइल्ड, देन ऐण्ड नाऊ, बूनर, न्यूयार्क,	1965
132	थार्नडाइक, इ. एल.	दि साइकालोजी आफ लनिंग टीचर्स कालेज, न्यूयार्क	1913
133	थोपे, एल. पी. वी. ऐण्ड लेविस आर., टी.	साइकालोजी आफ एवनार्मल विहैवियर, दि रोनाल्ड प्रेस कं., न्यूयार्क	1961
134	थेरन, ए.	साइकाथेरपी इन अवर सोसाइटी, एन.जे. प्रिन्टिस हाल, इंक इग्लेउउ क्लिफस,	1963
135	नुनाकावा, डब्लू. डी.	ह्यूमन वैलूज एंण्ड एवनार्मल विहैवियर, फैरेस मैन ऐण्ड कं., शिकागों	1964
136	न्यूगार्अन, बी. एल.	ए न्यू लुक ऐट मोनापाज, साइक्यात्री टुडे	1967
137	न्यूमैन, एच. एच. फ्रीमैन, एफ. एन. ऐण्ड होलिन्जर, के. जे.	ट्विन्स–ए स्टडी आफ हेरेडिटी ऐण्ड इनवाइनरमेंट, यूनिवर्सिटी आफ शिकागों प्रेस शिकागो	1937
138	नोयेस, आर्थर पी.	ए टैक्स्ट बुक आफ साइक्यात्री दि मैकमिलन कम्पनी, न्यूयार्क, 83	1936
139	पोर्टर, ई. एच.	एन इन्ट्रोडक्शन टु थेराप्यूटिक कौशिलिंग, हघटन मिफलिन, वासटन,	1950
140	पोर्टर, आर.	रोल आफ लर्निंग इन साइकोथिरैपी चिरचिल लंदन,	1968
141	पैटर्सन, सी. एच.	कौशिलिंग ऐण्ड साइकाथेरैपी, हारपर ऐण्ड बनहम, न्यूयार्क	1959

142	पैटर्सन, वी. एस.	थियरीज आफ कौंशिलिंग एण्ड साइकोथेरैपी, हारपर ऐण्ड रो, न्यूयार्क	1966
143	पावलव, आई. पी.	लेक्चर्स आन कन्डीशन्ड रेफलेक्सेस, इंटरनेशनल पब्लिकेशन, न्यूयार्क	1941
144	परविन, एल. ए.	पर्सनाल्टी थियरी एसेसमेंट ऐण्ड रिसर्च न्युयार्क,	1970
145	योजनास्की, ई. ऐण्ड जनुल, जे.पी.	चाइल्डहुड डिप्रेशन, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 23	1970
146	पेकेल, ई.एस. ऐण्ड अदर्स	लाइफ इविन्ट्स ऐण्ड डिप्रेशन, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 21	1969
147	पिलोस्की, आई.	डाइमेन्शन्स आफ हाइपोचोन्ड्रियासिस, ब्रिटिश जर्नल आफ साइक्याट्री, 113	1967
148	प्रोवेन्स एस. ऐण्ड लिप्टन, आर. सी.	इनफैन्ट्स इन इंस्टीट्यूशन्स, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क,	1962
149	पाल, फेडर्न	इगो साइकोलाजी ऐण्ड दि साइकोसिस बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1952
150	पेपल्यू, हिलडेगार्ड, ई.	इंटरपर्सनल रिलेशन्स इन नर्सिंग पुटनाम, न्यूयार्क	1952
151	पाउडरमेकर, फ्लोरेन्स वी, ऐण्ड फैक, जेरोम, डी.	गुप साइकोथेरैपी, हारवर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, कैमिब्रज	1953
152	प्रिगल, एम. एन. के.	डिप्रीवियेसन ऐण्ड एजूकेशन, ह्यूमनिटीज प्रेस, न्यूयार्क	1965
153	प्लूटचिक, आर.	दि इमोशन्स, रैनडम हाउस, न्यूयार्क	1964
154	पूटनेई, एस. ऐण्ड पुटनेई, जे. एस.	नार्मल न्यूरोसिस, हारपर ऐण्ड रो कं. न्यूयार्क	1964
155	फ्रायड, ए.	साइकोएनालिटिकल ट्रीटमेंट आफ चिल्ड्रेंन, इमागो, लंदन	1964
156	फ्रायड, एस.	बेसिक राइटिंग्स आफ सिगमण्ड फ्रायड, रैनडम हाउस, न्यूयार्क	1938
157	फ्रायड, एस.	वियान्ड दि पलीजर प्रिंसिपिल्स, लिवराइट न्यूयार्क	1922
158	फ्रायड, एस.	सिविलाइजेशन ऐण्ड डिसकनटेन्ट्स, होगार्थ, लंदन	1930
159	फ्रायड, एस.	न्यू इन्ट्रोडक्टरी लेक्चर्स आन साइकोएनालिसस–कार्लटन आउस, न्यूयार्क	1933

160	फ्रायड, एस.	ए जनरल इन्ट्रोडक्शन टु साइकोऐनालिसस, पेरमाबुक्स, न्यूयार्क	1953
161	फ्रायड, एस.	दि प्राबुलम्स आफ एन्जाइटी डब्लू. डब्लू. नार्टन ऐण्ड कं., न्यूयार्क	1963
162	फ्रेस्टिंगर, एल.	कन्फिलक्ट डेसीजन ऐण्ड डिसोनेन्स, स्टैन फार्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, स्टैनफोर्ड,	1964
163	फिसर, बी. ई.	दि मीनिंग ऐण्ड प्रेक्टिस आफ साइकोथेरैपी, मैकमिलन, न्यूयार्क	1950
164	फिंक, हारोल्ड, डी.	रिलीज फ्राम नर्वस टेन्सन, साइमन ऐण्ड सुस्टर, न्यूयार्क	1940
165	फेनलासन, ए. एफ.	इसेनसियल्स–इन इंटरव्यूइंग, हारपर, न्यूयार्क	1952
166	फेयर हवेदन, जी. डब्लू. सैन्डर्स, डी. एच. क्रिसलर, डी.एल. ऐण्ड मेनार्ड, एच.	कम्यूनिटी लाइफ फारदि मेन्टली इल, इलडाइन शिकागो	1969
167	फेयर वेदर जी. डब्लू.	सोसल साइकोलाजी इन ट्रीटिंय मेंटल इलनेस ऐनइक्सपेरीमन्टल ऐप्रोच, जानविले ऐण्ड संस इंक, न्यूयार्क	1964
168	फेरिस, आर. ई. एल. ऐण्ड इनहम एच. डब्लू.	मेंटल डिसआर्डर्स इन अरबन एरियाज, यूनिवर्सिटी आफ आफ शिकागो प्रेस, शिकागो	1939
169	फेनेचल, ओ.	साइकोएनालिटिक थियरी आफ न्यूरोसिस, नार्टन, न्यूयार्क	1945
170	फ्रोम, ई.	मैन फार हिमसेल्फ, राइनहार्ट, न्यूयार्क	1941
171	फ्रोम, ई.	इस्केप फ्राम फ्रीडम, राइनहार्टे, न्युयार्क,	1941
172	फ्रोम, ई.	साइकोएनालिसिस ऐण्ड रिलीजन, मेल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यू हैवे,	1950
173	फ्रोम, ई.	दि सेन सोसाइटी, राइनहार्ट, न्यूयार्क	1855
174	फ्रोम, ई.	इस्केप फ्राम फ्रीडम, फेरर एण्ड राइनहार्ट, न्यूयार्क	1941
175	फ्रेयरवाइरन, डब्लू. आर. डी.	आब्जरवेसन्स आन दि नेचर आफ दि हिस्टीरिकल स्ट्रैट्स, ब्रिटिश जर्नल आफ मेडिकल साइकालोजी, 27	1954
176	फल्डमैन, एम.पी. ऐण्ड मैककुलक एम.जे.	होमोसैक्सुअल, विहैवियर, थिरैपी ऐण्डएसेसमेन्ट	1971
177	फ्रोस, वी.	डिटरमिनेन्ट्स आफ इनफैण्ट विहैवियर जान विले एण्ड सन्स, न्यूयार्क,	1961

178	फिने जे. सी.	कल्चर चेंज, मेंटल हेल्थ ऐण्ड पावर्टी, साइमन ऐण्ड सुस्टर, न्यूयार्क	1969
179	फ्रीडमैन ए.एम. एंण्ड कप्लान	कम्प्रेहेन्सिव टेक्स्ट बुक आफ साइक्याट्री, विलियमस ऐण्ड एच. आई. विलकिन्स, वाल्टीमोर,	1967
180	फिलिप्स, आई.	प्रेवेन्सन ऐण्ड ट्रीटमेंट आफ मेन्टल रिटोडेसन, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क,	1966
181	फलूगेल, जे. सी.	मैन, मोरल्स ऐण्ड सोसाइटी, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी, प्रेस, न्यूयार्क	1945
182	फ्रैंक, जे. डी.	परसुयेन ऐण्ड हीलिंग, जान्स हफ्किन्स यूनिवर्सिटी प्रेस, वाल्टीमोर, न्यूयार्क	1961
183	फलीक, एस.	फमिली डायनमिक्स ऐण्ड ओरिजिन आफ सीजोफ्रीनिया, साइकोसोमेटिक, मेडिसिन, 22	1960
184	बेरगिन, ए. इ ऐण्ड गारफील्ड एस. एल.	हैण्ड बुक आफ साइकोथेरैपी ऐण्ड विहैवियर चेन्ज विले, न्युयार्क	1971
185	बेरेलसन, बी. ऐण्ड स्टेइनेर जी.ए.	ह्युमन विहैवियर, हरकोर्ट ग्रस ऐण्ड वर्ल्ड, न्यूयार्क,	1964
186	ब्रोवोस्की, जे.	साइंस ऐण्ड ह्युमन बैलूज, मेसनेर, न्यूयार्क,	1956
187	बर्लयने, डी. ई.	कर्निफलक्ट, एराउजल ऐण्ड क्यूरियासिटी मैकग्राहिल कं. न्यूयार्क,	1960
188	बन्डुरा, ए.	प्रिन्सिपिल्स आफ विहैवियर, माडीफिकेशन राइनहार्ट ऐण्ड होल्ट, न्यूयार्क	1969
189	बान्डुरा, ए. ऐण्ड बाल्टर्स, आर. एच.	सोशल लर्निंग ऐण्ड पर्सनाल्टी डेवलेपमेंट, राइनहार्ट ऐण्ड विनसटन, इंक, न्यूयार्क	1963
190	वोसेलमैन, वी. सी.	न्यूरोसिस एण्ड साइकोसिस, चार्ल्स सी. थामस, स्प्रिंगफील्ड	1964
191	ब्राउन, जे. एफ. ऐण्ड मेनिंगर, के. ए.	साइकाडायनमिक्स आफ अवनार्मल विहैवियर, मैकग्राहिल, न्यूयार्क	1940
192	ब्रोमवर्ग डब्लू.	दि माइन्ड आफ मैन, हारपर, न्यूयार्क,	1937
193	बेटीलहीम, बी.	ट्रयन्ट्स फ्राम लाइफ, दि रिहैविलटेशन आफ इमोशली डिसटर्ब्ड चिल्ड्रेन, फ्री प्रेस, ग्लेनकोई	1955
194	बेकर, जे.	एचीवमेंट रिलेटेड करेक्टरिस्टक आफ मेलिक डिप्रेशन्स, जर्नल आफ एवनार्मल सोशल साइकोलोजी, 60	1960

195	ब्लेकहर्स्ट, ए. ई.	मेंटल रिडार्डेशन ऐण्ड डिलीनक्वेसी जर्नल आफ स्पेशन इजूकेशन, 2	1968
196	बेनेट, आई.	डिलीक्वेन्ट ऐण्ड न्येरोटिक चिल्ड्रेन, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क	1961
197	बेक, एस. जे.	फेमिलीज आफ सीजोफ्रेनिक ऐण्ड आफ वेल चिल्ड्रेन, मैथेड्स, कन्सेप्ट्स ऐण्ड सम रिजल्ट्स, अमेरिकन जर्नल आफ आर्थोसाइक्याट्री, 30	1960
198	वेक ए. टी.	डिप्रेशन, यूनिवर्सिटी आफ पेन्सिलवानिया, फिलेडेल्फिया	1967
199	ब्रोडेई, डब्लू. एम.	सम फेमिली आपरेशन्स ऐण्ड सीजोफेनिया आर्चीव जर्नल साइक्याट्री, 1	1959
200	बिस्क, एल. ई.	बी ग्लैड यू आर न्येरोटिक, मैकग्राहिल बुक कं., न्यूयार्क	1936
201	बर्ग आई. ए.	दि प्राबुलम आफ हामोसेक्सुअलटी सिटाडेंल, न्यूयार्क,	1958
202	ब्राईन, डब्लू. ई.	सीजोफनिया, रिसच्र एण्ड थियरी, एकेडेंमिक प्रेंस, न्यूयार्क	1968
203	बोवर्स, एम.	दि आनसेट आफ साइकोसिस, साईक्याट्री, 28	1965
204	बेरडाई, आर. एफ.	कन्सेप्ट्स ऐण्ड प्रोग्राम्स इन कौशिलिंग, यूनिवर्सिटी आफ मिनेसोटा प्रेंस, मिनेपोलिस,	1951
205	बर्नमैन मारग्रेटेड ऐंड गिल, मर्टन,	हाईप्नोथेरेपी, इण्अर नेशनल प्रेंस, न्यूयार्क	1947
206	बोरडिन, इडवार्ड एस.	साइकोलोजिकल कौंशिलिंग एप्लेटन सेन्चुरी क्राफ्ट्स, न्यूयार्क,	1955
207	बोनर, डी. ऐण्ड मिल्स एस.	हेरेडिटी, इगलेड विलफस प्रेन्टिस हाल, न्यूयार्क,	1964
208	बस, ए. एच.	साइकपैथालोजी, विले, न्यूयार्क	1966
209	मफी, जी.	पर्सनाल्टी, हारपर ऐण्ड डनहम, न्यूयार्क	1947
210	मीड, जी. एच.	फाइन्ड सेल्फ ऐण्ड सोसाइटी, यूनिवर्सिटी आफ शिकागों प्रेस, शिकागो	1934
211	मैकडोनाल्ड, लैडेल	ए डिक्शनरी आफ साइकोलोजिकल टर्म्स, साइकोलोजिकल, सेरीज न्यूयार्क,	1955
212	मैकाइबर, आर. एस. तथा पेज, सी. एच.	सोसाइटी, मैकमिलन कं., न्युयार्क	1953

	हावकिंस डी. आर.	जर्नल आफ साइक्याट्री, 19	
216	मेनिगर, के.	दि ह्यूमन माइन्ड, लाफ, न्यूयार्क	1945
217	मैनिंगर, के.	दि क्राइम आफ पनिशमेंट, विक्रिग प्रेस, न्यूयार्क	1968
218	माइयार, एन. आर. एफ.	फ्रस्ट्रेशन, मैकग्राहिल कं., न्यूयार्क,	1966
219	मेनिंजर, के.	थियरी आफ साइको अनलेटिक टेकनीक हारपर ऐण्ड रो, पब्लिशिंग, न्यूयार्क,	1964
220	माइयर्स, जे. के. ऐण्ड राबर्टस्, वी. एच.	फेमिली ऐण्ड क्लास डायनमिक्स इन मेटल इलनेस, जान विले ऐण्ड सन्स, न्यूयार्क	1959
221	मासरमैन जे. एच.	विहैवियर ऐण्ड न्यूरोसिस, हाफनर न्यूयार्क,	1964
222	मसरमैन, जे. एच.	प्रिन्सिपिल्स आफ डायनमिक साइक्ट्री, डब्लू वी सैन्डर्स कं., फिलडिल्फिया,	1961
223	मास्लो, ए. एच.	टुवार्ड ए साइकालोजी आफ बीइंग, वान नास्ट्रैण्ड पिवसेटन	1962
224	मास्लो, ए. एच.	मोटीवेशन ऐण्ड पर्सनालटी, हारपर न्यूयार्क	1954
225	मास्लो, ए. एच. ऐण्ड मिटलमैन, वी.	प्रिन्सिपिल्स ।अफ एवनार्मल साइकालोजी, हारपर ऐण्ड रो न्यूयार्क	1951
226	मे, आर.	दि मीनिंग आफ एन्जाइटी, दि रोनाल्ड प्रेस कं., न्यूयार्क	1950
227	माइयर, एन. आर. एफ.	फ्रस्ट्रेशन, यूनिवर्सिटी आफ मिशिगन प्रेस, अनाएरबोर	1961
228	मिलर, छी. आर. ऐण्ड स्वानसन, ई. जी.	इगो डिफेन्स ऐण्ड कन्फिलक्स, राइनहार्ट एण्ड विनस्टन, न्यूयार्क	1960
229	मेलगोस, एफ. ऐण्ड बाउलवाई, जे.	टाइपस आफ होपलेसनेस इन साइको पैथोलिजिकल प्रोसेस, आर्चीव आफ जनरल साइक्याट्री, 20,	1969
230	मोरर, ओ. एच.	साइकोथैरैपी–थियरी ऐण्ड रिसर्च, रोनोल्ड प्रेस न्यूयार्क,	1953
231	मोरर, ओ. एच.	न्यू ग्रुप थेरुैपी, वान नास्ट्रैण्ड, प्रिनसेटन,	1964

233	मेरिंग, ओटो वी ऐण्ड क्रिंग, स्टैनली एच.	रिमोटीवेटिंग रि मेंटल पेसेन्ट, रसेल रसेज फाउन्डेशन, न्यूयार्क,	1957
234	मुनसिई, वेनडेल	साइकोवाइलोजी ऐण्ड साइक्याट्री, सी. वी. मोसवाई, सेन्ट लूईस,	1948
235	मेयार, एडोल्फ	साइकोवाइलोजी, स्प्रिगफील्ड, थामस,	1957
236	मोरेने, जे. एल.	साइको–ड्रॉमा, रैंनडम हाउस, न्यूयार्क	1946
237	मर्टव, प्रिन्स	दि डिसोसियेशनआफ ए पर्सनाल्टी, लांकमैन्स ग्रीन ऐण्ड कं., लंदन,	1925
238	भूषन. ए. मास्क्न के. ऐण्ड वर्मा, एल. पी.	सोसियोइकनामिक क्लास ऐण्ड नयूरोसिस, इंडियन जर्नल आफ साइक्याट्री, 9,	1967
239	मैक्लीलैण्ड, डी. सी.	दि अचीविंग सोाइटी, वान नास्ट्रेपड प्रिन्सेटन,	1961
240.	महरेर, ए. एच.	दि गोल्स आफफ साइकोथिरैपी, एटलेटन सेन्चुरी क्रोफट्स, न्यूयार्क,	1967
241	मे, आर. ई. एन्जेंल ऐण्ड एच. इतेनवर्गर (इडिटेड)	अजिस्टेन्स ए. यू. डाइमेन्सन इन साइग्याट्री ऐण्ड साइकालोजी, बेसिक बुक्स, न्यूयार्क,	1958
242	माहेर, वी.	प्रिन्सिपिल्स आफ साइकोपैथलोजी, मैकग्राहिल, न्यूयार्क	1966
243	मे, पी. आर. ऐ.	ट्रीटमेट आफ सीजोफ्रीनिया, साइंस हाउस, न्यूयार्क	1968
244	माउसटैक्स, सी. आई.	लोनलीनेस, इंगलेउड क्लिफ्स, प्रेन्टिस हाउस, न्यूयार्क	1968
245	यंग, किम्बाल	हैण्डबुक आफ सोशल साइकोलोजी, रटलेज ऐण्ड केगन पाल लि., लंदन,	1957
246	यूनानस्की, ई. ऐण्ड रूल, जे. पी.	चाइल्ड डिप्रेसन, आर्चीव आफ जनरल साइकयाट्री, 23	1970
247	यरवरी, ई. सी. ऐण्ड नेवेल, एन.	जेनिटिक ऐण्ड इनवाइरनमेन्टल फेक्टर्स इन साइकोसिस आफ चिल्ड्रेन, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याक्याट्री,	1943
248	राइजमैन, एफ.	दि कल्चुरली डिप्राइब्ड चाइल्ड, हारपर ऐण्ड रो, कं. न्यूयार्क	1960
249	रोजेनथाल, डी. ऐण्ड केटी, एस.	दि ट्रान्समिशन आफ सोजोफ्रीनिया, पगमिन, न्यूयार्क,	1968
250	रोविन्स, एल. एन.	डीवियन्ट चिल्ड्रेन, ग्रोन अप, विलियम्स ऐण्ड, विलकिन,	1966
251	रशिंग, डब्लू. ए.	डीवियन्ट विहैवियर ऐण्ड सोलज प्रोसेस, ऐण्ड मैकनैली, शिकागों,	1969

252	रे, एस. डी.	सोशल स्ट्राटीफिकेशन आफ मेटल पेसेन्ट्स, इडियान जर्नल आफ साइक्यात्री, 4,	1962
253	रोसेन, जे. एन.	साइको अनालेसिस, डाइरेक्ट ऐण्ड इनडाइरेक्ट, दि डोयलेस्टाउन फोउन्डेसनरू, डोयलेस्टाउन पेन्ना,	1964
254	रोसेन, वाअम, एम. वरेगेर	ग्रुप साइकोथेरैपी ऐण्ड ग्रुप फंक्सन, बेसिक बुक्स, इंक, न्यूयार्क	1963
255	रोयसे, जे. ई.	पर्सनाल्टी ऐण्ड मेंब्ल हेल्थ, दि बुस पब्लिशिंग कं. मिलवाउकी, वाइज,	1964
256	रोस, ए. एम.	मेंटल हेल्थ ऐण्ड मेंटल डिसआर्डर, नार्टन, न्यूयार्क,	1955
257	रोजेनथल, एस. एच.	दि इनवाल्यूशन डेप्रेसिव सिन्ड्रोम, अमेरीकन जर्नल आफ साइक्यात्री, 124	1968
258	रेइच, टी. क्लाइटोन पी. ऐण्ड विनोकुर जी.	फेमिली हिस्ट्री स्टडीज, दि जेनिटिक्स आफ मेनिया, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्यात्री, 125,	1969
259	रोच, जे.एफ. लेफ एम.जे. ब्रीवनी डब्लू. जी.	अनवाइरमेंटल फैक्टर्स प्रसीडिंग दि आन सेट आफ सीवियर डिप्रेशन साइक्यात्री, 33	
260	राबकिन, एल. वाई.	साइकोपैथोलोजी ऐण्ड लिटरेचर, चान्डलर, सानफ्राँसिसको,	1966
261	रोजर्स, सी. आर.	क्लाइन्ब सेन्टड्ड थैरैपी, हघटन मिफलिन, वास्टन,	1961
262	रोजर्स, सी. आर.	आन विकमिग ऐ परसन, अघटन मिफलिन, वास्टन,	1961
263	रोजर्स, कार्ल, आर.	क्लाईन्ट सेन्टर्ड थेरैंपी, अघटन मिफलिन, वास्टन,	1951
264	रोजर्स, कार्ल, आर.	कौशिलिंग प्रण्ड साइकोथेरैपी, सघटन मिफलिन, वास्टन	1942
265	रैंक, ओटो,	दि ट्रूमा आफ वर्थ, हरकोर्ट प्रेस, न्यूयार्क,	1929
266	रैंक, ओटो, आर्ट	आर्टिस्ट, क्रियेटिव अजै ऐण्ड पर्सनाल्टी डेवलपमेंट, एलफ्रेड ऐ नाफ, न्यूयार्क,	1932
267	रास, इवा, जे.	सोशियालोजी ऐण्ड सोसल प्रातुलम्स, ओरिण्न्ट लांगगेस, बाम्बे,	1959
268	रेनाई, टी. ए. ऐण्ड फाउलर, जे. बी.	प्रोगनोसिस इन मेनिक डिप्रेसिव साइकोसिस, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्वात्री, 98,	1942
269	रोसेन, एच. ऐण्ड काइन. एच. आई.	पैरानोइया ऐण्ड पैरान्वाइड हरयक्सन टाइप्स, डजीज आफ दि नर्वससिस्टम, 7,	1946

270	रूईच, जे.	दि एक्यूट नर्वस ब्रेक डाउन, आर्चीव आफ जनरल साइक्यार्ट्री, 8,	1963
271	राबिन्स. ई. गुडविन, डी. डब्लू. ऐण्ड बुजे, एस. वी.	फालोअप स्टडीज इन आवसेसनल न्यूरोसिस, आर्चीव आफ जनरल साइक्यार्ट्री, 20	1969
272	लाल, नरोत्तम	इक्सटेन्ट आफ दि प्राबुलम. स्पेशल इशु आन दि इनागरेशन आफ दि न्यू साइक्यार्ट्री हास्पिटल. लखनऊ,	1976
273	लेंगनर, टी. एस. एस. टी. मिचेयल	लाइफ स्ट्रेस ऐण्ड मेन्टल हेल्थ, फ्री प्रेस आफ गलेंको, न्यूयार्क	1963
274	लोम्ब्रोसो, फेरेरो जी.	क्रिमीनल मैन, पुटनाम्स, न्यूयार्क	1964
275	लविंसन, एच. एट. एल.	मैनेजमेंट ऐण्ड मेंटल हेल्थ, हारवर्ड यूनीवर्सिटी कैमब्रिज, मास,	1962
276	लेमकाऊ, पी.	मेंटल हाइजीन ऐण्ड पब्लिक हेल्थ, मैकग्राहिल,न्यूयार्क	1949
277	ला स्टैन्ली, जी.	थेरैपी थ्रू इन्टरव्यू मैग्राहिल, बुक कम्पनी, न्यूयार्क	1948
278	लेविन, कुर्त	ए डायनमिक थियरी आफ पर्सनाल्टी, मैकग्राहिल, न्यूयार्क,	1935
279	लशिंस, ए. एस.	ग्रुप थेरैपी रैनउम हाउस, इंक, न्यूयार्क,	1964
280	लाघटिन, एच.	दि न्यूरोसिस, वटरवर्थ, इंक, वाशिंगटन,	1965
281	लाउघलिन, एच.	मेंटल मकेनिज्म, वटरवर्थ, इंक, वाशिंगटन,	1963
282	लापियर ऐण्ड फ्रान्सवर्थ	रोशल साइकोलोजी, मैकग्राहिल बुक कम्पनी, न्यूयार्क	1949
283	लोरी, एल. जी.	साइक्यार्ट्री फार सोशल वर्कर्स, कोलम्बिया यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क,	1946
284	लेग, पी.	ओटोनमिक कंट्रोल. साइक्यार्ट्री डुडे, 4	1970
285	लान्जकरोन, ई.	मरडर ऐज ऐ रियक्सन टु पैरान्वाइड डिलयूजन्स इन इनवालुशलन साइकोशिस ऐण्ड इट्स प्रेवेन्सन, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्यार्ट्री,	1961
286	लार, एफ. ऐण्ड ब्लेट, सी. जे.	क्लास कल्चरल कम्पटीशन आफ साइकोटिक सिन्ड्रोम्स, जर्नल आफ अवनामल साइकालोजी, 74	1969
287	लजारस, ए. पी.	नर्निंग थियरी इन दि ट्रीटमेंट आफ डिप्रेसन, विहैवियरस्टिक रिसर्च थिरैपी,	1968

288	लजार. आर. एस.	पर्सनालटी ऐण्ड एडजस्टमेंट, इंगलेउडकिलफस, न्यूयार्क,	1963
289	लजारस, ए. ए.	विहैवियर थिरैपी ऐण्ड वियान्ड, मैकगाहिल, न्यूयार्क,	1971
290	लजारस, आर. एस.	साइकोलाजिकल, स्ट्रेस ऐण्ड कोजिंग विहैवियर, मैकग्राहिल, न्यूयार्क,	1946
291	लिज, टी. ऐण्ड अदर्स	इन्टा फेमिलियल इनवाइरनमेंट आफ दि सीजोफ्रीनिक पेसेन्ट, साइक्याट्री, 20,	1957
292	लीफ, एच. आई.	जनरिक ऐण्ड स्पेसेफिक ऐसपेक्ट्रस आफ फोविक विहैवियर, इंटरनेशनल जर्नल आफ साइक्याट्री, 6,	1968
293	लेसी, जे. आई.	सोमैटिक रिसपान्स पैटनिंग ऐण्ड स्ट्रेस साइकोलोजिकल स्ट्रैस इसूज इन रिसर्च, एप्लेटन सिन्चुरी क्रेफ्ट्स, न्यूयार्क	1967
294	लेहनर, जी. एफ. जे. ऐण्ड कुबे, ई.	दि डायनमिक्स आफ परसनल ऐडजस्टमेंट, इंगलेउड क्लिफ्स, न्यूयार्क,	1964
295	लोईवान्ड, एस. एच.	कण्डीशनिंग ऐण्ड इनरोसिस, पगमिन, आक्सफोर्ड,	1964
296	लचर्मन, एव. जे.	साइकोसोमेंटिक डिसआर्डर्स, ए विहैवियरिस्टक इंटर प्रेटेशन, विले, न्यूयार्क,	1972
297	लैगनर, टी.एस. ऐण्ड मिचाल,एस.टी.	लाइफ स्ट्रेस ऐण्ड मेंटल हेल्थ फ्री प्रेस, न्यूयार्क	1963
298	लंदन, पी.	मोड्स ऐण्ड मोरल्स आफ साइकोथेरैपी, होल्ट राइनसर्ट ऐण्ड विन्सट्, न्यूयार्क,	1964
299	लोई मार्शल, सी.	वैलू ओरिइन्टेशनट्स इन कौशिलिंग ऐण्ड साइकोथेरैपी, चान्सलर पब्लिशिंग कम्पनी, शिकागों,	1969
300	लाइंग, आर. डी. ऐण्ड ईस्टरसन, ए.	सैनिटी मैडनेस, ऐण्ड दि फैमिली टाविस्टाक पब्लिकेशन, लंदन,	1964
301	लाइंग, आर. डी.	डिवाइडेड सेल्फ, पैन्थान, न्यूयार्क	1969
302	लेविस, एन. डी. सी.	ए शर्ट हिस्ट्री आफ साइक्याट्रिक एचीवमेंट नार्टन, न्यूयार्क	1941
303	लाइंग, आर. डी.	दि पेलिटिक्स आफ इक्सपीरियन्स वेलेनटाइन बुक्स, न्यूयार्क	1967
304	वोलवर्ग, लेविस आर.	दि टेकनिक्स आफ साइकोथैरैपी, गूने ऐण्ड स्ट्रेटन, न्यूयार्क,	1954

305	बैच, जार्ज, आर.	इनटेन्सिव ग्रुप साइकोथिरैपी, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क	1945
306	बूवर, मार्टिन,	डिस्टेन्स ऐण्ड रिलेशन, साइक्याट्री,	1957
307	वूहलर, सी.	साइकालोजी फार कन्टैम्पोरेरी लिविंग, हावर्थर्न बुक्स, न्यूयार्क	1969
308	वाट्सन, जे. नी.	विहैवियर, होल्ट, न्यूयार्क	1914
309	विवरिंग ई.	दि मेकेनिज्म आफ डिप्रेशन, इन पी ग्रीनाकरे (एडिटेड) अफक्टिव डिसआर्डर्स, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क,	1953
310	विन्च आर. एफ.	दि माडर्न फेमिली, राइनहार्ट ऐण्ड विन्सटन, न्यूयार्क	1963
311	वोल्पे, जे.	दि प्रक्टिस आफ विहैवियर थिरैपी, पगमिन प्रेस न्यूयार्क,	1969
312	बीनवर्ग, एस. के.	दि सोसियालोजी आफ मेटल डिसआर्डर्स, आल डाइन पब्लिकेशन, शिकागों,	1967
313	ब्रोकिगटन, एफ.	मेंटल हेल्थ ऐण्ड दि वर्ल्ड कॅयुनिटी, वर्ल्ड फेडरेशन फार मेंटल हेल्थ, लंदन,	1954
314	वहल, सी. डब्लू. (एड.)	न्यूडाईमेन्सन इन साइकोसौमेटिक मेडिसिन, लिटिन ब्रोउन ऐण्ड कं., वोस्टनमास,	1964
315	वैरेट, डबलू	इर्रेशनल मै, डबुलडे, न्यूयार्क	1958
316	ब्रीवेर, जे. एफ.	हिस्ट्री आफ वोकेशनल गाइडेन्स, हारपर, न्यूयार्क,	1942
317	बबर, एफ.	विटवीन मैन ऐण्ड मैन, रउटलेज ऐण्ड केगन पाल लिं., लंदन,	1947
318	ब्लूस्टोन, एच. ऐण्ड मैकग्राही, सी. एल.	रियक्सन टु स्ट्रीम, अमेरिकन जर्नल आफ साइक्याट्री, 119,	1962
319	बेक, ए. टी.	दि मिनिंग आफ डिप्रेंशन, साइंस न्यूज, 96,	1969
320	वोसोविट्ज एच. पर्सकी, एच. क्रीस्वीन, एस. ऐण्ड गिन्कर, आर.	एन्जाइटी ऐण्ड स्ट्रेस, मैकग्राहिल बुक कं., न्यूयार्क,	1955
321	वीयर्स, सी. डब्लू.	ए माइन्ड दैट फाउण्ड इटसेल्फ, लांगमैनस, न्यूयार्क	1920
322	सावरे, जे. एम. ऐण्ड टेलफोर्ड, सी. डब्लू.	डायनमिक्स आफ मेंटल हेल्थ, एलयन ऐण्ड वाकन इंक, वास्टन,	1963
323	शा, एफ. जे. एण्ड ओर्ट, आर. एस.	परसनल एडजस्टमेंट इन अमेरिकन कल्चर हारपर ऐण्ड रो, न्यूयार्क,	1953

324	स्मिथ, एच. सी.	पर्सनाल्टी एडजस्टमेंट, मैकग्राहित कं., न्यूयार्क	1961
325	स्कैक्टर, एस.	दि साइकोलोजी आफ एफीलियेशन, स्टैनफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेंस, स्टेफोर्ड,	1959
326	स्क्रिमाशा, एस. ऐण्ड गार्डन, जे.	माल न्यूट्रीशन लनिंग ऐण्ड विहैवियर, मास एम. आई. टी., कैमिब्रज,	1968
327	साज टी. एस.	दि मिथ आफ मेन्टल इलनेस, होइवर हारपर, न्यूयार्क	1961
328	स्टौंरलैण्ड, ई.	दि साइकोलोजी आफ होप, जोसीवास, सेन्स फ्रन्सिको	1969
329	सेलिंग, एल. एस.	मेन अगेंस्ट् मैडनेस, गार्डन सिटी बुक्स, न्यूयार्क	1943
330	सिगरिस्ट, एच. ई.	सिविलाइजेशन ऐण्ड डिजीज, कोरनेल यूनिवर्सिटी प्रेस न्यूयार्क,	1943
331	सकरमैन, एन.	ट्रीटिंग दि ट्रबुल्ड फमिनी, बेसिक बुक्स न्यूयार्क,	1966
332	शेफर, एल. एफ. ऐण्ड शोवेन, ई. जे.	दि साइकोलोजी आफ एडजस्टमेन्ट, रविरसाइड, कैम्ब्रिज,	1956
333	ल्केवाव, जे.जे. मैकजिनि, एन.एच. नोरिस, एल. बी., ऐण्ड स्केवाव, आर.	साइकोसोमेटिक मेडिसिन ऐण्ड दि कन्टेम्पोरेरी सोशल सीन, अमेरिकन जर्नल ऑ साइक्याट्री, 126	1970
334	सोलोमन, जी. एफ.	इमोशन, स्ट्रेस, दि सेन्ट्रल नर्वस सिस्टम ऐण्ड इम्यूनिटी, एनल्स आफ न्यूयार्क एकेडमी, साइँस, 164	1969
335	स्लेटर ई. टी. ओ.	जेनेटिक्स इन साइक्याट्री, जर्नल आफ मेन्टल साईस,	1944
336	साल्जमैन, एल.	आवसेसन्स एण्ड फोवियाज, इंटरनेशनल जर्नल आफ साइक्याट्री, 6,	1968
337	सारविस,एम.एम.	पैरान्वाइड रियैक्सन्स, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री, 6,	1962
338	सदरलैण्ड, ई. एच. ऐण्ड क्रेंसेई, डी. आर.	प्रिन्सिपिल आफ क्रिमिनोलोजी, लिपिनकाट, फिलेडल्फिया,	1966
339	सिमन डब्लू, ऐण्ड गागनन जे. एच.	सेक्सुअल डिवियन्स, हारपर ऐण्ड रो, न्यूयार्क	1967
340	सारासन, इरविन जी.	अवनार्मल साइकालाजी, दी प्राबलम्स आफ माल–एडाप्टिव विहैवियर, एप्लेटन सैंचुरी क्रेफट्स, न्यूयार्क	1972

341	सावरी, जे. एम. ऐण्ड सी. डब्लू टेलफोर्ड	डायनमिक्स आफ मेंटल हेल्थ–दि साइकोलाजी आफ ऐडजस्टमेंट आलयन ऐण्ड वाकोन, इंक, वोस्टन मास.	1963
342	सुलीवान, एच. एच.	क्लीनिकल स्टडीज इन साइक्याट्री, नार्टन, न्यूयार्क	1956
343	सुलीवन, एच. एस.	दि साइक्याट्रिक इंटरव्यू, जार्टन, न्यूयार्क,	1956
344	सुलीवान, एच. एस.	दि इंटरपर्सनल थियरी आफ साइक्याट्री, नार्टन, न्यूयार्क	1953
345	सुलीवान जे. एस.	दि फंक्सन आफ साइकिएटरी ऐण्ड सोसल साइंसेज, डब्लू डब्लू नार्अन ऐण्ड कं., इंक, न्यूयार्क,	1964
346	सेठी, वी.वी. ठैकोर, वी.आर. ऐण्ड गुप्ता, एस.सी.	चेन्जिग पैटनर्स आफ कल्चर ऐण्ड साइक्याट्री इन इंडिया, अमेरिकन जर्नल आफ साकोथिरैंपी, 22,	1968
347	स्टर्न, पी. जी.	दि एवनार्मल परसन ऐण्ड हिज वर्ल्ड, डी वान नास्ट्रेप प्रिनसटन,	1964
348	स्टर्न ई. एम.	मेन्टल इलनेस, हारपर ऐण्ड रे, न्यूयार्क,	1962
349	स्ट्रेन्ज, जे. आर.	एवनार्मल साइकालोजी, मैकग्राहिल कं. न्यूयार्क,	1965
350	स्मेलसर, एन. जे. स्मेलसर, डब्लू. टी.	पर्सनाल्टी ऐण्ड शोशल सिस्टम, जानविले ऐण्ड सन्स, इंक, न्यूयार्क,	1963
351	सापेफील्ड, वी. आर.	पर्सनाल्टी डायनमिक्स, एल्फ्रेड ऐ नाफ, न्यूयार्क	1954
352	साइमण्ड्स,पी. एम.	दि डायनमिक्स आफ ह्यूमन ऐडजस्टमेंट, एप्जेटन सेन्चुरी क्रेप्ट्स, न्यूयार्क	1946
353	स्लावसन, एस. आर.	ऐन इन्ट्रोडक्सन टु ग्रुप थेरैपी, दि कामनवेल्थ फण्ड, न्यूयार्क,	1943
354	″ ″	दि प्रक्टिस आफ ग्रुप थेरैपी, इंटरनेशनल यूनिवर्सिटी प्रेस, न्यूयार्क	1947
355	स्लावसन, एस. आर.	रिक्रयेशन ऐण्ड दि टोटल पर्सनाल्टी, एसोशियेसन प्रेस, न्यूयार्क,	1948
356	स्ट्रोथर, चालर्स आर.	साइकोलाजी ऐण्ड मेंटल हेल्थ, अमेरिकन साइकोलोजिकल एसोशियेसन, वाशिंगटन	1956
357	साल्टर एन्डयु	कन्डीसन्ड रेफलेक्स थेरैपी, क्रियेटिव एज प्रेस न्यूयार्क,	1949

358	होनिंग, डब्लू. के.	आपरेन्ट विहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रफ्ट्स, न्यूयार्क	1966
359	हामेर, एम. सालजन्गर, के. ऐण्ड सटन, एस.	साइकोपैथालोजी, विले, न्यूयार्क	1973
360	होच, पी. ऐण्ड नाइट, आर.	इपीलेप्सी, गुने ऐण्ड स्टैटन, न्यूयार्क	1947
361	हाउन्ट्रास, पी. टी.	मेंटन हाइजीन, चार्ल्स ई मेरिल बुक्स, ओहियो	1961
362	हल सी. एल.	प्रिन्सिपिल्स आफ विहैवियर, एप्लेटन सेन्चुरी क्रेफ्ट्स न्यूयार्क	1943
363	हारपर आर. ऐ.	साइकोएनालिसिंस ऐण्ड साइकोथेरैपी, इगलेउड क्लिफस न्यूयार्क	1959
364	हिलगार्ड, ई. आर. ऐण्ड जी. एच. वोवर	थियरीज आफ लर्निंग, एप्जेटन सेंचुरी क्रेफ्ट्स न्यूयार्क	1966
365	हिन्कले, राबर्ट, जी.	ग्रुप ट्रीटमेंट इन साइकोथेरैपी, यूनिवर्सिटी आफ मिनेसोटा प्रेस, मिनेयापोलिस,	1951
366	हास, लूईस जे.	प्रक्टिकल अकूपेशनल थेरैपी, ब्रूस, मिलवाउकी,	1946
367	हार्टमैन, जी. डब्लू.	गेस्टाल्ट साइकोलोजी, रोनाल्ड प्रेस, न्यूयार्क,	1935
368	होच पाल एच. ऐण्ड जूविन जोसेफ	साइक्याट्री ऐण्ड दि ला, गूने ऐण्ड स्ट्रेटन, न्यूयार्क	1955
369	हर्जवर्ग, एलेक्जेण्डर	ऐक्टिव सइकोथेरैपी, गूने ऐण्ड स्ट्राटेन, न्यूयार्क	1946
370	हार्नी, के.	अवर इनर कन्फिलक्ट, डब्लू डब्लू नार्टन ऐण्ड कम्पनी, न्यूयार्क	1945
371	हार्नी, केंटेन	सेल्फ एनालिसिस, नार्टन, न्यूयार्क	1942
372	हार्नी, कारेन	दि न्येरोटिक पर्सनाल्टी आफ अवर टाइम, नार्टन, न्यूयार्क	1937
373	होलिंग हीड ए. बी. ऐण्ड रेडलिच, एफ. सी.	सेशल क्लास ऐण्ड मेंनअल इलनेस, विलो, न्यूयार्क	1958
374	हिवटेकर, कार्ल ए. ऐण्ड मैलोन, थामस पी.	दि रूट्स आफ साइकोथेरैपी, व्लेकिस्टोन, न्यूयार्क	1953
375	हेस्टोन, एल.	साइक्याट्रिक डिसआर्डर्स इन फोस्टर हाम रियर्ड चिल्ड्रेन आफ सीजोफ्रेनिक मदर्स, ब्रिटिश जर्नल आफ साइक्याट्री, 112,	1966
376	होरेफोर्ड, सी. एफ.	चेजिंग पैरेन्टल एटीक्यूट्स थ्रू ग्रुप डिसक्सन, दि यूनिवर्सिटी और टैंक्साज प्रेस, अस्टिन	1963

377	डाण्ट, मैक वी. जे.	पर्सनल्टी ऐण्ड दि विहैवियर डिसआर्डर्स, रोनाल्ड प्रेस न्यूयार्क	1944
378	ह्विटवेल, जे. आर.	हिस्टारिकल नाट्स आफ साइक्याट्री एस. के. लेविस लंदन,	1936
379	हाउन्टर्स, पी. टी. (एड.) मेन्टल हाइजीन	ए टेक्सट आफ रीडिंग्स, कोलम्बस चालर्स ई. मेरिल बुक्स, इंक, ओहिबो	1961
380	ह्वाइट डब्लू. ए.	दि लैग्वेज आफ सिज्याफ्रिनिया, आरकाई आफ न्यूरोलाजी, शिकागों पृष्ठ 292.313	1926
381	ह्वाइट, आर. डब्लू.	दि अबनार्मल पर्सनाल्टी, दि रोनाल्ड प्रेस कं., न्यूयार्क	1964
382	हरिंग, एल. जी. ऐण्ड फिलिप्स ई. एल.	इजूकेटिंक इमोशनली डिसट्र्वंड चिल्ड्रेन, मैकग्रहिल कम्पनी, न्यूयार्क	1962
383	हीवेर, डब्लू. एल.	ए स्टडी आफ कोरटी मेल साइकापैथिक पर्सनाल्टीज विफोर ड्युरिंग ऐण्ड आफटर हास्पिटल लाइजेशन अमेरिकल जर्नल आफ साइक्याट्री	1943
384	हेर, आर.	साइकोपैथी, थियरी ऐण्ड रिसर्च, विले, न्यूयार्क,	1970
385	हेर, आर. डी.	साइकोपैथी, आटोनामिक फैक्शनिंग ऐण्ड दि ओरियन्टेशन रिसपान्स, जर्नल आफ एवनार्मल साइकालोजी	1968
386	हैंगर्टी, एच.	दी साइकोटिक पर्सनाल्टी ट्रेट्स इन वीमेंन विद दि इनवालूशनल मेलेनकोलिया, स्टडीज इन सोशलवर्क स्मिथ कालेज	1941
387	हिलेय, जे.	डाइरेक्ट स्टडी आफ चाइल्ड पैरेन्ट इण्टर ऐक्सन, अमेरिकन जर्नल आफ आर्थोसाइक्याट्री 30,	1960
388	हेस्टन, एल. एल.	दि जेनेटिक्स आफ सीजोफ्रेनिक डिजीज, साइंस	1970
389	होफर, ए. ऐण्ड पेलिन डब्लू.	सीजोफ्रीनिया इन रि एन.ए.एस.एस.आर.सी., पेनल आफ 159.9 वेटरन ट्विन प्रेयर्स, आर्चीव आफ जर्नल साइक्याट्री 23,	1970
390	हिरसचफेल्ड, एम.	सेक्सुअल एवनर्मलटीज, इमरसन बुक्स, न्यूयार्क	1956

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान, लखनऊ

समाजशास्त्र और समाजकार्य सम्बन्धी महत्त्वपूर्ण प्रकाशन

पुस्तक का नाम	लेखक का नाम	मूल्य
समाजकार्य	प्रो. राजाराम शास्त्री	150.00
सामाजिक वैयक्तिक सेवाकार्य	डॉ. पी.डी. मिश्र	150.00
औद्योगिक विवाद और उसका सुलझाव	डॉ. बालेश्वर पाण्डेय	115.00
भारत का समाजशास्त्र	प्रो. जयकान्त तिवारी	120.00
आधुनिक समाज वैज्ञानिक सिद्धान्त परिचय	डॉ. हरीश चन्द्र श्रीवास्तव	90.00
समाजकार्य : एक समग्र दृष्टि	डॉ. बालेश्वर पाण्डेय	470.00
समाजकार्य के क्षेत्र	गिरीश कुमार	210.00
बाल व्यवहार व्यतिक्रम	डॉ. श्याम बिहारी सिंह	50.00
भारत में सामूहिक सौदेबाजी	डॉ. बालेश्वर पाण्डेय	35.00
सामाजिक सामूहिक कार्य	डॉ. पी.डी. मिश्र	100.00
समाज और राजनीति का दार्शनिक अध्ययन	डॉ. ज्ञानंजय द्विवेदी	215.00

सम्पर्क सूत्र

निदेशक

उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

राजर्षि पुरुषोत्तमदास टण्डन हिन्दी भवन

6, महात्मा गांधी मार्ग, लखनऊ - 226001

दूरभाष : 0522-2614470

ISBN : 978-93-82175-52-0

मूल्य : रुपये 235=00